UGC CARE LISTED JOURNAL

ISNN: 2321-0443

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-79

जुलाई-सितंबर-2023

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION

(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

UGC CARE LISTED JOURNAL ISSN: 2321-0443

ज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक पत्रिका)

अंक-79

जुलाई-सितंबर-2023

सत्यमेव जयते

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

शिक्षा मंत्रालय

(उच्चतर शिक्षा विभाग)

भारत सरकार

COMMISSION FOR SCIENTIFIC AND TECHNICAL TERMINOLOGY

MINISTRY OF EDUCATION

(DEPARTMENT OF HIGHER EDUCATION)

GOVERNMENT OF INDIA

'ज्ञान गरिमा सिंधु' मानविकी और सामाजिक विज्ञान की एक त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य हिंदी माध्यम से विश्वविद्यालयी एवं अन्य विद्यार्थियों के लिए मानविकी और सामाजिक विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक साहित्य की प्रस्तुति है। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली- चर्चा, पुस्तक समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश:

- लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
- लेख का विषय मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विषयों से संबंधित होना चाहिए।
- लेख सरल हों जिसे विश्वविद्यालय/ महाविद्यालय के छात्र आसानी से समझ सकें।
- लेख लगभग 2000 से 3000 शब्दों का हो।

प्रकाशन हेतु विस्तृत जानकारी आयोग की वेबसाइट http://cstt.education.gov.in/en पर उपलब्ध है ।

पत्रिका का शुल्क:	**भारतीय मुद्रा**	**विदेशी मुद्रा**
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	**Rs 14.00**	**पौंड 1.64 डॉलर 4.84**
वार्षिक चन्दा	**Rs 50.00**	**पौंड 5.83 डॉलर 18.00**
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	**Rs 8.00**	**पौंड 0.93 डॉलर 10.80**
वार्षिक चन्दा	**Rs 30.00**	**पौंड 3.50 डॉलर 2.88**

वेबसाइट : www.cstt.education.gov.in
कॉपीराइट : ©2022
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार,
पश्चिमी खंड -7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली - 110066

बिक्री हेतु पत्र-व्यवहार का पता :
प्रभारी अधिकारी, बिक्री एकक
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड -7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066
टेलीफोन - (011) 20867172
फैक्स - (011) 26105211/246

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे संपादक मंडल की सहमति आवश्यक नहीं है।

अध्यक्ष की कलम से...

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग विभिन्न वैज्ञानिक, तकनीकी, उच्चतर शिक्षा एवं मानविकी आदि से संबद्ध क्षेत्रों में तैयार की गई शब्दावली का समुचित प्रयोग सुनिश्चित करने के उद्देश्य से तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन को प्रोत्साहित करने हेतु `ज्ञान गरिमा सिंधु' पत्रिका का प्रकाशन करता आया है। आयोग द्वारा समय-समय पर इस पत्रिका के कुछ विषय-केंद्रित विशेषांकों का प्रकाशन किया जाता रहा है। इसी श्रृंखला में पत्रिका के अंक-79 (जुलाई-सितंबर, 2023) को अपने सुधी पाठकों एवं लेखकों को उपलब्ध कराते हुए मुझे अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। प्रस्तुत अंक बहुविषयक प्रकृति का है। इस अंक में एक ओर जहाँ भारतीय संविधान, न्यायशास्त्र, प्रमुख नीतिगत विमर्श को स्थान दिया गया है, वही दूसरी ओर भारतीय ज्ञान परंपरा से संबंधित विविध लेखों का भी समावेश किया गया है। नौकरशाही में नवोन्मेष, लोकलुभावनवाद व स्वतंत्रता आंदोलन का विउपनिवेशीकरण परिप्रेक्ष्य जैसे लेख भी अत्यंत उल्लेखनीय हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ न केवल संस्था-विशेष के ज्ञान एवं वैशिष्ट्य का परिचायक होती हैं, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग क्षेत्रों में हो रहे महत्वपूर्ण नीति-निर्माण, अनुसंधानों तथा शोध-कार्यो का एक समेकित व जनोपयोगी सार्थक मंच भी प्रस्तुत करती हैं।`ज्ञान गरिमा सिंधु' का उद्देश्य मूलतः हिंदी में मानविकी व सामाजिक विज्ञान विषयक लेखन को प्रचारित-प्रसारित करना है, जिसका कार्यान्वयन व अनुपालन पत्रिका अपने प्रत्येक अंक में करती रही है। पत्रिका का यह अंक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण व संग्रहणीय है। देश भर से विभिन्न विषयों पर चिंतन-मनन करने वाले विभिन्न मनीषियों के विविध-विषयक सारगर्भित आलेख प्रस्तुत अंक में संकलित हैं।

यह महत्वपूर्ण अंक आपको समर्पित करते हुए मैं देश के प्रतिनिधि विश्वविद्यालयों, तकनीकी, वैज्ञानिक एवं अन्य संस्थानों के अध्यापकों, वैज्ञानिकों एवं अधिकारियों से अपेक्षा करता हूँ कि वे आयोग के विशेषज्ञ विद्वानों के सहयोग से तैयार की गई प्रामाणिक व मानक शब्दावली के अधिकाधिक प्रयोग के माध्यम से इसे सर्वजन-सुलभ बनाने में अपना सार्थक योगदान दें । साथ ही मैं विद्वानों, शोधार्थियों, अन्य लेखकों से विनम्र निवेदन करता हूँ कि वे इस पत्रिका के लिए आलेख लिखें। आयोग की शब्दावलियाँ https://shabd.education.gov.in/ पर खोज प्रक्रिया में उपलब्ध हैं। जहाँ से आयोग द्वारा निर्मित आधिकारिक शब्दावली को प्राप्त कर के आलेख लिखे जा सकते हैं।

प्राप्त आलेखों को सम्पादित कर प्रकाशन योग्य तैयार करने का उत्तरदायित्व डॉ.शाहजाद अहमद अंसारी ने बड़े मनोयोग से निभाया है। मैं इस पत्रिका के परामर्श एवं संपादन-समिति के प्रत्येक विशेषज्ञ तथा संपादक डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी के प्रति धन्यवाद व्यक्त करते हुए इस अंक के लेखकों को भी साधुवाद देता हूँ। सुधी पाठकों के अमूल्य सुझावों एवं सहयोग की प्रतीक्षा रहेगी।

प्रो. गिरीश नाथ झा
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

सम्पादकीय

`ज्ञान गरिमा सिंधु' का 79 वाँ अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। यह अंक स्वयं में विशिष्ट है। प्रस्तुत अंक में सामाजिक विज्ञान व मानविकी के विविध पक्षों से संबंधित आलेखों को समाहित किया गया है।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का वि-उपनिवेशीकरण परिप्रेक्ष्य, लोहिया, गाँधी, विनोबा भावे आदि प्रमुख सामाजिक विचारकों के प्रमुख विचार, भारतीय संविधान, भारतीय न्यायशास्त्र, अनुसूचित जनजाति, विकसित भारत, लोकलुभावनवाद, संपोषणीयता, उपनिवेशवाद, जी-20, महिला आंदोलन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 आदि विविध विषयों पर प्रमुख लेखों का चयन प्रस्तुत अंक के लिए किया गया है। उपनिषद, भगवद्गीता तथा श्रीरामचरितमानस पर आधारित भारतीय ज्ञान परंपरापरक सारगर्भित लेखों को भी इस अंक में सम्मिलित किया गया है। भारत-जापान द्विपक्षीय समझौतों, भारतीय राजनीति में राजनीतिक नेतृत्व के बदलते आयाम तथा सामाजिक विज्ञानों के लिए हिंदी में तकनीकी शब्दावली से संबंधित प्रमुख लेख भी उल्लेखनीय हैं।

अध्यक्ष महोदय के निर्देशानुसार एवं उनके द्वारा 'ज्ञान गरिमा सिन्धु' के इस अंक हेतु प्राप्त आलेखों के मूल्यांकन, संयोजन एवं सम्पादन का अवसर मिला। यद्यपि अत्यल्प समय में इसके मूल्यांकन व सम्पादन का कार्य वास्तव में कठिन था, तथापि नित्य-प्रति के प्रयासों और विशेषज्ञ-समिति के सहयोग से आलेखों का मूल्यांकन, सम्पादन एवं प्रूफ-शोधन प्रारंभ हुआ। प्राप्त कुल साठ से अधिक आलेखों में से सम्पादित एवं चयनित कर इस अंक हेतु इकत्तीस आलेखों को स्थान दिया गया है, जिसे क्रमवार प्रस्तुत किया गया है ताकि विषय की समेकित समझ बन सके।

मैं सभी लेखकों एवं परामर्श- संपादन समिति के सदस्यों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

मैं माननीय अध्यक्ष महोदय के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनके मार्गदर्शन व प्रोत्साहन से यह कार्य नियत समय पर निष्पादित हो सका। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत अंक पाठकों के लिए लाभदायक एवं उपयोगी सिद्ध होगा। विद्वत समाज और सुधी पाठकों के सुझाव की प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी
सहायक निदेशक (विषय),
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

परामर्श एवं सम्पादन मंडल

प्रधान सम्पादक
प्रोफेसर गिरीश नाथ झा
अध्यक्ष

सम्पादक
डॉ. शाहजाद अहमद अंसारी,
सहायक निदेशक (विषय)

सम्पादन समिति

प्रो. पवन कुमार शर्मा
राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

प्रो. राजेन्द्र कुमार पाण्डेय
प्राचार्य, देशबंधु महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. प्रवीण कुमार झा
शहीद भगत सिंह महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. शांतेष कुमार सिंह
अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, संगठन और कूटनीति अध्ययन केंद्र,
अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. गौरव सिंह
केंद्रीय शैक्षणिक प्रौद्योगिकी संस्थान,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद,
नयी दिल्ली

प्रो. प्रवीण कुमार तिवारी
शिक्षा विभाग (केन्द्रीय शिक्षा संस्थान),
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रूफ़ शोधन
शाईस्ता
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,
जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	आलेख शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
1.	भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और मार्क्स: वि-उपनिवेशीकरण के परिप्रेक्ष्य में	पवन कुमार शर्मा	1-18
2.	भारतीय नौकरशाही में नवोन्मेष: मिशन कर्मयोगी के विशेष परिप्रेक्ष्य में	प्रवीण कुमार झा, संगीता	19-32
3.	सामाजिक विज्ञानों के लिए हिंदी में तकनीकी शब्दावली : संदर्भ और संभावनाएँ	गिरीश्वर मिश्र, ऋषभ कुमार मिश्र	33-40
4.	भारत और कार्बन तटस्थत विकास: एक राजनीतिक और आर्थिक विश्लेषण	संजय शर्मा	41-49
5.	संविधान सभा का प्रथम सत्र एवं भाषा का प्रश्न	दिनेश कुमार गहलोत	50-55
6.	संपोषणीयता के विभिन्न आयाम : अध्येताओं की दृष्टि से	पायल रानी, चित्रा देवी	56-66
7.	स्वतंत्रता संघर्ष के समय भारत में संविधान सभा की अवधारणा का विकास	भरत देवड़ा	67-76
8.	जी-20 और भारतीय पर्यटन का विकास	मोहम्मद फैसल	77-89
9.	लोकलुभावनवाद का उदय और वैश्वीकरण के लिए उभरती चुनौतियाँ	युक्ति गुप्ता	90-96
10.	पूर्व प्राथमिक शिक्षा का मुख्यधारा में समावेशन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेप	गौरव सिंह	97-105
11.	अनुसूचित जनजातियों / आदिवासियों के हितों के संरक्षण के लिए संवैधानिक प्रावधान	विनोद कुमार	106-114
12.	भारत के संविधान में सामाजिक न्याय के प्रमुख प्रावधान : एक अवलोकन	अशोक कुमार	115-125

13.	विकसित भारत @2047: नीतियाँ व चुनौतियां	बृजेश चंद्र श्रीवास्तव, संजीत कुमार, सौरव भड़वाल	126-133
14.	सामुदायिक सहभागिता एवं राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन: चुनौतियां और संभावनाएं	शाईस्ता	134-142
15.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020: प्राथमिक शिक्षा की समस्याओं के समक्ष प्रासंगिकता	प्रवीण कुमार गौतम, चन्दन सिंह, ओ०पी०बी०शुक्ला, प्रदीप कुमार सिंह	143-153
16.	भारतीय राजनीति में राजनीतिक नेतृत्व के बदलते आयामों का विश्लेषणात्मक अध्ययन	निभा राठी, मनस्वी सेमवाल	154-160
17.	मार्क्स, लोहिया और गांधी	शकील हुसैन	161-172
18.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विशेष विद्यार्थी-संभावनाएं एवं चुनौतियां	राजेंद्र प्रसाद	173-182
19.	उपनिषदों एवं भगवदगीता में अधिकारों की संकल्पना: भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों के विशेष संदर्भ में	रजत कोहली, मानसी त्यागी	183-192
20.	विनोबा भावे: जीवन एवं शिक्षा दर्शन	आद्या शक्ति राय	193-199
21.	उपनिवेशवाद, संस्कृति और भाषा: एक विमर्श	पतंजलि मिश्र	200-208
22.	महिला आंदोलन का वैश्विक स्वरूप	राजेन्द्र कुमार पाण्डेय	209-219
23.	जलवायु न्याय और पर्यावरणीय राजनीति	कल्पना अग्रहरि	220-231
24.	भारत में गैर सरकारी संगठन: उद्भव और विकास	नीतीश कुमार, आबिदा बानो	232-240
25.	विश्वव्यापी मंच पर भारत की उभरती हुई विदेश नीति: जी-20 की अध्यक्षता के संदर्भ में	नावेद जमाल	241-250

26.	**श्रीरामचरितमानस में वर्णित गुरु तत्व की शैक्षिक विवेचना**	**सिम्मी गुप्ता, प्रवीण कुमार तिवारी**	**251-257**
27.	**भारतीय संविधान में वित्त प्रबंधन और राष्ट्रीय एकीकरण**	**विनीता राजपुरोहित**	**258-264**
28.	**उत्तराखण्ड हिमालयः प्राकृतिक आपदायें बनाम मानवकृत आपदायें**	**दलीपसिंह बिष्ट**	**265-271**
29.	**भारत-जापान द्विपक्षीय समझौतों का सामरिक महत्व और वर्तमान स्थिति**	**महेन्द्र प्रकाश**	**272-281**
30.	**भारतीय न्यायशास्त्र में अंतर्विभागीयता: संवैधानिक अधिकारों के माध्यम से सामाजिक न्याय की खोज**	**भरत प्रताप सिंह, चेतना चौधरी, भानु प्रताप सिंह**	**282-293**
31.	**नारदस्मृति एवं वित्तीय प्रबन्धन: प्राचीन भारतीय वित्तप्रबन्धन विधियों का उद्घाटन**	**सुभाष चन्द्र गोल्डन कुमार आरुषि निगम**	**294-300**

अध्याय-1

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और मार्क्स: वि-उपनिवेशीकरण के परिप्रेक्ष्य में

पवन कुमार शर्मा
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

भारतीय समाज सदैव से ही जिजीविषा प्रधान मानस का समर्थक रहा है, इसी के बल पर वह विजिगीषु प्रवृति का पोषण कर्ता बना; इसीलिए उस पर जो भी आक्रमण हुए उनका उसने या तो तत्काल अपने पूर्ण सामर्थ्य से प्रतिरोध किया या फिर उसने कालांतर में शक्ति संचित कर उनको अपनी सीमाओं से बाहर कर दिया। उसी प्रवृत्ति के वशीभूत 1757 तक भारत युद्धों के बाद भी किसी भी भूभाग पर अपना अधिकार नहीं छोड़ता था, चाहे इसके लिए उसे कितना भी संघर्ष क्यों न करना पड़े, किन्तु, कालांतर में यह जिजीविषा कुछ कम हो गई क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्य ने भारत में अपने पैर फैलाने प्रारम्भ कर दिए थे। और उन्होंने बहुत ही धूर्तता से अफगानिस्तान (1876), नेपाल (1904) श्रीलंका (1935-36) और बर्मा (1937) को क्रमशः भारत से पृथक कर दिया। अंग्रेजों की सत्तालोलुप बातों के बहकावे में और कुछ वर्षों में जो मुगलिया सत्ता भारत पर अपना आधिपत्य जमाए बैठी थी, को उखाड़ फेंकने के कारण भारतीयों ने प्रारम्भ में अंग्रेजों को सहयोग किया, किन्तु बाद में ये भी भारत को लूटने में लग गए, तब पुनः भारतीय जन मानस ने अपने स्वरूप को पहचान कर अंग्रेजी शासन को चुनौती देना प्रारम्भ किया और फिर उस चुनौती के व्यवहार को 1947, सत्ता हस्तांतरण तक नियमित बनाए रखा। किन्तु इन सब पक्षों पर किसी भी इतिहासकार ने न तो दृष्टिपात किया और न ही नए रूप में इतिहास को प्रकट करने के प्रयास किए, क्योंकि ब्रिटिश इतिहासकारों के द्वारा लिखित सामग्री के आधार पर ही स्वयं की आलोचना करना ही हमारा अभीष्ट हो गया था। यद्यपि कुछ विदेशी इतिहासकारों ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से भारत का निष्पक्ष मूल्यांकन उसके विजिगीषु स्वभाव को दृष्टिगत रख कर करने का प्रयास किया है किंतु उन विषयों को भी इन इतिहासकारों के द्वारा अध्येताओं के सम्मुख नहीं लाया गया। फलतः आज भी सम्भ्रम का वातावरण बना हुआ है। ऐसे ही एक विद्वान थे कार्ल मार्क्स।

यद्यपि इन्होंने भी अपने साहित्य में भारत को आलोचनात्मक रूप में ही निरूपित किया है तथापि अनेक स्थानों पर ये भारत की जिजीविषा को न केवल उद्घाटित करते हैं बल्कि अंग्रेजी शासन तंत्र के द्वारा क्या कुछ गलत किया जा रहा है, को भी रेखांकित करते हैं। इन्होंने कुछ निबंध/लेख भारत के विषय में1853 में लिखे थे जोकि न्यू यॉर्क ट्रिब्यून में प्रकाशित हुए थे। इनमे ये भारत में जो कुछ अंग्रेजों के द्वारा किया जा रहा था, की व्यापक आलोचना करते हुए भारत पर भी अनेक टीका-टिप्पणियाँ करते हैं। इसी प्रकार से 1857 के संघर्ष को भी इन्होंने भारत का संगठित स्वतंत्रता संग्राम कहा था और उस विषय में भी इन्होंने 1857 से 1859 तक कुछ निबंध और लेख लिखे थे जोकि बाद में मास्को से 1959 में **द फर्स्ट इंडियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस के नाम** से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए, में भी इनके मूल्यांकन को देखा जा सकता है। किंतु, इनके इस दृष्टिकोण को भी उपनिवेशी परिप्रेक्ष्य में भारत को देखने वालों ने कभी भी उद्घाटित नहीं किया। कुछ इतिहासकार जोकि उपनिवेशी इतिहासकारों की आलोचना तो करते हैं

किंतु कार्ल मार्क्स के इस स्वरूप को उन्होंने भी अकादमिक जगत के सम्मुख अज्ञात कारणों से प्रकट करना समीचीन नहीं समझा। जबकि, मार्क्स के द्वारा प्रस्तुत तर्कों से उनके ही दृष्टिकोण को बल मिलता और उपनिवेशी इतिहासकारों की मान्यताओं को भी धक्का लगता। हाँ, इन लेखकों ने यत्र तत्र ,यदाकदा 1853 में लिखे गए लेखों का तो उल्लेख किया है क्योंकि इनसे इनकी अकादमिक एषणा की पूर्ति तो होती प्रतीत होती है किंतु 1857 से 1859 वाले लेखों पर ये मौन रहे हैं ।इस लेख में कार्ल मार्क्स की उसी दृष्टि को उद्घाटित करना मेरा प्रमुख उद्देश्य है।

यों तो, कार्लमार्क्स का पूरा चिंतन यूरोपीय परिप्रेक्ष्य को दृष्टिगत रख कर हुआ है, जिसमें यूरोप में उपनिवेशों के शोषण से अर्जित धन से जो अर्थतंत्र विकसित हो रहा था, के दुष्परिणामों से यूरोपीय समाज कैसे आंदोलित होगा का व्यापक विश्लेषण है। किंतु, इस शोषण के वे दोतरफा अर्थ देखते थे एक तो स्वयं यूरोप के वे देश जोकि अपने उपनिवेशों से शोषण करके लाए हुए धन से जो अर्थतंत्र विकसित कर रहे थे, वह स्वयं उनके देश के मजदूर किसानों के लिए पर्याप्त शोषण का वातावरण निर्मित कर रहा था, जिससे उन देशों में सर्वहारा वर्ग की क्रांति की संभावनाएं प्रबल होती थीं। दूसरे अर्थ में, वे एशिया के उन देशों को देखते थे जिनका कि यूरोपीय देश विशेषकर इंग्लैंड साम्राज्यवादी मानसिकता से न केवल आर्थिक शोषण कर रहा था, बल्कि उन देशों के दैनंदिन जीवन में हस्तक्षेप कर के उनकी संस्कृति को विकृत कर अपने कल्चरल साम्राज्य का विस्तार भी कर रहा था और इसी दृष्टिकोण से वे भारत और चीन को बहुत महत्वपूर्ण भूमिका में रखते हैं, क्योंकि इस शोषण की प्रतिक्रिया में वे क्रांति को अवश्यम्भावी मानते हैं। इसलिए 1850 से 1860 तक उन्होंने इन दोनों देशों का सर्वप्रकार से न केवल अध्ययन किया था बल्कि प्रत्येक गतिविधि पर पैनी दृष्टि रखकर परिणामों को प्राप्त किया था। उनके साहित्य को जोकि उन्होंने इस समय में लिखा था, के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भारत की 1857 की क्रांति मात्र सैनिक विद्रोह न होकर एक राष्ट्रीय और संगठित क्रांति थी, जिसमें जन सामान्य से लेकर सैनिक और राजे रजवाड़ों तक ने बराबर की भागीदारी की थी और इसका कारण राजनीतिक तो था ही किन्तु उससे अधिक सांस्कृतिक था।

मार्क्स भारतीय समाज का चित्रण करते हुए अपने 10 जून 1853 के लेख में लिखते हैं कि भारत पर मुगलों ने पहले आक्रमण किया फिर लूट,पुर्तगाली भी इसी मन से आए किन्तु जितना कष्ट अंग्रेजों ने भारत को दिया इतना पहले किसी ने नहीं दिया।[1] अंग्रेजों के इस स्वभाव के पीछे वे डचों को उत्तरदायी मानते हैं।[2] क्योंकि डच ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक मात्र उद्देश्य अपने उपनिवेशों को लूटना ही रहा था और ब्रिटिशर्स भी यही कर रहे थे।[3] यहां पर यह ध्यान देने वाली बात है कि अपने इसी स्वभाव के चलते डचों को अपने कई उपनिवेश युद्धों और सन्धियों के द्वारा अंग्रेजों को सौंपने पड़े थे। अंग्रेजों ने भी अत्यधिक शोषणकारी स्वभाव डचों से प्राप्त करके अपने साम्राज्य की राह को दुर्गम कर लिया था।[4] और इसके लिए वे जहाँ एक ओर अंग्रेजों को भारत में बहुत क्रांतिकारी बदलावों के वाहक मानते हैं, वहीं वे भारत के समाज जोकि लम्बे समय से अपनी ही गति से विकसित होकर यहां तक पहुंचा था, के लिए भी हितकारी सिद्ध करते हैं। क्योंकि वे भारत की समाज व्यवस्था को यूरोपीय देशों के साथ तुलना करके देखते हुए उसे भी जड़ मानने लगते है। उनका यह सिद्धांत यूरोपीय देशों के लिए तो सही हो सकता है, क्योंकि वहां पर लम्बे समय तक आर्थिक विकास न के बराबर हुआ था तभी तो उपनिवेशों की स्थापना के पूर्व तक इंग्लैंड आदि आर्थिक रूप से अविकसित ही थे, किंतु भारत में एक अलग प्रकार का सांस्कृतिक अर्थतंत्र विकसित हो चुका था जिसने बहुत ही कुशलता से अपनी गति को स्थापित करके वैश्विक स्तर पर सबसे बड़ी अर्थ व्यवस्था के रूप में स्वयं

को सिद्ध किया था। इस बात की पुष्टि वे स्वयं करते हैं। "लेकिन भारत के अतीत का राजनीतिक स्वरूप चाहे बदलता हुआ दिखलाई दे, प्राचीन काल से लेकर 19 वीं शताब्दी के पहले दशक तक उसकी सामाजिक स्थिति अपरिवर्तित ही बनी रही है। नियमित रूप से असंख्य कातने वाले और बुनकरों को पैदा करने वाला करघा और चरखा ही उस समाज के ढांचे की धुरी थे। अनादि काल से यूरोप भारतीय कारीगरों के हाथ के बनाए हुए बढ़िया कपड़ों को मंगाता था और उनके बदले में अपनी मूल्यवान धातुओं को भेजता था; और,इस प्रकार, वहाँ के सुनार के लिए कच्चा माल जुटा देता था। सुनार भारतीय समाज का एक आवश्यक अंग होता है।बनाव श्रृंगार के प्रति भारत का मोह इतना प्रबल है कि उसके निम्नतम वर्ग तक के लोग, वे लोग जो लगभग नंगे बदन घूमते हैं, आम तौर पर कानों में सोने की एक जोड़ी बालियां और गले में किसी न किसी तरह का सोने का एक जेवर अवश्य पहने रहते हैं। औरतें और बच्चे भी अक्सर सोने या चांदी के भारी-भारी कड़े हाथों और पैरों में पहनते हैं और घरों में सोने या चांदी की देव मूर्तियां पाई जाती हैं। ब्रिटिश आक्रमणकारी ने आकर भारतीय करघे को तोड़ दिया और चरखे को नष्ट कर डाला" ।[5] इस प्रकार से मार्क्स भारत की समृद्धि और कौशल की सराहना कर रहें, वहीं वे इंग्लैंड की बर्बरता को भी उजागर कर रहें हैं।

वे 18 वीं सदी तक भारत को विश्व का अगुआ मानकर उसकी भूमिका निरूपित कर रहे हैं किंतु अंग्रेजों के कुत्सित प्रयासों से भारत नेतृत्वकर्ता की भूमिका से हटा दिया गया और उसका स्थान इंग्लैंड ने ले लिया।[6] इतना ही नहीं वे आगे भारतीय समाज की केंद्रीय भूमिका में केंद्र सरकार को न रखकर छोटे-छोटे गॉवों को मानते हैं जिन्होंने अपने कौशल विशेष के बल पर अपनी विशिष्ट भूमिका को बनाए रखा था और एक इस प्रकार की सामाजिक स्थिति निर्मित कर दी थी जिसके केंद्र में कृषि और घरेलू धंधे थे। और यह व्यवस्था कोई नई नहीं थी अपितु आदि अनादि थी[7]। मार्क्स के इन निबन्धों में भारत की भूमिका को यूरोपीय देशों के समकक्ष रखने से जहां विसंगति पैदा हुई हैं वहीं भारत की व्यापक भूमिका भी उजागर होती है जिसका मूल्यांकन निरपेक्ष भाव से किया जाता तो भारत का स्वरूप एक नए प्रकार का दृष्टिगोचर होता, किन्तु उपनिवेशी चश्में ने अर्थ का अनर्थ कर दिया। भारत के ग्रामों के स्वरूप का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं और यह वर्णन उन्हें ब्रिटेन की कॉमन सभा की एक पुरानी रिपोर्ट से प्राप्त हुआ था जिसके द्वारा ग्राम गणराज्य के स्वरूप को सुगमता से समझा जा सकता है। **"भौगोलिक दृष्टि** से**,** गांव देहात का ऐसा हिस्सा होता है जिसमें कुछ सौ या हजार एकड़ उपजाऊ और ऊसर जमीन होती है,राजनीतिक दृष्टि से,वह एक शहर या कस्बे के समान होता है। ठीक से व्यवस्थित होने पर उसमें निम्न प्रकार के अफसर और कर्मचारी होते हैं; पटेल, अर्थात मुखिया, जो आमतौर पर गांव के मामलों की देखभाल करता है, उसके निवासियों के आपसी झगड़ों का निपटारा करता है, पुलिस की देखरेख करता है और अपने गांव के अंदर मालगुजारी वसूल करने का काम करता है। यह काम ऐसा है, जिसके लिए उसका व्यक्तिगत प्रभाव और परिस्थितियों तथा लोगों की समस्याओं के सम्बंध में उसकी सूक्ष्म जानकारी उसे खासतौर से सबसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति बना देती है। कर्णम(पटवारी) खेती का हिसाब-किताब रखता है और उससे सम्बंधित हर चीज़ को अपने कागजों में दर्ज करता है। तालियार (चौकीदार) और तोती (दूसरी तरह का चौकीदार) इनमें तलियार का काम अपराधों और जुर्मों का पता लगाना तथा एक गांव से दूसरे गांव जाने वाले यात्रियों को वहां तक पहुँचाना और उनकी रक्षा करना होता है, तोती का काम गांव के अंदरूनी मामलों से अधिक जुड़ा हुआ मालूम होता है, अन्य कामों के साथ-साथ वह फसलों की चौकीदारी करता है और उन्हें मापने में मदद देता है। सीमा कर्मचारी जो गांव की सीमाओं की रक्षा करता है,अथवा कोई विवाद उठने पर

उसके सम्बन्ध में गवाही देता है। तालाबों और स्रोतों का सुपरिंटेंडेंट खेती के लिए पानी बांटता है। ब्राह्मण, जो गांव की ओर से पूजा करता है। स्कूल मास्टर जो रेत के ऊपर गांव के बच्चों को पढ़ना और लिखना सिखाता है, दिखाई देता है। पत्रेवाला ब्राह्मण अथवा ज्योतिषी आदि भी होता है। ये अधिकारी और कर्मचारी ही आमतौर से गांव का प्रबंध करते हैं।[8] इस प्रकार की व्यवस्था कमोबेश सभी स्थानों पर होती है और यह स्थानीय स्वशासन व्यवस्था का सबसे सशक्त और सरल उदाहरण है। विल ड्यूरन्ट भी इस व्यवस्था की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं।[9] वे आगे फिर लिखते हैं कि यह व्यवस्था युगयुगों से चली आती है। शासन चाहे किसी का भी रहे किन्तु गॉवों के क्रिया-कलाप अपनी इसी व्यवस्था के बल पर निर्बाध गति से चलते रहते हैं। इस प्रकार से गांव का सांस्कृतिक(सांस्कृतिक पर बल मेरा है) अर्थतंत्र अपनी भूमिका यथावत निर्वहन करता रहता है।[10]

यद्यपि, कार्ल मार्क्स कभी भी भारत नहीं आए थे तथापि वे भारत सम्बन्धी डाक और समाचारों पर बहुत ही पैनी दृष्टि रखते थे, जिसके बल पर वे भारत सम्बन्धी अपनी समझ बना सके थे। जैसे समाचार उन्हें मिलते थे वैसी ही समझ भी बनती थी। इसलिए 1850-60 के मध्य जो भी भारत सम्बंधित सामग्री उनके द्वारा लिखी गई है उसमें उतार चढ़ाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। किन्तु सम्पूर्ण सामग्री में इतना उल्लेख अवश्य दृष्टिगोचर होता है कि अंग्रेजी साम्राज्य ने भारत को नष्ट कर दिया और वह भारत के लिए अनुपयोगी या विनाशकारी है। भारतीय समाज व्यवस्था में अंग्रेजों ने जो हस्तक्षेप किया उससे भारत को जितनी हानि हुई उससे अधिक हानि वे भारत में अंग्रेजो के द्वारा विस्तृत किए जा रहे व्यापार को मानते हैं। इसके साथ ही भारत की पूंजी के बल पर इंग्लैंड में जो कल कारखाने स्थापित हो रहे थे, उससे भारत का घरेलू उद्योग उजड़ रहा था जोकि भारत को नष्ट करने में अग्रणी भूमिका निभा रहा था।[11] यहाँ यह ध्यान देने की बात है 1853 में कम्पनी की आर्थिक हालत काफी कमजोर हो चुकी थी और वह मालगुजारी और अन्य करों के साथ साथ अन्य आय वृद्धि के सुगम साधनों की तलाश भी कर रही थी। मार्क्स कम्पनी की इस प्रकार की हरकतों पर भी बहुत सख्त टिप्पणी करते हैं। भारत की नाकामियों को भी बहुत ही बेबाकी से उजागर करते हैं। वे भारत के देशी राजाओं के आपसी वैमनस्य को भारत पर अंग्रेजों के शासन के लिए ज़िम्मेदारी मानते हैं और भारतीय इतिहास पर बहुत ही सख्त कटाक्ष करते हुए कहते है कि भारत का अपना कोई इतिहास नहीं है, भारत अपने आक्रमणकारियों के इतिहास को ही पढ़ता है।[12] और वह इतिहास कैसा है जो कि एक आत्मविस्मृत समाज के निर्माण में सहयोग करता है, क्योंकि उन इतिहास निर्माताओं ने भारत के ग्राम गणराज्यों को उजाड़कर देशी उद्योग धंधों को नष्ट किया और जो कुछ भी उन्हें श्रेष्ठतर लगा उसको नष्ट कर दिया।[13] और ऐसा इसलिए किया क्योंकि बिना ये सब किए अंग्रेज सभ्यता की स्थापना असम्भव थी। चार्ल्स ट्रेवलिन ने 1838 में अपनी पुस्तक में यही बात लिखी है कि हमारी चिंता भारतीयों को सिखाना नहीं अपितु सीखे हुए को भुलाना है।[14] भारत की महानता की पुष्टि वे इटली के राजकुमार सालतिकोव के हवाले से देते हैं, कि जिस देश के सौम्य नागरिक भी इटली के नागरिकों से भी अधिक कुशल और कुशाग्र होते हैं। जिनकी परवशता में भी एक शांत महानता दिखाई देती है, जिन्होंने अपनी स्वाभाविक तन्द्रा के बावजूद अपनी बहादुरी से ब्रिटिश अफसरों को चकित कर दिया है, जिनके देश से हमें हमारी भाषाएं और हमारे धर्म प्राप्त हुए हैं, और जिनके बीच प्राचीन जर्मनों के प्रतिनिधि के रूप में जाट और प्राचीन यूनानी के रूप में ब्राह्मण आज भी मौजूद हैं।"[15] यहां पर ध्यान देने वाली बात यह है कि यदि मार्क्स भारत के गुणों या विशेषताओं से रंचमात्र भी प्रभावित नहीं होते तो वे राजकुमार सालतिकोव के हवाले से भारत की महानता

का उल्लेख ही नहीं करते, जिसमें वे भारत को यूरोपीय भाषाओं और धर्मों की माँ मान रहे हैं तथा इसके साथ वे भारत के प्राचीन स्वरूप जोकि पश्चिम में यूरोप की सीमा तक विस्तृत था, के अस्तित्व को भी यूरोपीय धर्मों की माँ मानकर स्वीकारते हैं। इसके साथ ही शक्तिशाली के रूप में जाट और ज्ञानवान के रूप में ब्राह्मण का उल्लेख करना उनकी सदाशयता का परिचायक है न कि विद्वेष का। सर विलियम जोन्स भी यही बात (1783 -93 के मध्य में) अपने साहित्य में लिखते हैं।

यद्यपि, मार्क्स अपने साहित्य में भारतीय समाज, जिसे वह पितृसत्तात्मक कहते हैं, के अंग्रेजी हस्तक्षेप से हो रहे विखंडन पर क्षोभ व्यक्त करते हैं किंतु वह उसको भारत के आधुनिकीकरण के लिए अनिवार्य भी मानते हैं। पश्चिम के तात्विक चिंतन के आधार पर वह मनुष्य को प्रकृति का स्वामी मानते हैं और भारतीयों के ऐसा न मानने की वे आलोचना भी करते हैं।[16] ऐसा वे इसलिए करते हैं क्योंकि भारत और पश्चिमी चिंतन परंपरा में व्यापक भेद जो है, उनकी इन टिप्पणियों को इसी रूप में लेना चाहिए था किंतु हमने यथार्थ में लेकर भारतीय युवाओं को लम्बे समय तक दिग्भ्रमित और आत्मकोसी बना दिया, जिससे वह आत्मविमुख हो गया।

वे पूंजीवादी विसंगतियों को भी रेखांकित करते हैं और लिखते हैं कि ये धूर्त सभ्यता अपने लिए जितनी उदार होती है उसके बिल्कुल विपरीत व्यवहार अपने उपनिवेशों में करती है। यानि, इनके बर्बर व्यवहार को देखना हो तो इनके उपनिवेश इसका ज्वलंत उदाहरण हैं।[17] और उनकी इसी बर्बरता के चलते 1857 की क्रांति ने राष्ट्रीय स्वरूप धारण कर लिया।[18] भारत की लूट के लालच ने अंग्रेजों को अंधा बना दिया था और उनके इस अंधेपन ने उन्हें हिंदुओं के दैनंदिन आचार व्यवहार में हस्तक्षेप करने को प्रेरित किया। फलतः उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों के धर्म के विरुद्ध कार्य किया, जोकि गाय और सुअर की चर्बीयुक्त कारतूस का व्यवहार था।[19] दूसरा, हिंदुओं में निःसन्तान दम्पति को बच्चे को गोद लेने का अधिकार इनके धर्मग्रंथों ने दिया हुआ था, को अंग्रेजों ने अमान्य करके ऐसे राजाओं की मृत्यु के बाद उनके राज्यों को हड़पने का दुश्चक्र रचा।[19] इन दोनों कृत्यों से सेना और देशी राजे महाराजे अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए। परिणामस्वरूप छोटी सी चिंगारी क्रांति का दावानल बन गई।

देशी सेना की सक्रियता और रणनीतिक तैयारी के विषय में भी वे बहुत ही आश्वस्ति के साथ अंग्रेजों के इस दावे की पोल खोलते हैं कि यह राष्ट्रीय क्रांति न होकर यहां वहां होने वाला विद्रोह था। लंदन टाइम्स के एक भारतीय संवाददाता के हवाले से वे लिखते हैं कि "अगर आप पढ़ें कि सब कुछ शांत है, तो इसका मतलब यह समझिए कि देशी फौजों ने अभी तक खुली बगावत नहीं की है, और आबादी का असंतुष्ट भाग अभी तक खुले विद्रोह में नहीं आया है; कि या तो वे बहुत कमजोर हैं, या फिर वे अधिक अनुकूल अवसर की राह देख रहें हैं । जहां आप बंगाल की किसी घुड़सवार या पैदल देशी रेजिमेंट के अंदर 'वफादारी के प्रदर्शन' की बात पढ़ें तो समझ लीजिए कि इस तरह से जिन रेजिमेंटों की अनुकूल चर्चा की गई है उनमें से केवल आधी ही वास्तव में वफादार हैं,बाकी आधी सब दिखावा कर रही हैं, जिससे कि उचित अवसर आने पर वे योरोपियनों को और भी कम चौकस पाएं, अथवा, जिससे कि सन्देहों को दूर करके, अपने विद्रोही साथियों को वे और भी अधिक सहायता देने की शक्ति प्राप्त कर सकें।[20] मार्क्स ने जो हवाला दिया है वह विद्रोह नहीं अपितु सोची समझी रणनीति को दर्शाता है और इसके समर्थन में वे तर्क देते हैं कि अंग्रेजों की पकड़ भारत के उन भागों पर कमजोर होने लगी है जहां पर मजबूत थी। पंजाब जैसे प्रान्त

में भी जहाँ पर अंग्रेजों की स्थिति मजबूत थी वहां पर भी क्रांति को कमजोर करने के लिए अंग्रेजों ने देशी फौजों को भंग करके ही सैनिकों और नागरिकों के गठजोड़ को कमजोर किया किन्तु अन्य स्थानों पर वे ऐसा न कर सके।[21] फौज के जन सांख्यिकीय गणित को स्पष्ट करते हुए मार्क्स लिखते हैं कि बंगाल में देशी फौज में कुल 80 हजार सैनिक थे जिनमें 28 हजार राजपूत, 23 हजार ब्राह्मण, 13 हजार मुसलमान, 5 हजार दलित जातियों के हिन्दू और बाकी यूरोपियन थे।[22] जोकि कुल मिलाकर 69 हजार होते हैं। मार्क्स आगे यह भी लिखते है कि इनमें से 30 हजार सैनिक विभिन्न कारणों से अदृश्य हो गए थे।[23] इस प्रकार से बंगाल की फौज में कुल 11 हजार ही अंग्रेज थे। माझा प्रवास पुस्तक से भी अंग्रेजों की कमजोरी और सैनिकों की ऊर्जा और साहस का अनुमान सहज ही लगता है। सैनिकों ने राजपुताना होते हुए दक्षिण में नर्मदा नदी के पार तक कूच किया था।[24] इस प्रकार अंग्रेजों ने सैनिकों के तेवर को देखते हुए सभी स्थानों पर करों की वसूली को स्थगित कर दिया था क्योंकि जनता और सैनिक दोनों मिलकर और अधिक भयावय वातावरण को जन्म दे सकते थे जोकि अंग्रेजी सत्ता के लिए हानिकारक हो सकता था। जो अंग्रेज 1857 की क्रांति को सैनिक विद्रोह कहते और लिखते रहे हैं वे तनिक मार्क्स के इस कथन पर भी दृष्टिपात करें तो इस राष्ट्रीय क्रांति के स्वरूप को समझने में आसानी रहेगी। वे लिखते हैं कि ग्वालियर का राजा तो अंग्रेजों का साथ देगा, नेपाल का शासक शांत रहेगा, और पेशावर अशांत पहाड़ी कबीलों का साथ देगा तथा फारस के शाह की भूमिका पर भी प्रकाश डालते हैं। वे आगे फिर लिखते हैं कि क्रांति की विकरालता ने अंग्रेजी बैंकों और हुंडियों की साख को भारी नुकसान पंहुचाया था । और जनता ने बैंकों से पैसा निकालकर जमीन में गाड़ना प्रारम्भ कर दिया था।[25] यह ध्यान देने योग्य है कि मात्र सैनिकों के विद्रोह के कारण सरकार की साख को धक्का नहीं लगता । सरकार के संस्थानों और उसकी हुंडियों की साख इसलिए प्रभावित हुई क्योंकि क्रांति का स्वरूप राष्ट्रीय था।

कार्ल मार्क्स अपने 28 जुलाई 1857 के लेख में तत्कालीन सुप्रसिद्ध ब्रिटिश राजनीतिज्ञ विलियम डिज्रायली के हवाले से भारत की दशा के उल्लेख के सम्बंध का विश्लेषण करते हैं, अपने विश्लेषण में वे डिज्रायली के एक वक्तव्य का उल्लेख करते हैं कि "भारत की उथल-पुथल एक फौजी बगावत है, या वह एक राष्ट्रीय विद्रोह है ? फौजों का व्यवहार किसी आकस्मिक उत्तेजना का परिणाम है, अथवा वह एक संगठित षड्यंत्र का नतीजा है ।"[26] वे लिखते हैं कि डिज्रायली के ये सवाल बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनसे भारत की दशा और दिशा का भान होता है । वे भारत में इस परिस्थिति के पीछे अंग्रेजों की कुत्सित नीतियों को मानते हैं। पहले तो वे भारत में फूट डालो और राज करो के सिद्धांत को व्यवहार में लाकर लूटते रहे और भारतीयों के धर्म में हस्तक्षेप करने से बचे रहे जिसके फलस्वरूप देशी सेना उनके प्रति समर्पित भाव से कार्य करती रही। किन्तु अंग्रेजों को इतने भर से ही संतोष नहीं था क्योंकि वे कम से कम समय में अधिक से अधिक धनार्जन भारत से करना चाहते थे। ऐसा करना न केवल उनकी आवश्यकता थी बल्कि इसके अभाव में न तो भारत को काबू में रख सकते थे और न ही अपने यानि इंग्लैंड के आर्थिक चक्र को गतिशील रख सकते थे। इसलिए उन्होंने भारत में पुराने सिद्धांत को त्याग कर राज्यों को हड़पने की नीति को व्यवहार में लाया। इस नीति ने उन्हें अपने सीमा विस्तार में सहयोग तो किया किन्तु देशी सेना, जनता और राजे रजवाड़ों को अपने विरुद्ध भी कर लिया। मार्क्स ने इसको जातियों को नष्ट करने के सिद्धांत के रूप में इसका उल्लेख किया है।[27] अपनी बात की पुष्टि के लिए वे लिखते हैं कि 1848 में ईस्ट इंडिया कम्पनी की आर्थिक परेशानियों को हल करने के लिए कोई व्यवस्था की जाए और तब कम्पनी की कौंसिल की एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसमें हड़प नीति के

सिद्धांत को अंग्रेजी राज्य के विस्तार के लिए एकमात्र विकल्प माना गया। और फिर 1848 से 1854 तक अंग्रेजों ने एक दर्जन से अधिक देशी राजाओं के धार्मिक रीति रिवाजों में हस्तक्षेप करके उनके बच्चे को गोद लेने के अधिकारों को न केवल अमान्य किया बल्कि उत्तराधिकारी के अभाव में उस पर बलात अधिकार भी कर लिया। यह क्रम सतारा से प्रारम्भ होकर अवध तक पहुंचा। वे डिज्रायली के ही हवाले से लिखते हैं कि इस प्रकार से अंग्रेजों ने अपने लालच के चलते हिन्दू-मुसलमान दोनों को ही अपना विरोधी बना लिया। वे आगे फिर लिखते हैं कि "गोद लेने के नियम का सिद्धांत केवल भारत के राजाओं और रजवाड़ों के विशेषाधिकार की वस्तु नहीं है, वह हिंदुस्तान के हर उस व्यक्ति पर लागू होता है जिसके पास बहु सम्पत्ति है और जो हिन्दू धर्म को मानता है।"[28]

इस प्रकार से अंग्रेजों की हड़प नीति ने भारत की साम्पत्तिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करके सब कुछ उल्टा-पुल्टा कर दिया। जिसके परिणाम बहुत ही भयाभय हुए वे डिज्रायली के भाषण का उल्लेख करते हैं "वह महान सामन्त, अथवा जागीरदार, जो अपने सम्राट की सार्वजनिक सेवा के एवज में अपनी भूमि का स्वामी बना हुआ है, और वह इनामदार जो पूरे भूमि कर से मुक्त जमीन का स्वामी है - जो, अगर एकदम सही तौर पर नहीं तो, कम से कम, प्रचलित तौर पर हमारे माफिदार के समान है - इन दोनों ही वर्गों के लोग -और ये वर्ग भारत में बहुत हैं - स्वाभाविक वारिसों के न रहने पर अपनी रियासतों के लिए वारिस प्राप्त करने के लिए हमेशा इस सिद्धांत का उपयोग करते हैं"।[29] इस प्रकार अंग्रेजों ने जो कदम उठाए थे वे सामान्य जन, सन्यासियों, मठ मंदिरों, बहादुरों और राजे रजवाड़ों सभी के लिए न केवल अनाधिकार चेष्टा थे बल्कि सदियों से चली आ रही उनकी परम्पराओं पर कुठाराघात भी था। इस प्रकार के क्रिया कलापों ने सभी को उद्वेलित कर दिया था। वे फिर लिखते हैं कि " निःसन्देह 1853 में समिति के सामने ली गई गवाही के पढ़ने से, सदन को इस बात की जानकारी है कि भारत में जमीन के ऐसे बहुत बड़े-बड़े भाग हैं जो भूमिकर (मालगुजारी) से बरी हैं। भारत में भूमिकर से बरी होना इस देश में भूमिकर देने से मुक्त होने से कहीं अधिक महत्व रखता है , क्योंकि, आम तौर से, और प्रचलित अर्थ में कहा जाए तो, भारत में भूमिकर ही राज्य का सम्पूर्ण कर है।"[30] यहां दो बातें ध्यान देने की हैं एक, भूमिकर ही राज्य की अर्थव्यवस्था का आधार होने के बाद भी उसकी माफी करना माफिदार और राज्य दोनों के लिए ही सम्मानजनक माना जाता था। दूसरा, अंग्रेजों द्वारा उसको समाप्त करना और उसे शक के घेरे में लाना राज्य और माफिदारों दोनों के ही अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगाना था, जोकि बहुत ही शर्मिन्दगीपूर्ण था। यह भारतीयों के दैनंदिन जीवन में हस्तक्षेप और अस्मिता के प्रश्न के रूप में लिया गया। एच० एच० विल्सन ने 1853 की गवाही में अंग्रेजों के इस प्रकार के हस्तक्षेपकारी कदमों की घोर निन्दा की थी और इसे अंग्रेजों के लिए हानिकारक बताया था।[31] मार्क्स लिखते हैं कि यह कर माफी की परंपरा भारत में बहुत पुरानी थी और इसकी परिधि में निजी जागीरें, मंदिर और मस्जिद सभी आते थे।[32] 1848 में अंग्रेजों ने अपनी कुत्सित कर व्यवस्था को न केवल लागू किया बल्कि कर माफी की सनदों की जांच पड़ताल भी प्रारम्भ कर दी।[33] जिसके परिणाम अंग्रेजों के लिए बहुत ही विस्मयकारी निकले क्योंकि इन सम्पत्तियों से जो कर वसूला गया वह बंगाल प्रेसिडेंसी में 5 लाख पोंड प्रति वर्ष, बम्बई प्रेसिडेंसी में 3 लाख 70 हजार पौंड प्रति वर्ष और पंजाब प्रेसिडेंसी में 2 लाख पौंड प्रति वर्ष से कम नहीं था।[34] मार्क्स, डिज्रायली के हवाले से यह भी लिखते हैं कि, करों के लालच में ब्रिटिश सरकार ने देशी राजाओं के साथ सन्धियाँ करके जो पेन्शन देना सुनिश्चित किया था को भी बंद कर दिया।[35] डिज्रायली के शब्दों में "दूसरों की सम्पत्ति को जब्त करने का यह एक नया साधन है जिसका अत्यंत

 ISSN: 2321-0443

व्यापक, आश्चर्यजनक और दिल दहलाने वाले पैमाने पर इस्तेमाल किया गया है।"[36] वे आगे धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप के मुद्दे की भी चर्चा करते हैं।[37] इस प्रकार से अंग्रेजों ने अपने व्यवहार से जहां एक ओर भारतीयों को आर्थिक हानि पहुंचा कर उनके चरित्र पर प्रश्नचिन्ह लगाया वहीं दूसरी ओर उनके धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करके उनकी अस्मिता को भी चुनौती दी। इन सब बातों ने भारतीयों के मन में यह भाव जागृत कर दिया कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों का समूल नाश करना चाहती है।

कार्ल मार्क्स अपने 31 जुलाई 1857 के पत्र में जोकि उन्होंने भारत से आने वाली विगत डाक के अध्ययन के आधार पर लिखा था जिसमें वे दिल्ली का हाल लिखते हैं जोकि देशी सेना के आधिपत्य में आ चुकी है और उस पर पुनः अंग्रेजों का कब्जा हो इसके लिए उन्हें अगले महीने इंग्लैंड से आने वाली सेना की प्रतीक्षा करनी होगी। भारतीय सेना का प्रभाव इतना बढ़ गया है कि वह कलकत्ता तक पहुंच गई है और उसने यूरोपियन्स का भारी नुकसान किया है। और उनके साथ सिख रेजिमेंट तथा 13 वीं अनियमित घुड़सवार सेना ने भी सहयोग करके अपनी संयुक्त शक्ति का परिचय दिया है। इस प्रकार ब्राहमणों के साथ मिलकर अनेक जातियां अंग्रेजों के विरुद्ध एक मोर्चा बना रही हैं।[38] भारत में सेना के इन तेवरों को प्रारम्भ में तो कम्पनी के नियंत्रण बोर्ड के अध्यक्ष वर्नन स्मिथ ने ब्रिटिश सरकार से छुपाया और सेना, देशी राजे रजवाड़ों तथा जनता के गठजोड़ को अमान्य किया किन्तु परिस्थितियों के बिगड़ने पर उन्होंने स्वयं यह समाचार प्रकाशित किया कि “14 जून को अवध के भूतपूर्व बादशाह को, जिनके बारे में पकड़े गए कागजों से पता चला है कि वह षडयंत्र में शामिल थे, फोर्ट विलियम के अंदर कैद कर दिया गया था और उनके अनुयायियों से हथियार छीन लिए गए थे।"[39] वे फिर इस तथ्य के आधार पर लिखते हैं कि इस प्रकार यह मात्र सिपाही बगावत न होकर राष्ट्रीय क्रांति है।[40]

आगे वे ब्रिटिश समाचार पत्रों के समाचारों पर भी प्रश्नचिह्न लगाते हैं और उनको सरकार और जनता को गुमराह करने वाला कहते हैं। इसके पक्ष में वे दक्षिण में, बम्बई प्रेसिडेंसी में भी क्रांति के शुरुआत का हवाला देते हैं और पंजाब में हुई कुछ सैनिकों की फांसी की बात का भी उल्लेख करते हैं। अंग्रेजी अख़बारों के उन समाचारों पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं कि जिन समाचारों में इस विप्लव को कुचलने के समाचार और शांति की बात छपी है।[41] इस प्रकार मार्क्स भारत सम्बन्धी डाक और समाचारों को पढ़ कर न केवल भारत में हुए सैनिक बगावत को राष्ट्रीय क्रांति सिद्ध करने में जुटे हुए थे बल्कि वे अंग्रेजी कम्पनी और समाचार समूहों के नकारापन और गलतबयानियों को भी उजागर कर रहे थे। भारत के साथ उनकी स्वाभाविक सम्बद्धता थी। एक तो इसलिए कि वे भारत में भी यूरोप की ही भांति ऐसी सामाजिक संरचना का दर्शन कर रहे थे जो दबी कुचली और शोषित थी (जबकि वे यह भूल रहे थे कि भारत में सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था त्रिस्तरीय थी। यानी ग्राम्य, नगरीय और अरण्य। इनके संचालन सूत्र स्थानीय थे किन्तु संस्कृति राष्ट्रीय। इसलिए राजनीतिक स्वरूप भिन्न होते हुए भी संस्कृति से समबद्धता होने के कारण एक थे। यह स्थिति यूरोप से अलग थी।) दूसरी, वे यह मान कर चल रहे थे कि यूरोप की भांति जो औद्योगिक व्यवस्था भारत में स्थापित हो रही है उससे वहां पर शोषण पनपेगा। फलतः सामाजिक क्रांति जन्म लेगी जिससे सर्वहारा की सत्ता स्थापित हो सकेगी। लेकिन वे यह भूल जाते थे कि क्रांति तो होगी किन्तु वह सामाजिक कम राजनीतिक अधिक होगी और वह अंग्रेजों के विरुद्ध होगी न कि अपनी व्यवस्था के। उसी के फलस्वरूप परिवर्तित व्यवस्था निर्मित हो जाएगी जोकि समन्वयकारी होगी न कि विभाजनकारी या वर्ग संघर्षकारी। क्योंकि सनातनता का

सिद्धांत नए को पुराने के साथ देश काल परिस्थितियों के अनुरूप ढाल कर जोड़े रखता है। वैदिक काल से लेकर आज तक परिवर्तन तो हुए हैं लेकिन वे मूल से जुड़े रहे हैं और समय-समय पर उनमें एकात्मता के सूत्रों को जोड़ा जाता रहा है। किंतु मार्क्स के ध्यान में न तो ये विषय आए होंगे और आए भी होंगे तो भावभूमि के अभाव में उनके लिए कड़ियों को जोड़ पाना सम्भव न हो पाया होगा। अस्तु।

कार्ल मार्क्स ने 4 अगस्त 1857 को ट्रिब्यून के लिए जो लेख लिखा था वह 18 अगस्त के अंक में प्रकाशित हुआ था, में वे ऐसी अनेक बातों को उजागर करते हैं जिनसे भारत में कार्यरत अंग्रेज अधिकारियों की गलतबयानियों पर प्रकाश पड़ता है। ये भ्रामक सूचनाएं भारत से इंग्लैंड इसलिए भेजी जा रहीं थी जिससे कम्पनी की छवि न बिगड़ जाए। मार्क्स इस समय के हालातों की तुलना सेवास्तोपोल के हालातों से करते हैं और लेख में अंग्रेजी सेना की असफलता और देशी सैनिकों की रणनीति का खुलासा करते हुए दिल्ली के सैनिकों के संचारिक सम्बंध शेष देश के साथ खुले हुए थे, की पुष्टि करते हैं। इन्हीं सब विषयों को दृष्टिगत रखते हुए वे यह भी उल्लेख करते हैं कि "तब फिर, जहां तक दिल्ली का सम्बन्ध है, हर चीज इस प्रश्न पर निर्भर करती है कि जनरल बर्नार्ड के पास इतनी काफी सेना और गोला बारूद इकट्ठे हो जाते हैं कि नहीं, कि जून के अंतिम सप्ताह में वह दिल्ली पर हमला कर सकें। दूसरी तरफ, उनके वहां से पीछे हट आने से विद्रोह की नैतिक शक्ति अत्यधिक मजबूत हो जाएगी और, इससे सम्भवतः, बम्बई तथा मद्रास की फौजों के भी खुले तौर से विद्रोह में शामिल होने का फैसला हो जाएगा।"[42] इस प्रकार मार्क्स अपने विवरण में क्रांति के राष्ट्रव्यापी स्वरूप को, अंग्रेजों के नकारापन तथा भारतीय एकता को व्यक्त करते हैं।

मार्क्स इंग्लैंड पहुंचने वाली 13 अगस्त की डाक के हवाले से लिखते हैं कि दिल्ली की स्थिति में 27 जून को भी कोई सुधार नहीं हुआ और वह क्रांतिकारियों के आगे अंग्रेजी सेना के रूप में किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ी है। हां, इतना अवश्य हुआ है कि अंग्रेजी सेना की संख्या बढ़कर 12,000 हो गई है, जिसमें 7, 000 गोरे और 5000 देशी सिपाही हैं, जोकि अंग्रेजों के प्रति वफादार हैं।[43]

आश्चर्यजनक यह है कि न केवल अंग्रेजी सेना की संख्या वृद्धिगत हो रही है बल्कि क्रांतिकारी भी उत्तरोत्तर मजबूत हो रहे हैं। वर्षा ऋतु के कारण प्रकृति भी क्रांतिकारियों का साथ दे रही है। इस लिए नदी की तरफ से किले पर अधिकार नहीं किया जा सकता और सामने से क्रांतिकारियों ने किले को मजबूती से घेर रखा है।[44] अंग्रेजों की नाकामी और क्रांतिकारियों के बुलंद हौसलों से न केवल मार्क्स इस परिणाम पर पहुंच गए थे कि अंग्रेजों के लिए दिल्ली को वापिस लेना और अधिक सेना के अभाव में असम्भव था बल्कि इंग्लैंड के समाचार जगत का भी यही निष्कर्ष था।[45] मार्क्स आगे फिर देशी राजे रजवाड़ों की भूमिका को उजागर करते हुए लिखते हैं कि यह भूल होगी कि देशी राजे अंग्रेजों के साथ सहानुभूति रखते हैं, वस्तुतः वे सही समय की प्रतीक्षा में हैं।[46] बंगाल और पंजाब की सेना की स्थिति के विषय में मार्क्स टिप्पणी करते हैं कि इतना व्यापक आंदोलन या क्रांति, सेना बिना जन सहयोग के नहीं कर सकती। मद्रास और बम्बई प्रेसिडेंसी की सेना अवश्य शांति को बनाए हुए है और जनता भी शांत है। वे टिप्पणी को आगे बढ़ाते हुए लिखते हैं कि यद्यपि क्रांति की ज्वाला पेशावर से झांसी, सागर, इंदौर, मऊ, तथा अंत में औरंगाबाद जोकि बम्बई से 180 मिल की दूरी पर है, बम्बई की ओर तेजी से बढ़ रही है।[47] इस प्रकार अंग्रेजों की परेशानी को आसानी से समझा जा सकता है।

मार्क्स भारत के सम्बंध में न केवल क्रांति के विषय में जुटाई गई सामग्री पर टिप्पणी कर रहे हैं बल्कि क्रांति की परिस्थितियां क्यों निर्मित हुईं उसकी पृष्ठभूमि का भी आकलन कर रहे है और इन सब में वे अंग्रेजों की भूमिका को ही महत्वपूर्ण मानते हैं। क्योंकि अंग्रेजों ने जो अत्याचार भारत की लूट के चलते जनता पर किए थे उसने जनता को उद्वेलित करके रख दिया था और बाद में सतत प्रयत्न, सेना और जनता के कष्ट, इन सबने मिलकर क्रांति को जन्म दिया। मार्क्स इन सबसे परिचित थे तभी तो वे ब्रिटिश पार्लियामेंट में 1856 -57 के अधिवेशनों में प्रस्तुत सरकारी दस्तावेजों के हवाले से, जिसमें मद्रास अत्याचार कमीशन की रिपोर्ट भी है, से सामग्री प्रस्तुत करते हैं कि "विश्वास प्रकट किया गया है कि मालगुजारी वसूलेने के काम में आमतौर से अत्याचार किए जाते हैं।"[48] रिपोर्ट आगे कहती है कि "मालगुजारी न देने के लिए हर साल जितने व्यक्तियों को हिंसा का शिकार बनाया जाता है, उतने के आसपास की संख्या में ही लोगों को जुर्म करने के अपराधों की सजा दी जाती है।"[49] कमीशन आगे फिर बहुत सख्त टिप्पणी करता है कि "अत्याचार की मौजूदगी पर विश्वास होने से भी अधिक तकलीफ कमीशन को एक और चीज से हुई थी, वह यह कि दुखी लोगों के सामने राहत पाने का कोई उपाय नहीं है।"[50] राहत न मिल सकने के पीछे अंग्रेजों की कार्यशैली जोकि अत्यधिक केंद्रित है, को मानते हैं।[51] कमीशन की रिपोर्ट अंग्रेजों द्वारा ब्रिटिश प्रान्तों में जनता को दी जाने वाली यातनाओं की न केवल पुष्टि करती है बल्कि सुनिश्चित भी करती है।[52] मार्क्स आगे फिर टिप्पणी करते हैं कि इस कमीशन को भी देशी लोगों के संघ ने बहुत कम छानबीन वाला बताते हुए शिकायत की थी कि कमीशन ने मद्रास में रहकर ही सूचनाएं एकत्रित कर ली थीं और कुल 3 महीने ही काम किया था। कमीशन को चाहिये था कि वह दूर तक जाता और अधिक लोगों से मिलकर उनके हालातों से परिचित होता।[53]

कार्ल मार्क्स यहीं पर कमीशन की रिपोर्ट के हवाले से 1837 के एक बाकये का उल्लेख करते हैं, जिसमें बारिश न होने के कारण किसानों ने पट्टे लेने से मना कर दिया था क्योंकि वे अंग्रेजों के अफसरों को निर्धारित लगान न दे सकते थे और लगान न देने पर उन्हें अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ता। इन यातनाओं को देने में देशी तहसीलदार से लेकर अंग्रेज कलक्टर तक, सभी शामिल रहते थे। यह अत्याचार इतना अमानवीय होता था कि मानवता शर्मशार हो जाए। यह अत्याचार न केवल किसानों के साथ होता था बल्कि उनकी महिलाओं की इज्जत तक से खिलवाड़ होता था।[54] यह अत्याचार न केवल शारीरिक, मानसिक, आर्थिक होता था बल्कि उनकी अस्मिता को सीधी चुनौती होती थी। अंग्रेजों के कालखंड के दस्तावेजों के अध्ययन से ध्यान में आता है कि लगान की जबरिया वसूली के लिए अंग्रेज और उनके कारिंदों ने समस्त सीमाओं को पार कर दिया था। यह अत्याचार किस सीमा तक था, मार्क्स उसका एक और उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि जब सेना का मूवमेंट होता था तो किसानों को ही सर्वाधिक नुकसान होता था क्योंकि मूवमेंट्स से उनकी फसल तो नष्ट होती ही थी बल्कि उन्हें सेना के खाने पीने की जिम्मेदारी भी उठानी पड़ती थी। कलक्टर तक से शिकायत करने पर भी कोई राहत नहीं मिलती थी।[55] अंग्रेजों की लूट की प्रवृति ने उन्हें तो अमानवीय कृत्य करने के लिए प्रेरित किया ही था, उनके साथ के चलते देशी कारिंदे भी आततायीपन पर उतर आए थे। इन घटनाओं के पूर्व या अंग्रेजों के पूर्व गांव देहात में इस प्रकार की लूट का व्यवहार प्रायः नहीं था। मुगल काल में शहरों के लूट के प्रमाण तो मिलते हैं किंतु लगान के नाम पर लूट आम नहीं थी। अंग्रेजों के काल में यह आम हो गई थी और शिकायत पर भी राहत नहीं मिलती थी। इस प्रकार की शिकायतों की अर्जियां पंजाब से लेकर मालाबार तक सर्वत्र बहुतायत में किसानों के द्वारा दी जाती थीं किन्तु कोई समाधान नहीं होता था।

1855 में घटी एक घटना का उल्लेख मार्क्स पार्लियामेंट की बहस के हवाले से करके अपनी बात की पुष्टि करते हैं, जिसमें कि अंग्रेज अफसर के विरुद्ध सख्त टिप्पणी की गई है।[56] आगे वे डलहौजी की टिप्पणी का हवाला देते हैं जिसमें डलहौजी अंग्रेज अफसर को उसकी नाकामी और दुष्टता के कारण उसके मूल पद से हटाकर निम्न पद पर विस्थापित करता है।[57]

अंग्रेजों के अत्याचार, उनकी नाकामियों ने जहां एक ओर किसानों में असंतोष को गोलबंद किया था, वहीं हिंदुओं के धार्मिक रीति रिवाजों में लूट और हड़प के दृष्टिकोण से हस्तक्षेप करके इन्हें असुरक्षित और उद्वेलित किया था जिसके परिणाम स्वरूप सैनिकों, जोकि इन किसान परिवारों से ही आते थे को भी देश धर्म के नाम पर सोचने और इस विधर्मी सत्ता को समूल नष्ट करने के लिए प्रेरित किया था। ऐसा करने में अन्य शक्तियों ने भी अपनी भूमिका निर्वहन की थी। क्योंकि, मार्क्स ने जुलाई माह का जो वृतांत दिया है उसमें दस हजार सैनिकों से अधिक आगरे को घेरे पड़े थे और इनकी संख्या बढ़ती जाती है। ये सब बहुत अनुशासित रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ रहे थे। बिना किसी केंद्रीय शक्ति की प्रेरणा के यह सब सम्भव नहीं था। यह बात अंग्रेज पोषित इतिहासकार भूल जाते हैं।[58] इसी लेख में वे नाना साहब के कारनामें जिनसे अंग्रेजों की नाक में दम आ गया था का भी उल्लेख करते हैं।[59] वे क्रांति की प्रचंडता का उल्लेख करते हुए लिखते हैं, कि इन घटनाओं की जांच पड़ताल से यह नतीजा निकलता है ....." कि बंगालके उत्तर पश्चिम प्रान्तों में धीरे-धीरे ब्रिटिश फौजें छोटी-छोटी चौकियो में बंट गयी हैं और ये बिखरी हुई चौकियां, क्रांति के एक लहराते सागर के बीच, अलग थलग चट्टानों के ऊपर इधर उधर टिकी हुई हैं। बंगाल के नीचे के भागों में, इधर-उधर घूमते हुए आस-पास के ब्राह्मणों ने बनारस के पवित्र नगर पर पुनः अधिकार करने की एक असफल चेष्टा की थी। इसके अलावा मिर्जापुर, दानापुर, और पटना में बगावत की केवल आंशिक कार्रवाइयां ही हुई थीं।

पंजाब में विद्रोह की भावना को जबरदस्ती दबाए रखा जा रहा है, स्यालकोट में बगावत को कुचल दिया गया है, झेलम में भी ऐसा ही हुआ है और पेशावर में असंतोष को फैलने से सफलता पूर्वक रोक दिया गया है। गुजरात में, सतारा के अंदर पंढरपुर में, नागपुर क्षेत्र के नागपुर और सागर में, निजाम की अमलदारी के अंतर्गत हैदराबाद में, और अंत में सुदूर दक्षिण के मैसूर तक में विद्रोह की कोशिशें की जा चुकी हैं। इसलिए बम्बई और मद्रास प्रेसिडेंसी की शांति को किसी प्रकार से पूर्णतया सुरक्षित नहीं माना जाना चाहिए। "[60] मार्क्स का यह वक्तव्य उन अभिलेखों पर आधारित है जोकि कम्पनी के अधिकारी आधा-अधूरा इंग्लैंड में बैठे अपने आकाओं को भेजते थे। इस आधे अधूरे या अर्ध सत्य के पुलिंदे के आधार पर मार्क्स की चिंता की गम्भीरता को समझा जा सकता है, यदि पूरा सत्य इंग्लैंड तक पहुंचता, तो परिदृश्य कुछ ओर ही होता। सन्यासियों की भूमिका सम्बन्धी जो अभिलेख मैसूर ज्यूडिशियल कमीशन के अंतर्गत उपलब्ध थे, से क्रांति के राष्ट्र व्यापी स्वरूप का अनुमान सहजता से ही लगाया जा सकता है।[62] कार्ल मार्क्स के वक्तव्यों से भी इसका राष्ट्रीय स्वरूप स्पष्ट रूप से प्रकट हो रहा है किंतु उनके अनुयायी इतिहासकारों ने स्वयं के प्रणेता की दृष्टि और चिंताओं को ही दरकिनार करके अपनी लेखनी को परवान चढ़ा दिया, जोकि एक राष्ट्रीय अपराध और समाज को दिग्भ्रमित करने वाले क्रिया कलापों की श्रेणी में आना चाहिए।

18 सितंबर 1857 को मार्क्स ने जो लेख लिखा था जोकि 3 अक्टूबर 1857 के न्यू यॉर्क डेली ट्रिब्यून में छपा था, में वे सप्रमाण ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की काली करतूतों को न केवल उजागर कर रहे हैं बल्कि ब्रिटिश सरकार को भी सावधान कर रहे हैं कि किस प्रकार पिछले 100 वर्षों से कम्पनी उसको मूर्ख बना कर अपना हित साधन कर रही है और कैसे कम्पनी के अधिकारी कम्पनी की कीमत पर स्वयं का हित साध रहे हैं। इस प्रकार से कम्पनी की कुत्सित नीतियों से भारत सहित इंग्लैंड भी ठगा जा रहा था और कम्पनी भी बस, लाभ तो मात्र अधिकारियों का ही हो रहा था। इसलिए अधिकारी से लेकर कम्पनी तक कोई भी ब्रिटिश सरकार तक सही सूचना नहीं पहुंचा रहे थे। ऐसा इसलिए क्योंकि सच्चाई पता पड़ जाने पर सरकार कम्पनी से भारत के शासन की शक्ति वापिस ले सकती थी और सरकार ने 1858 में यह किया भी। मार्क्स इसी लेख में लिखते है की पिछले 100 वर्षों में कम्पनी ने भारत के विभिन्न प्रदेशों पर अधिकार करने के नाम पर जो लड़ाइयां लड़ीं हैं उनके लिए वह ब्रिटिश सरकार से 5 करोड़ पोंड से भी अधिक कर्जा ले चुकी है। इसके अतिरिक्त पिछले वर्षों में फौजी खर्चे की व्यवस्था भी ब्रिटिश सरकार ने ही की।[61] इस प्रकार से कम्पनी से प्रत्यक्ष रूप में तो ब्रिटिश शासन को लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक हुई किन्तु भारत में कम्पनी के अधिकारियों ने जो लूट मचा कर व्यक्तिगत सम्पत्ति अर्जित की उससे अवश्य ब्रिटिश सरकार लाभ में रही क्योंकि इस सम्पत्ति का निवेश तो ब्रिटेन में ही होता था। इस प्रकार से कम्पनी जहाँ एक ओर भारत को खोखला करने में जुटी थी, वहीं दूसरी ओर वह ब्रिटेन को भी हानि पहुंचा रही थी। कॉरपोरेट कल्चर की यही तो विसंगति है कि वह मात्र अपना हित साधती है, अन्य किसी का नहीं। मार्क्स अंग्रेजों द्वारा लूट के लिए 10, 000 से अधिक अंग्रेजी अफसर जोकि सैनिक और असैनिक पदों पर पदस्थ थे, के साथ, 6,000 विभिन्न प्रकार के व्यापारियों को जिम्मेदार मानते हैं। ये अनेक प्रकार से भारत को लूट कर इंग्लैंड को समृद्ध कर रहे थे।[62] आश्चर्य है कि कंपनी और उसके अधिकारियों के भ्रष्ट होने की भविष्यवाणी 18 वीं सदी के 8 वें दशक में अमेरिकी संविधान सभा के सदस्य बेजामिन फ्रेंकलिन अपने पत्राचार में, भारत में ब्रिटिश ईस्ट इन्डिया कंपनी के कलकत्ता स्थित सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस और एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ इंडिया के संस्थापक सर विलियम जोंस से पूर्व में कर चुके थे जोकि 19 वीं सदी के उत्तरार्थ में फलीभूत हो रही थी। यद्यपि इसकी बानगी 1773 में ब्रिटिश सरकार देख भी चुकी थी जबकि कंपनी ने उससे 10 लाख रूपये अपने कर्ज के सम्बन्ध में मांगे थे और कंपनी के लिए सरकार को पहला रेगुलेटिंग एक्ट बनाना पड़ा था। इसलिए कंपनी के भ्रष्टाचार का व्यवहार कोई नया नहीं था, उसका चरित्र ही भ्रष्टाचारी था।

अंग्रेजों के अत्याचारों का उल्लेख करते हुए मार्क्स लिखते हैं कि अंग्रेज अफसर सर जॉन लॉरेंस ने अपने बर्बर आदेशों से अनेक राजाओं को, बिना किसी ठोस सबूत के फांसी पर लटकाने के आदेश दे दिए थे।[63] यहीं पर वे एक अफसर के हवाले से लिखते हैं कि "हमारे हाथ में जिंदगी और मौत की ताकत है, और हम तुम्हें यकीन दिलाते हैं कि उसका इस्तेमाल करने से हम कोताही नहीं करते। "यह गर्वोक्ति अंग्रेजों के बर्बर व्यवहार और स्वयं को भगवान समझने के अंदाज को दर्शाती है कि किस प्रकार से भारत की लूट से प्राप्त हुई समृद्धि ने उन्हें अंधा और अमानवीय बना दिया था।[64] एक और अफसर लिखता है कि कोई दिन ऐसा नहीं जाता जब हम निर्दोष (न लड़ने वाले लोगों) को फांसी पर न लटका देते हों।[65] अंग्रेज क्रांतिकारियों को तो फांसी आदि की सजा दे ही रहे थे किन्तु वे समाज में भय का वातावरण बनाने के लिए निर्दोषों को भी फांसी जैसी यातना दे रहे थे। यह यदि सत्ता द्वारा

पोषित आतंकवाद नहीं था तो क्या था? मार्क्स उनकी बर्बरता के विषय में लिखते हैं कि होम्स एक बढ़िया आदमी की भांति 20-20 लोगों को एक साथ फांसी दे रहा है। कोई घोड़े पर बैठा-बैठा ही अपने फैसले सुना रहा है। बनारस में 30 जमींदारों को जनता से सहानुभूति रखने के संदेह में ही फांसी दे दी। और, इतना ही नहीं पूरे गांव के गांव मात्र सन्देह के कारण ही आग के हवाले कर दिए गए।[66] मार्क्स बहुत ही बेबाकी से अंग्रेजों और भारतीयों के क्रियाकलापों का उल्लेख करते हैं तो पाते हैं कि अंग्रेजों ने देशी लोगों पर ज्यादा बर्बरता का व्यवहार किया था। इसकी पुष्टि वे स्वयम एक अंग्रेज अफसर जिसका कि पत्र लंदन टाइम्स में छपा था के हवाले से देते हैं कि "हिंदुस्तानियों से सामना होने पर यूरोपियन सैनिक शैतान की तरह पेश आते हैं।"[67] यहॉ पर ये बात बहुत ही रोचक है कि हिंदुस्तानी अपने बचाव के लिए भी कुछ करें तो वह बर्बरता और क्रूरतम है और अंग्रेज हिंदुस्तान पर कब्जा बनाए रखने के लिए कितना भी पाशविक व्यवहार करें तो वह सैनिक पराक्रम है।[68] अंग्रेजों के इस भयावय व्यवहार का चित्रण करते हुए मार्क्स अंग्रेजों के इतिहास से अनेक सन्दर्भ देते हैं।[69] वे आगे अंग्रेजों और देशी सेनाओं, जिन्होंने क्रांति का बिगुल फूंका था, की ताकत की तुलना करते हुए लिखते हैं कि उत्तर भारत में अनेक स्थानों पर देशी सेनाओं ने अंग्रेजों की नाक में दम कर रखा है और अंग्रेजों की स्थिति बहुत कमजोर प्रतीत होती है। इसी प्रकार का हवाला वे बम्बई प्रेसिडेंसी का देते हैं कि वहां भी हालत कमजोर ही हैं। बम्बई प्रेसिडेंसी में देशी सेनाओं ने नागपुर, औरंगाबाद, हैदराबाद और अंत में कोल्हापुर में अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा खोल दिया है और क्रांतिकारियों के साथ हो गई है। इतना ही नहीं वे बम्बई प्रेसिडेंसी में तैनात देशी सेनाओं के कुल 43,048 सैनिक जिनमें से अधिकांश क्रांति का हिस्सा बन चुके थे, से ये भी अपेक्षा करते हैं कि वे न केवल बम्बई प्रेसिडेंसी में शांति बनाए रखने में सहयोग करेंगे बल्कि इंदौर, मऊ पर पुनः कब्जा करने में भी मदद करेगी तथा आगरा को मदद करेगी और पंजाब में सिंध तक सैनिक सहायता भेजेगी।[70]

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि अंग्रेजी सेना को क्रांतिकारियों ने न केवल हताश कर दिया था बल्कि वे देशी सैनिकों के सहयोग के अभाव में अपने खोए हुए स्थानों को प्राप्त भी नहीं कर सकते थे। मार्क्स के इन तथ्यों से इन बातों की पुष्टि होती है। वे आगे फिर अंग्रेजों की गलत बयानी पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए लिखते हैं कि भारत में शांति स्थापित हो गई है ऐसा हमें सूचित किया गया है, किंतु यह हमारे लिए तब तक अविश्वसनीय रहेगा जब तक कि होल्कर और सिंधिया की भूमिका स्पष्ट नहीं हो जाती कि उनका सहयोग किनके साथ रहेगा।[71] यहां पर यह ध्यान देने वाली बात है कि यह लेख मार्क्स ने सितंबर 57 में लिखा था। इतना ही नहीं वे आगे यह भी लिखते हैं कि सिंधिया के पास 10 हजार अनुशासित सैनिक हैं और यदि उसने अंग्रेजों का साथ छोड़ दिया तो हो सकता है कि पूरा उत्तर भारत ही अंग्रेजों के हाथ से निकल जाए। तथा क्रांतिकारियों के द्वारा मनाए जाने पर सिंधिया भी क्रांतिकारियों के ही साथ हो जाए।[72] मार्क्स की इस बात की पुष्टि 1857 के आंदोलन में सन्यासियों की भूमिका सम्बन्धी जो साहित्य उपलब्ध है, इससे भी होती है क्योंकि, सन्यासियों को सहयोग देने वालों में तत्कालीन सिंधिया महाराज की दादी बैजा-बाई भी थीं। उन्होंने न केवल सन्यासियों को सहयोग दिया बल्कि पूरे भारत के कर्मकांडी विद्वानों को एक विशाल यज्ञ के आयोजन हेतु मथुरा में एकत्रित भी किया था, जिससे यज्ञ के निमित्त हिन्दू धर्म पर आए हुए और आने वाले संकटों से समाज को सावधान किया जा सके।[73] सन्यासियों ने अपने शिष्यों के माध्यम से इस अलख को पूरे भारत में जगाया ही था, बैजा बाई भी पुरोहितों के माध्यम से स्थान-स्थान पर क्रांति का संदेश

और अंग्रेजी जुए को उतार फेंकने का आह्वाहन करना चाहती थीं। नाना साहब को भी उन्होंने ही सन्यासियों से मिलने के लिए प्रेरित किया था।[74] किन्तु यह मनोकामना पूर्ण न हो सकी और उसके पूर्व ही क्रांति की ज्वाला धधक उठी और सभी सम्भावनाएं क्षीण हो गई। मार्क्स आगे अंग्रेजी सेना की और कमजोर होने की आशंका व्यक्त करते हैं क्योंकि दिल्ली का मौसम अंग्रेजों के प्रतिकूल होने लगेगा जिससे अंग्रेजों को बहुत ही परेशानी होगी।[75]

यों तो मार्क्स कभी भी भारत नहीं आए थे किंतु उनके सम्बन्ध - सम्पर्क और स्वाध्यायी स्वभाव ने उन्हें भारत के इतिहास - भूगोल से भली भांति परिचित करवा दिया था, उनका यह ज्ञान उनके द्वारा लिखित भारत सम्बन्धी लेखों में स्पष्टतः देखा जा सकता है। 1857 के स्वातंत्र्य समर में भारतीयों और अंग्रेजों के क्रिया कलापों का वे जिस बेवाकी से उल्लेख किए हैं और उसकी तुलना उन्होंने यूरोप के अनेक युद्धों से की है, उससे उनकी भारत के प्रति चिंता और भारत के स्वातंत्र्य समर और यूरोप के युद्धों की तुलनात्मक दृष्टि का बोध होता है। भारतीय सैनिकों की शक्ति और अंग्रेज़ी सेना की शक्ति हीनता को लेकर भी वे चिंता व्यक्त करते हैं और लिखते हैं कि जब तक नए सैन्य दल भारत नहीं पहुंचते तब अंग्रेज अफसरों को परेशानी का सामना करना पड़ सकता है। इसका उल्लेख वे एक अंग्रेज अफसर के 13 अगस्त 1857 के पत्र के हवाले से करते हैं कि अंग्रेज सेना देशी सेना और क्रांतिकारियों के सम्मुख इतनी बेबश है कि वे चाह कर भी दिल्ली को अपने कब्जे में नहीं कर सकते और यदि कर भी लिया तो क्रांतिकारी सैनिकों को तो किसी भी हालत में वश में नहीं किया जा सकता क्योंकि उनके सम्मुख यमुना को पार करके सब दिशाओं में जाने के विकल्प विद्यमान हैं।[76] वे आगे फिर लिखते हैं कि एक ही हालत में दिल्ली पर अंग्रेज हमला कर सकतें हैं जब कि क्रांतिकारियों में या तो फूट पड़ जाए या फिर उनका गोला बारूद समाप्त हो जाए। लेकिन यह तत्काल सम्भव नहीं लगता क्योंकि देशी सैनिकों की रणनीति बहुत व्यवस्थित है।[77] अंग्रेजी सेना की कमी और थकान ने अंग्रेजों को दिल्ली पर हमला करने से रोकने की नीति पर चलने तथा पंजाब से नई सेना के आने के बाद रणनीति बदलने को प्रेरित किया और फलतः अंग्रेजी सेना ने दिल्ली के मुहाने पर ही पड़ाव डाल दिया।[78] पंजाब के सेना अधिकारी ने दिल्ली के सैन्य अधिकारियों को वचन दिया कि वे जितनी सेना भेज सकते हैं वे उतनी भेजेंगे और उन्होंने भेजी भी। किन्तु पंजाब में सेना की कमी ने वहां भय का वातावरण निर्मित कर दिया।[79]

वे आगे फिर लिखते हैं कि अंग्रेजों के लिए परिस्थितियां आसान नहीं थी क्योंकि ग्वालियर का एक सैन्यदल नाना साहब के नेतृत्व में कानपुर पर हमला करने के लिए बढ़ रहा था। इसी स्थान पर वे क्रांतिकारियों को रणनीतिक समझ का धनी और अंग्रेजों को आत्मप्रशंसा करने वाला मूर्ख बताते हैं। और आगे अंग्रेजी सेना बचाने की जनरल हैवलॉक की चिंता को व्यक्त करते हैं।[80] देशी सेना के आक्रोश का वेग कितना था इसको वे लंदन से प्रकाशित डेली न्यूज़ में बम्बई से भेजे एक पत्र की रिपोर्ट के हवाले से उजागर करते हैं। "दानापुर में हाल में तीन रेजिमेंटों ने जो बगावत की है, उसने इलाहाबाद और कलकत्ता के बीच के आवागमन को (केवल नदी के ऊपर से अग्नि वोटों के द्वारा होनेवाले आवागमन को छोड़कर) खत्म कर दिया है। हाल में जो घटनाएँ घटी हैं उनमें से दानापुर की बगावत सबसे संगीन है, क्योंकि उसकी वजह से, कलकत्ता से 200 मील के फासले के अंदर बिहार के पूरे जिले में, अब आग लग गई है। आज खबर आई है कि संथाल फिर उठ खड़े हुए हैं। 1,50, 000 ऐसे जंगली लोगों द्वारा बंगाल पर कब्जा कर लिए जाने के बाद, जो खूँरेजी ,लूट -खसोट और बलात्कार करने में ही आनन्द मानते हैं, बंगाल की हालत सचमुच भयंकर हो उठेगी।"[81] इस प्रकार से कलकत्ता से आने वाली सहायता के मार्ग को क्रांतिकारी देशी

सेना ने पहले ही अवरुद्ध कर दिया था। वे आगे फिर दूसरा विकल्प प्रस्तुत करते हैं जोकि बम्बई और मद्रास की सेनाओं के लिए इंदौर होते हुए आगरा तक का था वह भी, तब तक, जब तक कि आगरा पर क्रांतिकारियों का अधिकार नहीं होता तब तक ।[82],, आगरा को सुरक्षित रखने के लिए वे तत्काल पंजाब और इलाहाबाद में जमीं सैनिक टुकड़ियों को आगरा की ओर बढ़ने की बात कहते हैं। इसके अतिरिक्त उनकी चिंता यह भी है कि अंग्रेजों की ऐसी स्थिति में कहीं देशी राजाओं ने भी, जोकि पूरी तरह से अभी क्रांति के साथ नहीं जुड़े थे, ने भी क्रांतिकारियों का साथ दे दिया तो स्थिति भयावय हो जाएगी और फिर कश्मीर से कन्याकुमारी तक सर्वत्र मौत का तांडव ही दिखेगा। इसलिए नवम्बर तक, जब तक कि यूरोप से सैन्य सहायता नहीं पहुंचती है तब तक निर्णायक टक्करों से बचा जाए।[83]

इस प्रकार अंग्रेजों की हालत को वे बहुत ही बेवाकी से उजागर करते हुए क्रांतिकारियों की बहादुरी और रणनीति को रेखांकित करते हैं। कार्ल मार्क्स के ये विश्लेषणात्मक विचार यदि भारतीय अध्येताओं के सम्मुख इतिहासकारों ने रखे होते तो मार्क्स की निरपेक्ष समझ तो स्थपित होती ही, बल्कि उसके साथ युवाओं के समक्ष 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम का वास्तविक स्वरूप भी प्रकट हो जाता। किन्तु उपनिवेशी दृष्टिकोण से लिखे गए इतिहास ने, न केवल मार्क्स के प्रति अन्याय किया बल्कि भारत के युवाओं को भी आत्म विस्मृति और हेय भाव से कमजोर बनाने में स्वतन्त्रता के बाद भी पारतंत्र्य की परिस्थितियों को बनाये रखा। आश्चर्य तो यह है कि आजादी के अमृत महोत्सव के वर्ष में भारत की राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 इन सभी विसंगतियों को दूर करने के अवसर प्रदान करती है और उन्हीं अवसरों के आलोक में भारत के भ्रमित इतिहास को सही मार्ग पर लाने के लिए अध्येताओं के प्रयासों के आधार पर संशोधित इतिहास लिखा जा रहा हैं, उस इतिहास का सर्वदूर स्वागत होना चाहिए। किन्तु उपनिवेशी इतिहारकारों को यह सब असहनीय है और इसी लिए वे इन प्रयासों का भरपूर विरोध कर रहे हैं। अब अवसर आ गया है कि भारत की युवा पीढ़ी और सुधि पाठक स्वंय सुनिश्चित करें कि क्या सही है और क्या भ्रम पूर्ण था। क्योंकि सूर्य के प्रकाश को लम्बे समय तक बादलों की ओट में छुपाकर नहीं रखा जा सकता। यह उसी दिशा में किया गया एक लहुतम प्रयास

संदर्भ सूची

1. कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स, भारत सम्बन्धी निबन्ध, (ऑन कालोनियलिज्य) अनुवादक रमेश सिन्हा, (1973) पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि० नई दिल्ली-55 पृ० 9
2. तदैव
3. तदैव
4. तदैव- पृ० 11
5. तदैव
6. तदैव-12
7. तदैव
8. तदैव- 12-13

9. विल ड्यूरैण्ट, केस फॉर इण्डिया (2011) स्ट्राण्ड बुक स्टाल, मुबंई पृ० 3
10. कार्ल माक्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स, भारत सम्बन्धी निबन्ध (ऑन कालोनियलिज्म) अनुवादक रमेश सिन्हा (1973) पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि० नई दिल्ली-55 पृ० 13
11. तदैव
12. तदैव-26
13. तदैव-27
14. चार्ल्स ट्रेवलिन, आन एजुकेशन ऑफ द पीपुल्स ऑफ इण्डिया (1838); लांग मैन, ऑरमे ब्राउन, ग्रीन एंड लांग मैन- पैटर नोस्टर रॉ, पृ० 38
15. कार्ल माक्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स, भारत सम्बन्धी निबन्ध (ऑन कालोनियलिज्म) अनुवादक रमेश सिन्हा (1973) पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि० नई दिल्ली-55 पृ० 31
16. तदैव
17. तदैव
18. तदैव- पृ० 35
19. विष्णु भट्ट गोडशे वरसाईकर, माझा प्रवास (आँखों देखा गदर-अनुवादक-अमृत लाल नागर) (2021), राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली- पृ० 20-22
20. कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स भारत सम्बन्धी निबन्ध ऑन कालोनियलिज्म (अनुवादक रमेश सिन्हा) (1973) पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि० नई दिल्ली. 55 पृ० 40
21. तदैव
22. तदैव- पृ० 39
23. तदैव
24. कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स भारत सम्बन्धी निबन्ध, ऑन कालोनियलिज्म (अनुवादक रमेश सिन्हा) (1973) पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि० नई दिल्ली.55 पृ०
25. कार्ल मार्क्स तदैव- पृ० 41
26. तदैव पृ० 44
27. तदैव पृ० 45
28. तदैव पृ० 45
29. तदैव पृ० 46
30. तदैव
31. ब्रिटिश पार्लियामेंट्री पेपर्स XXXII (1852-53) पृ० 263-64 पवन कुमार वर्मा की पुस्तक भारतीयता की ओर (संस्कृति और अस्मिता की अधूरी क्रांति) (2010), पेंगुइन बुक्स लि०, पृ० 36 से उद्धृत
32. कार्ल मार्क्स एवं फ्रेडरिक एंगेल्स भारत सम्बन्धी निबन्ध, ऑन कालोनियलिज्म (अनुवादक रमेश सिन्हा) (1973) पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा० लि० नई दिल्ली.55 पृ० 47
33. तदैव- पृ० 47

34. तदैव
35. तदैव
36. तदैव
37. तदैव
38. तदैव पृ० 50
39. तदैव पृ० 51
40. तदैव
41. तदैव पृ० 51-52
42. तदैव पृ० 58-59
43. तदैव पृ० 59
44. तदैव पृ० 58
45. तदैव पृ० 60
46. तदैव
47. तदैव पृ० 61
48. तदैव पृ० 67
49. तदैव
50. तदैव पृ० 68
51. तदैव पृ० 69
52. तदैव पृ० 69
53. तदैव पृ० 70
54. तदैव पृ० 71
55. तदैव पृ० 70
56. तदैव पृ० 72
57. तदैव पृ० 72
58. तदैव पृ० 79
59. तदैव पृ० 80
60. तदैव पृ० 81
61. तदैव पृ० 62
62. तदैव पृ० 85-86
63. तदैव पृ० 88
64. तदैव पृ० 89
65. तदैव
66. तदैव

67. तदैव
68. तदैव पृ० 89
69. तदैव पृ० 90
70. तदैव पृ० 95-96
71. तदैव पृ० 96
72. तदैव
73. संपादक-लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, मासिक साहित्य अमृत, अगस्त 2022, नई दिल्ली में प्रो० पवन कुमार शर्मा का शोध-पत्र भारतीय स्वातन्त्र्य समर में संयासियों की भूमिका, पृ० 58
74. तदैव पृ०
75. तदैव पृ० 98
76. तदैव पृ० 104
77. तदैव पृ० 105
78. तदैव पृ०
79. तदैव पृ० 105-106
80. तदैव पृ० 106
81. तदैव पृ० 107
82. तदैव पृ०
83. तदैव पृ०
84. तदैव पृ०

अध्याय-2

भारतीय नौकरशाही में नवोन्मेष: मिशन कर्मयोगी के परिप्रेक्ष्य में

प्रवीण कुमार झा
शहीद भगत सिंह कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

संगीता
शहीद भगत सिंह कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

नौकरशाही' एक ऐसी संस्था है जिसका अस्तित्व प्राचीन काल से ही प्रशासन के साथ महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए देखा जा सकता है। इस संस्था की विशेषता बुद्धिमत्ता, साहस, अधिकार और अत्यधिक शक्ति है। भारतीय नौकरशाही को भी ऐसी शक्ति, जिम्मेदारी और निर्णय लेने की शक्ति सौंपी गई है। लेकिन इस संस्था की अक्सर भ्रष्टाचार, राजनीतिकरण, लालफीताशाही और नौकरशाही के आरोपों के साथ आलोचना की जाती रही है। हालाँकि यह संस्था राष्ट्र की क्षमता निर्माण के लिए डिज़ाइन की गई थी, लेकिन यह नेताओं और जनता की अपेक्षाओं को पूरा करने में काफी हद तक विफल रही और जल्द ही यह संस्था समय की माँगों को पूरा करने में कम कुशल और कम प्रभावी हो गई। इस लेख का उद्देश्य भारतीय नौकरशाही में निहित समस्याओं और मिशन कर्मयोगी द्वारा सुझाए गए सुधारों तथा पिछले कुछ वर्षों से सरकारी संस्थानों तथा कार्यों के डिजिटलीकरण की उपयोगिता का अध्ययन करना है।

नोकरशाह का अर्थ कई स्तरों वाला एक औपचारिक, पदानुक्रमित संगठन से है जिसमें कार्य, जिम्मेदारियाँ और अधिकार व्यक्तियों, कार्यालयों या विभागों के बीच सौंपे जाते हैं, जिन्हें एक केंद्रीय प्रशासन द्वारा एक साथ रखा जाता है। यह संस्था किसी न किसी रूप में प्राचीन काल से ही विद्यमान है। हालाँकि, इस शब्द का प्रयोग पहली बार 1745 में किया गया था जब फ्रांसीसी अर्थशास्त्री विंसेंट डी गॉर्नी द्वारा समाज के कार्यों को करने के लिए प्रशिक्षित प्रशासनिक संरचना को संदर्भित करने के लिए गढ़ा गया था।

भारत में भी इस संस्था का अस्तित्व प्राचीन काल से देखा जा सकता है परंतु इसकी संवैधानिक तौर पर आधुनिक समय की आवश्यकताओं के अनुसार इसकी संगठन और कार्यप्रणाली का निर्धारण अंग्रेजों द्वारा ही किया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय नौकरशाही को शुरुआती वर्षों में कानून और व्यवस्था बनाए रखने, राष्ट्र निर्माण और नवजात लोकतंत्र के आर्थिक विकास की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गई है। लेकिन धीरे-धीरे इस संस्था की कार्यप्रणाली भ्रष्टाचार, राजनीतिकरण, लालफीताशाही और नौकरशाही की समस्या से ग्रस्त होने लगी। हालाँकि इस संस्था को राष्ट्र की क्षमता का निर्माण करने के लिए डिज़ाइन किया गया था, लेकिन यह बड़े पैमाने पर नेताओं और जनता की अपेक्षाओं को पूरा करने में विफल रही और जल्द ही संस्था समय की मांग को पूरा करने में असक्षम, कम कुशल और कम प्रभावी हो गई। 2011 में, हांगकांग स्थित पॉलिटिकल एंड इकोनॉमिक रिस्क कंसल्टेंसी ने अपनी रिपोर्ट में पूरे एशिया में नौकरशाही को एक से 10 के पैमाने पर रैंक किया, जिसमें 10 सबसे खराब संभावित स्कोर था। भारत का स्कोर 9.21 रहा. 11 जनवरी, 2012 को जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत का प्रदर्शन

ISSN: 2321-0443

वियतनाम (8.54 रेटिंग), इंडोनेशिया (8.37), फिलीपींस (7.57) और चीन (7.11) से सबसे खराब है। सिंगापुर 2.25 रेटिंग के साथ सबसे अच्छा रहा, उसके बाद हांगकांग का स्थान रहा। (3.53), थाईलैंड (5.25) ताइवान (5.57), जापान (5.77), दक्षिण कोरिया (5.87) और मलेशिया (5.89)।

इस स्थिति के संदर्भ में भारतीय नौकरशाही में निहित समस्याओं और मिशन कर्मयोगी द्वारा सुझाए गए सुधारों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

भारत में नौकरशाहों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका

नौकरशाही सभी सरकारी गतिविधियों के केंद्र में है। वे नीति निर्माण और जमीनी स्तर पर उनके कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नौकरशाहों का कौशल और उत्कृष्ट क्षमता उन्हें सेवा वितरण, कार्यक्रम कार्यान्वयन और मुख्य शासन कार्यों को करने में बहुत मदद करती है। नौकरशाहों में छह मुख्य विशेषताएं अक्सर देखी जाती हैं। ये हैं:

विशेषज्ञता एवं श्रम विभाजन- नौकरशाही व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति ने उसे सौंपे गए कार्य में अपनी विशेषज्ञता विकसित कर ली है। इस क्षमता में कार्य को वांछित तरीके से पूरा करने के लिए उन्हें तकनीकी विशेषज्ञों की एक टीम द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। व्यक्तिगत विशेषज्ञता के आधार पर, प्रत्येक व्यक्ति को वह कार्य सौंपा जाता है जिसके लिए वे सबसे उपयुक्त माने जाते हैं। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि काम ठीक से और कुशलता से किया जा सके।

पदानुक्रमित प्राधिकरण संरचनाएँ- भारत में नौकरशाही संरचना को एक पदानुक्रमित तरीके से डिज़ाइन किया गया है जहाँ शक्ति ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होती है। इस तरह शक्ति को विभिन्न स्तरों पर विभाजित किया जाता है और कार्य ऊपर से नीचे तक प्रत्यायोजित किया जाता है।

नियम और विनियम- नौकरशाहों को स्थापित नियमों और विनियमों में प्रशिक्षित किया जाता है जिनका वे अपने संचालन में पालन करते हैं। इस प्रकार पूरे देश में नीति निर्माण और कार्यान्वयन पर एक मानक प्रक्रिया का पालन किया जाता है। यह प्रणाली को अधिक पारदर्शी और समझने योग्य बनाता है।

अवैयक्तिकता और व्यक्तिगत उदासीनता- नौकरशाहों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कर्तव्यों का निष्पक्ष तरीके से निर्वहन करें और समय की आवश्यकता और राष्ट्र और समग्र रूप से लोगों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए नीति निर्माण और कार्यान्वयन में सक्रिय भूमिका निभाएं। इसके लिए पूरे देश में नौकरशाहों द्वारा एक समान प्रक्रिया अपनाई जाती है। यह निर्वैयक्तिकता का विचार है।

औपचारिक, लिखित संचार का एक मानक- नौकरशाही मौखिक संचार की तुलना में लिखित संचार को अधिक पसंद करती है। यहां चीजों को व्यवस्थित और उचित रूप से प्रलेखित रखने पर जोर दिया जाता है।

सरकारी नीतियों के अंतिम प्रभाव को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका- एक बार जब सरकार किसी नीति पर अपना निर्णय ले लेती है, तो नौकरशाही को उन नीतियों को लागू करने की जिम्मेदारी मिल जाती है। राजनीतिक कार्यपालिका नीति-निर्माण का नेतृत्व करती है लेकिन उन्हें तकनीकी मामलों पर विशेषज्ञ सलाह के लिए नौकरशाही की आवश्यकता होती है। यह उन्हें अनुमोदित नीतियों के अंतिम प्रभाव और उसके लाभार्थियों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका देता है।

भारतीय नौकरशाहों की समस्याएँ

राजनीतिक हस्तक्षेप और कर्तव्यों को पूरा करने में नौकरशाहों की अक्षमताओं के कारण, यह देखा गया है कि भारत में नौकरशाह अपनी कार्य / नौकरी में असंतोष की समस्या से पीड़ित हैं। वहीं, सेवाएं देने में असफलता के कारण अक्सर लोगों द्वारा उनकी आलोचना की जाती है। इसका असर भारत में नौकरशाही के कामकाज पर पड़ रहा है। परिणामस्वरूप, भारतीय नौकरशाहों में नीचे सूचीबद्ध समस्याएं देखी गई हैं:-

- **नौकरशाहों द्वारा तबादले और इस्तीफे के बढ़ते मामले:** 2010 में प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग द्वारा भारत में सिविल सेवकों का सर्वेक्षण किया गया था जिसमें यह पाया गया कि लगभग 33.6% आईएएस उत्तरदाताओं ने कम से कम एक बार सेवा से इस्तीफा देने के बारे में सोचा था (डीएआरपीजी, 2010)। ऐसा करने वालों में से 80% ने राजनीतिक हस्तक्षेप को कारण बताया और 73% ने हताशा को बताया। उनके द्वारा बताए गए कारण इस प्रकार बताए गए हैं:

TABLE – 1	
इस्तीफे के कारण	
मुआवज़ा	80.6%
राजनीतिक हस्तक्षेप	79.6%
मान्यता का अभाव	74.2%
निराशा	73%
ख़राब पोस्टिंग	63.2%
सामाजिक कार्य	37.9%
सार्वजनिक जीवन	33.2%

(Source: Indian Civil Service Survey (DARPG, 2010))

इन समस्याओं के कारण, हमने अक्सर नौकरशाहों के बीच मनमानी और खराब कार्य निष्पादन को देखा है जिसके परिणामस्वरूप परियोजना में देरी, उपलब्ध संसाधनों का कम उपयोग, अंतर-विभागीय समन्वय विफलताएं और यहां तक कि महत्वपूर्ण सुधारों को टालना भी शामिल है। इन परिस्थितियों

में आम तौर पर यह देखा गया है कि व्यापक महत्वाकांक्षाओं और परिणामों में अनिश्चितता वाली परियोजनाओं की तुलना में बहुत विशिष्ट जनादेश और लक्षित कार्यों वाली परियोजनाओं को लागू करने की अधिक संभावना है। इसका एक वैकल्पिक वाक्यांश यह है कि जब परियोजनाएं "अस्थायी रूप से केंद्रित" होती हैं तो नौकरशाह हमेशा अधिक रुचि लेते हैं और मिशन मोड में बेहतर परिणाम देते हैं। इन परियोजनाओं को आम तौर पर निश्चित समयसीमा के भीतर कार्यान्वित किया जाता है और ऐसी परियोजनाओं के परिणामी प्रभाव का आमतौर पर अनुमान लगाया जा सकता है। इसके विपरीत, संकटों या आपदा स्थितियों में नौकरशाही की प्रतिक्रिया जहां कार्यप्रणाली, परिणाम और समय-सीमा अनिश्चित होती है, वहां इस बात की प्रबल संभावना होती है कि नौकरशाह परियोजना को स्थगित कर देंगे या हम कह सकते हैं कि आवश्यक जोखिम लेना पसंद नहीं करेंगे।

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में, नौकरशाह अनिर्वाचित अधिकारी होते हैं जिन्हें केवल सिद्ध क्षमता के आधार पर चुना और नियुक्त किया जाता है और एक बार नियुक्त होने के बाद (प्रशिक्षण पूरा करने के बाद), उन्हें नियामक शक्ति सौंपी जाती है। इसके लिए उनकी प्रभावशीलता और दक्षता की निगरानी और विश्लेषण के लिए कुछ तंत्रों के निर्माण की आवश्यकता है। हालाँकि, अक्सर देखा गया है कि ये निगरानी तंत्र हमेशा प्रभावी नहीं होते हैं। साथ ही, यह भी देखा गया है कि अधिकांश समय ये निगरानी तंत्र नौकरशाही पर नियंत्रण स्थापित करने के उपकरण बन गए हैं, जो अंततः उनकी काम करने की क्षमता को कमजोर कर देते हैं। इस निगरानी प्रणाली का दुरुपयोग डराने-धमकाने का उपकरण बनकर नौकरशाही के प्रदर्शन पर प्रतिकूल प्रभाव भी डाल सकता है।

डीओपीटी की वार्षिक रिपोर्ट (भारत सरकार 2019) के अनुसार, 60% भारतीय आईएएस अधिकारियों को लगता है कि उनका प्रदर्शन आधारहीन शिकायतों और जांच (डीएआरपीजी, 2010) से प्रभावित हुआ था। नीचे दी गई तालिका किसी वर्ष में आईएएस और अन्य वरिष्ठ अधिकारियों के खिलाफ लंबित या दायर की गई शिकायतों के प्रकार और संख्या का सारांश देती है।

TABLE – 2	
2018 में आईएएस अधिकारियों के खिलाफ शिकायतें और जांच	
प्राप्त और संसाधित शिकायतें (आईएएस)	625
➔ निस्तारित	596
भ्रष्टाचार के आरोप (आईएएस)	
➔ प्रतिबंध	5
➔ खारिज	4
	1
विशेषाधिकार नोटिस	12
➔ निस्तारित	

	2
सांसदों (आईएएस) द्वारा शिकायतें ➔ निस्तारित	 6 2
प्रशासनिक पूछताछ अंतिम आदेश (समूह ए) ➔ निलंबन/मानित निलंबन ➔ अभियोजन मंजूरी	9 2 1

(स्रोत: डीओपीटी वार्षिक रिपोर्ट (भारत सरकार 2019))

जैसा कि रिपोर्ट से पता चलता है कि इनमें से अधिकांश शिकायतों को या तो खारिज कर दिया गया है या फिर ऐसी सम्भावनाओं से इनकार किया गया है। यह निर्णय आईएएस अधिकारियों के पक्ष में प्रतीत हो सकता है लेकिन जांच की प्रक्रिया हमेशा आसान नहीं होती है और इससे इन वरिष्ठ अधिकारियों की प्रतिष्ठा दांव पर लग जाती है। अन्य तंत्र जैसे विभागीय ऑडिट (जो एक विभागीय जांच और जांच प्रक्रिया है) और सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत आवेदन (जो जनता को किसी भी मामले पर प्रश्न पूछने की शक्ति देता है) इन अधिकारियों के प्रदर्शन की जांच करने के लिए एक प्रभावी तंत्र हो सकते हैं। लेकिन परिणाम हमेशा सकारात्मक नहीं होता क्योंकि नौकरशाही अधिकारियों के पास मांगी गई जानकारी जमा न करने के लिए कई कारण बताए जा सकते हैं।

इन अधिकारियों के खराब प्रदर्शन का अन्य सबसे महत्वपूर्ण कारण (जैसा कि अनुसंधान कार्य के लिए चुने गए अधिकांश अधिकारियों ने बताया है) विघटनकारी मनमाना स्थानांतरण है। इन अधिकारियों की भर्ती केंद्र सरकार द्वारा की जाती है और इन्हें अक्सर एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया जाता है। जब तक ये अधिकारी वहां के लोगों के साथ मधुर संबंध विकसित करना शुरू करते हैं और क्षेत्र की जरूरतों के बारे में जागरूक होते हैं, तब तक उनका स्थानांतरण हो जाता है। अय्यर और मणि (2012) ने इन अधिकारियों के स्थानांतरण के बारे में चर्चा करते हुए राजनीतिक उपकरणों के रूप में स्थानांतरण के उपयोग के साक्ष्य प्रस्तुत किए और पाया कि किसी दिए गए वर्ष में एक अधिकारी के स्थानांतरण की औसत संभावना 53% है (1980 - 2004 तक डेटा)। चुनाव के समय यह आंकड़ा बढ़ जाता है जिससे उनके लिए स्थिति और खराब हो जाती है। दूसरी प्रशासनिक सुधार समिति (एआरसी) ने भी दंडात्मक स्थानांतरण की प्रणाली को समाप्त करने की सिफारिश की थी क्योंकि यह मनोबल गिराने वाली है और सरकारी खजाने पर बोझ डालने का काम करती है। वर्ष 2020-2023 (अक्टूबर तक) में इन अधिकारियों के स्थानांतरण को दर्शाने वाली निम्न तालिका से स्थानांतरण के उच्च स्तर को देखा जा सकता है:

TABLE – 3								
Months	**Year 2020**		**Year 2021**		**Year 2022**		**Year 2023**	
	IAS	**IPS**	**IAS**	**IPS**	**IAS**	**IPS**	**IAS**	**IPS**
January	2	3	14	12	1	4	Nil	nil
February	1	2	1	1	Nil	4	14	1
March	Nil	Nil	24	Nil	1	1	Nil	1
April	Nil	Nil	Nil	1	43	45	1	Nil
May	4	4	1	Nil	Nil	Nil	Nil	1
June	Nil	Nil	1	Nil	Nil	Nil	2	5
July	7	1	1	Nil	4	2	1	Nil
August	7	Nil	1	10	1	Nil	Nil	1
September	28	33	1	2	8	2	1	Nil
October	2	5	7	4	2	4	2	3
November	1	2	1	1	Nil	1	To be declared	
December	13	17	18	10	Nil	Nil	To be declared	
Total	65	67	70	41	60	63	21	12

(Source: https://www.mha.gov.in/MHA1/uttrans/UTTransferPosting.html)

तबादलों और जांच के खतरे के कारण नौकरशाह निर्णय लेने से बचते हैं या जोखिम-विपरीत तरीके से निर्णय लेते हैं। शायद यही कारण है कि निगरानी से जुड़ी प्रथाओं का नौकरशाही के प्रदर्शन पर अधिक अनुभवी नौकरशाहों के साथ मजबूत नकारात्मक संबंध है जो देरी और विफलता के कारण के रूप में अति-निगरानी की पहचान करने में सक्षम हैं। दिलचस्प बात यह है कि कुछ संदर्भों में, निगरानी और प्रवर्तन को बढ़ाना भी भ्रष्टाचार के लिए प्रतिकूल है क्योंकि यह भ्रष्टाचार को निकटवर्ती निर्णय क्षेत्रों में विस्थापित कर देता है जो निगरानी प्रणाली के दायरे से बाहर हैं (स्नेहा पी और अन्य : 2021)।

- **स्वायत्तता और विवेक की कमी** (अनुसंधान के लिए) चयनित अधिकारियों द्वारा उद्धृत एक और कारण है। उनमें से अधिकांश का मानना है कि ये अधिकारी अपनी सेवा वितरण में न केवल कानूनी-निगरानी बल्कि प्रशासनिक अति-निगरानी की समस्याओं का भी सामना कर रहे हैं और उनके निर्णय अक्सर उनके वरिष्ठों द्वारा प्राधिकरण के अधीन होते हैं। उनका मानना है कि स्वायत्तता की कमी न केवल उन्हें अपने कार्यों में जोखिम लेने से रोक रही है, बल्कि उनके जोखिम-मुक्त विकल्पों को भी हतोत्साहित कर रही है।

इस समस्या को समझने के लिए 50 आईएएस तथा आईपीएस अधिकारियों से बातचीत करने पर यह पता लगा कि अधिकारियो में से:

स्वीकार किया	अधिकारियों की संख्या	Percentage
जोखिम उठाना चाहते हैं	15	30 %
जोखिम उठाने से डरते हैं	25	50 %
तटस्थ	10	20 %

इन अधिकारियो का मानना था कि इन नौकरशाहों पर भरोसा किया जाना चाहिए और उन्हें अपने निर्णयों पर विवेकाधिकार दिया जाना चाहिए। इस परिवर्तन से कई अन्य लाभ भी होंगे जैसे परियोजनाओं/कार्यों का शीघ्र पूरा होना और परियोजना को पूरा करने में दक्षता।

- **काम का अत्याधिक बोझ:** कर्मचारियों की कमी के कारण अक्सर इन अधिकारियों पर काम का अधिक बोझ पड़ जाता है, जो उनके प्रदर्शन में बाधा डालने का एक और कारण है। इन अधिकारियों से अपेक्षा की गई थी कि वे टीम प्रबंधन, समन्वय, सहयोग द्वारा समस्या समाधान की अवधारणाओं में विश्वास रखते हुए नेतृत्व की भूमिका निभाएंगे। उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे खुद को 'बुद्धिमान और सूचित सामान्यवादी' के रूप में पेश करेंगे। इसके लिए इन अधिकारियों के नियमित अद्यतनीकरण और प्रशिक्षण की आवश्यकता थी। दूसरी ओर, ये अधिकारी अक्सर फॉर्म भरते, कर्मचारियों और कार्यालयों का प्रबंधन करते, राजनीतिक समस्याओं का समाधान करते, लोगों की शिकायतें संभालते आदि पाए जाते हैं। इस तरह वे अपनी बहु-कार्य क्षमता खो रहे हैं और उन्हें अपनी विशेषज्ञता विकसित करने का कोई अवसर नहीं मिल रहा है। कृष्णन और सोमनाथन द्वारा 2017 में तैयार किया गया और ब्यूरोक्रेटिक इनडिसीजन एंड रिस्क एवेरशन इन इंडिया (https://www.idfcinstitute.org/knowledge/publications/working-and-briefing-papers/) में प्रकाशित भारत का नक्शा नीचे दिया गया है, जो स्तर को दर्शाता है। भारत के कुछ राज्यों में कर्मचारियों की कमी।

इस समस्या को समझने के लिए चुने हुए 50 आईएएस तथा आईपीएस अधिकारियों से दोबारा बातचीत करने पर यह पता लगा कि अधिकारियो में से:

स्वीकार किया	अधिकारियों की संख्या	Percentage
प्रशिक्षण से संतुष्ट अधिकारी	5	10 %
प्रशिक्षण से असंतुष्ट अधिकारी (उन्हें लगता है कि आधुनिक अपराध जैसे साइबर अपराध से डील करने में वे सक्षम नहीं हैं)	45	90 %

कर्मचारियों की कमी का स्तर (उच्च से निम्न)

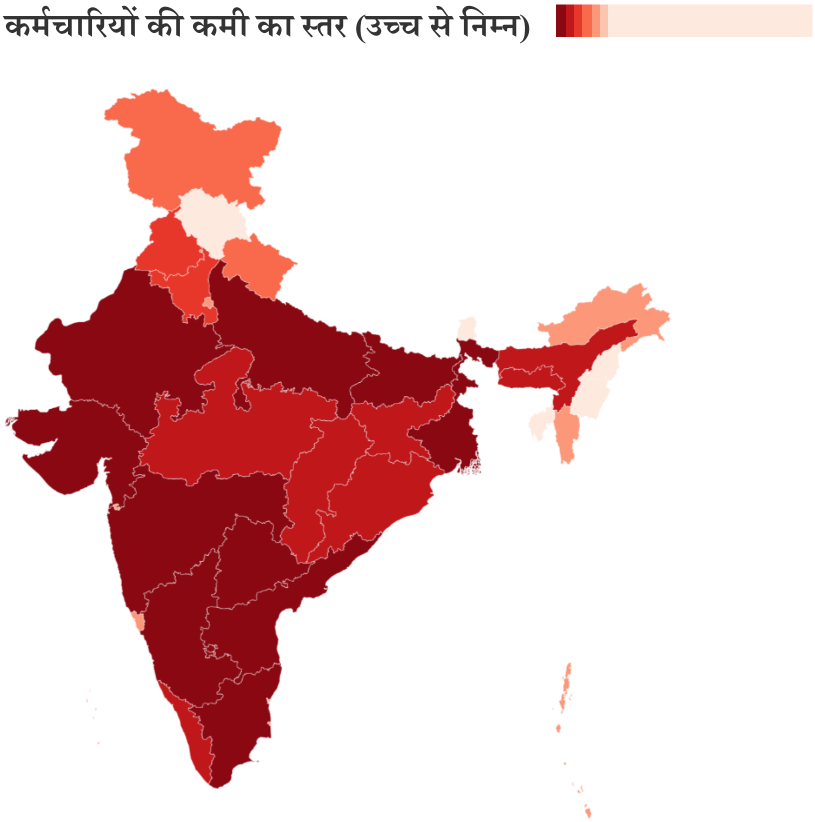

(Source: Bureaucratic Indecision and Risk Aversion in India
https://www.idfcinstitute.org/knowledge/publications/working-and-briefing-papers/)

ऐसे में नीचे उल्लिखित बिंदुओं के अनुरूप प्रशासनिक सेवाओं में सुधार करना आवश्यक हो गया है:

- ➔ उन्हें उद्यमशीलता गुणों से लैस करने के लिए उम्मीदवारों के चयन, भर्ती और प्रशिक्षण प्रक्रिया में सुधार किया जाना चाहिए। एक बार भर्ती होने के बाद, उनकी सेवा वितरण क्षमता और गुणवत्ता में सुधार के लिए उन्हें नियमित रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए और हाल के परिवर्तनों और तकनीकी प्रगति में अद्यतन किया जाना चाहिए।
- ➔ विरोधाभासी नियम अक्सर नौकरशाहों के बीच समस्या समाधान में अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण के बारे में भ्रम पैदा करते हैं जिसके परिणामस्वरूप प्रशासनिक अक्षमता, कार्य पूर्ति में देरी या समन्वय विफलताएं होती हैं।
- ➔ भ्रष्टाचार एक और समस्या है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। **ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल द्वारा 2019 में प्रकाशित भ्रष्टाचार धारणा सूचकांक रिपोर्ट में भारत को 180 देशों में से 80वां स्थान दिया गया।** समस्या खराब प्रबंधन और इन अधिकारियों द्वारा प्रदर्शन और सेवा वितरण की उचित ऑडिटिंग और निगरानी की कमी का लक्षण बन गई है। सरकार ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988, केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003, लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013 और व्हिसल

ब्लोअर संरक्षण अधिनियम, 2014 जैसे कई कदम अपनाए हैं, लेकिन समस्या का समाधान करने में विफल रही। इस दिशा में, भ्रष्टाचार निवारण (संशोधन) अधिनियम, 2018 का पारित होना एक स्वागत योग्य कदम है जिसके द्वारा सरकार ने लोक सेवकों से संबंधित प्रावधानों को फिर से परिभाषित किया है। इसने "रिश्वतखोरी" को सीधा अपराध बना दिया और धारा 13 में "जानबूझकर संवर्धन" पेश किया, जबकि पहले संस्करण में, इरादे को लोक सेवकों द्वारा आपराधिक कदाचार की परिभाषा में शामिल नहीं किया गया था। अब सेवारत और सेवानिवृत्त नौकरशाहों की जांच के लिए पूर्व अनुमति का भी प्रावधान है।

➔ राजनीतिक नेताओं के नियंत्रण और देखरेख में काम करना आसान नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नौकरशाही निर्णय लेने को अक्सर राजनीतिक नेताओं द्वारा महत्व दिया जाता है और उसका समर्थन किया जाता है, लेकिन बहुत अधिक राजनीतिक हस्तक्षेप और निर्णय लेने में स्वतंत्रता की कमी ने नौकरशाहों को राजनीतिक वर्ग के अधीन बना दिया है। इससे उनके प्रदर्शन वितरण की गुणवत्ता और समग्र रूप से राष्ट्र कल्याण के उद्देश्य के प्रति उनकी निष्ठा पर भी असर पड़ रहा है।

समस्या के समाधान हेतु सरकार द्वारा प्रयास

1. **मिशन कर्मयोगी-** भारत सरकार भी हमारी नौकरशाही व्यवस्था में निहित समस्याओं से अवगत है और उनका समाधान करने का प्रयास कर रही है। भारत सरकार द्वारा 2 सितंबर, 2020 को घोषित मिशन कर्मयोगी इस दिशा में एक स्वागत योग्य कदम है। इस कार्यक्रम के तहत, सरकार का उद्देश्य नौकरशाहों को "अधिक रचनात्मक, रचनात्मक, कल्पनाशील, नवीन, सक्रिय, पेशेवर, प्रगतिशील, ऊर्जावान, पारदर्शी और प्रौद्योगिकी सक्षम" बनने के लिए प्रशिक्षित करना है। अंतिम उद्देश्य 'नागरिक केंद्रित सिविल सेवा' बनाना है जो आर्थिक विकास और सार्वजनिक कल्याण के लिए अनुकूल वातावरण बनाने की दिशा में अपना ध्यान और ऊर्जा लगा सके।

   कार्यक्रम की पद्धति: यहां सरकार की चिंता एक क्षमता निर्माण कार्यक्रम शुरू करने की है जिसे एक एकीकृत सरकारी ऑनलाइन प्रशिक्षण या आईजीओटी-कर्मयोगी डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से वितरित किया जाएगा। यह मंच भारतीय राष्ट्रीय लोकाचार में निहित वैश्विक सर्वोत्तम प्रथाओं से तैयार आवश्यक सामग्री भी प्रदान करेगा। यह कार्यक्रम राष्ट्रीय सिविल सेवा क्षमता निर्माण कार्यक्रम (एनपीसीएससीबी) द्वारा चलाया जाएगा, जो व्यक्तिगत, संस्थागत और प्रक्रिया स्तरों पर क्षमता निर्माण तंत्र के व्यापक सुधार को सक्षम करेगा। एनपीसीएससीबी के छह प्रमुख स्तंभ हैं, जो हैं:

   ए) नीति ढांचा

   बी) संस्थागत ढांचा

   ग) योग्यता ढांचा

डी) डिजिटल लर्निंग फ्रेमवर्क आईजीओटी-कर्मयोगी (एकीकृत सरकारी ऑनलाइन प्रशिक्षण कर्मयोगी प्लेटफार्म)

ई) इलेक्ट्रॉनिक मानव संसाधन प्रबंधन (ईएचआरएमएस) और

च) निगरानी और मूल्यांकन ढांचा।

इस मिशन का सकारात्मक प्रभाव यह है कि इससे नौकरशाहों को निम्न दिशा में बदलने में मदद मिलेगी:

➔ सबसे पहले, अपने संचालन में 'नियम आधारित के बजाय भूमिका आधारित' होना;

➔ दूसरे, यह न केवल डोमेन प्रशिक्षण देने पर बल्कि उनकी कार्यात्मक और व्यवहारिक दक्षताओं को विकसित करने के लिए प्रशिक्षण पर भी ध्यान केंद्रित करेगा;

➔ पूरे देश में समान या समान प्रशिक्षण मानक विकसित करना;

➔ भविष्य के लिए तैयार सिविल सेवकों का निर्माण करना जो 'नए भारत के विजन' को वास्तविकता में बदलने में सक्षम हों।

➔ अब फोकस 'ऑफ-साइट लर्निंग' के बजाय 'ऑन साइट लर्निंग' को बढ़ावा देने पर होगा।

2. भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था को डिजिटल बनाना

भारत सरकार तथा भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था नागरिकों के साथ अपने इंटरफेस का उत्तरोत्तर डिजिटलीकरण कर रही है और इससे लाइसेंस, प्रमाण पत्र प्राप्त करना, करों का भुगतान करना और शासन के परिणामों में दक्षता लाना आसान हो गया है। सरकार ने केंद्रीय रूप से प्रबंधित बाज़ार - सरकारी ई-मार्केटप्लेस (GeM) बनाकर वस्तुओं और सेवाओं की खरीद को डिजिटल बना दिया है, जो 14.2 अरब अमेरिकी डॉलर के वार्षिक सकल व्यापारिक मूल्य के साथ सबसे बड़े खरीद प्लेटफार्मों में से एक है। हाल ही में इंटरनेट के बढ़ते उपयोग या हम कह सकते हैं कि इंटरनेट की बढ़ती पहुंच के कारण, सेवाओं के डिजिटलीकरण ने शासन को लोगों की पहुंच के करीब ला दिया है।
यह नीचे दिए गए आंकड़ों से स्पष्ट है:

डिजिटल इंडिया डेटा	
भारत की जनसंख्या	1.44 billion in Jan 2024
इंटरनेट उपयोगकर्ता	751.5 million
2023 से इंटरनेट उपयोगकर्ताओं में वृद्धि	19 million which is about increase of 2.6 per cent in a year

भारत की इंटरनेट प्रवेश दर (India's Internet Penetration Rate)	52.4 per cent
सक्रिय सेल्युलर मोबाइल कनेक्शन	1.12 billion (which is 78.0 per cent of total population
सोशल मीडिया उपयोगकर्ता	42.0 million (which is 32.2 per cent of total population)

Source: https://datareportal.com/reports/digital-2024-india

इस तरह शासन को लोगों की पहुंच में लाना और भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही की समस्या से निपटना आसान हो गया है। ब्रॉडबैंड उपयोग में अभूतपूर्व वृद्धि से सरकार को अपना उद्देश्य हासिल करने में मदद मिली है। आज, **पिछले पांच वर्षों में मोबाइल ब्रॉडबैंड (एमबीबी) ग्राहक 345 मिलियन से बढ़कर 765 मिलियन हो गए** हैं। पिछले पांच **वर्षों में प्रति उपयोगकर्ता डेटा ट्रैफ़िक में 31% की वृद्धि देखी गई है जो दिसंबर 2021 तक 17GB तक पहुंच गया है। परिणामस्वरूप, 2017 से 2021 तक भारत का डेटा ट्रैफ़िक उपयोग 53% की सीएजीआर के साथ दुनिया में सबसे अधिक था।** भारत की Gen Z प्रतिदिन औसतन 8 घंटे ऑनलाइन बिताती है। स्मार्टफोन अपनाने की अगली लहर ग्रामीण भारत में हो रही है। अब उम्मीद है कि 2030 तक भारत में ऑनलाइन शॉपिंग करने वालों की संख्या 500 से 600 मिलियन के बीच दूसरे स्थान पर होगी। इससे शासन ग्रामीण लोगों तक भी पहुंच सकेगा।

3. उमंग ऐप (UMANG App)- शासन को लोगों की पहुंच में लाना

इस संबंध में उमंग (यूनिफाइड मोबाइल एप्लीकेशन फॉर न्यू-एज गवर्नेंस) एक अच्छी पहल है। यह ऐप भारत में मोबाइल गवर्नेंस को चलाने के लिए इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY) और राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस डिवीजन (NeGD) द्वारा विकसित किया गया है।

उमंग सभी भारतीय नागरिकों को केंद्र से लेकर स्थानीय सरकारी निकायों तक अखिल भारतीय ई-गवर्नेंस सेवाओं तक पहुंचने के लिए एक एकल मंच प्रदान करता है।

यह ऐप पुलिस और कानूनी, सार्वजनिक शिकायत, स्वास्थ्य और कल्याण, ई-जिला सेवाएं, शिक्षा, कौशल और रोजगार, सामाजिक सेवाएं और पेंशन, मेरा राशन, उपयोगिता और बिल भुगतान और कई अन्य से संबंधित सेवाएं प्रदान करता है। नीचे बताए गए आंकड़ों के अनुसार इस ऐप के बढ़ते उपयोग से यह स्पष्ट होता है कि लोगों को इस ऐप के माध्यम से नौकरशाहों से निर्धारित समय सीमा के भीतर सेवाएँ मिल रही हैं।

User registration	
Year	**No. of users (in crore)**
2018	**0.99**
2019	**1.75**
2020	**2.57**
2021	**4.09**
2022	**5.00**
2023	**6.00**
2024	**6.31**

Source: https://web.umang.gov.in/landing/dashboard

Transactions	
Year	
2018	**31.59**
2019	**77.33**
2020	**129.94**
2021	**218.59**
2022	**332.66**
2023	**402.43**
2024	**418.31**

Source: https://web.umang.gov.in/landing/dashboard

निष्कर्ष:

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि नौकरशाहों की उनके खराब प्रदर्शन और कमजोर सेवा वितरण तंत्र के लिए आलोचना की गई है और उसी को सुधारने के लिए सरकार नई योजनाएं शुरू कर रही है और पुराने पैटर्न में सुधार कर रही है। इस सब में हम यह भूल जाते हैं कि जब तक राजनीतिक हस्तक्षेप पर नियंत्रण और निगरानी नहीं होगी, तब तक हम नौकरशाहों से बेहतर परिणाम की उम्मीद नहीं कर सकते। इस दिशा में मिशन कर्मयोगी एक स्वागत योग्य कदम है, लेकिन अन्य समस्याओं पर भी कुछ विचार करने की आवश्यकता है जो इन अधिकारियों द्वारा सेवा वितरण में बाधा के रूप में कार्य कर रही हैं।

संदर्भ सूची

1. *A*lbritton, Robert B., (2009), “Are Democracy and Good Governance Always Compatible: Competing Values in the Thai Political Arena, A Comarative Survey of Democracy, Governance and Development”, *Asian Barometer*.
2. Araujo, et. al. (2001). “Improving Public Service Delivery: The Crossroads between NPM and Traditional Bureaucracy”, *Public Administration,* Volume 79, No. 4.
3. Bhattacharya, Mohit, (2001), *New Horizons of Public Administration*, Jawahar Publishers, New Delhi.
4. Bureaucracy in the 21st Century India: Present status and concern, www.academis.edu/37446472/.
5. Cox, Richard, (2003), “Running Government Like a Business: Implications for Public Administration Theory and Practice”, in Bidyut Chakrabarty and Mohit Bhattacharya, (eds.), *Public Administration: A Reader*, Oxford University Press, New Delhi.
6. Denhardt, R.B., et al, (2011), *The New Public Service: Serving, Not Steering,* M.E.Sharpe, New York.
7. Farazmand, Ali, (2012), “The Future of Public Administration: Challenges and Opportunities: A Critical Perspective”, in *Administration and Society*, Volume 44(4) Sage, New Delhi.
8. H. George Frederickson, et al.,(2012), *The Public Administration Theory Primer,* Westview Press: Colorado.
9. Hood, Christopher, (1996), “Exploring Variations in Public Management Reform of the 1980s”, in H.A.G.M. Bekke, J.L. Perry and T.A.J. Toonen, (eds,), *Civil Service Systems in Comparative Perspective*, Indiana University Press, Bloomington.
10. Hood, Christopher, (1995), “Contemporary Public Management: A New Global Paradigm?”, *Public Policy and Administration* 10(2).
11. Hutchinson, J., (2002), *Engendering Democracy. Administrative Theory & Praxis*, 24(4).
12. https://www.mha.gov.in/ MHA1/UTTransferPosting.html
13. **https://datareportal.com/reports/digital-2024-india**
14. https://web.umang.gov.in/landing/dashboard

15. Indian Bureaucracy Rated worst in Asia, says a Political & Economic Risk Consultancy Report, https://economictimes.indiatimes.com/news/
16. Indian Civil Service Survey (DARPG, 2010), https://darpg.gov.in/
17. Medury Uma, (2010), *Public Administration in the Globalisation Era: The New Public Management Perspective*, Orient BlackSwan, New Delhi.
18. Moran, M., et al, (2008), *The Oxford Handbook of Public Policy*, Oxford University Press, Oxford.
19. National Programme for Civil Services and Capacity Building (NPCSCB) -Mission Karmayogi, https://dopt.gov.in/schemes/
20. Singh, Balmiki Prasad, *The Challenge of Good Governance in India: Need for Innovative Approaches*, www.rajbhavansikkim.gov.in/ Download/103461.pdfý.
21. Singh, Vikram, (2012), *Public Administration Dictionary,* Tata McGraw Hill, New Delhi,
22. Sneha P, et al, (2021, April 13) Bureaucratic Indecision and Risk Aversion in India, https: www.idfcinstitute.org/.

अध्याय-3

सामाजिक विज्ञानों के लिए हिंदी में तकनीकी शब्दावली : संदर्भ और संभावनाएँ

गिरीश्वर मिश्र
पूर्व कुलपति,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

ऋषभ कुमार मिश्र
सहायक प्राध्यापक, शिक्षा संकाय,
बी.आर.अम्बेडकर विश्वविद्यालय,
लोधी रोड परिसर, दिल्ली

प्राचीन काल से भारत की प्रसिद्धि ज्ञान की दृष्टि से एक समृद्ध परंपरा वाले देश के रूप में रही है। काल क्रम में ब्रिटेन के उपनिवेशवादी शासकों द्वारा शिक्षा की एक पराई व्यवस्था दुराग्रहपूर्वक रोपी गई। वे यूरोपीय विश्वदृष्टि, भाषा एवं चिंतन-शैली तथा ज्ञान-विज्ञान को श्रेष्ठ मान कर उसे स्थापित करते हुए (अपनी दृष्टि में असभ्य!) भारतीय समाज और मानस को शिक्षित और दीक्षित करना चाहते थे। अन्य कारणों से उन्हें अपने इस लक्ष्य में सफलता भी प्राप्त हुई और भारतीय शिक्षा के मूल कलेवर का अंग्रेज़ी ढाँचे में काया-कल्प हो गया। परिणामतः भारतीय मानस भी बदलने लगा (मिश्रा, 2017)। लगभग दो सदियों के अंग्रेज़ी उपनिवेश के आधिपत्य के दौर में शिक्षा और ज्ञान की दृष्टि से अवनति हुई। शिक्षा के रास्ते हो रहे मानसिक औपनिवेशीकरण के प्रति सचेत होना दीर्घ और जटिल प्रक्रिया है। मानसिक वि-औपनिवेशीकरण (Decolonization) के प्रथम चरण के रूप में भारतीय भाषाओं को समर्थ बनाने और उसके माध्यम से आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के शिक्षण एवं शोध पर विचार करना आरंभ स्वतंत्रता मिलने के पहले ही शुरू कर दिया गया था। स्वतंत्रता से पूर्व शिक्षा के लिए जो भी प्रयत्न हुए, उनमें भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा सिद्धांतत: सर्वोपरि और सर्वस्वीकृत थी और काशी विद्यापीठ, शांति निकेतन और गुजरात विद्यापीठ जैसी कई संस्थाएँ भी स्थापित हुई। इन संस्थाओं में राष्ट्रीय शिक्षा के जो प्रयत्न किए गए उनका एक प्रमुख आयाम भारतीय समाज और संस्कृति की भारतीय दृष्टिकोण से व्याख्या करना भी सम्मिलित था, जिससे दीर्घकाल में समाज विज्ञान के एक भारतीय परिप्रेक्ष्य विकसित हो सके।

औपनिवेशिक ढाँचे का दवाब और स्वतंत्रोत्तर भारत में शिक्षा

वर्ष 1947 में स्वतंत्र होने के बाद के सात दशकों में भारत राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न हुआ। इस प्रक्रिया में समकालीन संदर्भ में 'आधुनिकता' के मूल्यों को स्थापित करने और इनकी सहायता से उन्नति करने का निश्चय किया गया (मिश्रा और मिश्रा, 2018, पाठक, 2002)। इस दृष्टि से शिक्षा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण माना गया। स्वतंत्र भारत में शिक्षा की रीति-नीति को देखें तो प्रकट होता है कि वैज्ञानिक अभिवृत्ति, आलोचनात्मक चिंतन, और सृजनात्मक समस्या-समाधान जैसी बौद्धिक क्षमताओं से संपन्न विवेकवान नागरिकों के विकास का दायित्व औपचारिक शिक्षा को सौंप दिया गया (बावेजा, 2019)। इस बीच औपनिवेशिक ढाँचे को अपनाने का दबाव भी लगातार बना रहा और थोड़े बहुत बदलाव के साथ उसी ढाँचे में बंध कर शिक्षा के आयोजन का काम-काज चलता रहा। एक ओर शिक्षा के भाषायी माध्यम के रूप में अंग्रेज़ी का वर्चस्व बना रहा, दूसरी ओर उच्च शिक्षा

के स्तर पर शिक्षण और शोध के लिए यूरो-अमेरिकन दृष्टि को व्यापक स्वीकृति मिली। इस दौर में उभरते भारतीय विद्वानों के लिए पाश्चात्य सहकर्मियों और प्रकाशन संस्थानों की स्वीकृति उपलब्धि का सूचक बन गई (अलवारेस, 2011)। लोकप्रिय जनसंचार माध्यमों में भी यही दृष्टि व्याप्त हुई। परिणामतः संस्कृति, भाषा और ज्ञान के बीच के आपसी रिश्ते अस्त-व्यस्त होते गए। उभरते भारत के समाज को समझने और समझाने के लिए हमने जिस तरह के शब्द गढ़े, वे एक खास और सीमित विश्वदृष्टि वाले थे। इनमें संवाद की संभावना और लोक की ग्राह्यता के स्थान पर छद्म भौतिकता और शास्त्रीयता हावी थी। इस कारण भारतीय भाषाओं में भारतीय समाज और उसके जीवन की चर्चा करना दुरूह बौद्धिक गतिविधि माना जाने लगा। भारतीय भाषाओं को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लिए सक्षम बनाने की गम्भीर चुनौती भी उपस्थित हुई।

तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली: संचार और संवाद का मानकीकरण

वर्तमान में जिसे वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली कहा जाता है, वह प्रायः अंग्रेज़ी में निबद्ध तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली से जुड़ी हुई है। इसका प्रयोजन अनुवाद कार्य को सहज बनाना और शब्द-सम्पदा को समृद्ध करना है। अंग्रेज़ी में उपलब्ध ज्ञान को भी अपने ढंग से आत्मसात् करने के लिए भारतीय भाषा में शब्दावली और पाठ्य सामग्री की ज़रूरत बनी रहती है। उल्लेख्य है कि तकनीकी शब्दावली तकनीकी ज्ञान या विद्या से तो जुड़ी होती ही है उसका आशय किसी भी विषय या अनुशासन के उन मूल शास्त्रीय पदों से भी है, जो सामान्य भाषा या लोक भाषा में दैनन्दिन प्रयुक्त नहीं होते हैं। दोनों ही संदर्भों में तकनीकी पदों के उपयोग का मूल उद्देश्य संचार और संवाद का मानकीकरण होता है ताकि प्रयुक्त शब्द बिना किसी अतिरिक्त, न्यून या अवांछित अर्थ के प्रयुक्त हो सकें। अतः तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली के लिए यह अभीष्ट है कि उसका अर्थ परिनिष्ठित हो। इस कारण इनके उपयोग में साहित्य जैसी सृजनात्मक वैविध्य जैसी छूट नहीं ली जा सकती है।

अकादमिक लेखन एवं शोध-कार्य में आज तक जिस तकनीकी शब्दावली का प्रयोग होता रहा है, वह बहुलांश में भिन्न संस्कृति एवं संदर्भ से आयातित है, जिसका मूल अभारतीय (यूरोपीय) है। चूँकि यह शब्दावली देशज या यहाँ की स्थानीय उपज नहीं है इसलिए उसे अंगीकार करना सरल नहीं होता है (मिश्रा और गर्गन, 1993)। अंग्रेजी ही उसका मूल भाषिक आवास होता है। इसके मूल शब्दों का यथासंभव शुद्ध अनुवाद भारतीय भाषाओं में करने का प्रयास किया जाता रहा है जो संस्कृतनिष्ठ, कृत्रिम और क्लिष्ट घोषित किया जाता रहा है। अंग्रेज़ी तक अभी भी लगभग बीस प्रतिशत भारतीयों की ही पहुँच है। अतः हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में पाठ्य सामग्री और शोध-लेखन के लिए देशज तथा देश में प्रयुक्त शब्दावली आधारभूत आवश्यकता बनी हुई है। ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों में तकनीकी पदावली का भारतीय भाषाओं में उपलब्ध होना उन अधिकांश भारतवासियों की अनिवार्य आवश्यकता है जिनकी मातृभाषा अंग्रेज़ी नहीं हैं या कि जो उसमें पारंगत नहीं हैं। चूँकि भारतीय संविधान शिक्षा को मौलिक अधिकारों की श्रेणी में रखता है और शिक्षा के लिए भाषा ही मुख्य उपाय है अस्तु विभिन्न भारतीय भाषाओं को तकनीकी पदावली की दृष्टि से समृद्ध करना अनिवार्यता है। इससे भाषाओं के उपयोग के अवसर बढ़ेंगे भाषाओं को भी संरक्षण मिलेगा। भारत की भाषायी विविधता तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली के विकास में सहयोग करेगी। भारत भाषाओं की प्रयोगशाला है। इस प्रयोगशाला में नए शब्दों का गढ़न-चलन स्वाभाविक रूप से होता

रहता है। भारतीय भाषाओं की इस प्रवृत्ति का उपयोग करते हुए हम औपचारिक कार्य-व्यापार में इनका चलन बढ़ा सकते हैं। दूसरी ओर अंतरराष्ट्रीय सहयोग के क्रम में तकनीकी शब्दावली के उपयोग के नए आयाम भी उपस्थित हो रहे हैं जिन्हें ध्यान में रख कर तकनीकी शब्दावली निरंतर विकसित करनी होगी। भाषा का प्रयोग लोक-व्यवहार से जुड़ी परिघटना है। भाषा का प्रवाह और जीवन उसके अधिकाधिक उपयोग पर टिका होता है। अतः हमें तकनीकी शब्दावली के सृजन और अनुकूलन के साथ उनका प्रचार-प्रसार भी करना चाहिए।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग का प्रयास

स्वतंत्रता के बाद इस प्रयत्न को संस्थानीकृत करते हुए औपनिवेशिक प्रभाव को कम करने के प्रयास के रूप में केंद्रीय स्तर पर वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो और राजभाषा विभाग जैसी संस्थाओं का विकास किया गया। 1961 में गठित शब्दावली आयोग का मूल उद्देश्य भारतीय भाषाओं में तकनीकी शब्दों का विकास कराना था। इसके अलावा भारतीय भाषाओं में अध्ययन-सामग्री के विकास के लिए अलग-अलग राज्यों में पाठ्य-पुस्तक विकास बोर्ड भी बनाए गए। हिंदी प्रदेशों में हिंदी ग्रंथ अकादमियों का भी गठन हुआ। कई स्वायत्त संस्थाओं ने भी इस दिशा में कार्य किया। विश्वविद्यालयों द्वारा भी प्रकाशन किए गए। इन कार्यों के लिए आयोग का सहयोग प्राप्त था। इन सभी प्रयासों का लक्ष्य था कि भारतीय भाषाओं को तकनीकी एवं वैज्ञानिक कार्यों हेतु आत्मनिर्भर और समर्थ बनाया जाए। ज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में देश की भाषाओं में काम किया जाए और मानसिक स्वराज की दिशा में आगे बढ़ा जा सके।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग की वेबसाइट से पता चलता है कि वहां सबसे अधिक कार्य हिंदी सहित संविधान स्वीकृत भारतीय भाषाओं में विभिन्न विषय क्षेत्र से संबंधित विविध प्रकार की शब्दावलियों को विकसित करने का हुआ है। आयोग की वेबसाईट पर वाणिज्य की शब्दावली, आयुर्वेद की शब्दावली, अर्थशास्त्र की शब्दावली और जनसंचार की शब्दावली आदि का विस्तृत संकलन उपलब्ध है। इससे यह जानकारी मिलती है कि अब तक लाखों तकनीकी शब्द निर्मित हो चुके हैं। इसके अलावा ऐसे शब्दकोशों को भी तैयार किया गया जो तीन भाषाओं को जोड़ते हैं। आयोग ने शब्दावली के विकास के लिए कुछ मार्गदर्शी सिद्धांत भी तैयार किए हैं। इन सिद्धांतों को देखने से ज्ञात होता है कि आयोग का उद्देश्य तकनीकी शब्दों को सरल, व्यावहारिक और भारतीय संदर्भों के अनुकूल बनाना है। इन सकारात्मक प्रयत्नों के साथ विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं में तकनीकी शब्दावली के विकास का कार्य जारी है।

आनुभविक ज्ञान और सैद्धांतिकी में अंतराल

उक्त प्रयासों के बाद भी यह चिंताजनक है कि हम तकनीकी शब्दावलियों एवं शब्दकोशों को ज्ञान-सृजन के प्रधान क्षेत्रों (शिक्षण एवं शोध) में सक्रिय और संतोषजनक ढंग से समाविष्ट नहीं कर सके हैं। लाभार्थियों को इनका प्रयोग कृत्रिम और दुरूह जान पड़ता है। इसका कारण यह है कि अंग्रेज़ी प्रधान शोध-स्रोत के रूप में बनी रही और नाना प्रकार से आदर पाती रही। इसके बरअक्स शिक्षा नीतियों द्वारा भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। शिक्षा के अधिकार कानून एवं ऐसे ही दूसरे सकारात्मक हस्तक्षेपों द्वारा औपचारिक शिक्षा का विस्तार

हुआ। परिणामतः विद्यालयों से लेकर उच्च शिक्षा संस्थानों तक शिक्षार्थियों की एक बड़ी संख्या आई जो भारतीय भाषाओं में उच्च शिक्षा के आकांक्षी थे। उनके लिए भाषाई जटिलता एक बाधा का कार्य करने लगी। वे अपनी भाषा में अपने अनुभव को व्यक्त करने में समर्थ थे लेकिन उन्हें मातृ भाषा के नाम पर सामाजिक विज्ञान में जो तकनीकी शब्दावली उपलब्ध कराई जा रही थी, उसमें वे अपने अनुभवों को व्यक्त करने बजाय भाषाई अवबोध की समस्या से जूझने लगे (मिश्रा, 2023। उनके पास अपने परिवेश का अनुभव था लेकिन हम औपचारिक दायरे में उस अनुभव को व्यक्त करने वाली भाषाई क्षमता और भाषाई उपकरण नहीं उपलब्ध हो पा रहे थे। इस असफलता का मुख्य कारण यह था कि जिस भाषा को आनुभविक ज्ञान और सैद्धांतिकी के बीच योजक का कार्य करना था, वह स्वयं अनुवाद की बैसाखी पर लड़खड़ा रही थी। विद्यालय की पाठ्य-पुस्तकों, अकादमिक, प्रोफेशनल एवं अन्य विशेषज्ञता वाले क्षेत्रों में प्रयोग की जाने वाली भाषा का पाठ्यपुस्तकों, शोध आलेखों, निबंधों और कार्यालयी रपटों में प्रयुक्त शब्दावलियों की जाँच की जानी चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि उसका उपयोग करने में क्या कठिनाइयाँ हैं। इसी तरह कक्षा में शिक्षक-विद्यार्थी संवाद, औपचारिक साक्षात्कार, व्याख्यान, अकादमिक प्रदर्शनियों, संगोष्ठियों की भाषा में भी इन्हें सुना समझा जा सकता है।

साक्षरता के प्रथम स्तर विद्यालय के आरंभिक वर्षों से लेकर उच्चतम स्तर अर्थात् शोध तक तकनीकी शब्दावली ज्ञान सृजन और संप्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसका मूल कार्य परिघटनाओं, अनुभवों और अवलोकनों को संप्रत्ययीकृत करना होता है। दुर्भाग्य से इस मौलिक मार्ग को छोड़कर भारतीय संदर्भ में इसका मुख्य प्रयोजन अनुवाद कार्य हो गया- सरकारी दस्तावेजों के अनुवाद से लेकर विशेषज्ञों के भाषण का अनुवाद हो या अन्य सभी क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद। हम तकनीकी शब्दावली की भूमिका को लगातार सीमित और उसकी रचना को कृत्रिम करते गए। यह अपेक्षित था कि हम भारतीय सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए विद्यार्थियों और शोधार्थियों को सोचने-विचारने की मौलिक दृष्टि देते और उनमें वैचारिक सम्प्रेषण की सामर्थ्य पैदा करते लेकिन हमने उन्हें सीमित शब्दावली में यूरो-अमेरिकन नकल तैयार करने वाला बना दिया। पश्चिमी विचार कोटियों और श्रेणियों के समानांतर या उन्हीं में काट-पीट कर व्यवस्थित करने की प्रवृत्ति चल पड़ी। शोध सिर्फ़ प्रकाशन, पुस्तक का अंश और आलमारी की शोभा बनाता गया। समाज और सामाजिक यथार्थ से उसका आदान-प्रदान वाला रिश्ता दुर्बल होता गया।

बदलता संदर्भ और उभरती संभावनाएं

पिछले कुछ दशकों में हमारे उच्च शिक्षा संस्थानों की अकादमिक संस्कृति में कुछ सकारात्मक प्रवृत्तियां पनपी हैं। आरम्भ में सामाजिक विज्ञान मुख्यतः यूरो-अमेरिकी प्रधानता वाला था लेकिन 1980-90 के दशक के बाद सामाजिक विज्ञानों में देशीकरण (indigenization) की धारा भी प्रवर्तित हुई जिसके परिणामस्वरुप सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु और शोध के साथ-साथ उसकी भाषा-तकनीकी शब्दावली का भी एक हद तक भारतीयकरण शुरू हुआ (मिश्रा और मोहंती, 2002)। इस संदर्भ में बदलाव का एक महत्वपूर्ण पक्ष शिक्षा का प्रसार है। उच्च शिक्षा की ओर ऐसा युवा वर्ग आया है जो अंग्रेजी सहित अपनी मातृभाषा में पढ़ने-लिखने और काम करने में समर्थ है। इससे भी तकनीकी शब्दावली के विकास का कार्य सुगम हुआ। हमारे शिक्षित और पेशेवर युवा तकनीकी शब्दों के

लिए अपनी मातृभाषा के शब्दों का चयन कर रहे हैं। वे नए शब्दों को भी गढ़ रहे हैं। व्यापक स्तर पर भारतीय भाषाओं में पाठ्यपुस्तक लेखन ने भी तकनीकी शब्दावली के चलन बढ़ावा दिया है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के प्रसार के साथ-साथ हमारे पास अब गूगल ट्रांसलेटर जैसे विकल्प भी उपस्थिति हो गए जो यथासंभव शुद्ध अनुवाद देने का वादा करने लगे हैं। इस बदलते संदर्भ में हमें उन संभावनाओं को खोजना है जो हमें भारतीय भाषाएं उपलब्ध कराती हैं। तथापि हमें अपनी भाषा को अनुवाद के सहारे नहीं बल्कि चिंतन और ज्ञानसृजन की मौलिकता के साथ जोड़कर तकनीकी शब्दावली का विकास करना होगा। इसका आशय अंग्रेजी की शब्दावली का अनुवाद मात्र नहीं होगा । तकनीकी का अर्थ शब्द को कठिन बनाकर रोजमर्रा के चलन से दूर अकादमिक और कार्यालयी सीमाओं में बांधना नहीं हो सकता। यह ध्यातव्य है कि पढ़ा-लिखा समुदाय एक खास ढंग से बातचीत करता है। इस खास तरह की संप्रेषण शैली से वह अपनी शास्त्रीयता को लोक से अलग करता है। जबकि लोक की शब्द-संपदा हमारे लिए एक नई संभावना लेकर उपस्थित होती है। हमें तकनीकी शब्दावली को शास्त्र और लोक दोनों से समृद्ध करना होगा। इसके लिए हमें ध्यान रखना होगा कि हमारी भाषा दुरूह होने के बजाय संप्रेषणीय हो। वह कठिन शब्दों और लंबे वाक्यांशों में बंधकर बोझिल न बने। इसके लिए हमें तकनीकी पदावली से युक्त लेखन को संक्षिप्त, सटीक और सारगर्भित बनाने पर बल देना होगा।

भारतीय संदर्भ में सामाजिक विज्ञान के तकनीकी शब्दों के दो स्रोत हैं। पहली भारतीय मूल संदर्भ से जुड़ी तकनीकी शब्दावली और दूसरी अन्य स्रोतों में प्राप्त तकनीकी शब्द। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय समाज विज्ञान ने अपनी स्वदेशी दृष्टि के विकास की दिशा में आगे बढ़ा है जिससे प्रथम वर्ग की तकनीकी शब्दावलियां जो भारत और भारतीयता के अर्थ को संप्रेषित करती हैं, उनका चलन बढ़ा है। इसके दो निहितार्थ हैं। प्रथम, हिंदी में मौलिक तकनीकी शब्दावली का विकास ज्ञान के विऔपनिवेशीकरण को दर्शाता है। द्वितीय, वह हिंदी की अर्थग्राह्यता और समावेशन की प्रवृत्ति को भी इंगित करता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में 'क्रिटिकल सिटीजन' की अवधारणा आई। आरंभ में उसका अनुवाद करते हुए 'आलोचनात्मक नागरिक' कहा गया। भारतीय दृष्टि से इसकी उपयुक्त हिंदी 'विवेकवान नागरिक' होगा। यहां विवेववान होने का अर्थ पाश्चात्य दृष्टि से नहीं स्थापित हो सकता। इसके लिए हमें भारतीय संदर्भ और संस्कृति को संज्ञान में लेना होगा। इस तरह से तकनीकी शब्दावली को गढ़कर हम केवल शब्दपूर्ति का कार्य मात्र नहीं कर रहे हैं बल्कि इन पदावलियों की संदर्भसम्मत तकनीकी व्याख्या द्वारा नए ज्ञान का सृजन कर रहे हैं। यह ज्ञान संस्कृति आबद्ध है और हमारे मौलिक चिंतन को दिशा देने वाला है। इसके समानांतर यह भी अवलोकनीय है कि पिछले तीन दशकों में भारतीय समाज विज्ञानों ने अपने लिए नई शब्दावली को गढ़ा है। यह शब्दावली मूलतः भारतीय भाषाओं में ही है। इन्हें भी हमें तकनीकी शब्दावली के कोशों में स्थान देने की आवश्यकता है। भारतीय समाज वैज्ञानिकों द्वारा देशज समाज विज्ञान का जो विकास हो रहा है, उसके आधार पर हिंदी की क्षेत्रीय बोलियां अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द लेकर तकनीकी शब्दकोश को समृद्ध किया जा सकता है। लोक प्रचलित शब्दावली भारतीय संस्कृति में व्याप्त अनुभवों और विचारों का समन्वय होती है। इसी तरह शास्त्रों और अन्य भाषाओं से भी संदर्भ और प्रसंगानुकूल शब्दों का चयन कर उन्हें वर्तमान संदर्भों में स्थापित किया जा सकता है। यह कार्य विवेकानंद, गांधी, टैगोर और विनोबा जैसे लोकचिंतकों ने किया भी है। इन विद्वानों ने मूल भारतीय तकनीकी शब्दावली को अकादमिक विमर्शों के अनुरूप गढ़ा और स्थापित किया है।

पिछले कुछ समय में सूचना प्रौद्योगिकी की प्रगति और विस्तार के साथ अनुवाद और लेखन की दुनिया में क्रांति सी मची है। गूगल अनुवाद का चलन बढ़ा है और अब 'चैट जी पी टी' से नया मोर्चा खुला है। परंतु यह तकनीकी अनुवाद निरापद नहीं है। यह समाज विज्ञान को समृद्ध बनाने के स्थान पर एक खास विश्वदृष्टि पर निर्भर भी बनाता है। उदाहरण के लिए 'कल्चरली रेस्पॉन्सिव पेडागोजी' के लिए गूगल अनुवाद 'सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र' आता है जबकि इसके लिए 'संस्कृति स्पंदित/भावित शिक्षण शास्त्र' अधिक संप्रेषणीय होगा। शिक्षण को शिक्षार्थी केंद्रित बनाने के लिए पश्चिमी ज्ञान पर आधारित निर्माणवाद जैसे शब्द चलन में आए हैं। ये शब्द उपयोगी हैं लेकिन वे ज्ञान-सृजन में सांस्कृतिक संवेदना को समाविष्ट नहीं करते हैं। गांधी और विनोबा ने 'समवाय' शब्द का प्रयोग किया है। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'कोरिलेशन' दिखाता है। सही मायने में यह परस्पर जुड़ाव जो अविभाज्य है, उसको दर्शाता है। यह जुड़ाव ज्ञान और क्रिया का है। इसका सीधा समानार्थी अंग्रेजी में नहीं दिखता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 में बालवाटिका शब्द का उपयोग किया गया है। यह हिंदी का एक शब्द है जो विद्यालयी शिक्षा के आरंभिक वर्षों को दर्शाता है। यह मौलिक शब्द अर्थ, संदर्भ और भाव तीनों दृष्टियों से संगत है।

भारत में समाज-विज्ञान के ज्ञानानुशासनों के लिए तकनीकी शब्दावली का विकास एक महत्वपूर्ण अकादमिक उद्यम रहा है। इसमें यूरो-अमेरिकी समाज विज्ञान की शब्दावलियों का अनुवाद किया गया। हमारे पास दो तरीके हैं- संस्कृत से मूल शब्दों को चुनकर उनके सांदर्भिक अनुकूलन किया जाए और गूगल से अनुवाद हो। इसके इतर जनपदीय शब्दावलियों/अन्य भारतीय भाषाओं का उपयोग किया जा सकता है । उदाहरण के लिए 'इलीट' के लिए प्रभु वर्ग, भद्र वर्ग और अभिजन का प्रयोग होता है। ये प्रयोग पर्यायवाची होने के अलावा व्युत्पत्ति और अर्थप्रकाशन की दृष्टि से भिन्न हैं । सस्टेनेबल डेवलेपमेंट के लिए संपोषणीय/टिकाऊ विकास का प्रयोग किया जाता है। भाषा के स्वभाव और प्रकृति को ध्यान में रखकर शाश्वत विकास शब्द का प्रयोग कर सकते हैं। ज्ञान सृजन के लिए तकनीकी शब्दावली में भारतीय लोक और ज्ञान की परंपरा उपयोगी सिद्ध होगी।

मौलिक तकनीकी शब्दावलियों के विकास की आवश्यकता

अब तक की विवेचना से स्पष्ट है कि कृत्रिम निर्माण और संकुचित दृष्टि के कारण अनुवाद आधारित तकनीकी शब्दावलियां दुरूह होती गईं। इनमें अर्थ संप्रेषणीयता की भी समस्या आ गई। ये बाहर से थोपे जैसे लगने लगे। इन्हें हिंदी में लिखने और बोलने पर कृत्रिमता का अहसास होता है। इस रास्ते से निकलकर ज्ञान-सृजन के लिए हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में हिंदी शब्दावली का निर्माण करना उपयोगी होगा। इसके लिए भारतीय ज्ञान परंपरा सहयोगी होगी। शास्त्रीय ज्ञान में पारिभाषिक शब्दों को सहेजने का कार्य भारत में प्राचीन काल से ही होता रहा है। यास्क के 'निघंटु' में इसका आरम्भ देखा जा सकता है। यह प्रयास ऐसी शब्दावली को विकसित करने का उदाहरण है जो शब्दों के अर्थ को संस्कृति स्पंदित बनाता है । जब अपनी भाषा में अपने समाज की परिघटना के लिए तकनीकी शब्द होंगे तभी वे 'एमिक' यानी 'अपनी संस्कृति से उपजे और उसके निकट' लगेंगे। अन्यथा एक अन्य संस्कृति अथवा संदर्भ से शब्द लेकर उसके लिए भारतीय समाज में उदाहरण खोजेंगें। यह उदाहरण सामाजिक यथार्थ का आंशिक या चयनात्मक निरूपण होगा। यही हमारे यहां की परिपाटी रही है। हमें भारतीय भाषाओं और भारतीय प्रज्ञा पर विश्वास करते हुए ज्ञानसृजन के लिए मौलिक तकनीकी शब्दावलियों को निर्मित करना होगा, उन्हें

अकादमिक चलन में स्थापित करना होगा और संप्रेषण के लोकप्रिय माध्यमों के लिए ग्राह्य बनाना होगा। यह भी ध्यान में रखना होगा कि सरल और संप्रेषणीय भाषा ही प्रासंगिक होती है। वह संस्कृति और संदर्भ से निकट होकर अकादमिक और रोजमर्रा के बीच की दूरी को पाटती है। हमें सामाजिक विज्ञान की तकनीकी शब्दावली का विकास करते समय यह संज्ञान में लेना होगा कि इसकी सहायता से होने वाला लिखित और मौखिक संप्रेषण संक्षिप्त, सटीक और आधिकारिक बने। वह आनुभविक और सैद्धांतिक ज्ञान का योजक हो। इनका अनुप्रयोग भाषाई दृष्टि से समझ को सरल बनाए। इस उद्यम का आयाम विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों से लेकर मौलिक शोध प्रबंध लेखन तक विस्तृत है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की संस्तुतियों के आलोक में तैयार हो रही नई सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों से अपेक्षा है कि वे सामाजिक विज्ञान की भाषा को दुरूह बनाने के बजाय भारतीय भाषाओं में मौलिक लेखन द्वारा सरल तकनीकी शब्दावलियों का उपयोग करेंगी। यह नीति भारतीय भाषाओं को एक सशक्त शिक्षणशास्त्रीय माध्यम के रूप में स्थापित करने की संस्तुति करती है। हमारे शिक्षक सामाजिक विज्ञान की कक्षाओं में विद्यार्थियों को उनकी भाषा में उनके अनुभवों को व्यक्त करने का सामर्थ्य देंगे। उच्च शिक्षा एवं शोध के स्तर पर हम सामाजिक ययार्थ की विवेचनाओं के लिए तकनीकी शब्दावली के आयातित अनुवादों के स्थान पर मौलिक एवं संस्कृति से जुड़ी शब्दावलियों का उपयोग करेंगे। इसके लिए भारतीय भाषाओं की शास्त्रीय एवं लोक संपदाओं का भी लाभ उठाना होगा। उसे अंतरानुशासनिक ढंग से सामाजिक विज्ञानों के लिए उपयोगी बनाना होगा। इस पूरे उद्यम से भारतीय भाषाओं की पारस्परिकता और योजक सामर्थ्य के बहुभाषाई फलक को विस्तृत किया जा सकता है। यह विस्तृत फलक ही वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के भारतीयकरण का उर्वर क्षेत्र बनेगा और इस तथ्य को भी संपुष्ट करेगा कि भाषायी अनुप्रयोग की दृष्टि से भारत 'भाषाओं की प्रयोगशाला' है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मिश्रा, जी. (2017). *हिन्दी: भाषा और समाज*. शिल्पायन प्रकाशन
2. मिश्रा, जी. और मोहंती, ए.के. (2002). *पर्सपेक्टिवस् ऑन इंडिजिनीयस साइकालजी* , कान्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी।
3. मिश्रा, जी. और गर्गन, के.जे. (1993). ऑन द प्लेस ऑफ कल्चर इन साइकालजी , इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइकालजी, 28 (2), 225-243।
4. मिश्रा, जी. और मिश्रा आर . के . (2019). न्यू इंडिया: यूनिवर्सिटीज इन द मिडिल ऑफ इकोनॉमिक डेवेलपमेंट , द मेकिंग ऑफ नोलेज मेकर्स।.
5. वल्जाइनर, जे., लूटसेंको, ए. और ऐंटोनिको, ए. (2019) (सं.). सस्टेनेबल फ्यूचर फॉर हायर एजुकेशन. स्प्रिंगर प्रकाश।
6. पाठक, ए. (2002). *सोशल इंम्प्लीकेशंस ऑफ स्कूलिंग*. रेनबो प्रकाशन।
7. बावेजा, बी. (2018). कल्चर, कागनीशन एंड पेडागोजी . इन गिरीश्वर मिश्र (2018) (सं.) . *साइकालजी: काग्निटिव एंड ईफेक्टिव प्रोसेसस* . ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
8. अलवारेस, सी. (2011). ए क्रिटिक ऑफ यूरोसेंट्रिक सोशल साइंस एंड द क्वेश्च्न ऑफ अल्टर्नेटिव, इकनामिक एंड पालिटिकल वीकली, 46 (22) पृष्ठः 72-81

9. मिश्रा, आर. के . (2023). *विद्यालय में समाज.* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

अध्याय-4

भारत और कार्बन तटस्थत विकास: एक राजनीतिक और आर्थिक विश्लेषण

संजय शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर,
राजनीति और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन विभाग,
पांडिचेरी विश्वविद्यालय

भारत अपने विकास की यात्रा में एक महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़ा है, जहां इसके आर्थिक और तकनीकी विकास की अपार संभावनाएं हैं। चुनौतियों का समाधान करके और अवसरों को अपनाकर, भारत एक समावेशी विकास, तकनीकी प्रगति और उच्च गुणवत्ता परक जीवन सुनिश्चित करने की दिशा में कार्य कर सकता है। परंतु इस विकास की संभावनाओ के साथ ही जलवायु परिवर्तन का वैश्विक प्रभाव बढ़ती चिंता का विषय है। आईपीसीसी और अन्य रिपोर्ट में पाया गया कि हैं कि जलवायु परिवर्तन के प्रभाव एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और इनमें व्यापक स्तर पर फैलने की क्षमता है। उदाहरण के लिए, गर्मी की तरंगें ऊर्जा आपूर्ति को बाधित कर सकती है, बुनियादी ढांचे को नुकसान पहुंचा सकती है और स्वास्थ्य संबंधी खतरे पैदा कर सकती है। इससे सूखे की स्थिति भी बढ़ सकती है और कृषि पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। 2015 में जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते पर हस्ताक्षर के बाद से, जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए वैश्विक दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। इन समझौतों का एक उल्लेखनीय विकास, हरित तकनीक तथा समानता और जलवायु न्याय पर बढ़ा हुआ फोकस है, जिसका उद्देश्य सतत पर्यावरणीय विकास को सुनिश्चित करना है। कार्बन तटस्थत विकास के लिए प्रतिबद्ध है तथा कार्बन तटस्थत विकास हेतु जलवायु परिवर्तन के शमन, अनुकूलन, हरित तकनीक व वितिय सहायता के द्वारा सतत विकास का लक्ष्य रखता है।

जलवायु परिवर्तन वास्तव में मानवता के सामने एक सबसे महत्वपूर्ण वैश्विक पर्यावरणीय मुद्दा है। हमारे जीवन और पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं पर इसका प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी के तापमान को बनाए रखने में ग्रीनहाउस प्रभाव महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, अन्यथा पृथ्वी का तापमान -18^0C तक होकर जम सकता है(मानबे, 2019, पृ. सं 1)। जीवाश्म ईंधन के अत्यधिक प्रयोग करने, औद्योगिकरण, शहरीकरण तथा यातायात के साधनों में वृद्धि आदि जैसी मानवीय गतिविधियाँ ग्रीनहाउस गैसों, विशेष रूप से कार्बन डाइऑक्साइड (CO^2) के उत्सर्जन को बढ़ाती हैं, जो पर्यावरण में अधिक गर्मी को उत्सर्जित करना प्रारंभ कर देती हैं जिसके परिणामस्वरूप ग्लोबल वार्मिंग होती है। इसके कई अन्य प्रतिकूल प्रभाव भी हैं जैसे समुद्र के जल स्तर में वृद्धि, चरम मौसम की घटनाओं व प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि, पारिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तन और मानव स्वास्थ्य के लिए चुनौतियां।

कार्बन तटस्थत विकास की अवधारणा को जलवायु परिवर्तन या वैश्विक ताप को संबोधित करने के एक साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कार्बन तटस्थता तब प्राप्त होती है जब CO^2 की उतनी ही मात्रा विभिन्न तरीकों से हटाई जाती है जितनी वायुमंडल में उत्सर्जित की जाती है। उत्सर्जन को कम करने के अलावा पर्यावरण से

कार्बन को सक्रिय रूप से कम कर, कार्बन तटस्थत विकास की अवधारणा जलवायु परिवर्तन के नियंत्रण के लिए एक शक्तिशाली प्रतिबद्धता प्रदर्शित करती है।

भारत अपने तीव्र औद्योगीकरण और आर्थिक विकास हेतु कुल कार्बन डाइऑक्साइड (CO^2) उत्सर्जन में व्यापक वृद्धि के कारण विश्व के शीर्ष कार्बन उत्सर्जकों में से एक है। इसके विपरीत, भारत प्रति व्यक्ति उत्सर्जन के आधार पर तुलनात्मक रूप से एक निम्न उत्सर्जक देश है (अरोरा व अन्य, 2023)। ऐतिहासिक रूप से, दुनिया के कार्बन उत्सर्जन का एक बड़ा भाग ज्यादातर पश्चिमी समृद्ध देशों से आया है। पिछले कई दशकों में इन देशों के उद्योग और ऊर्जा खपत में कितनी वृद्धि हुई है, इसे ध्यान में रखते हुए, भारत का ऐतिहासिक उत्सर्जन नगण्य रहा है। भारत की जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक प्रगति से ऊर्जा खपत बढ़ रही है, हालांकि प्रति-घर ऊर्जा उपयोग के मामले में भारत अभी भी अन्य देशों से पीछे है। यह असमानता अलग-अलग औद्योगीकरण स्तरों, जीवन स्तर और ऊर्जा दक्षता का ही एक प्रतिबिंब है (बिरोल और कांट, 2022)। कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को कम करने और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए, ऊर्जा, परिवहन, उद्योग और अन्य क्षेत्र जैसे शहरीकरण में देश की नीतियों और अभ्यास को मौलिक रूप से बदलना होगा। सौर, पवन आदि जैसी स्वच्छ ऊर्जा में परिवर्तन, भवनों और विनिर्माण में ऊर्जा दक्षता, कार्बन मूल्य निर्धारण जैसे कार्बन कर आदि को कार्बन तटस्थत विकास के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए नीतियों में शामिल किया जा सकता है (अग्रवाल, 2023)।

भारत में पिछले 20 वर्षों में, सबसे तीव्र गति से आर्थिक वृद्धि हुई है। केंद्रीय बजट में "हरित विकास" नामक एक अलग खंड शामिल है, जो सतत विकास और ऊर्जा संक्रमण के लिए भारत की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। हिंदुस्तान टाइम्स की रिपोर्ट के अनुसार केंद्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने भारत के ऊर्जा परिवर्तन और 2070 तक देश के कार्बन तटस्थत विकास के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए केंद्रीय बजट में ₹35,000 करोड़ प्राथमिक पूंजी निवेश के रूप अलग रखे हैं (नंदी, 2023)। भारतीय हरित विकास की नीति, तकनीकी नवाचार की तीव्र प्रगति और इसके परिणामस्वरूप लागत में कमी सदी के मध्य तक भारत की क्षमता को आकार देती रहेगी। भारतीय नेतृतव ने विभिन्न शिखर सम्मेलनों जैसे के कोप-28, के दौरान यह कहा कि वैश्विक जलवायु कार्रवाई के सफल होने के लिए, पर्याप्त और पारदर्शी अंतर्राष्ट्रीय जलवायु वित्त अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान विकास की नीति में हरित बदलाव और संबंधित तकनीकी आवश्यकताओं के लिए भारत जैसे विकसित देशों को वित्तीय सहायता की आवश्यकता है। इससे पहले, 2 नवंबर, 2021 को ग्लासगो में कोप-26 जलवायु वार्ता के दौरान भी प्रधान मंत्री मोदी जी ने संकेत दिया था कि वैश्विक जलवायु कार्रवाई हेतु 1 ट्रिलियन डॉलर की आवश्यकता होगी जिसे विकसित देश पूरा नहीं कर रहे है (राठी और चौधरी, 2021)।

भारत में कार्बन तटस्थत विकास की रूपरेखा

भारत की कार्बन तटस्थत विकास की महत्वाकांक्षाएं एक विश्लेषण का विषय हैं, लेकिन देश को अपने विकार्बनीकरण लक्ष्य के करीब ले जाने के लिए आवश्यक परिचालन और रणनीतिक उपायों पर ध्यान केंद्रित करना भी महत्वपूर्ण है। पहली पहल उत्सर्जन चरम वर्ष की घोषणा करना महत्वपूर्ण कदम होगा क्योंकि चरम वर्ष के निर्धारण के आधार पर ही तय समय सीमा में नवाचार और तकनीकी सफलताओं को बढ़ावा देकर कार्बन तटस्थत

विकास को सुचारू रूप से प्राप्त किया जा सकेगा(पांडेय, 2021)। भारत एक संघीय राष्ट्र है, इसमे 29 राज्यों और 8 केंद्र शासित प्रदेश है। कार्बन तटस्थत विकास नीति केंद्र सरकार के अधिकार क्षेत्र में है क्योंकि यह एक अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 352 में प्रावधान है कि केंद्र सरकार अपने अंतरराष्ट्रीय संधि के आधार पर राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बनाने में सक्षम है। इसलिए, केंद्र सरकार को नीति आयोग की विशेषज्ञता का उपयोग करके कार्बन तटस्थत विकास के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए एक राज्य स्तरीय सूचकांक बनाने की आवश्यकता है। कार्बन तटस्थत विकास प्रतिस्पर्धी संघवाद का एक महत्वपूर्ण विषय बनना चाहिए, जहां राज्य अधिक विकार्बनीकरण हासिल करने के लिए प्रतिस्पर्धा करेंगे, जैसा कि राज्य एसडीजी सूचकांक, राज्य स्वास्थ्य सूचकांक, राज्यों के ऊर्जा सूचकांक आदि के विषयों में कर रहे हैं (नीति आयोग, 2023)। कार्बन तटस्थत विकास के भविष्य की ओर देश का बदलाव काफी हद तक राज्यों और केंद्र सरकारों के सहयोग पर निर्भर है क्योंकि व राज्य ही स्थानीय स्तर पर राष्ट्रीय नीतियों को लागू करते हैं, जबकि राष्ट्रीय नीतियां और प्रतिबद्धताएं दिशा निर्धारित करती हैं।

कार्बन तटस्थत विकास के लिए नीति निर्धारण

भारत जैसे बड़े देश के लिए नीति बनाना एक जटिल काम है। भारत की जनसंख्या बहुत बड़ी है और यहां विभिन्न सामाजिक-आर्थिक मुद्दे हैं। लगभग 1.3 अरब लोगों की जरूरतों और महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए नीति निर्धारण व्यापक और बहुआयामी होना चाहिए। वर्ष 2008 में, भारत ने जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC) की घोषणा की, जिसका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन से निपटना, पारिस्थितिक स्थिरता में सुधार करना और अनुकूलन और शमन रणनीतियों को प्रोत्साहित करना था। NAPCC को बनाने वाले आठ राष्ट्रीय मिशनों में से प्रत्येक मिशन जलवायु परिवर्तन के संबंध में विकास और स्थिरता के एक अलग पहलू पर केंद्रित है (पीआईबी, 2008)। जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना के तहत आठ कार्यक्रम आरंभ किए गए, i) जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय सौर मिशन जो कि एक राष्ट्रीय सौर मिशन है; ii) विकसित ऊर्जा दक्षता के लिए राष्ट्रीय मिशन iii) सुस्थिर निवास पर राष्ट्रीय मिशन; iv) राष्ट्रीय जल मिशन; v) हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र राष्ट्रीय मिशन; vi) हरित भारत मिशन यह हरित भारत के लिए एक राष्ट्रीय मिशन है; vii) सतत कृषि पर राष्ट्रीय; और viii) राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन रणनीतिक ज्ञान मिशन।

भारत ने जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना के अलावा जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र संघ फ्रेमवर्क कन्वेंशन में अपने अद्यतन राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (NDC) की भी घोषणा की है, जिसके अनुसार भारत 2030 तक गैर-जीवाश्म ईंधन-आधारित ऊर्जा स्रोतों से अपनी स्थापित बिजली क्षमता का आधा हिस्सा प्राप्त करने का लक्ष्य रखता है; भारत 2005 के स्तर से 2030 तक अपने सकल घरेलू उत्पाद की उत्सर्जन तीव्रता को 33 से 35 प्रतिशत तक कम करेगा; और इसके अतिरिक्त भारत 2030 तक अतिरिक्त वन और वृक्ष आवरण के माध्यम से 2.5 से 3 बिलियन टन CO^2 के बराबर अतिरिक्त कार्बन सिंक बनाने का लक्ष्य रखता है। भारत ने कोप -26 के अधिवेशन में 2070 तक **नेट जीरो एमिशन** (NZE) प्राप्त करने के लिए घोषणा भी की है। भारत के हरित विकास की दिशा में प्रयासों के फलस्वरूप वर्ष 2019-20 वित्तीय वर्ष के लिए देश की 40 एमटीओई (मिलियन टन

तेल समतुल्य) ऊर्जा बचत की गई है इससे ज्ञात होता है की ऊर्जा संरक्षण और दक्षता में भारत सही दिशा में अग्रसर है। इस उपलब्धि के परिणामस्वरूप 152,241 करोड़ रुपये की वार्षिक वित्तीय बचत होती है और साथ ही कार्बन डाइऑक्साइड (CO^2) उत्सर्जन में उल्लेखनीय कमी आई है (बीईई, 2023)। औद्योगिक क्षेत्र पर जोर देने के साथ सभी क्षेत्रों में विकार्बनीकरण प्रयासों को आगे बढ़ाने की दिशा में कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग सिस्टम विकसित करने का प्रस्ताव भारत सरकार का एक बड़ा कदम है। कार्बन बाज़ार के द्वारा पब्लिक प्राइवेट पार्ट्नर्शिप के अंतर्गत कार्बन तटस्थत विकास हेतु एक व्यवस्थित बदलाव की अपार संभावना है: (चेटो व अन्य, पृ. सं 29)

केंद्र सरकार ने समय-समय पर कार्बन तटस्थत विकास के अपने उद्देश्य की पुष्टि की है और तेजी से बढ़ती पर्यावरणीय चिंताओं को दूर करने के लिए कई कदम उठाए हैं। जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कुछ महत्वपूर्ण नीतिगत पहल की गई हैं (एमओईएफ व सीसी, 2023)। ऊर्जा दक्षता ब्यूरो (बीईई) द्वारा 2022 में, राष्ट्रीय कार्बन बाजार के संबंध में एक परामर्श दस्तावेज तैयार किया गया था। इसने सुझाव दिया कि राष्ट्रीय कार्बन बाजार को वर्तमान प्रदर्शन, उपलब्धि और व्यापार योजना के साथ एकीकृत किया जाए। ऊर्जा मंत्रालय ने मार्च 2023 में कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग योजना का एक मसौदा जारी किया, जिसमें कार्बन ट्रेडिंग के लिए एक प्रस्तावित रूपरेखा शामिल है, जो 2022 में जारी बीईई परामर्श पत्र से ली गई है। ड्राफ्ट में बीईई के अनुभव को ध्यान में रखते हुए इसे बाजार प्रशासक के रूप में प्रस्तावित किया गया है। इसके अगले कदम के रूप में भारत में "कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग स्कीम-2023" की औपचारिक रूप से घोषणा 28 जून 2023 को की गई थी, इसमें शामिल सभी पक्षों से पहले मार्च 2023 में उपलब्ध कराए गए मसौदे पर हुई प्रतिक्रिया प्राप्त की गई थी। भारत में कार्बन बाजार के लिए एक नियामक ढांचा आधिकारिक सरकारी राजपत्र द्वारा परिभाषित किया गया है (बीईई, 2023)। यह कार्बन बाजार निजी और सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा उत्सर्जन क्रेडिट की मांग के माध्यम से कार्बन न्यूनीकरण के नए अवसर जुटाएगा। एक अच्छी तरह से डिज़ाइन किया गया, प्रतिस्पर्धी कार्बन बाजार तंत्र कम से कम लागत पर जीएचजी उत्सर्जन को कम करने में सक्षम होगा, और भारत जैसी बढ़ती अर्थव्यवस्था में स्वच्छ प्रौद्योगिकियों को तेजी से अपनाने को प्रेरित करेगा।

भारत में कार्बन बाजार के अतिरिक्त दिसंबर 2022 में, इंडियन एनर्जी एक्सचेंज ने इंटरनेशनल कार्बन एक्सचेंज (आईसीएक्स) प्राइवेट लिमिटेड की स्थापना की। यह लिमिटेड प्रतिभागियों के लिए उचित कीमतों पर कार्बन क्रेडिट की खुले बाजार में खरीद और बिक्री की सुविधा प्रदान करेगा। इस प्रकार के कार्यक्रमों को अक्सर उत्सर्जन में कमी के लक्ष्यों को पूरा करने और कंपनियों को कार्बन-न्यून, सतत विकास संचालन पर स्थानंतरित करने के लिए आवश्यक उपकरण के रूप में देखा जाता है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा नॉलेज लेंस के सहयोग से PRANA, या "नेटवर्किंग और विश्लेषण द्वारा वायु-प्रदूषण के विनियमन के लिए पोर्टल" नामक एक व्यापक पोर्टल लॉन्च किया गया है। इसे राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम परियोजनाओं की प्रगति को ट्रैक करने और आकलन करने के लिए सितंबर 2021 में विकसित किया गया था। यह शहर की वायु कार्य योजना कार्यान्वयन की भौतिक और वित्तीय स्थिति पर नज़र रखने में सहायता करता

है। इसके साथ ही यह राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम के तहत वायु गुणवत्ता प्रबंधन प्रयासों पर जानकारी जनमानस तक प्रसारित करता है।

सस्टेनेबल अल्टरनेटिव टुवर्ड्स अफोर्डेबल ट्रांसपोर्टेशन (SATAT) के नाम से जाने जाने वाले कार्यक्रम का उद्देश्य संपीड़ित बायोगैस के उत्पादन के लिए एक संयंत्र स्थापित करना और वाहन ईंधन में उपयोग के लिए इसका व्यावसायीकरण करना है। पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय ने तेल उद्योग में शामिल कई सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों के साथ साझेदारी कर अक्टूबर 2018 में यह योजना शुरू की। इसके साथ ही 1 अप्रैल, 2020 तक, देश ईंधन और ऑटोमोबाइल के लिए BS-IV से BS-VI मानकों तक आगे बढ़ चुका है। दस लाख या उससे अधिक आबादी वाले शहरों में प्रति माह 100,000 लीटर से अधिक पेट्रोल बेचने वाले, और 10 लाख या उससे अधिक आबादी वाले शहरों में प्रति माह 300,000 लीटर से अधिक पेट्रोल बेचने वाले नए और पुराने दोनों पेट्रोल पंपों पर अनिवार्य वाष्प रिकवरी सिस्टम (वीआरएस) की स्थापना भी की गई है (चकार्बरती, 2022)।

इसके अतिरिक्त, एक महत्वपूर्ण पहल ट्रीज़ आउटसाइड फ़ॉरेस्ट इन इंडिया कार्यक्रम है, जिसे पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा 8 सितंबर 2022 को अमेरिकी अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी (USAID) के सहयोग से शुरू किया गया था। भारत के सात राज्यों - आंध्र प्रदेश, असम, हरियाणा, ओडिशा, राजस्थान, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश में - ट्रीज़ आउटसाइड फ़ॉरेस्ट इन इंडिया कार्यक्रम को प्रशासित करने का उद्देश्य है। पाँच वर्षों में $25 मिलियन की पर्याप्त वित्तीय प्रतिबद्धता के साथ, यह कार्यक्रम कार्बन पृथक्करण, ग्रामीण आबादी के जीवन स्तर को बेहतर बनाने और पर्यावरणीय लाभों पर केंद्रित है। इन राज्यों की भौगोलिक और जैविक विविधता के कारण यह कार्यक्रम इन राज्यों की विभिन्न भोगोलिक इकाइयों में लागू करने के लिए उपयुक्त है।

शहरीकरण सकल घरेलू उत्पाद में प्रमुख योगदानकर्ता हैं और वैश्विक अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक हैं (यूएनईपी 2022)। अपने विशाल बुनियादी ढांचे, नवाचार और मानव पूंजी के कारण, शहरों को अक्सर आर्थिक इंजन के रूप में जाना जाता है। शहरीकरण से आर्थिक उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि होती है। विश्व स्तर पर, शहर दुनिया की जीडीपी में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। भारत में शीर्ष दस महानगरीय अर्थव्यवस्थाओं की कुल जीडीपी जर्मनी और जापान जैसे पूरे देशों की जीडीपी से अधिक है (फ्लोरिडा, 2017)। शहरों में कार्बन तटस्थत विकास हासिल करने के लिए शहरों की योजना, विकास और विनियमन के तरीके में बुनियादी बदलाव आवश्यक है। शहरी नियोजन और डिजाइन में कार्बन उत्सर्जन में कमी को प्राथमिकता देना शहरों के सतत विकास के लिए महत्वपूर्ण है (गील्स एट अल., 2017, पृ. सं . 1-4)। संयुक्त राष्ट्र संघ फ्रेमवर्क कन्वेन्शन ऑन क्लाईमेट चेंज वैश्विक 'रेस टू जीरो' अभियान का नेतृत्व कर रहा है, जिसका उद्देश्य निगमों, शहरों और अन्य हितधारकों को शुद्ध-शून्य उत्सर्जन प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्धता बनाने के लिए प्रेरित करना है। दुनिया भर के लगभग 1000 शहर पहले ही इस परिवर्तन के लिए अपनी इच्छा दिखा चुके हैं। यूएन हैबिटेट रिपोर्ट इस बात पर जोर देती है कि शहरों में पाई जाने वाली विशिष्ट परिस्थितियों और संसाधनों के अनुसार जलवायु कार्य योजनाओं को संशोधित करना कितना महत्वपूर्ण है। (यूएन हैबिटेट 2022)। कार्बन तटस्थत विकास प्राप्त करने और जलवायु परिवर्तन से निपटने के वैश्विक प्रयास को आगे बढ़ाने का एक स्मार्ट तरीका G-20 देशों के समूह के भीतर शहरों को सशक्त बनाना और सतत

विकास का समर्थन करना है। भारत की G-20 अध्यक्षता की थीम, "वसुधैव कुटुंबकम," तथा "एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य", स्थिरता और जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर चिंताओं से निपटने में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और एकजुटता की भावना का प्रतीक है।

कार्बन तटस्थत विकास प्राप्त करने में चुनौतियाँ:

भारत द्वारा 2070 तक कार्बन तटस्थत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में कई चुनौतियाँ हैं, जिन्हें जलवायु परिवर्तन से निपटने और एक सतत, कार्बन न्यून भविष्य में संक्रमण के लिए प्रभावी ढंग से संबोधित करने की आवश्यकता है। पर्यावरण को संरक्षित करते हुए और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देते हुए नवीकरणीय और गैर-जीवाश्म ईंधन ऊर्जा स्रोतों की ओर बदलाव एक चुनौतीपूर्ण उपक्रम है जो सावधानीपूर्वक योजना और परियोजना निष्पादन की मांग करता है। सर्वप्रथम भारत को अपने कार्बन तटस्थत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए कोयले के प्रयोग को कम करना आवश्यक है। भारत द्वारा यदि 2047 तक 30 ट्रिल्यन डॉलर अर्थव्यवस्था का लक्ष्य प्राप्त करना है तो भारत को 2050 तक कोयले का प्रयोग कम करना होगा यही कारण है कि भारत ने चीन के साथ मिलकर कोप-26 में कोयले के प्रयोग को लेकर इसे पूर्णतः बंद करने के स्थान पर चरणबद्ध तरीके से हटाने को निर्णय में सम्मिलित करवाया था। कोप-28 में भी सम्पूर्ण जीवाश्म ईंधन के न्यूनीकरण के निर्णय को शामिल किया गया है, परंतु जहां ग्लोबल नॉर्थ के द्वारा जीवाश्म ईंधन के प्रयोग को चरणबद्ध तरीके से हटाने की बात की जा रही है, वहाँ दूसरी और इनके द्वारा वितिय सहायता की और बिल्कुल भी प्रतिबद्धता नहीं दिखाई जा रही है। कार्बन तटस्थत विकास प्राप्त करने के लिए यह सबसे जरूरी है कि विकसित और विकासशील देश मिलकर काम करें (श्रीवास्तव और रेड्डी 2022, पृ. सं. 6-7)। भारतीय राज्यों को अपनी जलवायु कार्य योजनाओं को पूरा करने में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, वे क्षेत्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन से निपटने में आने वाली कठिनाइयों और बाधाओं की याद दिलाती हैं। पर्याप्त जलवायु वित्त की कमी कई राज्यों को अपनी कार्य योजनाओं को उनके उद्देश्य के अनुसार पूरा करने से रोक सकती है। यह सुनिश्चित करना कि जलवायु परिवर्तन योजनाएं सही दिशा में काम कर रही हैं, वर्तमान विश्वसनीय डेटा तक पहुंच के साथ-साथ इसकी रिपोर्ट करने और समीक्षा करने की क्षमता पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त, यह सुनिश्चित करना मुश्किल हो सकता है कि परियोजनाएं और नीतियां जलवायु लक्ष्यों का समर्थन करती हैं, खासकर जब सभी विभागों में प्रतिस्पर्धी हित मौजूद हों। (डब्ल्यूईएफ, 2022)।

निष्कर्ष

भारत 1972 में हुई मानव पर्यावरण पर हुई स्टॉकहोम कान्फ्रेन्स से पर्यावरण के विषयों पर एक सक्रिय अंतरराष्ट्रीय प्रतिभागी रहा है। भारत ने अन्य विकासशील देशों के साथ मिलकर 1992 में हुए पृथ्वी सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन पर बने संयुक्त राष्ट्र संघ कन्वेन्शन ऑन क्लाईमेट चेंज में यह सुनिश्चित करवाया कि जलवायु परिवर्तन के प्रयास समानता व जलवायु न्याय पर आधारित हों तथा सामान्य लेकिन विभेदक जिम्मेदारियाँ और संबंधित क्षमताएँ (Common but Differential Responsibilities and Respective capabilities) नियम का पालन किया जाए। भारत तथा अन्य विकासशील देशों ने कहा की जलवायु परिवर्तन की समस्या का उत्तरदायित्व विकसित देशों पर है क्योंकि जीवाश्म ईंधन आधारित औद्योगीकरण इन्ही देशों में आरंभ हुआ जोकि जलवायु

परिवर्तन का एक मुख्य कारण है। भारत ने एक ओर जहां जलवायु परिवर्तन हेतु विकसित देशों की प्रथम जिम्मेदारी पर जोर दिया है वंही दूसरी और अपने उत्तरदायित्व का भी अच्छे से पालन किया है। भारत ने 2008 से ही राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन की नीति का निर्माण कर इस पर कार्य आरंभ कर दिया था। भारत ने 2009 में भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों पर जलवायु परिवर्तन के होने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जिससे कि भविष्य में नीतियों का निर्माण जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को संज्ञान में रख कर किया जाए। भारत में पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय ने 2020 में इसी श्रंखला में **'भारतीय क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन का आकलन: पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय की एक रिपोर्ट'** का प्रकाशन किया तथा भारत पर जलवायु परिवर्तन के संभावित प्रभावों का आकलन किया। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के द्वारा तीन महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों का आरंभ किया गया। प्रथम, अंतर्राष्ट्रीय सौर मिशन-2015, आपदा प्रतिरोधी बुनियादी ढांचे के लिए अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन-2018 व अंतर्राष्ट्रीय बाइओ फ्यूल मिशन-2023। इसके साथ ही भारत ने इच्छित राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान में जो भी लक्ष्य निर्धारित किए हैं इन्हे समय से पहले ही पूरा किया जा रहा है। परंतु एक सम्पूर्ण कार्बन तटस्थत विकास की प्राप्ति के लिए भारत तथा अन्य विकासशील देशों को वित्तीय सहायता तथा हरित तकनीकों की आवश्यकता है जिसके प्रति विकसित देश अपनी प्रतिबद्धता नहीं दर्शा रहे हैं। इस वित्तीय सहायता के अभाव में कार्बन तटस्थत विकास एक जटिल व दुर्गम लक्ष्य है, परंतु भारत अपने मार्ग में आने वाली विभिन्न चुनौतियों का सफलतापूर्वक निष्पादन कर विश्व के अन्य देशों को प्रेरणा दे रहा है।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, मयंक. (27 जुलाई 2023), *भारत की नेट ज़ीरो नीतियों को समझना: पत्रकारों के लिए एक प्राइमर*, पृथ्वी पत्रकारिता नेटवर्क
2. बिरोल, एफ., और कांत, ए. (2022, 10 जनवरी), भारत *का स्वच्छ ऊर्जा परिवर्तन तेजी से चल रहा है, जिससे पूरी दुनिया को लाभ हो रहा है*, द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया.
3. फ्लोरिडा, आर. (2017, 16 मार्च), *राष्ट्रों की तुलना में शहरों की आर्थिक शक्ति*, ब्लूमबर्ग, ऑनलाइन https://www.bloomberg.com/news/articles/2017-03-16/top-metros-have-more- से पुनर्प्राप्त
4. दक्षता, ऊर्जा ब्यूरो, (2023, 4 जुलाई), *भारतीय कार्बन बाज़ार के लिए राजपत्र अधिसूचना*, भारत सरकार, विद्युत मंत्रालय, ऑनलाइन https://beeindia.gov.in/en/gazette-notification-for-indian-carbon-market से पुनर्प्राप्त
5. गील्स, एफ.डब्ल्यू., सोवाकूल, बी.के., श्वानेन, टी., और सोरेल, एस. (2017), गहन डीकार्बोनाइजेशन के लिए सामाजिक तकनीकी परिवर्तन, न्यूयॉर्क: *विज्ञान*, 357(6357), पृ. सं. 1242-1244, ऑनलाइन https://doi.org/10.1126/SCIENCE.AAO3760 से पुनर्प्राप्त
6. ब्यूरो, प्रेस सूचना (2008, 22 अक्टूबर), *जलवायु परिवर्तन का प्रभाव और जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना*, भारत सरकार, ऑनलाइन https://pib.gov.in/newsite/erelcontent.aspx?relid=44098 से पुनर्प्राप्त

7. ब्यूरो, प्रेस सूचना (2023ए, 29 मार्च), *प्रभाव आकलन वर्ष 2020-21*, भारत सरकार, विद्युत मंत्रालय, ऑनलाइन https://beeindia.gov.in/en/node/39626 से पुनर्प्राप्त
8. पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (2023, 3 अगस्त), *शुद्ध शून्य उत्सर्जन लक्ष्य*, भारत सरकार, ऑनलाइन, https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1945472 से पुनर्प्राप्त
9. नंदी, जे. (2023, 1 फरवरी), *2070 तक भारत के शुद्ध शून्य संक्रमण के लिए ₹35,000 करोड़ आवंटित: एफएम सीतारमण*, हिंदुस्तान टाइम्स. ऑनलाइन https://www.hindustantimes.com/india-news/35000-crore-allocated-for-india-s-net-zero-transition-by-2070-fm-sitharaman-101675237946237.html से पुनर्प्राप्त
10. राठी, ए., और चौधरी, ए. (2021, 10 नवंबर), *उत्सर्जन में कटौती के लक्ष्य बढ़ाने से पहले भारत $1 ट्रिलियन चाहता है*, ब्लूमबर्ग, ऑनलाइन https://www.bloomberg.com/news/articles/2021-11-10/india-holds-back-on-climate-pledge-until-rich-nations-pay-1-trillion से पुनर्प्राप्त
11. संधानी एम. और खान जेड. (2023), कैसे राज्य जलवायु योजनाएं भारत के नेट-शून्य लक्ष्य के लिए महत्वपूर्ण हैं, ऊर्जा, पर्यावरण और जल परिषद, ऑनलाइन https://www.ceew.in/blogs/how-state-climate-action-plans-are-key-to-net-zero-target-of-india से पुनर्प्राप्त
12. शर्मा एन., (27, सितंबर, 2022), भारत के नेट शून्य लक्ष्य के सामने ये चुनौतियां हैं, क्वार्ट्ज इंडिया, ऑनलाइन https://www.weforum.org से पुनर्प्राप्त
13. श्रीवास्तव बी. और रेड्डी पी.बी., (2022), ट्रांसफ़ॉर्मेशन ऑफ़ इंडिया टुवर्ड्स नेट ज़ीरो टारगेट्स: चुनौतियाँ और अवसर, *निमित माई समीक्षा*, खंड 5 नंबर 1
14. स्ट्रर्न एन., (2022), कार्बन तटस्थ अर्थव्यवस्था की ओर: सरकार को बाजार की विफलता और बाजार की अनुपस्थिति पर कैसे प्रतिक्रिया देनी चाहिए, *जर्नल ऑफ गवर्नमेंट एंड इकोनॉमिक्स* , अंक-6
15. द हिंदू ब्यूरो, (13, जून, 202), *सरकार ने 2050 तक चेन्नई को कार्बन तटस्थ बनाने के लिए जलवायु कार्य योजना जारी की*, ऑनलाइन https://www.thehindu.com/news से पुनर्प्राप्त
16. यूएन-हैबिटेट (2022), विश्व शहर रिपोर्ट 2022: शहरों के भविष्य की परिकल्पना, ऑनलाइन https://unhabitat.org/world-cities-report-2022-envisaging-the-future-of-cities से पुनर्प्राप्त
17. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) (2022), स्मार्ट, टिकाऊ और लचीले शहर: प्रकृति-आधारित समाधान की शक्ति, ऑनलाइन https://www.unep.org/resources/report/smart-sustainable-and-resilient-cities-power-nature-based-solutions से पुनर्प्राप्त
18. मनाबे, स्युकुरो (2019) जलवायु परिवर्तन में ग्रीनहाउस गैस की भूमिका, *टेलस ए: गतिशील मौसम विज्ञान और समुद्र विज्ञान*, 71:1
19. अरोरा, तान्या, चिरला सरवानी रेड्डी, राघव शर्मा, शरत दिवाकर किलापर्थी, लवलीन गुप्ता, (2023), दिल्ली, भारत का ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन: 2017-2021 के लिए स्रोतों और सिंक का एक प्रवृत्ति विश्लेषण,

शहरी जलवायु, खंड-51 ऑनलाइन https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/S2212095523002286 से पुनर्प्राप्त

20. चकार्बरती, तुषार (2022), *स्थायी समिति रिपोर्ट सारांश, सीबीजी (एसएटीएटी) के कार्यान्वयन की समीक्षा*, पीआरएस विधायी अनुसंधान ऑनलाइन https://prsindia.org/policy/report-summaries/review-of-implementation-of-cbg-satat से पुनर्प्राप्त

अध्याय-5

संविधान सभा का प्रथम सत्र एवं भाषा का प्रश्न

दिनेश कुमार गहलोत
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर (राज.)

भारत की सर्वोच्च विधि संविधान का निर्माण संविधान सभा ने किया। इस संविधान सभा का गठन कैबिनेट मिशन योजना के तहत् हुआ था। इस योजना के तहत् सभा में 389 सदस्य होने चाहिए थे। ब्रिटिश भारत से सभा के सदस्यों का चुनाव हुआ जबकि सभा के 93 सदस्य देसी भारत से मनोनीत हुए थे। 9 दिसंबर, 1946 को प्रथम जबकि 24 जनवरी, 1950 को सभा की अंतिम बैठक हुई थी। सभा के कुल 12 सत्र हुए थे। मुस्लिम लीग द्वारा सभा का बहिष्कार किए जाने पर सभा में 324 सदस्य रहे जबकि भारत विभाजन के समय सभा में 299 सदस्य थे। 26 नवंबर, 1949 को संविधान अंगीकृत हुआ जबकि 26 जनवरी, 1950 को पूर्ण रुप से लागू हुआ था।

संविधान के विभिन्न प्रावधानों को समझने, उसे जोड़ने के कारणों को जानने में संविधान सभा को समझना अति आवश्यक है। संविधान सभा की बहस को पढ़कर संविधान निर्माताओं की मंशा को जाना जा सकता है। यह बहस संविधान का निर्वाचन करने में भी न्यायालय की सहायता करती है। बहस संविधान के संदर्भ में गलतफहमियों को भी दूर करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में प्राथमिक शिक्षा को मातृभाषा में उपलब्ध करवाने का प्रावधान किया गया है। वैसे भी बच्चों को उनकी मातृभाषा में अध्ययन करने का अधिकार संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार है। कुछ राज्यों द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के भाषा संबंधी प्रावधानों पर उठाई गई आपत्ति के संदर्भ में संविधान में उल्लेखित भाषा संबंधी प्रावधानों की पृष्ठभूमि समझना आवश्यक हो गया है। भाषा को लेकर संविधान निर्माताओं के क्या विचार थे? क्या जानने हेतु संविधान सभा की बहस पढ़ना आवश्यक है। यह बहस कई भ्रांतियों को दूर करती हैं।

भाषा संबंधी प्रावधानों पर जब भी चर्चा करते हैं तो हम संविधान सभा में 12 से 14 सितंबर, 1949 को हुई बहस तक स्वयं को सीमित कर लेते हैं। जबकि संविधान सभा के प्रथम सत्र से ही इसे देखा जा सकता है। 10 दिसंबर, 1946 को संविधान सभा की दूसरी बैठक डॉ सच्चिदानंद सिन्हा की अध्यक्षता में हुई। 15 सदस्य नियम समिति के नियमों के संदर्भ में चर्चा चल रही थी कि अचानक संयुक्त प्रांत के आर.वी. धुलेकर कुछ बोलने लगे।
सभापति डॉ सिन्हा ने उन्हें टोकते हुए पूछा कि क्या वह अंग्रेजी नहीं जानते?[1] इसके प्रत्युत्तर में धुलेकर ने कहा कि ''मैं अंग्रेजी जानता हूँ पर हिंदुस्तानी में बोलना चाहता हूँ।''[2] इस पर सभापति डॉ सिन्हा ने कहा कि ''बहुतेरे सदस्य हिंदुस्तानी नहीं जानते।''[3] इसके जवाब में आर.वी. धुलेकर ने कहा कि ''जो हिंदुस्तानी नहीं जानते, उन्हें हिंदुस्तान में रहने का अधिकार नहीं है। जो लोग यहाँ भारत का विधान निर्माण करने आए हैं और हिंदुस्तानी नहीं

जानते हैं, वे इस सभा के सदस्य होने योग्य नहीं है। अच्छा हो, वे सभा से चले जाए।''[4] उन्होंने आगे कहा ''प्रोसीज्योर कमेठी अपने सारे नियम हिंदुस्तानी भाषा में बनाए और फिर उसका अंग्रेजी में अनुवाद हो।''[5]

इस पर सभापति डॉ सिन्हा ने उन्हें कहा कि ''द्विभाषावाद पर आपको बोलने का अधिकार नहीं है। इस पर बोलना नियम विरुद्ध है।''[6] इसके बाद आर.वी. धुलेकर ने कहा कि ''भारतीय होने के नाते मैं अपील करता हूँ कि हम लोग जो देश की आजादी के लिए तुले हैं, अपनी भाषा में सोचना और बोलना चाहिए। हम लंबे समय से अमेरिका, जापान, जर्मनी, स्विट्ज़रलैंड और हाउस ऑफ कॉमंस की चर्चा कर रहे हैं। इसने मेरे सिर में दर्द पैदा कर दिया। मुझे आश्चर्य हैं कि भारतीय अपनी भाषा में क्यों नहीं बोलते। मैं भारतीय हूँ और यह अनुभूत करता हूँ कि सभा की कार्यवाही हिंदुस्तानी भाषा में होनी चाहिए। दुनिया के इतिहास से हमें कोई मतलब नहीं। हमारे पास अपने लाखों वर्ष के प्राचीन देश का इतिहास है।''[7] इसके बाद उन्हें बोलने की इजाजत नहीं दी गई और अन्य सदस्य को बोलने हेतु आमंत्रित कर दिया गया।

इस संपूर्ण घटनाक्रम से यह स्पष्ट है कि संविधान सभा की दूसरी बैठक में ही भाषा को लेकर संविधान सभा के सदस्यों के अलग-अलग विचार थे। सभा की कार्यवाही किस भाषा में लिखी जाए अथवा सदस्य सभा में किस भाषा में अपने विचार रखें इसे लेकर शुरुआती दिनों में ही अलग-अलग विचार देखने को मिलते हैं।

10 दिसंबर, 1946 के बाद भाषा संबंधी प्रश्न सीधा 21 दिसंबर, 1946 को उठा। 21 दिसंबर, 1946 को देसी रियासतों से बातचीत के लिए गठित नेगोएशिटींग कमेटी के कार्यों के संदर्भ में चर्चा चल रही थी कि अचानक संयुक्त प्रांत से सदस्य दयालदास भगत उठकर बोलने लगे कि ''सभापति महोदय, मैं आपका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूँ कि मैं अंग्रेजी भाषा नहीं जानता। मैं हिंदी जानता हूँ और मेरे कई प्रतिष्ठित मित्र भी केवल इसी भाषा को जानते हैं। इसलिए इस सभा की कार्यवाही को कोई उपयोगी बात हमारी समझ में नहीं आती। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उन मित्रों को जो हिंदी जानते हैं यह कहें कि वह हिंदी में ही बोले ताकि हमारे समझने में आसानी हो।''[8]

दयालदास भगत के इस कथन पर किसी सदस्य अथवा सभापति ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। लेकिन इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि सभा के प्रथम सत्र में सभी वक्ता अंग्रेजी भाषा का प्रयोग कर रहे थे और कई सदस्य अंग्रेजी समझ नहीं पा रहे थे। 10 दिसंबर को धुलेकर हिंदुस्तानी भाषा तथा 21 दिसंबर, 1946 को दयालदास भगत में हिंदी भाषा में कार्यवाही की बात कही।

21 दिसंबर, 1946 को दयालदास भगत की मांग पर भले ही उस समय कुछ नहीं हुआ हो लेकिन उसी दिन सभा ने एक समिति के रूप में कार्य करना शुरू कर दिया। वास्तव में 21 दिसंबर, 1946 की दोपहर बाद तथा 22 तथा 23 दिसंबर, 1946 को सभा ने एक समिति के रूप में कार्य किया। सभा की नियम निर्माण समिति ने जो नियम बनाये थे, उस पर सभा में बहस करनी थी। इस कारण से सभा ने समिति का रूप ले लिया। 21 दिसंबर, 1946 को के.एम. मुंशी ने दयालदास की समस्या का उल्लेख करते हुए नियम संख्या 18 रखा। जिसमें यह प्रावधान किया गया कि ''सभा की कार्यवाही हिंदुस्तानी (हिंदी या उर्दू) या अंग्रेजी में होगी। जो सदस्य उक्त दोनों भाषाओं में से कोई भी भाषा नहीं जानते हैं, उन्हें सभापति उनकी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकते हैं और वे अपनी मातृभाषा में

सभा के सामने अपनी बात कर सकते हैं।''[9] इसकी उपधारा दो में यह प्रावधान किया गया की ''सभा की कार्यवाही की सरकारी रिपोर्ट हिंदुस्तानी (हिंदी और उर्दू दोनों) तथा अंग्रेजी ज़ुबान में रहेगी।''[10]

के.एम. मुंशी द्वारा रखे गए नियम 18 से यह स्पष्ट हो रहा है कि सदस्य मातृभाषा में भी विचार कर सकते हैं जबकि सरकारी रिपोर्ट हिंदी, उर्दू तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं में रखने का प्रस्ताव रखा जा रहा है। 23 दिसंबर, 1946 को एक बार फिर सभा समिति के रूप में बैठी और नियम 18 पर विस्तार से चर्चा हुई। इस चर्चा में मुख्यतः सेठ गोविंददास, के. संथानम्, विश्वंभर दयाल त्रिपाठी, आर.के. चौधरी तथा रामनाथ गोयनका ने भाग लिया।

मध्यप्रांत एवं बरार से सदस्य सेठ गोविंददास ने चर्चा शुरू करते हुए इस बात पर दुःख प्रकट किया कि हिंदुस्तानी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में विचार प्रकट करने की छूट के बावजूद अधिकांश कार्यवाही अंग्रेजी भाषा में हो रही है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि ''जब संविधान सभा स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने जा रही हैं तो अंग्रेजी को ही अपनी राष्ट्रभाषा मानकर वह काम करना चाहती हैं तो यह एक बड़े दुख की बात है। अंग्रेजी कभी भी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती है।''[11]

इसके बाद सेठ गोविंद दास ने हिंदुस्तानी भाषा को व्यवहार में लाने के लिए तीन कठिनाइयों की वास्तविकता पर विस्तार से चर्चा की। यह चर्चा वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की भूमिका एवं प्रासंगिकता को भी स्पष्ट करती है। सीएसटीटी की स्थापना भले ही 1961 में हुई हो, लेकिन इसकी जड़े इस चर्चा में ढूंढी जा सकती है। आयोग का मुख्य कार्य मानक शब्दावली विकसित करना है। इस चर्चा में सेठ गोविंद दास ने पहली कठिनाई के बारे में कहा कि हिंदुस्तानी में वैज्ञानिक शब्द नहीं मिलते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा कि उस्मानिया विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक शब्दों का विकास करने हेतु विशेषज्ञ रखें और वहां सारी पढ़ाई हिंदुस्तानी भाषा में होती है। इस प्रकार सेठ गोविंददास जहां एक ओर हिंदुस्तानी भाषा की पहली कठिनाई को दूर करने की राह दिखलाते हैं, वहीं दूसरी ओर सीएसटीटी की नींव भी रख रहे हैं। उन्होंने आगे कहा कि दूसरी कठनिाई यह बताई जाती है कि सब लोग हिंदुस्तानी नहीं बोल सकते हैं। इस पर उन्होंने स्पष्ट किया कि जो लोग हिंदुस्तानी नहीं बोल सकते हैं उनको आजादी होगी कि वह अंग्रेजी में बोले। तीसरी कठिनाई यह बताई जाती है कि बहुत से लोग हिंदुस्तानी नहीं समझते। इस पर उन्होंने कहा कि ऐसे बहुत कम लोग है। उनकी संख्या अंगुली पर गिनी जा सकती है।

सेठ गोविंददास ने यह भाषण हिंदी में दिया था इस पर से सदस्य दीवान बहादुर सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने कहा कि भाषण का अंग्रेजी अनुवाद किया जाये।

इसके बाद के संथानम् ने यह प्रस्ताव रखा की सभा में सभी प्रस्तावों संशोधन अंग्रेजी भाषा में रखा जाये। इसका औचित्य स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि सभा (सेक्शन ए) में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे सदस्य हैं जो पेचीदा और जटिल विषयों को न तो हिंदुस्तानी में समझते हैं और न समझ सकते हैं और न वें बोल सकते हैं। मैं साधारण हिंदुस्तानी समझ लेता हूं परंतु जब आपको वैधानिक विषयों पर सोच-विचार करना है तो आपको ठीक-ठीक और नपे-तुले शब्दों का प्रयोग करना होगा और ऐसे शब्द अभी हिंदुस्तानी में है नहीं।[12]

के. संथानम का यह उद्बोधन एक बार फिर मानक शब्दावली की आवश्यकता को रेखांकित करता है। जो कि सीएसटीटी का मुख्य कार्य है। साथ ही अंग्रेजी के प्रति उनके आग्रह के कारणों को भी स्पष्ट करता है। के. संथानम ने आगे यह भी कहा कि "मुझे हिंदुस्तानी को राष्ट्र भाषा बनाने में तनिक भी आपत्ति नहीं है, परंतु देश के अन्य भागों को एक निश्चित अवधि देनी चाहिए।[13] हम देखते हैं कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 (2) में यह प्रावधान है कि ''इस संविधान के प्रारंभ से 15 वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जायेगा।"[14] अनुच्छेद 343 (2) के इस प्रावधान की पृष्ठभूमि 23 दिसंबर, 1946 की बहस में के संथानम् के इस उद्बोधन में देखी जा सकती है।

इसके बाद संयुक्त प्रांत के विश्वंभर दयाल त्रिपाठी ने यह प्रस्ताव रखा कि ''सभा की कार्यवाही हिंदुस्तानी (हिंदी या उर्दू) में ही की जायेगी पर शर्त यह है कि अध्यक्ष किसी सदस्य को जो हिंदुस्तानी से अच्छी तरह परिचित न हो, सभा के सामने अपनी मातृभाषा या अंग्रेजी में बोलने की इजाजत दे सकते हैं।[15] उन्होंने आगे असंतोष प्रकट करते हुए कहा कि हम अपने देश का विधान बनाते हुए हिंदुस्तानी को स्थान देते हैं तो यह कोई बड़े संतोष की बात नहीं है। इसमें तो हिंदुस्तानी को ही स्थान होना चाहिए। किसी अंतरराष्ट्रीय संस्था जहां भिन्न-भिन्न देश के लोग होते हैं, वहाँ यदि हिंदुस्तानी को स्थान दिया जाता तो संतोष की बात होती। उन्होंने अपने इसी उद्बोधन में आगे यह भी कहा कि ऐसे महत्वपूर्ण मौके पर अगर हम हिंदुस्तानी (हिंदी या उर्दू) को नहीं अपनाते हैं तो हम आगे कभी नहीं अपना सकते।

विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी की यह भविष्यवाणी काफी सीमा तक सही दिखलाई नहीं पड़ती है। पहले हम अनुच्छेद 343 के अंतर्गत 15 वर्ष का प्रावधान किया और बाद में राजभाषा अधिनियम 1963 बनाकर इसे निरंतर लागू कर दिया।

इसके बाद श्रीयत आर.के. चौधरी का उद्बोधन हुआ। उन्होंने स्पष्ट तौर पर अंग्रेजी का पक्ष लिया। उन्होंने कहा ''मैं हिंदुस्तानी से काफी परिचित हूँ परंतु यदि मुझसे कुछ मिनट के लिए हिंदुस्तानी में बोलने को कहा जाए तो मेरा शब्द भंडार समाप्त हो जाएगा।'' अपने व्यक्तिगत सीमाओं के बाद उन्होंने उद्बोधन में आगे कहा ''अब जबकि हम स्वाधीनता की देहली पर पहुँच गए हैं, हमें अधिक अफसरों पर अंग्रेजी का ही प्रयोग करना होगा। ज्यों-ज्यों विदेशों से हमारा संपर्क बढ़ता जाएगा, हमें अंग्रेजी सीखने की अधिक आवश्यकता पड़ेगी। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अंग्रेजी की बदौलत ही आज हम एक राष्ट्र बन सके हैं। अन्यथा मद्रास के लोगों के साथ बातचीत करने और संपर्क स्थापित करने के लिए हमारे पास और कोई साधन ही नहीं था।[16]

आर.के. चौधरी असम से संविधान सभा में प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उनके अनुसार अंग्रेजी एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा है और यह अन्य देशों से संवाद स्थापित करने में सहायक होगी तथा स्वयं भारत में भी यह तो संपर्क भाषा के रूप में कार्य कर रही हैं।

मद्रासी से सदस्य रामनाथ गोयंका ने इस बहस में भाग लेते हुए कहा कि ''हम सभी हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं और इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है। परंतु इस संदर्भ में कुछ तथ्य हैं।''[17]

उन्होंने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा कि दक्षिण भारत के 6-7 करोड़ लोग तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ और अन्य भाषाएं बोलते हैं। वे हिंदुस्तानी नहीं जानते हैं। वे आगे कहते हैं कि हमारे संविधान की व्याख्या करने का कार्य अदालत करेगी और अदालत की भाषा दूसरी है। आगे वे चिंता प्रकट करते हुए कहते हैं कि ''क्या आप अपना सविधान ऐसी भाषा में बनाने जा रहे हैं जो आपकी अदालतों की भाषा नहीं हैं? जो भी शब्द का प्रयोग करें, वह ठीक ठीक और नपे तुले होने चाहिए और ऐसा ना हो कि उनका भिन्न अर्थ और व्याख्या हो सके।''[18] उन्होंने हिंदी एवं उर्दू के शब्दों में अंतर का उल्लेख करते हुए यह भी कहा कि वास्तव में अभी तक हम यही फैसला नहीं कर सके कि हिंदुस्तानी क्या है?

रामनाथ गोयनका ने अदालती भाषा और हिंदुस्तानी भाषा में अंतर से संविधान की व्याख्या करते समय होने वाली समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया साथ ही दक्षिण भारत के लोगों की हिंदुस्तानी भाषा की जानकारी नहीं होने से अंग्रेजी में ही प्रस्ताव और संशोधन रखने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने अपने उद्बोधन के अंत में यह भी कहा कि इस देश का संविधान केवल ऐसी भाषा में तैयार होना चाहिए जिसे सब लोग समझ सके।

अंत में मद्रास के ही सदस्य ओ.बी अलगेसन ने नियम 18 में संशोधन का प्रस्ताव रखते हुए उसमें तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, मराठी, गुजराती, पंजाबी, बंगाली, आसामी और उड़िया भाषा जोड़ने का प्रस्ताव रखा।[19]

इसके बाद सपा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने के.एम. मुंशी से इन सभी संशोधन प्रस्तावों पर जवाब देने के लिए कहा तो मुंशी ने स्पष्ट कहा कि ''मैं कोई विस्तृत जवाब देकर सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता। निःसंदेह यह बात सभी जानते हैं कि हिंदुस्तानी भारत की राष्ट्रभाषा है और राष्ट्रीय संविधान सभा होने के नाते हिंदुस्तानी को अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए, लेकिन हम अंग्रेजी को एकदम और सर्वथा तिलांजलि नहीं दे सकते और इसलिए मुझे इसमें से एक भी संशोधन स्वीकार नहीं है।[20] के.एम. मुंशी हिंदुस्तानी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्पष्ट तौर पर स्वीकार कर रहे हैं। मुंशी ने सभी संशोधन प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद अध्यक्ष ने इस संशोधनों पर वोट के लिए पेश करते हुए पहला संशोधन (विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी) अस्वीकार करने की घोषणा की। इस पर कई सदस्यों ने मत विभाजन की मांग की। मत विभाजन की यह मांग स्पष्ट करती है कि कुछ सदस्य इसके पक्ष में भी थे। इसके बाद सभी संशोधन प्रस्ताव पर मत विभाजन हुआ। विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी और सेठ गोविंददास के प्रस्ताव के पक्ष में 34 तथा विपक्ष में 75 मत आए। के. संथानम् और रामनाथ गोयनका के संशोधन प्रस्ताव के पक्ष में 46 तथा विपक्ष में 70 मत आये। अंतिम संशोधन प्रस्ताव ओ.बी. अलगेसन का था, वह भी अस्वीकार हो[21] गया इसके बाद सभा ने नियम 18 को स्वीकार कर लिया।

यह संविधान सभा के प्रथम सत्र की बहस थी, जिसमें भाषा के प्रश्न पर तीव्र वाद-विवाद को देखने को मिला। जबकि हम जानते हैं कि इस सत्र में मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों ने भाग नहीं लिया था, वहीं दूसरी ओर देसी रियासतों का भी कोई प्रतिनिधि इस सत्र की बैठकों में शामिल नहीं था। प्रथम सत्र में भाषा को लेकर हुए वाद-विवाद से आगामी संविधान निर्माण की चुनौतियों को समझा जा सकता है। 26 नवंबर, 1949 को सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने संविधान निर्माण की समस्याओं पर चर्चा करते हुए भाषा को एक बड़ी समस्या माना था।

संदर्भ सूची :-

1. भारतीय संविधान सभा के विवाद की सरकारी रिर्पोट (हिन्दी संस्करण), लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2015, 10 दिसम्बर, 1946 की बैठक पृष्ठ संख्या - 21
2. वही, पृष्ठ संख्या - 21
3. वही, पृष्ठ संख्या - 21
4. वही, पृष्ठ संख्या - 21
5. वही, पृष्ठ संख्या - 22
6. वही, पृष्ठ संख्या - 22
7. वही, पृष्ठ संख्या - 22
8. वही, 21 दिसम्बर, 1946 की बैठक, पृष्ठ संख्या - 16
9. वही, 21 दिसम्बर, 1946 की गोपनीय बैठक, पृष्ठ संख्या - 3
10. वही, 21 दिसम्बर, 1946 की गोपनीय बैठक, पृष्ठ संख्या - 4
11. वही, 23 दिसम्बर, 1946 की गोपनीय बैठक, पृष्ठ संख्या - 114
12. वही, 23 दिसम्बर, 1946 की गोपनीय बैठक, पृष्ठ संख्या - 117
13. वही, पृष्ठ संख्या - 117
14. भारत का संविधान, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ - 247
15. वही, 23 दिसम्बर, 1946 की गोपनीय बैठक, पृष्ठ संख्या - 118
16. वही, पृष्ठ संख्या - 119
17. वही, पृष्ठ संख्या - 120
18. वही, पृष्ठ संख्या - 120
19. वही, पृष्ठ संख्या - 121
20. वही, पृष्ठ संख्या - 122
21. वही, पृष्ठ संख्या - 122, 123

अध्याय-6

संपोषणीयता के विभिन्न आयाम : अध्येताओं की दृष्टि से

पायल रानी
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्विविद्यालय,
मेरठ

चित्रा देवी
शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्विविद्यालय,
मेरठ

प्राचीनकाल से लेकर अब तक विश्व में देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार विकास की प्रक्रिया निरंतर रूप से चली आ रही है। जहाँ पश्चिमी दुनिया के अमीर देशो में भौतिकवादी मानसिकता का दास होकर प्रकृति से विलग होकर आधुनिकता का आवरण ओढ़े जाने को विकास का परिचायक माना जाता है, वहीं पौर्वात्य संस्कृति अर्थात भारतीय संस्कृति में अपनी परम्पराओं का पालन करते हुए प्रकृति से समन्वय बनाकर समृद्धि के पथ पर अग्रसर होने को विकास का परिचायक माना जाता है। इस प्रकार ध्यान में आता है, कि विभिन्न विचारधाराओं को मान्यता प्रदान करने वाले विश्व में विकास के भी विभिन्न आयाम है, जिनको अपनी अपनी मानसिकता के अनुसार विभिन्न देशों द्वारा अपनाया जाता है, एवं अपनी सुविधानुसार विकास पर बल दिया जाता है। पश्चिम की आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता में विकास को मानव की सुख सुविधाओं में वृद्धि करने वाले यन्त्रों के अंधाधुंध निर्माण से जोड़ कर देखा जाता है। जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का इस तरह से अनियंत्रित शोषण किया जाता है कि उसकी समृद्धि के आधार में जो ताना बाना था, वह टूटने लगता है। वहीं भारतीय संस्कृति विकास और पर्यावरण को एक दूसरे का पूरक मानकर अपने परम्परागत ज्ञान के आधार पर कार्य करती है। परम्परागत ज्ञान में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि स्थानीय हित के हिसाब से प्राकृतिक संसाधनों का न्यूनतम दोहन हो। आधुनिकता का रूप लिए वर्तमान की स्थिति में भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से प्रकृति से इतनी विलगता उत्पन्न हो गयी है जिसकी वजह से विकास और पर्यावरण एक दूसरे का पर्याय न होकर एक दूसरे के विरोधी दृष्टिगोचर होते हैं। अतः प्रकृति और मानवजगत के संबंधों को पुनः एकाकार करने हेतु पर्यावरण के प्रति शालीनता का भाव अपनाकर प्रकृति के साथ समन्वय बनाकर जीने की अभिलाषा रखनी आवश्यक है। भारत में अनेक विचारको ने भारतीय जीवन दृष्टि से भारत को समझकर भारतीय संस्कृति में निहित परम्पराओं एवं आदर्शो के अनुरूप विकास का सही स्वरूप जाना एवं पश्चिम के कुत्सित प्रयासों के माध्यम से किये जा रहे विकास की संकल्पना से इतर अपने विचारों को अपनी लेखनी से माध्यम से व्यक्त किया। जिनमे से कुछ विचारों को यहाँ उल्लेखित किया गया है।

अथर्ववेदीय भूमिसूक्तम

 ISSN: 2321-0443

'अथर्ववेदीयं भूमिसूक्तम' में पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन संबंधी चिंतन का गौरवगान किया गया है। जिसके लिए ऋषि धरती की उदारता, महानता एवं सर्वव्यापकता आदि अनंत गुणों का वर्णन करते हैं। ऋषि द्वारा पृथ्वी की वंदना की गयी है, एवं मन्त्रों के द्वारा भूमि के प्रति सम्मान का भाव प्रकट किया गया है। क्योंकि 'यह भूमि शाश्वत धर्म के द्वारा धारण की गई है; जिसमे सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्मा, यज्ञ आदि निहित है।'[1] इन्ही शाश्वत धर्म को धारण कर पृथ्वी देवभूमि कहलाती है, एवं सम्पूर्ण जीव जगत के लिए कल्याणकारी एवं सुखप्रदायनी सिद्ध होती है। जिस पर विचरण करने की कामना ऋषि द्वारा की जाती है। अथर्ववेदीय भूमिसूक्त में 'मनुष्य और मातृभूमि के मध्य माता-पुत्र (संतान) का सम्बंध दर्शाया गया है। विविध प्राकृतिक स्त्रोतों को अपने अंदर धारण करने वाली पृथ्वी अर्थात मातृभूमि सम्पूर्ण प्राणिजगत को अपनी संतान मानकर उनका भरण पोषण करती है।'[2] जिसके लिए पृथ्वी वर्षा के देवता पर्जन्य द्वारा बरसाए जल से गर्भ धारण करती है एवं नाना वीर्य के माध्यम से वनस्पति, औषधि आदि पैदा करती है, और संपूर्ण जीव जगत को भोग्य पदार्थ प्रदान करती है। मातृभूमि धेनु की भांति अपने जलरूपी दूध की धारा से जन-जन को तृप्त करती है। प्राकृतिक स्रोत जैसे पहाड़, पर्वत, नदियां, जल, वनस्पति, औषधि, वायु, जीव जगत आदि मातृभूमि की क्षमता को बढ़ाने वाले हैं। मातृभूमि के प्रति व्यक्त भाव व्यक्तियों के लिए आदर्श है। क्योंकि अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये भूमि को खोदने से पूर्व भी ऋषि भूमि से क्षमा प्रार्थना करता है, एवं भूमि के पुनः हरी-भरी होने की कामना करता है। 'ऋषि द्वारा पृथ्वी को 'सधस्थ' की संज्ञा दी गई है अर्थात ऐसा सहस्थान जिस पर विभिन्न प्रकार के लोग, पशु-पक्षी, सरीसृप, जलचर, औषधि, वनस्पति आदि एक साथ निवास करते हैं।'[3] इससे वासुधैव कुटुंबकम की भावना को बल मिलता है। इस ग्रन्थ में स्थानीयता का पुट भी देखने को मिलता है, क्योंकि ऋषि द्वारा कहा गया है कि जिस भी भूखंड पर मनुष्य तथा अन्य जीव जगत का वास होता है, उसी स्थान विशेष की भूमि के जल तथा अन्न से उनको जीवन शक्ति प्राप्त होती है। क्योंकि वह अन्न तथा जल उस भूखंड की गंध को अपने में समा लेते हैं और वहां निवास करने वाले प्राणियों को स्वस्थ तथा समृद्ध बनाते हैं।

हिन्द स्वराज-

'हिन्द स्वराज' पुस्तक महात्मा गांधी ने 1909 में लन्दन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए जहाज पर यात्रा करते समय संवाद शैली में लिखी। इसमें गांधी के उन सभी मौलिक विचारो के दर्शन मिलते हैं, जिनपर उन्होंने जीवनपर्यन्त कार्य किया और अपने व्यवहार में उतारा। इस पुस्तक के बारे में गांधी का विचार था कि 'यह पुस्तक इतनी सरल है कि सभी आयुवर्ग के लोग अर्थात बच्चों से लेकर वृद्धजन तक आसानी से समझ सकते हैं। यह पुस्तक द्वेष, हिंसा, पशुबल आदि के स्थान पर प्रेम, आत्मबलिदान और आत्मबल सीखाती है।'[4] इसमें गांधी ने तत्कालीन समय को दृष्टिगत रखकर स्वराज, हिंदुस्तान की दशा, पश्चिमी सभ्यता एवं भारतीय सभ्यता का अंतर, शिक्षा, मशीनें, सत्याग्रह, आजादी आदि पर अपने विचार रखे। उन्होंने अपनी कल्पनाओं को आधार बनाकर भारत के लिये ऐसे स्वराज का चित्र उकेरा जिसको पाने की कोशिश में वे निरन्तर कार्यशील रहे। पुस्तक में मुख्यतः पश्चिमी आधुनिक सभ्यता की आलोचना की गई है, और उसके भारतीय संस्कृति पर पड़े नकारात्मक प्रभाव के परिणामस्वरूप व्यवस्थाओं में हुए परिवर्तन को दर्शाया गया है। कि किस प्रकार से पश्चिम की यूरोपीय भौतिकवादी सभ्यता ने स्वंय को शक्तिशाली बनाने के लिए दूसरी व्यवस्थाओं को कुचलना आरंभ कर दिया, जिसके प्रभाव से भारतीय संस्कृति भी अछूती नहीं रही। पश्चिम की भोगवादी सभ्यता ने अधिक निवेश करने के पश्चात ही सुख प्रदान करने पर जोर दिया। क्योंकि यह

पूर्णतः व्यष्टिगत चिंतन पर आधारित लाभ के सिद्धांत पर कार्य करती है, यह श्रम बल के स्थान पर यन्त्र बल को महत्व देती है। इस यन्त्रबल की बहुलता ने मनुष्य को अपना गुलाम बनाकर पूर्णतः अपने पर निर्भर कर लिया। गांधी ने रेल, वकील, डॉक्टर, अस्पताल आदि को भी पाश्चात्य सभ्यता का परिचायक बताया क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य पश्चिमी दर्शन के अनुसार धन कमाना है। औद्योगीकरण के बढ़ते विस्तार को लेकर गांधी का विचार था कि क्षमता से अधिक कार्य प्रकृति के अनुरूप नहीं है, क्योंकि क्षमता से अधिक काम करने के लिए उपकरणों की आवश्यकता होती हैं, जिसमे धन का निवेश होता है और प्रकृति का विनाश।गांधी ने इन सब पर कटाक्ष करते हुए कहा कि यह "पश्चिम की आधुनिक सभ्यता दूसरों का नाश करने वाली और खुद नाशवान है।"[5] इस सभ्यता के लिए भौतिक सुख सुविधा सर्वोपरि है, शरीर का सुख महत्वपूर्ण है, जिस को पूरा करने के प्रयास में इस यूरोपीय भौतिकवादी सभ्यता ने संस्कृति, धर्म, नैतिकता, पर्यावरण, प्राकृतिक संपदा आदि सबकुछ दांव पर लगा दिया। पश्चिम की आधुनिक माने जाने वाली इस सभ्यता ने पूरे विश्व को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए नई नई प्रणालिया एवं तकनीकें विकसित करने पर बल दिया। इससे बचने का उपाय बस यही है कि हम अपनी प्राचीन भारतीय धर्मपरायण संस्कृति के सूत्रों को अपने आचार और व्यवहार में उतारें,अपने श्रम बल को पहचानें। इस साध्य की प्राप्ति के लिए गांधी ने अंहिसा, सत्याग्रह, आत्मबल, अपरिग्रह, न्यासिता आदि पवित्र साधनों पर बल दिया। क्योंकि साधन पवित्र होंगे तो साध्य की पवित्रता अपने आप बनी रहेगी। अंततः सम्पूर्ण जीवजगत का कल्याण सुनिश्चित होगा।

साफ माथे का समाज-

इस पुस्तक में अनुपम मिश्र द्वारा लगभग दो दशकों में पर्यावरण के विषय में समग्रता से लिखे गए लेखों का संकलन किया गया है। जिनमे अनुपम मिश्र ने एक सामाजिक कार्यकर्ता एवं पर्यावरण हितैषी के दृष्टिकोण से दिख रही दुनिया का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है, जिसके अंदर लोक परम्परा में व्याप्त विचार है। प्रकृति के आत्म तत्व जल, जंगल और जमीन से मानव के प्राचीन काल से स्थापित आत्मीय संबंधों एवं आधुनिकता के दौर में इन संबंधों में बढ़ती दरार का लेखक ने बड़ी बारीकी से स्पष्ट वर्णन किया है। किस प्रकार से विकास के वर्चस्व ने पर्यावरण को अपने आधिपत्य में लेकर प्रकृति और प्राणी जगत के पारस्परिक संबंधों पर कुठाराघात किया है। जो भी विचारधारा मनुष्य को बरगला देती है, वह आंख मूंदकर उसी के पीछे दौड़ पड़ता है, और उसी का गुणगान करने लगता है। इसी कारण आधुनिकता के चमकीले प्रकाश की ओट में छिपे गुप्त अंधेरे में गुम हुआ समाज उससे बाहर निकलने के लिए छटपटा रहा है, परंतु उसे कहीं रास्ता नजर नहीं आ रहा। भोगवादी और विलासिता पूर्ण सभ्यता के अशिष्ट दर्शन ने सामाजिक ताने-बाने को नष्ट कर मनुष्य को एकाकी बना दिया है। जिस कारण मानव में जनहित के स्थान पर स्वहित की भावना घर कर गई है। जितना प्रकृति ने दिया है, उसी हिसाब से अपना जीवन चलाने की धारणा त्यागकर विकास की आड़ में कुछ लोगों के भले के लिए समाज के बड़े हिस्से को इसका मूल्य चुकाना पड़ रहा है। ऐसे समय में अनुपम मिश्र ने अपने लेखों के माध्यम से भारत में लंबे समय से प्रचलित मान्यताओं और स्थानीय परंपराओं का पालन करते हुए वास्तविक विकास की अवधारणा को गढ़ते समाज के विषय में विवरण दिया है, यह वास्तविक विकास ही सही अर्थों में संपोषणीयता का परिचायक है।

वहीं दूसरी ओर अनुपम मिश्र ने आधुनिकता के पालने में झूलते विकास रूपी विनाश की सत्यता को भी उजागर करने का प्रयास किया है। लेखक ने भाषा और पर्यावरण के बीच सम्बन्धों को दर्शाकर उसके आधार पर समाज मे आये बदलावों पर भी बात की है। 'भाषा से तात्पर्य केवल भावों को व्यक्त करने वाले शब्दों की माला से नहीं अपितु समाज के मन और माथे से है, जो अपने निकट और दूर के संसार को देखने- परखने- बरतने का संस्कार अपने में समाहित करके रखता है, और समाज को नई नई सीख देता है।'[6] भाषा और पर्यावरण एक दूसरे में कुछ इस तरह गुंथे हुए हैं, कि पर्यावरण में आयी गिरावट का एक कारण समाज की अपनी भाषा को बदलना माना जाता है। अन्य कारणों में पश्चिम की भोगवादी प्रवृत्ति को पूरा करने के निमित्त अधिक खपत वाली जीवनशैली जिम्मेदार है। जिसने वैश्विक प्राकृतिक संसाधनों पर अपनी पकड़ बनाने हेतु तत्कालीन औपनिवेशिक देशों के प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण करने के पश्चात 1970 के दशक में पर्यावरण संरक्षण का राग अलापना शुरू किया। परन्तु भारत में तो पर्यावरण संरक्षण का विचार समाज के अंदर रचा बसा था। क्योंकि सबसे बड़े विशेषज्ञ समाज के लोग हैं, उन्हें दूसरे विशेषज्ञों की आवश्यकता नही होती।समाज अपना काम खुद करना भी जानता है और उन्हें परम्पराओं के रूप में अगली पीढ़ी को हस्तांतरित भी करता है।

1980 के दशक में विश्व भर में स्थायी या टिकाऊ विकास की बात की गई। परन्तु अभी हमारे विचार ही सतत नहीं हैं, तो सतत विकास कैसे सम्भव होगा। 'समाज की समस्यायें उसी की भाषा मे सामने आती हैं, तो हल भी उसी की भाषा में निकलेगा, वैश्विक रूप में नही।'[7] सतत विकास की अवधारणा का उद्भव होने के बाद भी विकास के नाम पर संसाधनों की छीनाझपटी भूमण्डलीकरण के पश्चात और भी विस्तृत हो गयी थी। किन्तु इतनी कठिनाइयां झेल कर भी समाज ने अपने अस्तित्व को बचाए रखकर अपनी जिजीविषा का परिचय दिया। क्योंकि इस जिजीविषा का मर्म उसके पुराने अनुभवों और परंपराओं में निहित है। जो हमारी भारतीय संस्कृति की ही विशेषता है।

राजस्थान की रजत बूंदे -

यह पुस्तक अनुपम मिश्र द्वारा रचित है। एक पर्यावरण प्रेमी होने के नाते अनुपम मिश्र ने इस पुस्तक में राजस्थान में होती वर्षा की बूंदों को सहेज कर रखने की दिशा में गतिशील समाज का बहुत गहन अध्ययन किया है, एवं अपने प्रयासों से एकत्रित संपूर्ण जानकारी को इस पुस्तक में समेट कर रख दिया है। जिस राजस्थान का वर्णन वर्तमान में भूगोल की पाठ्य पुस्तकों से लेकर योजना निर्मात्री संस्थाओं के आंकड़ों में बड़ी भयावहता से किया जाता है जहां सूरज की तपिश बारिश की तरह बरसती है, एवं वर्षा नाम मात्र की। वहीं इन आंकड़ों को झूठलाते हुए समाज ने इसको एक अभिशाप की तरह नहीं बल्कि प्रकृति का प्रसाद मानकर ग्रहण किया और इस प्रसाद रूपी चुनौती को स्वीकार करते हुए स्वयं का स्वभाव पानी के स्वभाव के साथ एकाकार कर लिया। समाज अपने भाग्य और कर्तव्य दोनों को साथ लेकर चला। राजस्थान की भूमि ने कभी समुद्र होने से लेकर मरुभूमि में परिवर्तित होने तक की लाखों बरस की यात्रा की और अपना रूप बदला। 'हजारों लाखों वर्ष की घटित घटना को राजस्थान के समाज ने 'पलक दरियाव' शब्द से याद रखा अर्थात पलक झपकते ही दरिया का सुख जाना।'[8] समुद्र के रूप को समाज ने वर्षा की छोटी-छोटी रजत बूंदों में देखने का मानस विकसित कर लिया। परन्तु समाज ने कभी अपनी परम्पराओं का ढोल नहीं बजाया बल्कि उनको अपने व्यवहार में गहराई से उतारा। 'मरुभूमि के समाज ने माटी, वर्षा और ताप की तपस्या

की।'[9] बादल और वर्षा की बूंदें कम आने के बाद भी मरुभूमि के समाज ने उनको अपना मानकर उनको अनेक नामों से पुकारा। समाज ने बड़ी दक्षता के साथ बादल और बूंदों के नामों की तरह अनंत तरीके से स्वयं को जल के विषय में साधन संपन्न बनाया। बिना किसी भेदभाव के सब ने मिलकर एक निराकार संगठन स्थापित कर लिया, 'इसको ना तो सरकारी हाथों में सौंपा, ना निजी क्षेत्र को, बल्कि स्वयं इसको अपने हाथों में रखा।'[10] वर्षा की बूंदों को इकट्ठा करने के लिए अपने पसीने की बूंदे बहायी। इन वर्षा की रजत समान बूंदों के अमृत को पाने हेतु समाज ने खूब चिंतन मनन कर उसको व्यवहारिक रूप प्रदान करने के लिए एक पूरा शास्त्र विकसित कर लिया। 'जिसने पानी को तीन रूपों में बांटा- पालर पानी अर्थात बरसात का पानी, पातालपानी अर्थात भूजल, और रेजाणी अर्थात धरातल के भीतर समाया पानी, जो पातालपानी में ना मिले।'[11] ठहरे पानी को निर्मल बनाए रखने हेतु समाज ने कुंई, टाका, कुंड, तालाब आदि बनवाएं। इन में एकत्रित जल वर्षभर रहने के बाद भी निर्मल बना रहता है। इस व्यवस्था ने बहुत लंबा समय देखा। जिस कारण 'यह समयसिद्ध और स्वयंसिद्ध दोनों है।'[12] समाज ने अपनी ही जगह उपलब्ध चीज़ों से अपना मजबूत ढांचा खड़ा कर लिया, जिसकी बराबरी बीसवीं इक्कीसवीं सदी की सरकारें भी अभी तक नहीं कर पाई हैं। पानी के मामले में राजस्थान के समाज में जिस तरीके से प्रयासरत रहकर अपनी साधना तथा स्थानीय साधनों के बल पर जिन गहराइयों को, ऊंचाइयों को छुआ वैसा विश्व में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता। विश्व के अमीर देशों में भी मरु प्रदेशों में पानी के भयंकर संकट के बावजूद भी वहां के समाज ने राजस्थान के समाज की तरह किसी व्यवस्थित परंपरा में काम नहीं किया। लेकिन भारत में लंबे समय से समाज ने अपनी पानी की बूंदों को सहेज कर रखने की परंपरा को अपनी स्मृति में रखकर पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित किया है।

आज भी खरे हैं तालाब-

'आज भी खरे हैं तालाब' पुस्तक में अनुपम मिश्र ने तालाब निर्माण तथा राजस्थान में परंपरागत जल संग्रहण के तरीकों का बड़ी गहनता से अध्ययन करके विशद वर्णन किया है। इस पुस्तक में समाज की स्थानीय प्रथाओं एवम परम्पराओं के अनुरूप क्रियाशील समाज का इतने सहज रूप में इतना रुचिकर वर्णन किया गया है, जिसको पढ़कर पाठक स्वयं उसमें रम जाता है। कैसे वहां के स्थानीय समाज में तालाब रूपी बड़े शून्य को बड़ा सोच विचार कर बारीकी से बनाने काम सदियों तक किया जाता रहा। इस काम को करने वाला समाज का एक पूरा ढांचा था, जो पूरे देश में विद्यमान था। इनको अलग-अलग नामों से जाना जाता था जैसे सूत्रधार, गजधर, सिलवट या सिलावट, पथरोट, बुलई, कोली, अगरिया, माली, भील, मीणा, ओड़िया, ओहरी, मुसहर, लुनिया, डाँड़ी, संथाल, कोहली, रामनामी पालीवाल, जलसुंघा, मटकूट, नोनिया, मिर्धा, चुनकर सहरिया, बनचर, परिहार आदि नामों के अनुसार सबकी अपनी अलग विशेषता थी। जिन्होंने तालाबों को जीवंतता प्रदान की। 'समाज के साधारण व्यक्ति से लेकर साधु- संत, महात्माओं, राजा- रानी आदि ने तालाब निर्माण में अपना योगदान दिया। समाज के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित कर समाज की दृष्टि में अमर बन गए।'[13] प्राचीन काल से इतर देखा जाए तो ऐसा माना जाता है कि पांचवी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक पूरी भारत भूमि पर तालाब बनाने का काम किया जाता रहा। लगभग एक हजार वर्ष तक समाज द्वारा आपसी सहयोग से तालाब बनाने की परंपरा अनवरत रूप से चलती रही। यह व्यवस्था इतनी मजबूत थी कि पन्द्रहवी सदी के उपरांत उत्पन्न संकट के समय भी यह पूरी तरह मिट न पायी। 19वीं शताब्दी के अंत तक भी तालाब निर्माण का कार्य किया गया था। समाज द्वारा आपसी सहयोग से तालाब बनाने की परंपरा अनवरत रूप

से चलती रही। इस कार्य को एक उत्सव मनाने की भांति सभी मिलजुल कर करते थे। तालाबों के रखरखाव की जिम्मेदारी भी समाज बड़ी बखूबी से निभाता था। राज और समाज दोनों मिलकर यह काम हंसी-खुशी करते थे। राजस्थान के तो गांवों के नाम में भी सर अर्थात तालाब जुड़ा था। वही राजस्थान जिसकी मरुभूमि का वर्णन सरकारी आंकड़ों में बड़ी भयावहता से किया जाता है, परंतु 'समाज ने चारों ओर से मृगतृष्णा से घिरी तपती मरुभूमि में एक जीवंत संस्कृति की नींव रखी और मरुभूमि के जल से अभावग्रस्त स्वभाव को प्रकृति का खेल मान कर उसमें सम्मिलित हो गया।'[14] बीकानेर जैसलमेर, बाड़मेर आदि कुछ जिलों में कम वर्षा, भूजल की गहराई और खारे पानी आदि बातों को झुठलाते हुए समाज ने अपनी परंपराओं और स्थानीय प्रयासों से तालाबों तथा अन्य जल स्रोतों का निर्माण किया एवं वर्षा की बूंदों को सहेज कर रखने का काम किया। इसका जीवंत उदाहरण 'जैसलमेर के पास बना घडसीसर तालाब है, जिसको जैसलमेर के राजा मेहरावल घड़सी ने विक्रम संवत 1391 अर्थात सन 1335 में बनवाया।'[15] इस तालाब के निर्माण के समय जैसलमेर राज उथल-पुथल, आंतरिक कलह, षड्यंत्र और संघर्ष के दौर से गुजर रहा था। जिस कारण तालाब निर्माण के समय वहां उपस्थित मेहरावल घड़सी की हत्या कर दी गई थी। फिर भी समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी समझकर उनकी रानी विमला ने उनका तालाब बनाने का स्वप्न पूरा किया। यह तालाब इतना विशाल था, जिसको आंखें नाप नहीं पाती। घडसीसर के घाट पर पाठशाला, रसोई, मंदिर, प्रवेशद्वार आदि बने थे। 'सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सूरज घडसीसर में मन भर सोना उड़ेलता, यानी सूरज के मन भरने जितना।'[16] परंतु वर्तमान में उपेक्षा के कारण इस तालाब का पूरा रूप ही परिवर्तित हो गया है, लेकिन यह आज भी पानी देकर समाज को कृतज्ञ कर रहा है। ऐसे ही बहुत से तालाब उस दौर में राजस्थान में बनाए गए। सुख हो या दुख दोनों ही प्रसंग में समाज तालाब बनाता था। तालाबों का नामकरण और कहीं-कहीं तो विवाह भी किया जाता था। 'तालाब को पूरे जल परिवार का एक सदस्य माना जाता उसमें सब का पानी और उसका पानी सब में है, ऐसी मान्यता थी।'[17] समाज के तन और मन में तालाब था। परंतु भारत में अंग्रेजी राज आज आने के पश्चात इस पूरी व्यवस्था की उपेक्षा का दौर शुरू हो गया। गुणी समाज के हाथों से पानी का प्रबंध छीन लिया गया, अंग्रेजों ने तालाबों की जिम्मेदारी स्वयं न निर्वाह कर उस की अदला बदली का खेल शुरू कर दिया। अलग से पीडब्ल्यूडी तथा सिंचाई विभाग बनाकर उनको तालाब के रखरखाव की जिम्मेदारी सौंपी। परंतु कोई भी तालाबों के प्रति अपनी जिम्मेदारी उठाने का इच्छुक नहीं था, जिस कारण तालाबों की दुर्दशा और बिगड़ने लगी। रही सही कसर शहरों में पाइप लाइन बिछाकर पूरी कर दी गई। उपेक्षा की गाद से पटे तालाबों पर नए शहर कस्बे बाजार बनाये गए। परंतु कहा जाता है कि पानी अपना रास्ता नहीं भूलता, इस कारण तालाब की जमीन पर बनाए गए आशियानों में वर्षा के दिनों में पानी लबालब भर जाता है, और लोगों को समस्या का सामना करना पड़ता है। आवश्यकता से अधिक भूमिगत जल पर निर्भरता के कारण जल स्तर बहुत नीचे पहुंच गया है। जल की जरूरत पूरी करने के लिए व्यवहारिक तथा खर्चीली पद्धतियां अपनाई जा रही है। 'शहरों को पानी तो चाहिए परंतु पानी दे सकने वाले तालाब नहीं।'[18] लेकिन इतना सब कुछ सहन करने के बाद भी कुछ तालाब आज भी अपनी जीवटता का परिचय दे रहे हैं और वरुण देवता का प्रसाद अपने में समा कर समाज को पानी उपलब्ध करा रहे हैं। समाज का कुछ हिस्सा आज भी इनके रखरखाव की जिम्मेदारी निभा रहा है, और सजग प्रहरी की तरह इन तालाबों की रक्षा करता है। क्योंकि आज भी उस समाज का जनजीवन इन तालाबों पर टिका है। तालाबों को भूल चुके समाज के कुछ हिस्से ने 'आज भी खरे हैं तालाब' पुस्तक

को पढ़कर एवं इससे प्रेरित होकर पुनः तालाब निर्माण एवं पुराने तालाबों के जीर्णोद्धार का कार्य किया। इस पुस्तक ने समाज के सामुदायिक जीवन की परंपराओं एवं संस्कृति के पुनः एकीकरण में एक सूत्रधार की भूमिका अदा की।

क्या पूरब क्या पश्चिम -

'क्या पूरब का पश्चिम' पुस्तक विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखे गए निबंध का संकलन है। विद्यानिवास मिश्र ने इन निबंधों के माध्यम से पाठक को पूरब और पश्चिम में स्पष्ट भेद बताते हुए भारत और भारतीयता की सही पहचान से अवगत कराया है। इसमें उन्होंने भारतीय संस्कृति, पहचान, परंपरा, आस्था, लोक, पूर्व एवं पश्चिम की संस्कृति का भेद, विश्व संस्कृति आदि का विशद वर्णन किया। क्योंकि पश्चिम को विकसित, समृद्ध और अग्रगामी आधुनिक सभ्यता का प्रतीक माना जाता है, और जो उनसे साम्य नहीं रखते वे पूरब के प्रतीक माने जाते हैं। परंतु 'पूरब और पश्चिम में अपने अपने गौरव जैसा कुछ नहीं है, बल्कि गौरव तो मनुष्य द्वारा अपनी कमियां दूर करके संभावनाओं का विकास कर पूर्णतर होने में है।'[19] क्योंकि किसी अन्य की नकल करते कोई देश आगे नहीं बढ़ सकता। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति चाहे जहां रहे उनकी भाषा, वेशभूषा, भौगोलिक क्षेत्र, खानपान, बेशक अलग हो परंतु संस्कृति का आत्म तत्व सब में एक जैसा है। उनका अपने परिवेश से संबंध समान है। क्योंकि भारतीय स्वभाव और संस्कार मनुष्य का सहज धर्म है। 'यहां का संसार सहभागिता का संसार है एकांत भोग का नहीं।'[20] भारतीयता की पहचान स्वयं ही व्यक्त होने को आतुर रहती है उसके लिए अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि भारतीय संस्कृति में कुछ ऐसी विशेषताएं होती हैं जो किसी को बिना बताए भी व्यक्ति के व्यवहार से ही प्रकट हो जाती हैं। जैसे भारतीयों में अन्य की बातों को ध्यान पूर्वक सुनने का धीरज होता है। क्योंकि बचपन से ही हमें अकेले होने का एहसास नहीं कराया जाता बल्कि पेड़- पौधों, नदियों, पशु-पक्षी, चांद-तारों आदि से बातें करना सिखाया जाता है, यही हमारे अंदर धीरज का भाव उत्पन्न करता है। यहां परस्पर विरोधी लगने वाले भावों को भारतीय संस्कृति जोड़ कर रखती है, अन्विति बनाए रखती है। भारत में बहुरूपों की सामंजस्यता है। कहीं-कहीं भारत की पहचान ओझल होने की बात भी हुई। क्योंकि स्वाधीनता के पश्चात भारत वैचारिक दृष्टि से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। हमारे चिंतन में खोट उत्पन्न हो गया। पश्चिम के प्रभाव में आने से भारत में औद्योगिकरण भी आया, जिससे देश की मानसिकता में परिवर्तन होकर इसका अर्थ साझेदारी के व्यापक बोध से उपभोक्तावादी का हो गया। ऐसी परिस्थिति से बचने का तरीका महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक हिंद स्वराज में सुझाया था।यदि इस को नहीं अपनाया गया तो मनुष्य के पास फिर कुछ सोचने विचारने लायक कुछ भी नहीं बचेगा। भारत ने हमेशा से सर्व की चिंता की क्योंकि भारतीय चिंतन दृष्टि में सब में सब का हिस्सा है। 'हमारे यहाँ शासन का आधार लोकायत था, पश्चिम की तरह द्वेत नहीं।'[21] परंतु अंग्रेजों ने यहां आकर मातृभूमि को भौगोलिक टुकड़ों में विभाजित कर दिया। परंतु विचारों को बांटा नहीं जा सकता। भारत के समस्त जीवन में अध्यात्म हैं। मंदिर, गुरुद्वारे, तीर्थ स्थल, संत, विचारक किसी एक के नहीं हैं, बल्कि सबके हैं। भारत के धर्म में उदारता और सर्वग्राह्यता है, जिससे पश्चिम के जैसे निरपेक्ष नहीं हुआ जा सकता। भारत का इतिहास बोध मनुष्य को उसकी नियति से प्रथक नहीं देखता। मनुष्य और समाज के बीच, मनुष्य और विश्व के बीच, पूर्वर्ती और परवर्ती समाज के मध्य परस्पर अंतरवलंबिता पर बल दिया जाता है। राम, कृष्ण और बुद्ध यहां समष्टि और व्यष्टि को अपने लीला से सार्थक करते हैं, जो नित्य अभिव्यक्त एवं शाश्वत है। इनकी उपासना हमारे मध्य उनकी एक जीवंत उपस्थिति के रूप में की जाती है। भारत अपनी प्राचीनता से बंधा होकर भी आधुनिक मूल्य को सहजता से स्वीकारता

है। यह भारत की असल परंपरा है। 'परंपरा का तो अर्थ ही होता है- पर से भी परे, श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर, सतत वर्तमान एवं निरंतर साथ रहने वाला।'[22] परंपरा विचार को कभी जड़ नहीं होने देती, बल्कि उत्तरोत्तर उर्ध्वगामी हो कर विचारों से मनुष्य को बांधकर चलती है, किन्तु मनुष्य के लिए बंधन नहीं बनती। यह सत्य है, वर्तमान है। भारत एक विशेष परंपरा का वाचक है। राष्ट्र मानव समुदाय का वाचक है जिसके अंदर वृहत्तर भारत समाहित है। भारत की परंपरा इतिहास से बहुत व्यापक है जिसका अनुशासन के रूप में स्वेच्छा से वरण किया जाता है। यही भारत की शक्ति का आधार है, जिसके समक्ष पश्चिम की आधुनिकता बहुत अर्थहीन है। आधुनिकता का सही अर्थ तो चेतना की प्रक्रिया है, जागरूकता है, जो अपने परिवेश और समाज के प्रति होती है। आधुनिकता तो किसी भी चीज की उसकी देश, काल, परिस्थिति के अनुसार उसके मूल्य की एक नई तरीके से जांच है। भारतीय संस्कृति एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें संतुलन बना रहता है, मानव और प्रकृति के बीच। पश्चिम के पर्यावरण चिंतन और भारत के पर्यावरण चिंतन में यही तो मूल भेद है। पश्चिम जहां सारी सृष्टि को उपभोक्तावादी दृष्टि से देखता है, वही भारतीय संस्कृति में मनुष्य और सृष्टि एक दूसरे पर अवलंबित हैं। उनमें परस्पर सर्व आत्मभाव निहित है, जिससे अपने आप पर्यावरण की सुरक्षा हो जाती है। परंतु तकनीक के विकास से संसार भर में इसको प्रतिष्ठित स्थान मिलने लगा है, जिस कारण बहुतायत में उन वस्तुओं का भी उत्पादन हो रहा है जो उपभोग में शायद ना आए। समष्टि और व्यष्टि के लिए लाभ का लक्ष्य सर्वोपरि हो गया है। तकनीकी विकास ने परिवेश को दूषित कर दिया है। दूषित होने से बचने के लिए तकनीकी विकास की सौद्देश्यता को पहचानना आवश्यक है, स्वयं को पहचानने की आवश्यकता है। अपने भारतीय संस्कारों के प्रति आस्था रखनी है, श्रद्धा और विश्वास बनाए रखना है, परंपराओं का पालन करना है। जिसको अब तक भी बने रहने में वाचिक परम्परा ने महती भूमिका निभाई। भारतीय समाज में वाचिक परंपरा लंबे समय से लोगों के जीवन में शामिल रही है। वाचिक परंपरा से तात्पर्य किसी बात को कड़ी के रूप में समाज के लोगों तक पहुंचाने से है। यह परंपरा लोक में इतनी व्याप्त थी कि निरक्षर व्यक्ति भी जीवन के ज्ञान में पूर्ण शिक्षित था। सब मिलकर इस वाचिक परंपरा को पीढ़ी दर पीढ़ी सौंपने का काम कर रहे थे। अगर हम आज अपनी परंपराओं को अपने ढंग से जानेंगे,परखेंगे, उतनी ही वह परंपरा हमारी होगी। भारतीय संस्कृति वैचारिक रूप में भारतीय है। यह विशाल पहचान रखने के साथ-साथ समर्पण का भाव भी रखती है। 'यह हमारी सामासिक संस्कृति है, जिसने किसी पर भी स्वयं को आरोपित न करके सब की विविधताओं, अनेकरूपता को स्वीकारा है।'[23]

चिपको आंदोलन -

गांधी शांति प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित पुस्तक में चिपको आंदोलन की आरंभिक पृष्ठभूमि से लेकर आंदोलन के सफल होने तक का वर्णन क्रमबद्ध रूप से किया गया है। चिपको आंदोलन एक ऐसे अहिंसक आंदोलन के रूप में उभरा, जिसने अपने स्थानीय प्रयासों के बल पर पर्यावरण से सकारात्मक रूप से जुड़े हर वर्ग को प्रभावित किया। चिपको आंदोलन ने उजड़ते जंगल को बचाकर उसे पुनः हरा भरा बनाने एवं स्थानीय प्रयासों, परंपराओं को जीवित रखने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की एवं समाज के विभिन्न वर्गों को पर्यावरण संरक्षण के विषय में जागरूक करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस आंदोलन का मुख्य जोर वनों की संपदा के उचित दोहन में स्थानीय निवासियों की साझेदारी पर था। चिपको आंदोलन ने समाज के विभिन्न वर्गों को पर्यावरण संरक्षण के विषय में जागरूक करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपनी अहिंसक प्रवृत्ति के साथ शुरू यह आंदोलन शीघ्र ही उत्तराखंड के कई

हिस्सों में फैल गया था। 'दशौली ग्राम स्वराज्य संघ' नामक संस्था के सदस्य चंडी प्रसाद भट्ट ने चिपको आंदोलन आरंभ करने का बीड़ा उठाया। यह आंदोलन सर्वोदयी विचारधारा में आस्था रखने वाले लोगों से भी प्रेरित था, जिसके नेता सुंदरलाल बहुगुणा थे। शुरुआत में आंदोलन का उद्देश्य केवल सरकार द्वारा जंगल के अँगू नामक वृक्ष के कटान का अधिकार स्थानीय निवासियों को ना देकर एक विदेशी कंपनी को दिए जाने का विरोध करना था। क्योंकि इससे पहले तक स्थानीय निवासी वनों और उनकी अपार संपदा के उपयोग को अपना हक मानते थे। लेकिन जब सरकार ने नियमों में परिवर्तन करना शुरू किया तो वहां का स्थानीय समाज भी अपनी आवाज उठाने को मजबूर हुआ। दशोली ग्राम स्वराज्य संस्था के सदस्यों ने सबसे पहले तो इस समस्या का ध्यान पूर्वक विश्लेषण किया और फिर हल निकाला कि जब सरकार के सहयोग से कंपनी वाले पेड़ काटने आएंगे तो संस्था तथा स्थानीय निवासी पेड़ों से चिपक जाएंगे और पेड़ों को अंगवलठा करके अर्थात आलिंगन करके बचाएंगे। आंदोलन का मुख्य जोर वनों की संपदा के उचित दोहन में स्थानीय निवासियों की साझेदारी पर था। संस्था ने अपने प्रयासों से इस आंदोलन को एक बहुत बड़े जनांदोलन में बदल दिया था। इस आंदोलन को सफल बनाने में महिलाओं ने भी बहुत अहम भूमिका निभाई। क्योंकि जब अपनी सारी कोशिशें नाकाम होती देख सरकार और वन विभाग के अधिकारियों ने मिलकर एक योजना के तहत अलकनंदा की सहायक नदियों के जल क्षेत्र के हिस्से रेणी के जंगल कंपनी वालों से कटवाने के लिए रेणी क्षेत्र के पुरुषों को अपनी कूटनीति में फंसा कर वर्षों से रुका मुआवजा देने के बहाने वहां से अलग जगह बुला लिया। जिससे उस गाँव मे सिर्फ महिलाएं और बच्चे बचे, और कंपनी वाले वहां जाकर आसानी से पेड़ काट सके। लेकिन इस बार कंपनी वालों का सामना आंदोलनकारी पुरुषों से न होकर वहां की महिलाओं से हुआ जिनका नेतृत्व गांव की एक महिला गौरा देवी ने किया था। 'महिलाओं ने यह सब जंगल को अपना मायका समझकर किया था, और अपने प्रयासों से अपने मायके को बचा लिया था।' क्योंकि वन के विषय में किसी भी गलत नीति का सबसे अधिक कुप्रभाव महिलाओं पर ही पड़ता था, महिलाओं को ही जंगल में लकड़ी, चारा आदि बटोरने जाना पड़ता था। महिलाओं ने अपनी बहादुरी और सूझबूझ से जंगल बचा लिया था। अंततः कहा जा सकता है कि पेड़ों को काटने का अधिकार स्थानीय निवासियों को ना दिए जाने के विरोध में शुरू हुए चिपको आंदोलन ने समय के साथ विस्तृत होकर पर्यावरण संरक्षण तथा संवर्धन की दिशा में अग्रसर हो कर काम किया और आंदोलन को जनांदोलन में परिवर्तित करके इसकी सफलता का अध्याय लिखा।

उपभोग की लक्ष्मण रेखा -

इस पुस्तक के लेखक रामचन्द्र गुहा हैं। गुहा ने पर्यावरण से जुड़े सवालों को लेकर पश्चिमी दुनिया और गैर पश्चिमी दुनिया अर्थात अमेरिका और भारत के लगभग दो दशकों के शोध का एक तुलनात्मक इतिहास प्रस्तुत किया। क्योंकि इन दोनों ही देशों में शक्तिशाली पर्यावरणीय आंदोलन चले। परन्तु जहां अमेरिकी पर्यावरणवाद में निर्जन वन की मानसकिता थी, वहीं भारतीय पर्यावरणवाद का दर्शन किसानवाद था। 'निर्जन वन की मानसिकता से आशय राष्ट्रीय पार्कों की व्यवस्था को बचाना और इसका विस्तार करना है, जिसमें नदियां, नेशनल पार्क, ऑटोमोबाइल, ट्रैन, विश्वविद्यालय, बीजली घर सबका अस्तित्व एक साथ बना रह सकता है।'[25] वही दूसरी तरफ भारतीय किसानवाद से तात्पर्य खेतिहर समाज से है, जिसका आदर्श मनुष्य के स्तर की तकनीक एवं समुदाय का मजबूत बन्धन है। लेखक का मानना है कि औद्योगिक क्रांति के पश्चात ही विश्व में पर्यावरण के हास् की अवधारणा ने जन्म लिया। क्योंकि पूरे

विश्व मे प्राकृतिक संसाधनों की छीना झपटी के कारण पर्यावरण में व्यापक बदलाव आया, जबकि औधोगिकरण से पहले भी पर्यावरण में बदलाव हो रहा था, वह केवल स्थानीय स्तर पर था वैश्विक नहीं।'[26] औधोगिकरण के बाद आधुनिक कहे जाने वाले युग में 'विकास की दो धाराएं समानांतर रूप से स्थापित हुई, एंथ्रोपोसेंट्रिक और बियोसेंट्रिक अर्थात मनाव केद्रित और प्रकृति केंद्रित।'[27] एंथ्रोपोसेंट्रिक को पश्चिम की भौतिकवादी विचारधारा से जोड़ा जा सकता है जबकि बियोसेंट्रिक को भारतीय संस्कृति की संरक्षणवादी विचारधारा से। भारत में हुए पर्यावरणीय आंदोलन की भाषा गांधीवादी दर्शन से प्रभावित थी, जिसने पर्यावरण को बचाने के लिए गांधी की ग्राम केंद्रित आर्थिक व्यवस्था की और लौटने का आह्वान किया।

निष्कर्ष

उपरोक्त सभी विचारों से यह स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य सभ्यता के आधुनिक माने जाने वाले संपोषणीय विकास के सिद्धांत के विपरीत भारतीय संस्कृति में वैदिककाल से ही समपोषणीयता की धारा बीजरूप में विद्यमान रही है। जो समय के साथ प्रस्फुटित होकर समाज के कण कण में समाहित हो गयी। समपोषणीयता के इसी आयाम को अपने विचारों में स्थान देकर कुछ विचारकों ने इस पक्ष में सिद्धान्त गढ़े थे, जिन्होंने भारतीय संस्कृति में निहित विकास के इस आयाम की प्रमाण पुष्टि की। इस लेख में ऐसे ही कुछ विचारकों के विचारों को स्थान दिया गया है जो विश्व में चल रही पाश्चात्य विकास की एक अलग आधुनिक परिपाटी के इतर भारत के परम्परागत ज्ञान को हम सबके समक्ष रखते हैं। यह प्राचीन काल से परम्पराओं के रूप में समाज को पीढ़ी दर पीढ़ी सौंपी जा रही धरोहर स्वरूप विकास की धारा को समर्पित है। जिसमे ऋग्वेद के अथर्ववेदीय भूमिसूक्तम से लेकर महात्मा गांधी, अनुपम मिश्र, विद्यानिवास मिश्र और एक विशेष विचारधारा से सम्बंधित होंने के बावजूद भी भारतीय संस्कृति की इस विशेषता पर अपने विचारों का प्रतिपादन करने वाले रामचंद्र गुहा हैं।

संदर्भ सूची

1. चौबे ब्रजबिहारी, 'अथर्ववेदीयं भूमिसूक्तम', कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, पृष्ठ संख्या-12.1.1(6)
2. चौबे ब्रजबिहारी, 'अथर्ववेदीयं भूमिसूक्तम', कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर, पृष्ठ सँख्या-12.1.12(23)
3. चौबे ब्रजबिहारी, 'अथर्ववेदीयं भूमिसूक्तम', कात्यायन वैदिक साहित्य प्रकाशन, होशियारपुर
4. गांधी मोहनदास, 'हिन्द स्वराज', प्रभात पेपरबेक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या-5
5. गांधी मोहनदास, 'हिन्द स्वराज', प्रभात पेपरबेक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2019, पृष्ठ संख्या-58
6. मिश्र अनुपम, 'साफ माथे का समाज', पेंगुइन बुक्स, पेंगुइन रेंडम हाउस प्रा. लि. गुड़गांव, हरियाणा, पृष्ठ संख्या-1

7. मिश्र अनुपम, 'साफ माथे का समाज', पेंगुइन बुक्स, पेंगुइन रेंडम हाउस प्रा. लि. गुड़गांव, हरियाणा, पृष्ठ संख्या-154
8. मिश्र अनुपम, 'राजस्थान की रजत बूंदे', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या-8
9. मिश्र अनुपम, 'राजस्थान की रजत बूंदे', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या-17
10. मिश्र अनुपम, 'राजस्थान की रजत बूंदे', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या-23
11. मिश्र अनुपम, 'राजस्थान की रजत बूंदे', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या-27
12. मिश्र अनुपम, 'राजस्थान की रजत बूंदे', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या-39
13. मिश्र अनुपम,' आज भी खरे हैं तालाब', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, पृष्ठ संख्या-8
14. मिश्र अनुपम,' आज भी खरे हैं तालाब', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर.
15. मिश्र अनुपम,' आज भी खरे हैं तालाब', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर.
16. मिश्र अनुपम,' आज भी खरे हैं तालाब', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर पृष्ठ संख्या-62
17. मिश्र अनुपम,' आज भी खरे हैं तालाब', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, पृष्ठ संख्या-77
18. मिश्र अनुपम,' आज भी खरे हैं तालाब', राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, पृष्ठ संख्या-82
19. मिश्र विद्यानिवास,' क्या पूरब क्या पश्चिम', सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-15
20. मिश्र विद्यानिवास,' क्या पूरब क्या पश्चिम', सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-21
21. मिश्र विद्यानिवास,' क्या पूरब क्या पश्चिम', सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-39
22. मिश्र विद्यानिवास,' क्या पूरब क्या पश्चिम', सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-53
23. मिश्र विद्यानिवास,' क्या पूरब क्या पश्चिम', सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली,
24. चिपको आंदोलन, गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली,
25. गुहा रामचन्द्र,' उपभोग की लक्ष्मण रेखा', पेंगुइन बुक्स, पेंगुइन रेंडम हाउस प्रा. लि. गुड़गांव हरियाणा, हिंदी प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या-79
26. गुहा रामचन्द्र,' उपभोग की लक्ष्मण रेखा', पेंगुइन बुक्स, पेंगुइन रेंडम हाउस प्रा. लि. गुड़गांव हरियाणा, हिंदी प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या-83
27. गुहा रामचन्द्र,' उपभोग की लक्ष्मण रेखा', पेंगुइन बुक्स, पेंगुइन रेंडम हाउस प्रा. लि. गुड़गांव हरियाणा, हिंदी प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या-89

अध्याय-7

स्वतंत्रता संघर्ष के समय भारत में संविधान सभा की अवधारणा का विकास

भरत देवड़ा
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग,
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर, राजस्थान

संविधान सभा से तात्पर्य उस विशेष सभा से हैं जो किसी देश के संविधान के निर्माण हेतु बुलाई जाती है। यह संविधान सभा जनता द्वारा निर्वाचित भी हो सकती हैं या शासन अध्यक्ष द्वारा स्थापित भी। लोकतांत्रिक प्रभुसत्ता संपन्न राष्ट्र में संविधान निर्माण का कार्य जनता द्वारा चुनी गई निकाय करती है, जिसे संविधान सभा कहा जाता है।[1] भारत में संविधान सभा की संकल्पना राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के साथ ही जुड़ी रही हैं। ब्रिटिश राजनीतिक दासता एवं साम्राज्यवादी शोषण ने भारत में राष्ट्रवादी भावना को जन्म दिया। 19वीं शताब्दी में भारत में पुनर्जागरण के विकास के साथ ही ब्रिटिश सत्ता विरोधी भावना जोर पकड़ने लगी थी। इस समय भारत में होने वाले सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलनों ने भारतीयों में जागृति लाने तथा राष्ट्रवाद के विकास में अपनी भूमिका निभाई थी। भारतीय जनमानस पर दयानंद सरस्वती के स्वराज्य संबंधी विचारों का प्रभाव पड़ा। दयानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि," कोई कितना भी कहे परंतु स्वदेशी राज्य सर्वोपरि होता है। विदेशी राज्य चाहे जितना अच्छा हो, लेकिन वह सुखदायक नहीं हो सकता।"[2] अतः अब भारतीयों ने अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए स्वराज की मांग करना शुरू कर दिया।

1885 ई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ ही भारतीयों को केंद्रीय विधान मंडल में अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने की मांग कांग्रेस द्वारा समय-समय पर की गई। 1889 ई में बंबई में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता विलियम वेंडरबने ने की, इस सम्मेलन में ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमंस के सदस्य चार्ल्स ब्रेडलोफ भी उपस्थित थे। ब्रेडलोफ ने एक प्रस्ताव रखा जिसके तहत भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं को शुरू करने संबंधित योजना की रूपरेखा शामिल थी। ब्रेडलोफ इग्लैंड लौटकर हाऊस ऑफ कॉमन्स में कांग्रेस द्वारा पारित बिल की तर्ज पर 12 फरवरी 1890 को भारतीय परिषद संशोधन विधेयक पेश किया। इस विधेयक में केंद्रीय व प्रांतीय विधान परिषदों में भारतीयों की संख्या एवं शक्तियों के वृद्धि की बात थी। 1891 में ब्रेडलोफ की मृत्यु के बाद यह बिल अधर में लटक गया।[3] कांग्रेस के निरंतर प्रयासों के परिणामस्वरुप इंडियन काउंसिल एक्ट 1892 द्वारा विधान परिषदों में भारतीयों को अधिक प्रतिनिधित्व एवं पहले से अधिक अधिकार प्रदान किए गए।[4] हालांकि उग्र राष्ट्रवादी 1892 के अधिनियम से संतुष्ट नहीं थे। उनकी मांग थी कि विधान परिषदों में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत हो और उन्हें बजट पर मतदान करने तथा सार्वजनिक कोष पर नियंत्रण का अधिकार हो। उनका नारा था बिना प्रतिनिधित्व के कर नहीं।[5] उग्रवादियों का मानना था कि ब्रिटिश सत्ता भारतीयों के प्रति उत्तरदायी न होकर ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी हैं, अतः इससे ब्रिटिश हित की ही पूर्ति हो सकती थी, भारतीयों के हित की नहीं।[6] अतः बाल गंगाधर तिलक ने राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए स्वराज की प्राप्ति पर बल दिया। तिलक में राष्ट्रवादी आंदोलन को शिक्षित मध्यमवर्ग

से जनसाधारण में फैलाने का कार्य किया था। भारत में स्वराज एवम् स्वतंत्रता की मांग में ही संविधान बनाने की मांग निहित थी। राष्ट्रीय स्वतंत्रता का यह स्वभाविक अर्थ था कि भारत के लोग अपने राजनीतिक भविष्य का निर्णय स्वयं करें। भारत में सर्वप्रथम संविधान सभा की संकल्पना का दर्शन 1895 ई के एक मसौदा विधेयक में होता है। यह बिल भारत के लिए एक संविधान प्रारूपण का प्रथम गैर सरकारी प्रयास का प्रतिनिधित्व करता है। बाल गंगाधर तिलक के निर्देशन में तैयार इस बिल को एनी बेसेंट ने स्वराज बिल -1895 (होमरूल बिल – 1895) की संज्ञा दी थी। 8 मई 1895 को स्वराज बिल की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया कि इसमें उस सविधान की रूपरेखा शामिल है जिसे वह ब्रिटिश सरकार से भारत के लिए प्राप्त करना चाहते हैं। इस बिल को भारत का संविधान अधिनियम भी कहा गया।[7] इस बिल में हमें तिलक की दूरदर्शिता ज्ञात होती है उन्होंने भारतीयों की स्वतंत्रता के लिए स्वराज की मांग की तथा स्वराज की प्राप्ति के लिए संविधान सभा की मांग सर्वप्रथम रखी थी। ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत ऑस्ट्रेलिया को 1900 ई तथा दक्षिण अफ्रीका को 1909 ई में औपनिवेशिक प्रभुसत्ता प्रदान की गई। उक्त घटनाओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को भी अपने देश की प्रभुसत्ता प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।[8]

बीसवीं शताब्दी में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के तीव्र होने के साथ ही भारत में संविधान सभा की मांग भी तेज होने लगी। प्रथम विश्व युद्ध के समय तत्कालीन वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज ने भारतीयों को आश्वासन प्रदान किया कि भारतीयों के लिए आत्मनिर्णय का सिद्धांत अपनाया जाएगा।[9] अतः भारतीयों ने इसी आशा के साथ ब्रिटिश सत्ता को सहयोग प्रदान किया कि युद्ध समाप्ति के पश्चात हमें स्वशासन की प्राप्ति हो जाएगी। कांग्रेस के गरम और नरम दलों में समन्वय स्थापित कर एनी बेसेंट ने गृह शासन आंदोलन (होमरूल आंदोलन) की रूपरेखा तैयार की। यह एक वैधानिक आंदोलन था, इसका उद्देश्य भारतीयों को स्वशासन दिलाना था। तिलक ने 28 अप्रैल 1916 ई को बेलगांव में होमरूल लीग की स्थापना की तथा सितंबर 1916 ईस्वी में एनी बेसेंट ने मद्रास में अखिल भारतीय होमरुल लीग की स्थापना की। इन दोनों लीगों का उद्देश्य स्वराज प्राप्ति ही था। तिलक में इसी आधार पर नारा दिया था कि ”स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मैं इसे लेकर रहूंगा।”[10]

अब देश में स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा स्वराज के लिए सत्याग्रह किए जाने की योजना बनाई जाने लगी। इसी बीच भारत सचिव मोंटेग्यू कि 20 अगस्त 1917 को ऐतिहासिक घोषणा,” ब्रिटिश शासन की नीति है कि भारत के प्रशासन में भारतीय जनता को भागीदार बनाया जाए और स्वशासन के लिए विभिन्न संस्थानों का क्रमिक विकास किया जाए, जिससे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य से जुड़ी कोई उत्तरदायी सरकार स्थापित की जा सके।”[11] इसके बाद भारतीयों की संविधान सभा के गठन हेतु बढ़ती हुई आकांक्षा को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने 1919 के भारत सरकार अधिनियम की प्रस्तावना में इस घोषणा को ज्यों का त्यों दोहराया गया था। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात अमेरिकी राष्ट्रपति वुडरो विल्सन, ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉयड जॉर्ज आदि राजनेताओं ने घोषणा की कि, ”दुनिया में भविष्य की शांति सुनिश्चित करने के लिए आत्म निर्णय का सिद्धांत लागू किया जाना चाहिए।” इसी घोषणा से प्रेरित होकर 26 से 31 दिसंबर 1918 को दिल्ली में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 33 वें सत्र में श्रीमती एनी बेसेंट ने भारत में आत्म निर्णय के सिद्धांत को लागू करने की मांग करते हुए एक प्रस्ताव रखा।[12]

महात्मा गांधी ने भी अन्य भारतीय नेताओं की तरह यह विचार रखे कि भारतीयों को ही अपना संविधान बनाने का काम सौंपा जाए। गांधीजी ने असहयोग आंदोलन के समय सितंबर 1921 में भविष्यवाणी की थी कि,” इस वर्ष के अंत से पहले स्वराज पाने का मुझे इतना पक्का विश्वास है कि 31 दिसंबर के बाद स्वराज पाए बिना जिंदा

रहने कि मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।''[13] हालांकि गांधीजी अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति में सफल नहीं हुए लेकिन जनवरी 1922 में उन्होंने संविधान सभा की मांग करते हुए कहा कि,'' स्वराज ब्रिटिश संसद का उपहार नहीं होगा, यह केवल भारत के लोगों की घोषित इच्छा के एक विनम्र अनूसमर्थन के माध्यम से व्यक्त किया जाएगा......... भारतीय जनता की इच्छाओं की पुष्टि ब्रिटिश नौकरशाही के माध्यम से नहीं बल्कि उनके द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से व्यक्त की जाएगी। एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में स्वराज कभी भी एक मुफ्त उपहार नहीं हो सकता। यह देश के सर्वश्रेष्ठ रक्त के साथ खरीदा जाने वाला खजाना है। सब हम इसके लिए महंगा भुगतान करेंगे तो यह एक उपहार होगा।''[14] 'क्लब 1921' द्वारा मद्रास में फरवरी 1922 को आयोजित एक परिचर्चा में वी. एस. रामास्वामी शास्त्री ने सुझाव दिया कि भारत के लिए एक संविधान निर्माण हेतु एक सम्मेलन बुलाया चाहिए। तत्पश्चात एनी बेसेंट की पहल से 1922 में केंद्रीय विधानमंडल के दोनों सदनों के सदस्यों की एक संयुक्त बैठक शिमला में हुई जिसमें संविधान निर्णय के लिए एक सम्मेलन बुलाने का निर्णय लिया गया। इसके बाद फरवरी 1923 में दिल्ली में एक सम्मेलन में केंद्रीय व प्रांतीय विधानसभाओं के सदस्यों ने भाग लिया तथा भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के स्वराज वाले प्रभुत्व के साथ समानता रखने वाले संविधान की अनिवार्यता को रेखांकित किया गया।[15] तेग बहादुर संप्रू की अध्यक्षता में 1924 को एक राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में 'कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल' का प्रारूप तैयार किया गया। जिसे जनवरी 1925 को गांधी जी की अध्यक्षता में दिल्ली में आयोजित सर्वदलीय बैठक में पेश किया गया तथा एनी बेसेंट की अध्यक्षता वाली उपसमिति ने इसमें अनेक संशोधन किए। अंततः यह बिल प्रारूप समिति द्वारा प्रकाशित किया गया। मई 1925 में उक्त बिल भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों के 43 नेताओं के हस्ताक्षर युक्त ज्ञापन के साथ लेबर पार्टी के नेता डी ग्राहम पॉल के पास भेज दिया गया। इस बिल को लेबर पार्टी का समर्थन प्राप्त हुआ। हाऊस ऑफ कॉमन्स में बिल पेश होने के बाद दिसंबर 1925 में पहली बार पढ़ा गया। हालांकि लेबर पार्टी की सरकार की पराजय के बाद इस विधेयक का भविष्य अधर में लटक गया।[16] भारतीयों द्वारा भारत के लिए संवैधानिक रूपरेखा प्रस्तुत करने का यह एक प्रमुख प्रयास था।

टी. रंगाचारी ने 5 फरवरी 1919 को केंद्रीय विधान मंडल में एक प्रस्ताव रखा जिसके अनुसार भारत सरकार अधिनियम 1919 में जल्द संशोधन की मांग की गई ताकि भारत में पूर्ण स्वराज प्राप्त किया जा सके। 8 फरवरी 1924 को इस पर चर्चा के समय मोतीलाल नेहरू द्वारा विकल्प प्रस्ताव लाया गया। जिसे 18 फरवरी 1924 को सदन द्वारा अपनाया गया। इस संकल्प प्रस्ताव को 'राष्ट्रीय मांग' के नाम से जाना गया। इसके अनुसार भारत के भविष्य के संविधान को भारतीयों द्वारा स्वयं तैयार किया जाना चाहिए।[17] 7 सितंबर 1925 केंद्रीय विधान मंडल में बोलते हुए मोतीलाल नेहरू ने कहा कि,'' हम केंद्रीय विधान मंडल में जिम्मेदार सरकार चाहते हैं।''[18] मोतीलाल नेहरू की यह मांग आगे चलकर भारतीयों के लिए एक राष्ट्रीय मांग बन गई। उनकी पहल के कारण पहली बार केंद्रीय विधान मंडल में इस मांग का समर्थन किया कि, ''भारत का भावी संविधान स्वयं भारतीय द्वारा बनाया जाए।'' भारतीयों की उपरोक्त मांग के मद्देनजर नवंबर 1927 में ब्रिटिश सरकार ने सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक संविधानिक आयोग (साइमन आयोग) नियुक्त किया। इस आयोग का उद्देश्य यह जांच करना था कि क्या भारतीयों को और अधिक संवैधानिक अधिकार दिए जाने चाहिए? इस आयोग में सभी सदस्य अंग्रेज थे। अतः भारतीयों ने इसका विरोध किया। क्योंकि उन्हें अपने ही देश के संविधान निर्माण में भाग लेने के अधिकार से वंचित किया गया।[19] इसकी प्रतिक्रिया में उस समय के भारत सचिव लॉर्ड बर्कनहेड ने भारतीयों को चुनौती देते हुए कहा था कि,'' भारतीय लोक

संवैधानिक सुधार के लिए ठोस प्रस्ताव बनाने में असमर्थ हैं, ऐसा प्रस्ताव जिसको सभी भारतीयों का व्यापक राजनीतिक समर्थन प्राप्त हो।"[20]

17 मई 1927 को कांग्रेस के मुंबई अधिवेशन में मोतीलाल नेहरू ने एक प्रस्ताव पेश किया। उसमें कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से केंद्रीय तथा प्रांतीय विधान मंडलों के निर्वाचित सदस्यों तथा राजनीतिक दलों के नेताओं के परामर्श से भारत के लिए एक संविधान बनाने का आह्वान किया। हमीद खान के सुझाव पर इस प्रस्ताव में 'संविधान' शब्द के स्थान पर 'स्वराज संविधान' पढ़ने का संशोधन पेश किया गया। संशोधनों के साथ 'स्वराज संविधान' प्रस्ताव 28 दिसंबर 1927 को कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में पेश किया गया एवं पुनः पारित किया गया। कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष एम.ए. अंसारी ने भी अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत के लिए एक संविधान तैयार करने की आवश्यकता पर जोर दिया।[21] मद्रास कांग्रेस 1927 के निर्देशानुसार कांग्रेस की कार्यसमिति ने भारत की स्वराज हेतु संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए 19 मई 1928 को बंबई में एक सर्वदलीय सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में फैसला लिया गया कि," संविधान को पूर्ण जिम्मेदार सरकार की स्थापना के लिए तैयार किया जाना चाहिए।"अतः सविधान के सिद्धांतों के निर्धारण के लिए मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में एक समिति नियुक्त की गई।[22] इस समिति ने 10 अगस्त 1928 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से जाना जाता है। यह भारतीयों द्वारा अपने देश के लिए सर्वांगीण संविधान बनाने का प्रथम प्रयास था। भारत के संविधान का प्रारूप औपनिवेशिक राज्य के सिद्धांत पर आधारित था। उसमें सविधान प्रतिरूप के अनुसार पूर्ण उत्तरदायी सरकार का उपबंध था। इसमें इस बात का ढ़तापूर्वक उल्लेख किया गया कि," भारत की प्रभुसत्ता उनकी जनता (भारतीयों) में वास करती हैं।"[23]

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अंतर्गत प्रतिनिधि सरकार एवं स्वतंत्रता की मांग बार-बार उठती रही। जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चंद्र बोस आदि के दबाव के चलते 'डोमिनियन स्टेटस' के स्थान पर 'पूर्ण स्वराज्य' को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया गया। दिसंबर 1929 को कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में 'पूर्ण स्वराज्य' प्रस्ताव पारित किया गया।[24] गांधीजी के सविनय अवज्ञा आंदोलन के समय बढ़ते जनाक्रोश एवम् स्वराज की बढ़ती मांग को देखते हुए ब्रिटिश शासन द्वारा भारत में संवैधानिक सुधारों पर चर्चा के लिए 1930-32 के बीच तीन गोलमेज सम्मेलन आयोजित किए गए थे। भीमराव अंबेडकर ने 1930 में प्रथम गोलमेज सम्मेलन में कहा था कि," देश के वर्तमान वातावरण में कोई भी संविधान जो अधिसंख्यक लोगों को स्वीकार्य नहीं है, प्रभावी सिद्ध नहीं होगा। यदि आप चाहते हैं कि नया सविधान प्रभावशाली एवं चिरस्थायी ही हो, तो उस संविधान की प्रमुख बातें कोरे तर्क-वितर्क पर नहीं अपितु जनता की राय के आधार पर तय होनी चाहिए।"[25] अंततः सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के मसले पर उत्पन्न गतिरोध के कारण गोलमेज सम्मेलन बिना किसी नतीजे के समाप्त हो गए। तीसरे गोलमेज सम्मेलन के बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा मार्च 1933 में जारी किए गए श्वेत पत्र में भारत में संवैधानिक सुधारों के लिए ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव की रूपरेखा दी गई थी। इन प्रस्तावों पर विचार करने वाली संयुक्त संसदीय समिति का मत था कि," फिलहाल भारत में प्राधिकारियों को विशिष्ट संवैधानिक शक्तियां प्रदान करने का प्रस्ताव व्यवहारिक नहीं हैं।"[26] श्वेत पत्र किसी भी तरह से भारत के लोगों की इच्छा को व्यक्त नहीं करता। अतः लगभग सभी भारतीय राजनीतिक दलों ने इसकी निंदा की। 3 मई 1934 को रांची में एम. ए. अंसारी की अध्यक्षता में स्वराज पार्टी की बैठक आयोजित की गई। इसमें श्वेत पत्र के प्रस्ताव को खारिज किया एवं भारत के

लिए स्वीकार्य संविधान बनाने के लिए एक संविधान सभा के गठन की मांग का प्रस्ताव पास किया। यह पहला अवसर था जब भारत के लिए इस संविधान सभा की मांग को औपचारिक रूप से आगे रखा गया ।[2]

18 जून 1934 में कांग्रेस कार्यकारिणी ने घोषणा की कि श्वेत पत्र का एकमात्र विकल्प यह है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा द्वारा एक संविधान तैयार किया जाए। साथ ही कहा गया कि संविधान सभा का कर्तव्य होगा कि वह महत्वपूर्ण अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व की पद्धति का निर्धारण करें और उनके हितों की रक्षा के लिए प्रावधान करें। इस प्रकार सांप्रदायिक पंचाट की स्थिति में देश में उत्पन्न गतिरोध को रोकने के लिए कांग्रेस ने अपना रवैया भी स्पष्ट कर दिया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी ने 5-7 दिसंबर 1934 को पटना में संयुक्त संसदीय समिति (1933-34) की रिपोर्ट में अनुशंसित भारतीय संवैधानिक सुधार की योजना को ठुकरा दिया गया तथा इसका एकमात्र संतोषजनक विकल्प भारतीय संविधान सभा द्वारा तैयार किए गए संविधान को बताया गया।[28] श्वेत पत्र एवं संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट के आधार पर 1935 में ब्रिटिश संसद द्वारा भारत सरकार अधिनियम- 1935 पास किया गया। इस अधिनियम द्वारा भारत में पहली बार संघात्मक सरकार की स्थापना की व्यवस्था की गई। कांग्रेस ने 12-14 अप्रैल 1936 में लखनऊ अधिवेशन में 1935 के इस अधिवेशन को पूर्ण रूप से अस्वीत कर एक राष्ट्रीय संकल्प प्रस्तुत कर कहा कि, "कांग्रेस राष्ट्रीय स्वतंत्रता और एक लोकतांत्रिक राज्य के लिए भारतीय लोगों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करती हैं, और यह घोषणा करती है कि कोई भी संविधान बाहरी प्राधिकरण द्वारा लागू नहीं किया जा सकता, वह संविधान भारत के लोगों की संप्रभुता को कम नहीं कर सकता। कांग्रेस भारतीय लोगों के नाम पर व्यस्त मताधिकार से निर्वाचित एक पूर्ण भारतीय संविधान सभा की मांग को दोहराती हैं।"[29]

1935 के अधिनियम का विरोध करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने इसे 'दासता का आज्ञा पत्र' बताया तथा 27 दिसंबर 1936 कांग्रेस के अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में नेहरू ने व्यस्त मताधिकार द्वारा निर्वाचित संविधान सभा की मांग को कांग्रेस की मुख्य नीति बनाने तथा प्रांतीय चुनाव में एक जन समर्थन तैयार करने की बात कही। इस सम्मेलन के परिणामस्वरुप कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने विधानसभा के चुनाव एवं सभी दलों के एक संविधान सम्मेलन बुलाने संबंधी दो प्रस्ताव पारित किए गए। प्रांतीय विधानमंडलों के चुनाव में कांग्रेस ने 11 में से 7 प्रांतों में बहुमत प्राप्त किया। तत्पश्चात अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने दिल्ली में 18 मार्च 1937 में एक प्रस्ताव पारित कर दावा किया कि चुनावों में निर्वाचको ने इस संविधान सभा की मांग का अनुमोदन कर दिया है। इस प्रस्ताव में व्यस्त मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा के माध्यम से राष्ट्रीय स्वतंत्रता पर आधारित संविधान बनाने की मांग की गई तथा 1935 के अधिनियम को समाप्त करने की मांग की गई थी। 19-20 मार्च 1937 में दिल्ली में हुई कांग्रेसी विधायकों के अखिल भारतीय सम्मेलन में उक्त प्रस्ताव को पुनः ढ़ता से दोहराया गया। अगस्त-अक्टूबर 1937 के दौरान केंद्रीय विधानसभा तथा कांग्रेस शासित प्रत्येक प्रांत की प्रांतीय विधानसभाओं में ऐसे ही प्रस्ताव पास किए।[30]

17 सितंबर 1937 को एस. सत्यमूर्ति ने केंद्रीय विधानमंडल में प्रस्ताव रखा कि 1935 का अधिनियम राष्ट्र की इच्छा का प्रतिनिधित्व नहीं करता अतः इसे व्यस्त मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत पर कांग्रेस की सातों प्रांतीय सरकारों ने अपने विधानसभा में प्रस्ताव पारित किया कि ब्रिटिश सरकार ने भारत के लोगों की सहमति के बिना ग्रेट

ब्रिटेन और जर्मनी के बीच युद्ध में भारत को भागीदार बनाकर भारतीय जनमत कानून की पूर्ण अवहेलना की है। अतः अल्पसंख्यकों के लिए प्रभावी उपायों के साथ लोकतंत्र के सिद्धांतों को भारत में लागू किया जाना चाहिए। भारत को अपना संविधान बनाने के लिए एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में माना जाना चाहिए। 15 नवंबर 1939 को सी. राजगोलाचारी ने कहा था कि," एक निर्वाचित संविधान सभा के विभिन्न राजनीतिक दलों और समुदायों के बीच उत्पन्न विवादों का स्थाई समाधान प्रदान कर सकती हैं। 19 नवंबर 1939 को महात्मा गांधी ने भी 'हरिजन' में 'एक ही रास्ता' शीर्षक नामक लेख में व्यस्त मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा को ही देश की सांप्रदायिक एवं अन्य राजनीतिक वैधानिक समस्याओं को सुलझाने का एकमात्र रास्ता बताया। ब्रिटिश सरकार ने भारत में सांप्रदायिक प्रश्न पर बात करने के लिए क्रिप्स को भारत भेजा। इस पर कांग्रेस ने अपना रुख स्पष्ट करते हुए 18 से 22 दिसंबर 1939 को वर्धा में आयोजित कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में संकल्प प्रस्ताव पारित किया कि कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित संविधान सभा ही सांप्रदायिक सवालों के अंतिम निपटान को प्राप्त करने का एकमात्र तरीका है। नेशनल लिबरल फेडरेशन ने 27-29 दिसंबर 1939 को इलाहाबाद में आयोजित अपने 21 वें अधिवेशन में प्रस्ताव पास कर औपनिवेशिक स्वराज की मांग की और कहा कि भारत के भविष्य का संविधान भारतीय संघ तैयार करें।[31]

देश में संविधान के लिए बढ़ते दबाव के मद्देनजर ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस व भारतीय जनता की भारतीयों द्वारा निर्वाचित संविधान सभा की मांग को पहली बार आधिकारिक रूप से अगस्त प्रस्ताव (1940) में स्वीकार किया। वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो ने 8 अगस्त 1940 को भारत की संवैधानिक व्यवस्था के बारे में घोषणा की कि, "सम्राट की सरकार युद्ध समाप्त होने के बाद यथाशीघ्र एक ऐसी प्रतिनिधि सभा के निर्माण की सहर्ष अनुमति देगी जिसमें भारत के राष्ट्रीय जीवन के प्रमुख तत्वों को प्रतिनिधित्व हो और जो देश के लिए नए संविधान का निर्माण कर सकें।"[32] अगस्त प्रस्ताव को कांग्रेसी एवं भारतीयों द्वारा अस्वीकार करने के पश्चात ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने भारत के राजनीतिक एवं वैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए क्रिप्स मिशन को भारत भेजा। 11 मार्च 1942 में क्रिप्स ने अपना प्रस्ताव प्रस्तुत किया," जिसके अनुसार युद्ध समाप्ति के पश्चात ब्रिटिश भारत एवं देशी रियासतों के प्रतिनिधियों से मिलाकर एक संविधान निर्मात्री परिषद का गठन किया जाएगा, जो भारत के लिए संविधान तैयार करेगी। जो प्रांत या देशी रियासतें भारत संघ में शामिल नहीं होना चाहते वह पृथक् संविधान बना सकते हैं।"[33] इस मिशन द्वारा युद्ध समाप्ति पर संविधान सभा के गठन, पूर्ण स्वतंत्रता के स्थान पर डोमिनियन स्टेटस का दर्जा देने तथा प्रांतों व रियासतों को पृथक् संविधान बनाने की छूट देने के कारण भारत के सभी राजनीतिक दलों, नेताओं आदि ने इस योजना का विरोध किया। अंततः क्रिप्स मिशन की योजना असफल रही। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की 8 अगस्त 1942 को बंबई में आयोजित बैठक में भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव के अंतर्गत भारत में ब्रिटिश शासन को तत्काल समाप्त करने की मांग की गई तथा मांग की गई कि भारत की अनंतिम सरकार एक संविधान सभा का निर्माण करें जो ऐसा संविधान बना सके जो सभी वर्गों को स्वीकार्य हो।[34]

भारत में राजनीतिक व्यवस्था को देखते हुए तत्कालीन वायसराय लॉर्ड वेवल ने 14 जून 1945 को 'वैवेल योजना' प्रस्तुत की तथा वायसराय की कार्यकारिणी परिषद के पुनर्गठन एवं सांप्रदायिक समस्या के समाधान हेतु शिमला सम्मेलन (24 जून-14 जुलाई, 1945) आयोजित किया। वैवेल योजना के अंतर्गत युद्ध समाप्ति के पश्चात संविधान निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ की जाएगी। यह अंतरिम व्यवस्था भारत में नया संविधान लागू होने तक ही थी। संप्रदायिकता के प्रश्न पर जिन्ना की हठधर्मिता के कारण शिमला सम्मेलन भी असफल रहा। 19 सितंबर 1945 को

वायसराय वैवेल ने महामहिम की सरकार के इरादे की पुष्टि की कि," भारत के लिए एक संविधान बनाने की संस्था जल्द से जल्द मूर्त रूप में सामने आ जाएगी। भारत के लिए एक नए संविधान बनाने और क्रियान्वित करने का कार्य जटिल और मुश्किल है, जिसके समाधान के लिए सभी के सहयोग, सद्भावना और धैर्य की आवश्यकता होगी। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने सितंबर 1945 को भारत के संविधान निर्माण हेतु लोकतांत्रिक रूप से भारतीयों द्वारा निर्वाचित संविधान सभा की मांग को पुनः दोहराया तथा मांग की कि यह संविधान संघीय होनी चाहिए। बी. एन. राव ने जनवरी 1946 को एक संवैधानिक योजना प्रस्तुत की जिसका उद्देश्य कांग्रेस व मुस्लिम लीग में उत्पन्न विवाद को समाप्त कर भारत की एकता को बनाए रखना था। उनकी योजना के अनुसार भारत एक संघ हैं जिसे 'संयुक्त राज्य भारत' कहा जा सकता है।[35]

विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद 19 फरवरी 1946 को ब्रिटेन की संसद ने हाउस ऑफ लॉर्डस में घोषणा करते हुए भारत सचिव लॉर्ड पैथिक लोरेंस ने कहा कि," यह ना केवल भारत, ब्रिटेन और राष्ट्रमंडल के लिए ही, बल्कि संपूर्ण संसार की शांति के लिए आवश्यक है कि भारतीय लोकमत के नेता के साथ जो बातचीत चल रही है, उसकी सफल परिणिति हो। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ब्रिटिश सरकार ने निश्चय किया है कि मंत्रिमंडल के कैबिनेट स्तर के मंत्रियों का एक विशेष मिशन भारत भेजा जाए। जिसमें स्वयं भारत सचिव के अलावा सर स्ट्रैफर्ड क्रिप्स और ए. वी. एलेग्जेंडर शामिल होंगे।" 23 मार्च 1946 को तीन सदस्यों वाला कैबिनेट मिशन भारत पहुंचा। तत्कालीन भारत के सभी दलों एवं भारतीय नेताओं से बातचीत तथा चर्चा के पश्चात 16 मई 1946 को अपनी योजना प्रकाशित की। इस योजना में भारत के संविधान के निर्माण के सिद्धांतों और प्रक्रिया दोनों का विस्तार से उल्लेख किया गया था। मिशन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि उसका उद्देश्य तो केवल एक ऐसी प्रक्रिया को आरंभ कर देना था जिसके अंतर्गत भारतीय अपने देश के लिए संविधान बना सके।[36] संविधान निर्मात्री परिषद के गठन के बारे में मिशन का विचार था कि सबसे अधिक संतोषजनक उपाय तो यही होगा कि व्यस्क मताधिकार के आधार पर इसका निर्वाचन हो। पर यदि इस समय ऐसी कार्रवाई की गई तो नए संविधान की रचना में बहुत अधिक देरी हो जाएगी, इसलिए मिशन के अनुसार एकमात्र व्यावहारिक उपाय यह था, कि प्रांतीय विधानसभाओं का निर्वाचनकारी संस्थाओं के रूप में उपयोग किया जाए। इस संबंध में मिशन ने सिफारिश की कि इस संविधान सभा में प्रांतों का प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर हो और प्रायः 10 लाख व्यक्तियों के ऊपर एक सदस्य निर्वाचित हो। प्रांतों के लिए जो स्थान निर्धारित किए जाएं, उन्हें मुख्य समुदायों के बीच बांट दिया जाना चाहिए और इस प्रयोजन के लिए विभिन्न समुदायों के जनसंख्या के आधार पर तीन वर्ग बना दिए जाने चाहिए यथा- सिक्ख, मुस्लिम और सामान्य। प्रत्येक संप्रदाय के प्रतिनिधि प्रांतीय सभा में उस संप्रदाय के प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाएं। मतदान एकल संक्रमणीय मत द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर हो।[37]

कैबिनेटमिशन के प्रस्ताव के अनुसार प्रस्तावित संविधान सभा में देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या भी उनकी जनसंख्या के आधार पर निर्धारित की जानी थी, पर आरंभिक अवस्था में राज्यों का प्रतिनिधित्व एक 'नेगोशिएटिंग कमेटी' अर्थात वार्ता समिति द्वारा सुनिश्चित होना था। प्रस्तावित संविधान सभा की कुल सदस्य संख्या 385 थी। इन सदस्यों में से 294 तो ब्रिटिश भारत के प्रांतों से चुने जाने थे, चार सदस्य चार चीफ कमिश्नरों के प्रांतों अर्थात दिल्ली, अजमेर-मारवाड़, कुर्ग एवं ब्रिटिश बलूचिस्तान तथा शेष 93 प्रतिनिधि देशी रियासतों से चुने जाने थे।[38] कैबिनेट मिशन योजना में ब्रिटिश भारत के लिए जो 296 स्थान निर्धारित किए गए थे, उनके लिए चुनाव

जुलाई-अगस्त 1946 में संपन्न हुए। चुनाव में कांग्रेस को 223 सामान्य तथा चार चीफ कमिश्नरों के प्रांतों में से 202 स्थानों पर विजय प्राप्त हुई। इसके अलावा कांग्रेस को 78 मुस्लिम स्थानों में से तीन स्थानों और तीन सिक्खों के स्थानों पर विजय प्राप्त हुई। इस प्रकार कांग्रेस ने कुल 208 स्थानों पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार मुस्लिम लीग ने मुसलमानों को आवंटित स्थानों में से पांच स्थानों को छोड़कर शेष 73 स्थानों पर विजय प्राप्त की थी।[39] इन चुनावों में सभी वर्गों, हितों और अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधि चुन कर आए, जिनमें अनेक विद्वान तथा विधिवेत्ता भी शामिल थे। उनमें भारत के विभिन्न दलों के प्रमुख नेता और अध्यक्ष भी शामिल थे।

हालांकि संविधान सभा का निर्वाचन व्यस्त मताधिकार पर आधारित नहीं होने के कारण अनेक विद्वानों ने इसका विरोध किया कि इसके सदस्य भारतीय जनता का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं माने जा सकते। परंतु उक्त आलोचना अधिक औचित्य नहीं रखती क्योंकि तत्कालीन उपलब्ध व्यवस्था के अंतर्गत संविधान सभा के सदस्यों का चयन किया गया था। जो अपनी सीमाओं के बावजूद भारत के तमाम क्षेत्रों, समुदायों , वर्गों, जातियों एवं हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। 12 अगस्त 1946 को वायसराय ने पंडित जवाहरलाल नेहरू को अंतिम सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। वायसराय के इस कदम के विरोध में लीग ने 16 अगस्त 1946 को सीधी कार्यवाही की शुरुआत की। इस प्रकार भारत के भावी संविधान के निर्माण के समय मुस्लिम लीग ने असहयोग और सीधी कार्रवाई अर्थात् दंगे फसाद की राजनीति शुरू कर दी।[40]

20 नवंबर 1946 को भारत के वायसराय लॉर्ड वेवेल ने सभी निर्वाचित प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया कि वह 9 दिसंबर 1946 को संविधान सभा की पहली बैठक में उपस्थित हो। इस प्रकार 9 दिसंबर 1947 को उस संविधान सभा का विधिवत उद्घाटन हुआ। यह एक ऐतिहासिक अवसर था क्योंकि भारत का भावी संविधान बनाने के लिए जनता के प्रतिनिधि पहली बार एकत्रित हुए। संविधान सभा की प्रथम बैठक में 207 सदस्य उपस्थित हुए। डॉ सच्चिदानंद सिन्हा को संविधान सभा का स्थाई सभापति चुना गया।[41] इसके बाद 11 दिसंबर 1946 को संविधान सभा का स्थाई अध्यक्ष डॉ राजेंद्र प्रसाद को चुन लिया गया।[42] वस्तुतः स्वतंत्रता से पहले गठित हुए संविधान सभा स्वतंत्रता के बाद भी भारत में कुछ परिवर्तित रूप में अस्तित्व में आई। इसका कारण यह था कि आजादी से पहले मुस्लिम लीग ने इसका बहिष्कार किया था। अब विभाजन के बाद पाकिस्तान के क्षेत्रों से संबंधित सदस्य इनमें से चले गए। अंततः 26 नवंबर 1949 को भारत का संविधान बनकर तैयार हुआ। विधान सभा ने संविधान बनाने का भारी कार्य 3 वर्ष ते कम समय में पूरा कर लिया।[43]

इस प्रकार भारत में जहां एक तरफ स्वतंत्रता संघर्ष जोर पकड़ने लगा था, उसी के साथ ही साथ भारत के लिए स्वराज की मांग भी बढ़ती चली गई। स्वराज की स्थापना के लिए बार-बार भारतीयों द्वारा निर्वाचित संविधान सभा की मांग की गई ताकि भारतीयों द्वारा भारत के लिए एक संविधान बनाया जा सके। उग्रवादी नेता तिलक ने होमरूल आंदोलन द्वारा स्वशासन की तथा कांग्रेस ने जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में 1929 में पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की। 1935 के अधिनियम के पश्चात भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने व्यस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित संविधान सभा की मांग को अपना मुख्य उद्देश्य बना लिया। अंततः भारतीयों की बढ़ती मांग एवं द्वितीय विश्व युद्ध के कारण वैश्विक राजनीति के परिवर्तन के परिणामस्वरुप ब्रिटिश पर बढ़ते दबाव के कारण ब्रिटिश सरकार ने कैबिनेट मिशन द्वारा

संविधान सभा के गठन की अनुमति प्रदान की। कैबिनेट मिशन द्वारा प्रस्तुत योजना के अनुसार संविधान सभा का गठन किया जा सका। जिसने भावी भारत का संविधान तैयार किया था।

संदर्भ सूची

1. कश्यप, सुभाष. 'हमारा संविधान' , नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2005, पृ. 24 ।
2. विद्यावाचस्पति, इन्द्र. 'भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास' , सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली,1960, पृ. 23।
3. राव, बी. शिवा. दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन- सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स, वॉल्यूम -1, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1966, पृ. 3-4 ।
4. ताराचंद. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, जिल्द -2, पृ. 485-486।
5. चंद्र, बिपिन. 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष', हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1970, पृ. 77।
6. गौतम, पी.एल. 'आधुनिक भारत' , राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1998, पृ 520।
7. राव, बी. शिवा. *पुर्वोक्त* , पृ. 5।
8. राव, बी. शिवा. दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज - ए केश स्टडी, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1968, पृ. 1-2।
9. सिंह, डॉ वीरकेश्वर प्रसाद. 'भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास', ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 212।
10. सिंह, अयोध्या. 'भारत का मुक्तिसंग्राम' , मैकमिलनइंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 1987, पृ. 296।
11. दत्त, रजनीपाम. *इंडिया टुडे* , मनीष पब्लिकेशन, कलकत्ता, 1970, पृ. 353।
12. राव, बी. शिवा. दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन- सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स, वॉल्यूम-1, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1966, पृ. 31-32।
13. बोस, सुभाष चंद्र. *दि इंडियन स्ट्रगल*, 1920-34, लंदन,1935, पृ. 84।
14. यंग इंडिया (संपादक : महात्मा गांधी), 5 जनवरी 1922।
15. राव, बी. शिवा. दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन- सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स, वॉल्यूम -1, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1966, पृ. 43।
16. वही, पृ. 43 ।
17. वही, पृ. 35 ।
18. वही, पृ. 41 ।
19. वही, पृ. 53 ।
20. चंद्र, बिपिन. *पुर्वोक्त* , पृ. 202-203 ।
21. राव, बी. शिवा. दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन- सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स, वॉल्यूम-1, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1966, पृ. 53।

22. वही, पृ. 58 ।
23. वही, पृ. 58-60। कश्यप, सुभाष : पुर्वोक्त , पृ. 25-26।
24. चंद्र, बिपिन. *पुर्वोक्त* , पृ. 203-206 ।
25. हरनोटिया, जसराज. समता की स्तंभ बाबासाहेब और बाबूजी, *नवभारत प्रकाशन*, नई दिल्ली, 2008, पृ. 40 ।
26. कश्यप, सुभाष. *पुर्वोक्त* , पृ. 26।
27. राव, बी. शिवा : दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन- सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स, वॉल्यूम -1, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1966, पृ. 76 ।
28. वही, पृ. 77-79।
29. वही, पृ. 80 ।
30. वही, पृ. 81, 82, 84, 86, 93 ।
31. वही, पृ. 94,104,105,108,116, 118 ।
32. वही, पृ. 124-125 ।
33. सिंह, अयोध्या. *पुर्वोक्त* , पृ. 706
34. राव, बी. शिवा. दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन- सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स, वॉल्यूम -1, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1966, पृ. 132।
35. वही, पृ. 136-138, 143,145, 147, 159।
36. वही, पृ. 204,213।
37. कश्यप, सुभाष. *पुर्वोक्त* , पृ. 28।
38. राव, बी. शिवा. दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन- सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स, वॉल्यूम -1, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1966, पृ. 216, 286।
39. वही, पृ. 216.
40. राव, बी. शिवा. दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन- सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स, वॉल्यूम -1, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1966, पृ. 385।
41. संविधान सभा वाद-विवाद, खंड- 1,2,3, पृ. 1-5 ।
42. राव, बी. शिवा. दी फ्रेमिंग ऑफ इंडियाज कॉन्स्टिट्यूशन- सेलेक्ट डॉक्युमेंट्स, वॉल्यूम -1, *आईआईपीए*, नई दिल्ली, 1966, पृ. 285।
43. कश्यप, सुभाष. हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2005, पृ. 31।

अध्याय-8

जी-20 और भारतीय पर्यटन का विकास

मोहम्मद फैसल
सहायक प्राध्यापक (गेस्ट फैकल्टी),
बीबीए (बैंकिंग, फाइनैन्शल सर्विसेज़, और इन्श्योरेन्स),
दिल्ली कौशल एवं उद्यमिता विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

पर्यटन उद्योग दुनिया में एक महत्वपूर्ण उद्योग बन चुका है। दुनिया के कई देशों की अर्थव्यवस्था लगभग पूर्ण रूप से पर्यटन पर निर्भर करती है। फलस्वरूप पर्यटन उद्योग पर सरकारें अत्यधिक ध्यान केंद्रित कर रही है। पर्यटन नीति इसमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि पर्यटन नीति प्रत्यक्ष रूप से दो देशों के संबंधों एवं बाजार की मांग पर निर्भर करती है।

संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार पर्यटन में "लगातार एक वर्ष से कम समय के लिए अपने सामान्य वातावरण से बाहर के स्थानों की यात्रा करने और वहाँ अवकाश, व्यवसाय और अन्य उद्देश्यों के रहने वाले व्यक्तियों की गतिविधियाँ शामिल हैं"। भारतीय पर्यटन नीति में पिछले 30 वर्षों में कई परिवर्तन देखे जा सकते है जिसने भारतीय पर्यटन उद्योग पर सकारात्मक प्रभाव डाले है। भारत प्राचीन काल से ही लोगों की जिज्ञासा का केंद्र रहा है। कई प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा भारतवर्ष का अपने लेखों में सौंदर्यपूर्ण तरीके से उल्लेख किया गया है।

वर्तमान समय में भी भारत दुनिया में अपनी विविधता के लिए प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, एवं पर्यावरण विविधता से समृद्ध भारतवर्ष की भूमि पर्यटन उद्योग के विकास के लिए अत्यधिक अनुकूल अवसर प्रदान करती है। भारत सरकार भी देश के विकास के लिए पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देने के हर संभव प्रयत्न कर रही है। पिछले वर्ष भारत द्वारा आयोजित जी-20 सम्मेलन की चर्चा के महत्वपूर्ण विषयों में पर्यटन भी चर्चा का एक विषय रहा है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा है कि "भारत की जी-20 अध्यक्षता एकता की व्यापक भावना को बढ़ावा देने के लिए काम करेगी, इसलिए हमारा विषय - 'एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य" है"।

पर्यटन उद्योग इस विषय से पूर्णतया समन्वय रखता है क्योंकि पर्यटन लोगों को एक दूसरे की संस्कृति, रीति-रिवाजों, व अन्य भिन्न चीजों को जानने एवं समझने के लिए बढ़ावा देता है एवं लोगों को एक दूसरे के प्रति सहनशील बनाने का प्रयास करता है। पर्यटन की वैश्विक संस्था संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन भी पर्यटन को सतत् विकास के लक्ष्यों एवं निर्धनता उन्मूलन को हासिल करने के कारक के रूप में बढ़ावा देता है। जी-20 सम्मेलन के आयोजन ने भारत को विश्व के पटल पर और अधिक मजबूत स्थिति प्रदान की है जिससे पर्यटन उद्योग को भी लाभ प्राप्त होगा।

जी-20 का इतिहास

जी-20 समूह 19 देशों (साउथ अफ्रीका, जर्मनी, सऊदी अरब, अर्जेंटीना, ऑस्ट्रेलिया, ब्राजील, कनाडा, चीन, साउथ कोरिया, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत, इंडोनेशिया, इटली, जापान, मेक्सिको, यूके, रूस, एवं तुरकिया), यूरोपियन यूनियन, और अफ्रीकन यूनियन से मिलकर बना है। इस समूह ने विकसित एवं विकासशील

देशों को एक साथ लाने का कार्य किया है। यह समूह दुनिया के 85% सकल घरेलू उत्पाद, 75% वैश्विक व्यापार, और दो-तिहाई जनसंख्या को प्रदर्शित करता है।[1]

जी-20 समूह की स्थापना 1999 में वैश्विक आर्थिक मंदी के बाद वित्त मंत्रियों को एक मंच प्रदान करने के रूप में की गई थी। जी-20 का पहला सम्मेलन सन् 2008 में वॉशिंगटन में आयोजित किया गया था। वर्ष 2011 से सम्मेलन वार्षिक रूप से आयोजित किया जाता है लेकिन इससे पहले सम्मेलन अर्धवार्षिक रूप से आयोजित किया जाता था। प्रारंभ में इसका केंद्र बिंदु केवल समष्टि अर्थशास्त्र मुद्दों तक सीमित था, बाद में इसके क्षेत्र का विस्तार किया गया जिसके अंतर्गत महत्वपूर्ण मुद्दों को सम्मिलित किया गया जैसे कि सतत् विकास, स्वास्थ्य, कृषि, जलवायु परिवर्तन, भ्रष्टाचार आदि।[2]

जी-20 समूह में विषयों को दो बैठकों में बाँटा जाता है: शेरपा बैठक और वित्त बैठक। शेरपा बैठक का नेतृत्व नेता का प्रतिनिधि करता है और इस बैठक में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक मुद्दों जैसे कृषि, शिक्षा, रोजगार, ऊर्जा, स्वास्थ्य, जलवायु, वातावरण, भ्रष्टाचार, पर्यटन, व्यापार, एवं निवेश पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। वित्त बैठक का नेतृत्व वित्त मंत्रियों और केन्द्रीय अधिकोष के गवर्नर द्वारा किया जाता है जो प्रत्येक वर्ष में चार बार आयोजित की जाती है। इस बैठक में राजकोषीय और मौद्रिक नीति के मुद्दों जैसे वैश्विक अर्थव्यवस्था, संरचना, वित्तीय समावेशन, वित्तीय विनियमन, और अंतराष्ट्रीय कर पर ध्यान केंद्रित किया जाता है।[3] प्रत्येक वर्ष 2008 से 2023 तक विभिन्न देशों में जी-20 सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें जनमानस एवं अर्थव्यवस्था से संबंधित विभिन्न महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा की गई है।

जी-20 और पर्यटन उद्योग

पर्यटन उद्योग के वर्तमान स्वरूप के विकास का इतिहास भारत में 70 साल से अधिक पुराना है और इसका श्रेय 1945 में स्थापित सार्जेंट कमेटी को दिया जाता है। इस कमेटी ने पर्यटन उद्योग को राष्ट्रीय महत्व की श्रेणी में रखने का प्रस्ताव रखा था।[4] 70 सालों से भारतीय पर्यटन उद्योग के विकास को निम्नलिखित चरणों में बांटा जा सकता है:

[1] विदेश मंत्रालय और सामाजिक संचार सचिवालय, ब्राज़ील गणराज्य. (2024). ब्राजील जी-20 प्रेज़िडन्सी: अंडरस्टैन्ड द जी-20 एण्ड ब्राज़ील'एस रिस्पांसिबिलिटी

[2] वही

[3] विदेश मंत्रालय, भारत सरकार. (2023). जी-20 बैकग्राउंड ब्रीफ़.

[4] सरंगधारण, एम., और सुनंदा, वी. एस. (2009). हेल्थ टुरिज़्म इन इंडिया (फर्स्ट इडिशन). न्यू सेन्चरी पब्लिकेशन्स.

चित्र 1: भारतीय पर्यटन और हास्पिटैलिटी उद्योग के विकास का क्रम

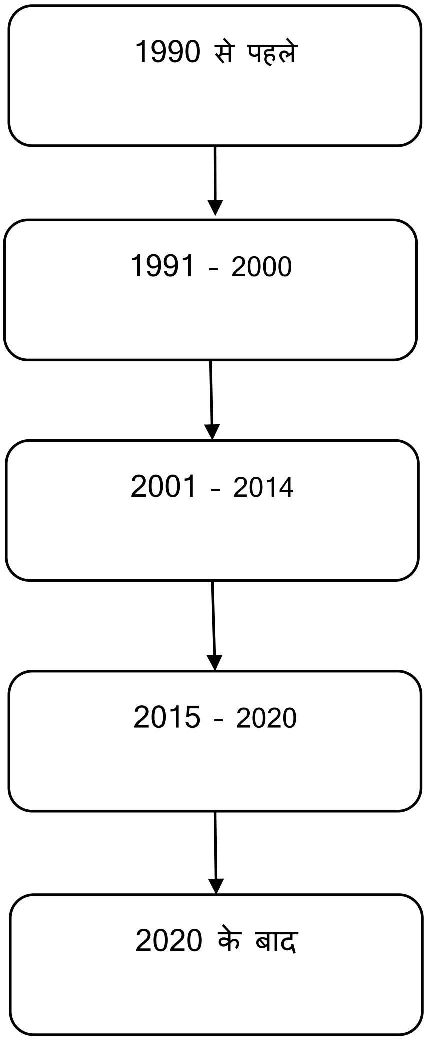

स्रोत: इंडियन ब्रांड एक्विटी फाउंडेशन (2023)[5]

1990 से पहले[6]

- वर्ष 1982 में राष्ट्रीय पर्यटन नीति की घोषणा की गई जिसमें पर्यटन उद्योग की महत्वपूर्णता और देश में इसके विकास के उद्देश्य को प्रस्तुत किया गया।
- वर्ष 1988 में सरकार ने पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से एक विस्तृत नीति भी बनाई।

1991 – 2000[7]

- विभिन्न राज्यों ने पर्यटन को उद्योग घोषित किया।
- सरकार ने सार्वजनिक-निजी क्षेत्र की साझेदारी को बढ़ावा देने को महत्व दिया।
- विभिन्न नीतियों द्वारा होटल उद्योग को बढ़ावा दिया गया।

---

[5] इंडियन ब्रांड एक्विटी फाउंडेशन (2023). टुरिज़म एण्ड हास्पिटैलिटी.

[6] वही

[7] वही

2001 – 2014[8]

- वर्ष 2002 में, 20 साल बाद राष्ट्रीय पर्यटन नीति की घोषणा की गई जिसका केंद्र बिंदु बुनियादी ढांचे या संरचना का विकास रखा गया।
- ऑनलाइन यात्रा पोर्टल के आगमन और हवाई यात्रा की दरों में कमी ने स्थानीय पर्यटन को बढ़ावा दिया।

2015 – 2020[9]

- राष्ट्रीय चिकित्सा और कल्याण पर्यटन बोर्ड की स्थापना की गई।
- ई-पर्यटक वीजा सुविधा शुरू की गई जिससे 2019 में 23.6% की विकास दर हासिल हुई।
- भारत सरकार ने ई-मेडिकल वीजा की भी सुविधा शुरू की जिससे 166 देशों के लोग भारत में ई-वीजा की सुविधा लेकर चिकित्सा और स्वास्थ्य संबंधित पर्यटन के लिए आ सकते हैं।

2020 के बाद[10]

- कोविड के प्रभाव को कम करने के लिए प्रारंभ में पहले 5 लाख वीजा मुफ्त में या निम्न मूल्य पर प्रदान किए गए।
- वर्ष 2022 में चिकित्सा और कल्याण पर्यटन के विकास के लिए राष्ट्रीय रणनीति बनाई गई।
- वर्ष 2028 तक 30.5 मिलियन अंतरराष्ट्रीय पर्यटकों का भारत में आगमन करने का अनुमान लगाया गया है।
- पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न कार्यक्रम शुरू किए गए जैसे 'देखो अपना देश वेबीनार', 'साथी पहल', 'पर्यटक सहायक प्रमाणीकरण', 'नमस्ते इंडिया' आदि।
- वर्ष 2022 में राष्ट्रीय पर्यटन नीति की घोषणा की गई जिसमें पर्यटन उद्योग को संपूर्ण रूप से सतत् विकास की रूपरेखा प्रदान की गई।
- राष्ट्रीय स्तर पर पर्यटक पुलिस का गठन किया गया।
- प्रत्येक दिन 24 घंटे 12 भाषाओं में पर्यटकों की सहायता के लिए टोल फ्री हेल्पलाइन शुरू की गई।

पर्यटन उद्योग भारत एवं वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण उद्योग है। वर्ष 2019 में वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में पर्यटन का 10.3% योगदान था और इस उद्योग ने 330 मिलियन लोगों को रोजगार प्रदान किया, यानी प्रत्येक दस में से एक व्यक्ति पर्यटन उद्योग में कार्यरत था।[11] पर्यटन उद्योग के योगदान एवं महत्वता को ध्यान में रखते हुए जी-20 समूह ने वर्ष 2020 में सऊदी अरब की अध्यक्षता के दौरान पर्यटन कार्यकारी समूह गठित किया।[12]

---

[8] वही

[9] वही

[10] वही

[11] वर्ल्ड ट्रेवल एंड टूरिज्म काउंसिल. (2020). द इम्पॉर्टन्स ऑफ ट्रैवल एण्ड टुरिज़म इन 2019.

[12] इटली सरकार. (2021). वर्किंग ग्रुप्स.

एक कार्यकारी समूह का गठन किसी विशिष्ट अंतरराष्ट्रीय मुद्दे के गहन अध्ययन के लिए किया जाता है। इस समूह में जी-20 देशों से विशेषज्ञ शामिल होते हैं और इस समूह का समन्वय जी-20 की अध्यक्षता कर रहे देश का सक्षम मंत्रालय करता है।[13] पर्यटन कार्यकारी समूह के गठन के समय इसका तत्काल उद्देश्य कोविड के दौरान यात्रा संबंधित प्रतिबंधों के नकारात्मक प्रभावों को कम करना था एवं इसका प्रमुख उद्देश्य पर्यटन उद्योग को अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास के एक प्रमुख कारक के रूप में विकसित करना रखा गया, इसलिए पर्यटन उद्योग को विकास नीति के केंद्र में रखा गया।[14] अगले वर्ष 2021 में इटली की अध्यक्षता के दौरान सुरक्षित आवागमन, पर्यटन संबंधित व्यवसाय एवं रोजगार को सहायता देना, भविष्य के लिए प्रतिरोधात्मक क्षमता विकसित करना, और उद्योग में सतत् गतिविधियों को बढ़ावा देना पर्यटन कार्यकारी समूह की वार्तालाप के मुख्य केंद्र बिंदु थे।[15]

बाली की अध्यक्षता में वैश्विक पुनर्प्राप्ति में पर्यटन की सकारात्मक भूमिका की प्रशंसा करते हुए इसे और बढ़ावा देने की बात कही गई एवं पर्यटन को अधिक मानव केंद्रित और सतत् बनाने के लिए समुदाय आधारित दृष्टिकोण संबंधी कार्यक्रमों को बढ़ावा देने पर जोर दिया गया।[16]

वर्ष 2023 में भारत की अध्यक्षता में पर्यटन कार्यकारी समूह ने पर्यटन उद्योग के क्षेत्र में पिछले वर्षों में किए गए प्रयासों को दिशा प्रदान करते हुए इसमें नए आयामों का समावेश किया, जिसमें सतत् सामाजिक-आर्थिक विकास एवं समृद्धि प्राप्त करने के लिए पर्यटन एवं संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका को एकमत समर्थन मिला।[17] भारत की अध्यक्षता में पर्यटन कार्यकारी समूह की बैठक को चार स्थानों पर आयोजन किया गया (तालिका 1 देखे)। इस कार्यकारी समूह ने पांच महत्वपूर्ण विषयों को चिन्हित किया - हरित पर्यटन, डिजिटलीकरण, कौशल पर्यटन, सूक्ष्म लघु और मध्यम उद्यम, एवं गंतव्य प्रबंधन।[18] भारत ने अपनी अध्यक्षता के दौरान 200 से अधिक बैठकों को देश में 100 से अधिक स्थानों पर आयोजित किया जिसमें पर्यटन को बढ़ावा देने के विचारों को प्रस्तुत किया गया।[19]

तालिका 1: जी-20 के दौरान विभिन्न विषयों पर पर्यटन कार्यकारी समूह की बैठकें

बैठक	**विषय**
कच्छ का रण, गुजरात	सामुदायिक सशक्तिकरण गरीबी उन्मूलन के लिए ग्रामीण पर्यटन

[13] वही

[14] अल-हूससेनी, आर., सराह. (2020). व्हाट द सऊदी अरब जी-20 प्रेज़िडन्सी कैन डू फॉर द टुरिज़म से सेक्टर.

[15] संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन. (2021). जी-20 मिनिस्टर्स वेलकम यू एन डब्ल्यू टी ओ रिकमेन्डेशन फॉर टुरिज़म'स ग्रीन ट्रैन्स्फर्मैशन.

[16] संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन. (2022). यूएनडब्ल्यूटीओ एट जी-20: पुटिंग पीपल एण्ड एमएसएमईज एट सेंटर ऑफ रिकवरी.

[17] पीआईबी. (2023). जी-20 लीडर्स एन्डोरसेस गोवा रोडमैप एण्ड 'ट्रैवल फॉर लाइफ' प्रोग्राम टू प्रोवाइड बिग बूस्ट टू टुरिज़म सेक्टर.

[18] वही

[19] विदेश मंत्रालय, भारत सरकार. (2023). इंडिया'स जी-20 प्रेसिडेनसी: ए सिनाप्सिस.

	पुरातात्विक पर्यटन को बढ़ावा देना: साझा सांस्कृतिक विरासत की खोज
सिलीगुड़ी, पश्चिम बंगाल	सतत् विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के माध्यम के रूप में अपूर्व अनुभव पर्यटन
	मिशन मोड में पर्यटन: अपूर्व अनुभव पर्यटन के लाभ
श्रीनगर, जम्मू और कश्मीर	सांस्कृतिक संरक्षण और आर्थिक वृद्धि के लिए फिल्म पर्यटन
	फिल्म पर्यटन के माध्यम से अतुल्य भारत का प्रचार
	सतत् विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के माध्यम के रूप में पर्यावरण पर्यटन
गोवा	क्रूज पर्यटन को सतत् और जिम्मेदार यात्रा का एक प्रतिरूप बनाना
	भारत को क्रूज पर्यटन का केंद्र बनाना
	पर्यटन में प्लास्टिक की एक चक्रीय अर्थव्यवस्था की ओर - वैश्विक पर्यटन प्लास्टिक पहल

स्रोत: विदेश मंत्रालय, भारत सरकार (2023)[20]

प्रथम बैठक गुजरात के कच्छ के रण में 7 से 10 फरवरी 2023 के दौरान हुई और इस बैठक में ग्रामीण पर्यटन और पुरातात्विक पर्यटन विषयों पर कार्यक्रम किए गए। इन कार्यक्रमों में पर्यटन संरचना के विकास और पर्यटन प्रचार गतिविधियों के ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं रोजगार के अवसरों पर सकारात्मक प्रभावों पर प्रकाश डाला गया एवं पुरातात्विक स्थलों के संरक्षण एवं उन स्थलों की चुनौतियों पर भी प्रकाश डाला गया। साथ ही पुरातात्विक पर्यटन का स्थानीय समुदायों पर सकारात्मक प्रभावों को भी साझा किया गया। इसी दौरान भारत सरकार द्वारा पर्यटन के प्रचार के लिए किए गए प्रयासों, पर्यटकों की सुरक्षा, एवं पर्यटन का स्थानीय अर्थव्यवस्था एवं रोजगार पर प्रभाव भी साझा किया गया।[21]

दूसरी बैठक सिलीगुड़ी, पश्चिम बंगाल में 1 से 3 अप्रैल 2023 के दौरान हुई; यहां पर विभिन्न कार्यक्रम किए गए जो अपूर्व अनुभव पर्यटन के प्रचार और भारत एवं विश्व में इसके परिदृश्य पर चर्चा से संबंधित थे। इसके प्रचार के लाभ, मुद्दे, एवं चुनौतियां पर प्रकाश डाला गया। इसके अतिरिक्त वर्ष 2047 तक भारतीय पर्यटन अर्थव्यवस्था को एक बिलियन यूएस डॉलर तक पहुंचाने का संकल्प लिया गया और राष्ट्रीय पर्यटन नीति की रूपरेखा तैयार होने की

[20] विदेश मंत्रालय, भारत सरकार. (2023). इंडिया'स जी-20 प्रेसिडेनसी: ए सिनाप्सिस.

[21] पीआईबी. (2023). द मीटिंग ऑफ फर्स्ट टुरिज़म वर्किंग ग्रुप अन्डर इंडिया'स जी-20 प्रेज़िडन्सी कनक्लूडस सक्सेसफुल्ली एट रण ऑफ कच, गुजरात टूडै.

सूचना दी गई।[22] तृतीय बैठक श्रीनगर में 22 से 24 मई 2023 के दौरान हुई; इस बैठक के दौरान फिल्म और पारिस्थितिक पर्यटन की आर्थिक विकास एवं सतत् विकास के लक्ष्य को हासिल करने में भूमिका, इसके विकास की चुनौतियां एवं संभावनाएं, और गंतव्य प्रचार में इनकी भूमिका पर प्रकाश डाला गया। इसके अतिरिक्त फिल्म पर्यटन पर राष्ट्रीय रणनीति के प्रारूप को घोषित किया गया।[23]

चतुर्थ बैठक गोवा में 19 से 22 जून 2023 के दौरान हुई; इस बैठक के दौरान क्रूज पर्यटन, वैश्विक पर्यटन प्लास्टिक पहल, एवं सार्वजनिक-निजी क्षेत्र विषयों पर विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किए गए। इन कार्यक्रमों में भारत और विश्व में क्रूज पर्यटन को बढ़ावा देना, उसकी चुनौतियां एवं संभावनाएं, इसके द्वारा सतत् पर्यटन को बढ़ावा देना, और पर्यटन में प्लास्टिक प्रदूषण विषयों पर चर्चाएं की गई। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक-निजी क्षेत्र की साझेदारी और आपसी सहयोग की संभावनाओं पर भी प्रकाश डाला गया और कार्यक्रम में पांच चिन्हित विषयों पर निजी क्षेत्र के दृष्टिकोण पर भी प्रकाश डाला गया।[24]

इन बैठकों का आयोजन यह प्रदर्शित करता है कि भारत सरकार पर्यटन उद्योग के विकास के लिए सम्पूर्ण रूप से समर्पित है। पर्यटन उद्योग का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है। कोविड से पूर्व, वर्ष 2018 में भारत ने वैश्विक पर्यटन उद्योग में तीसरा स्थान प्राप्त किया था और विदेशी विनिमय अर्जित करने में पर्यटन देश का तीसरा सबसे बड़ा उद्योग था।[25]भारत सरकार को जी-20 मंच का प्राप्त होना एक तरह से पर्यटन उद्योग के लिए वरदान है क्योंकि वर्ष 2016 से 2022 तक भारत में पर्यटन के उद्देश्य से आने वाले पर्यटक मुख्यतः जिन प्रमुख 15 देशों से आते है उनमें 10 देश जी-20 समूह का हिस्सा है (तालिका 2 देखें) और इन देशों से आने वाले पर्यटकों की संख्या में 2015 से 2019 तक वृद्धि दर्ज की गई है (तालिका 3 देखें)। वर्ष 2020 में महामारी के कारण पर्यटकों की संख्या में कमी दर्ज की गई थी जो कि स्वाभाविक है, परंतु 2022 में ज्यादातर जी-20 देशों से आने वाले विदेशी पर्यटकों की संख्या में फिर से वृद्धि देखी गई है (तालिका 4)।

तालिका 2: 2016-2022 तक भारत में विदेशी पर्यटकों के आगमन के शीर्ष 15 स्रोत देश

2016	2017	2018	2019	2020	2021	2022
बांग्लादेश	बांग्लादेश	बांग्लादेश	बांग्लादेश	बांग्लादेश	संयुक्त राज्य अमेरिका	संयुक्त राज्य अमेरिका
संयुक्त राज्य अमेरिका	संयुक्त राज्य अमेरिका	संयुक्त राज्य अमेरिका	संयुक्त राज्य अमेरिका	संयुक्त राज्य अमेरिका	बांग्लादेश	बांग्लादेश

[22] पीआईबी. (2023). द मीटिंग ऑफ सेकंड टुरिज़म वर्किंग ग्रुप अन्डर इंडिया'स जी-20 प्रेज़िडन्सी कनक्लूडस सक्सेसफुल्ली एट सिलीगुड़ी, वेस्ट बंगाल टूडे.

[23] पीआईबी. (2023). थर्ड जी-20 टुरिज़म वर्किंग ग्रुप मीटिंग हेल्ड फ्रॉम 22 टू 24 मई, 2023 इन श्रीनगर कनक्लूडस सक्सेसफुल्ली.

[24] पीआईबी. (2023). फोर्थ जी-20 टुरिज़म वर्किंग ग्रुप मीटिंग, गोवा एण्ड टुरिज़म मिनिस्टर्स मीटिंग, गोवा 19 - 22 जून 2023.

[25] इंडियन ब्रांड एक्विटी फाउंडेशन (2023). टुरिज़म एण्ड हास्पिटैलिटी.

यूनाइटेड किंगडम	यूनाइटेड किंगडम	यूनाइटेड किंगडम	यूनाइटेड किंगडम	यूनाइटेड किंगडम	यूनाइटेड किंगडम	यूनाइटेड किंगडम
कनाडा	कनाडा	श्रीलंका	ऑस्ट्रेलिया	कनाडा	कनाडा	ऑस्ट्रेलिया
मलेशिया	ऑस्ट्रेलिया	कनाडा	कनाडा	रूस	नेपाल	कनाडा
श्रीलंका	मलेशिया	ऑस्ट्रेलिया	चीन	ऑस्ट्रेलिया	अफगानिस्तान	श्रीलंका
ऑस्ट्रेलिया	श्रीलंका	मलेशिया	मलेशिया	फ्रांस	ऑस्ट्रेलिया	जर्मनी
जर्मनी	रूस	चीन	श्रीलंका	जर्मनी	जर्मनी	नेपाल
चीन	जर्मनी	जर्मनी	जर्मनी	मलेशिया	पुर्तगाल	सिंगापुर
फ्रांस	फ्रांस	रूस	रूस	श्रीलंका	फ्रांस	मलेशिया
रूस	चीन	फ्रांस	फ्रांस	थाईलैंड	मालदीव	फ्रांस
जापान	जापान	जापान	जापान	जापान	श्रीलंका	रूस
सिंगापुर	सिंगापुर	सिंगापुर	सिंगापुर	अफगानिस्तान	रूस	मालदीव
नेपाल	नेपाल	नेपाल	थाईलैंड	नेपाल	इराक	पुर्तगाल
अफगानिस्तान	अफगानिस्तान	थाईलैंड	नेपाल	चीन	नीदरलैंड	जापान

स्रोत: लेखक द्वारा निर्मित एवं विभिन्न स्रोतों पर आधारित

तालिका 3: शीर्ष 15 देशों में जी-20 देशों से आने वाले पर्यटकों की संख्या में 2015 से 2019 तक की वृद्धि दर (%)

देश	2015	2019	2015 से 2019 के बीच वृद्धि दर
ऑस्ट्रेलिया	263101	367241	39.58
कनाडा	281306	351859	25.08
चीन	206322	339442	64.52
फ्रांस	230854	247238	7.10
जर्मनी	248314	264973	6.71
जापान	207415	238903	15.18
रूस	172419	251319	45.76
यूनाइटेड किंगडम	867601	1000292	15.29
संयुक्त राज्य अमेरिका	1213624	1512032	24.59

साउथ कोरिया	102993	149445	45.10

स्रोत: लेखक द्वारा निर्मित एवं विभिन्न स्रोतों पर आधारित

तालिका 4: शीर्ष 15 देशों में जी-20 देशों से आने वाले पर्यटकों की संख्या में 2020 से 2022 तक की वृद्धि दर (%)

देश	**2020**	**2022**	**2020 से 2022 के बीच वृद्धि दर**
ऑस्ट्रेलिया	86758	376898	334.42
कनाडा	122868	289259	135.42
चीन	39586	11762	-70.29
फ्रांस	74243	120282	62.01
जर्मनी	72558	141425	94.91
जापान	48191	64196	33.21
रूस	102166	97911	-4.16
यूनाइटेड किंगडम	291874	641051	119.63
संयुक्त राज्य अमेरिका	394092	1403399	256.11
साउथ कोरिया	32302	49423	53

स्रोत: लेखक द्वारा निर्मित एवं विभिन्न स्रोतों पर आधारित

वर्ष 2022 में पर्यटन उद्योग ने भारत की सकल घरेलू उत्पाद में 215 बिलियन यूएस डॉलर का योगदान दिया और इससे देश को 16.92 बिलियन यूएस डॉलर की विदेशी मुद्रा आय अर्जित हुई।[26] वर्ष 2021 में भारत ने यात्रा और पर्यटन विकास सूचकांक में 54 वां स्थान हासिल किया।[27] पिछले छह वर्षों में से चार वर्षों में पर्यटन उद्योग का सकल घरेलू उत्पाद में 200 बिलियन यूस डॉलर से अधिक एवं छह वर्षों में से तीन वर्षों में 25 बिलियन यूस डॉलर से अधिक विदेशी मुद्रा आय अर्जित करने में योगदान है (चित्र 1 और 2)।

[26] वही

[27] प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया. (2022). इंडिया 54 ऑन ग्लोबल ट्रैवल डेवलपमेंट इंडेक्स, टॉप-रैंकंड इन साउथ एशिया.

चित्र 1: सकल घरेलू उत्पाद में पर्यटन का कुल योगदान 2021 के वास्तविक मूल्य पर (बिलियन यूस $)

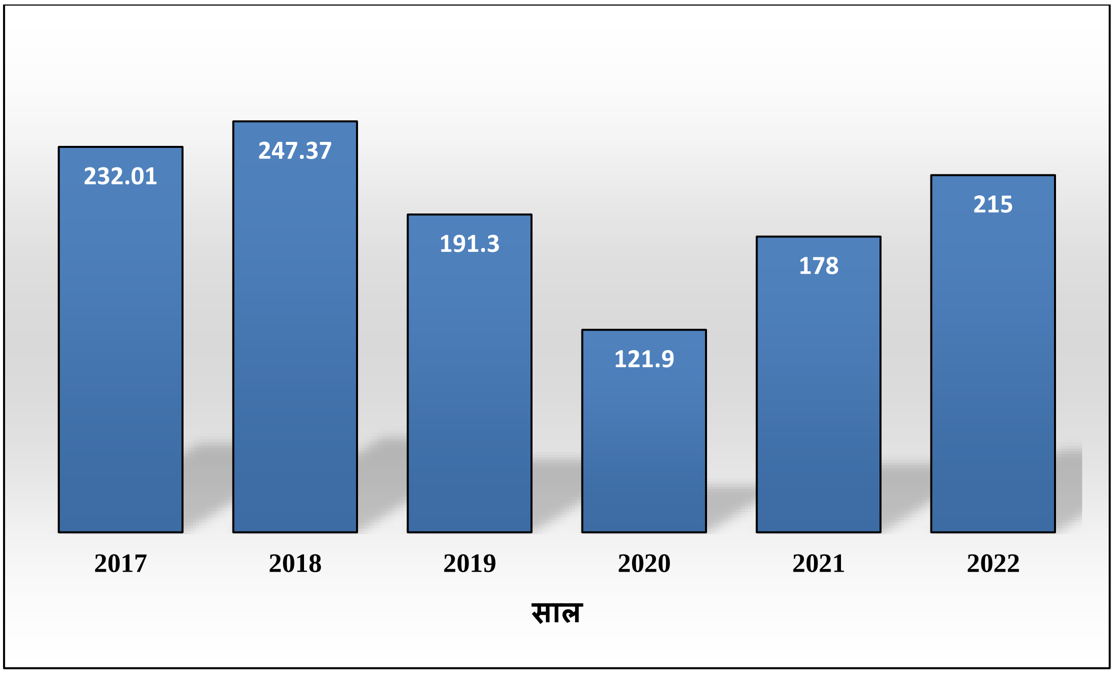

स्रोत: इंडियन ब्रांड एक्विटी फाउंडेशन (2023)[28]

चित्र 3: 2017 से 2022 तक पर्यटन उद्योग से अर्जित विदेशी मुद्रा आय (बिलियन यूस $)

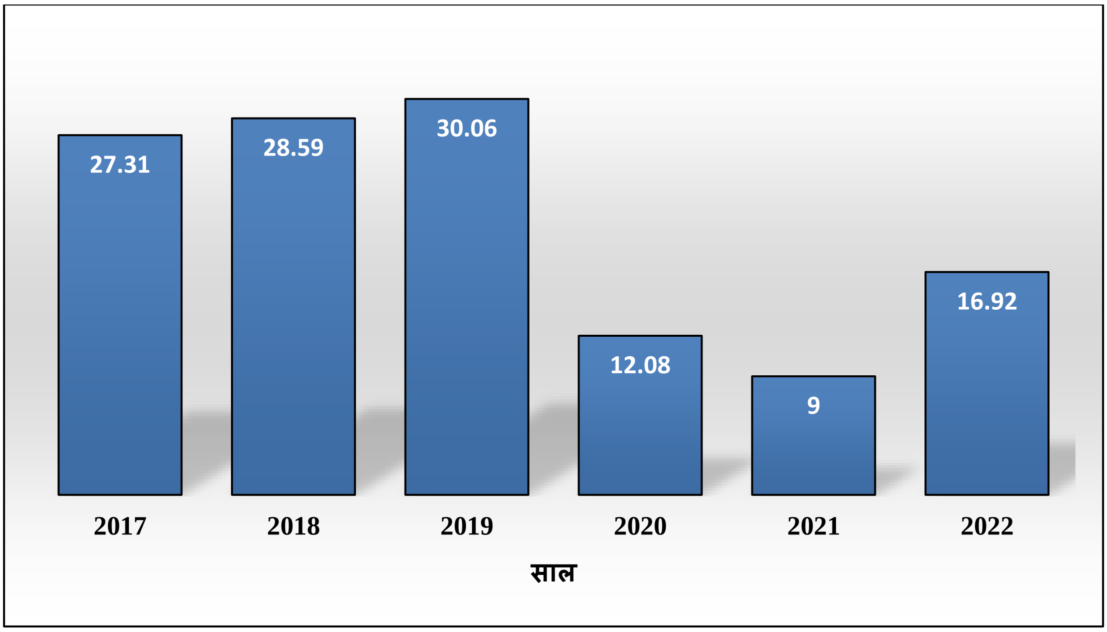

स्रोत: इंडियन ब्रांड एक्विटी फाउंडेशन (2023)[29]

भारत सरकार ने पिछले 15 वर्षों में भारतीय पर्यटन को बढ़ावा देने के अथक् प्रयास किए हैं। प्रत्येक प्रकार के पर्यटन जैसे सांस्कृतिक पर्यटन, स्वास्थ्य पर्यटन, पर्यावरण अनुकूलित पर्यटन, अपूर्व अनुभव पर्यटन, ग्रामीण पर्यटन, आदि को बढ़ावा देने के विभिन्न प्रयास किए गए हैं।

[28] इंडियन ब्रांड एक्विटी फाउंडेशन (2023). टुरिज़म एण्ड हास्पिटैलिटी.

[29] वही

भारत में जी-20 की अध्यक्षता में पर्यटन उद्योग को सतत् विकास के लक्ष्यों को हासिल करने के रूप में प्रोत्साहित किया है और इसे हासिल करने के लिए विभिन्न तरीकों की पहचान की। इन तरीकों को जी-20 की अध्यक्षता के दौरान अन्य देशों की स्वीकृति भी प्राप्त हुई है। जी-20 समूह और विश्व के कई देश पर्यटन उद्योग पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में पर्यटन उद्योग की सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर से अधिक रही है।[30]

निष्कर्ष

जी-20 दुनिया के बड़े व्यापारिक समूह में से एकसमूह है। भारतीय सरकार ने जी-20 द्वारा प्रदान किए गए मंच का पूर्णता उपयोग किया और पर्यटन उद्योग की क्षमता की वैश्विक स्तर पर खासकर जी-20 स्तर पर प्रशंसनीय प्रस्तुति की और इससे विश्व में भारत की छवि को बेहद लाभ प्राप्त हुआ है। परिणामस्वरुप विदेशी पर्यटकों में भारत भ्रमण की जिज्ञासा और इसे समझने का उत्साह बढ़ता प्रतीत होने लगा है। जी-20 इस कार्य के लिए उचित मंच था क्योंकि देश में 80% पर्यटक जी-20 देश से ही आते हैं। इसकी अध्यक्षता भारत को वैश्विक मंच पर अपनी उपस्थिति को मजबूत करने का सुनहरा मौका प्रदान करती है। साथ ही इसकी अध्यक्षता सभी क्षेत्रों में आपसी संबंधों को बहाल करने और पूर्व स्थापित संबंधों को अधिक मजबूत करने का मौका भी प्रदान करती है।

अच्छे संबंध हर प्रकार के उद्योग को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है, परंतु पर्यटन उद्योग पूर्ण रूप से दो देशों के बीच अच्छे संबंधों पर निर्भर करता है। दो देशों के बीच रिश्तों में खटास का सबसे प्रथम नकारात्मक प्रभाव पर्यटन उद्योग को ही झेलना पड़ता है। अच्छे संबंधों को बनाए रखते हुए भारतीय सरकार पर्यटकों के देश के अनुसार उन देशों में पर्यटकों की आवश्यकता अनुरूप उसी प्रकार के पर्यटन का प्रचार करें, जिससे भारतीय पर्यटन उद्योग विश्व में बाकी देशों से प्रतिस्पर्धा में आगे निकाल सके। पिछले 10 सालों में किए गए प्रयासों ने भारतीय पर्यटन उद्योग को विश्व मंच पर स्थापित किया, परंतु इस उद्योग को नई ऊचाइयों तक ले जाने हेतु भारत सरकार को अपने प्रयासों को बनाए रखना होगा। अन्य मंचों का भी जी-20 समान सकारात्मक उपयोग करना होगा जिससे विश्व में भारतीय पर्यटन उद्योग की पहचान बनी रहे।

संदर्भ सूची

1. विदेश मंत्रालय और सामाजिक संचार सचिवालय, ब्राज़ील गणराज्य. (2024). ब्राजील जी-20 प्रेज़िडन्सी: अंडरस्टैन्ड द जी-20 एण्ड ब्राज़ील'एस रिस्पांसिबिलिटी. https://www.g20.org/en/about-the-g20/e-book-brasil-na-presidencia-do-g20
2. विदेश मंत्रालय, भारत सरकार. (2023). जी-20 बैकग्राउंड ब्रीफ़. chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://www.g20.in/en/docs/2022/G20_Background_Brief.pdf
3. सरंगधारण, एम., और सुनंदा, वी. एस. (2009). हेल्थ टुरिज़म इन इंडिया (फर्स्ट इडिशन). न्यू सेन्चरी पब्लिकेशन्स.

[30] वर्ल्ड ट्रेवल एंड टूरिज्म काउंसिल. (2020). द इम्पॉर्टेन्स ऑफ ट्रैवल एण्ड टुरिज़म इन 2019.

4. इंडियन ब्रांड एक्विटी फाउंडेशन (2023). टुरिज़्म एण्ड हास्पिटैलिटी. www.ibef.org
5. वर्ल्ड ट्रेवल एंड टूरिज्म काउंसिल. (2020). द इम्पॉर्टन्स ऑफ ट्रैवल एण्ड टुरिज़्म इन 2019. https://wttc.org/Research/Economic-Impact
6. इटली सरकार. (2021). वर्किंग ग्रुप्स. http://www.g20italy.org/italian-g20-presidency/working-groups.html
7. अल-हूससेनी, आर., सराह. (2020). व्हाट द सऊदी अरब जी-20 प्रेज़िडन्सी कैन डू फॉर द टुरिज़्म से सेक्टर. https://www.arabnews.com/node/1698496/what-saudi-g20-presidency-can-do-tourism-sector
8. संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन. (2021). जी-20 मिनिस्टर्स वेलकम यू एन डब्ल्यू टी ओ रिकमेंडेशन फॉर टुरिज़्म’स ग्रीन ट्रैन्स्फमैंशन. https://www.unwto.org/news/g20-ministers-welcome-unwto-recommendations-for-tourism-s-green-transformation
9. संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन. (2022). यूएनडब्ल्यूटीओ एट जी-20: पुटिंग पीपल एण्ड एमएसएमईज एट सेंटर ऑफ रिकवरी. https://www.unwto.org/news/unwto-at-g20-putting-people-and-msmes-at-centre-of-recovery
10. पीआईबी. (2023). जी-20 लीडर्स एन्डोरसेस गोवा रोडमैप एण्ड ‘ट्रैवल फॉर लाइफ’ प्रोग्राम टू प्रोवाइड बिग बूस्ट टू टुरिज़्म सेक्टर. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1956115#:~:text='GOA%20Roadmap'%2C%20the%20key,the%20economy%2C%20and%20environmental%20stewardship
11. विदेश मंत्रालय, भारत सरकार. (2023). इंडिया’स जी-20 प्रेसिडेनसी: ए सिनाप्सिस. https://www.g20.in/content/dam/gtwenty/Indias_G20_Presidency-A_Synopsis.pdf
12. पीआईबी. (2023). द मीटिंग ऑफ फर्स्ट टुरिज़्म वर्किंग ग्रुप अन्डर इंडिया’स जी-20 प्रेज़िडन्सी कनक्लूडस सक्सेसफुल्ली एट रण ऑफ कच, गुजरात टूडै. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1897923
13. पीआईबी. (2023). द मीटिंग ऑफ सेकंड टुरिज़्म वर्किंग ग्रुप अन्डर इंडिया’स जी-20 प्रेज़िडन्सी कनक्लूडस सक्सेसफुल्ली एट सिलीगुड़ी, वेस्ट बंगाल टूडै. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1913442
14. पीआईबी. (2023). थर्ड जी-20 टुरिज़्म वर्किंग ग्रुप मीटिंग हेल्ड फ्रॉम 22 टू 24 मई, 2023 इन श्रीनगर कनक्लूडस सक्सेसफुल्ली. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1927544
15. पीआईबी. (2023). फोर्थ जी-20 टुरिज़्म वर्किंग ग्रुप मीटिंग, गोवा एण्ड टुरिज़्म मिनिस्टर्स मीटिंग, गोवा 19 – 22 जून 2023. https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1933253#:~:text=4th%20G

20%20Tourism%20Working%20Group,Goa%2019th%20%E2%80%93%2022nd%20June%202023&text=The%20concluding%20and%20last%20G20,22nd%20June%202023%20in%20Goa
16. प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया. (2022). इंडिया 54 ऑन ग्लोबल ट्रैवल डेवलपमेंट इंडेक्स, टॉप-रैंकड इन साउथ एशिया. https://www.ndtv.com/india-news/india-54th-on-global-travel-development-index-top-ranked-in-south-asia-3004229
17. मार्केट रिसर्च डिविशन, पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार. (2017). इंडिया टुरिज़म स्टेटिस्टिक्स, 2017. https://tourism.gov.in/market-research-and-statistics
18. मार्केट रिसर्च डिविशन, पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार. (2018). इंडिया टुरिज़म स्टेटिस्टिक्स, 2018. https://tourism.gov.in/market-research-and-statistics
19. मार्केट रिसर्च डिविशन, पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार. (2019). इंडिया टुरिज़म स्टेटिस्टिक्स, 2019. https://tourism.gov.in/market-research-and-statistics
20. मार्केट रिसर्च डिविशन, पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार. (2020). इंडिया टुरिज़म स्टेटिस्टिक्स, 2020. https://tourism.gov.in/market-research-and-statistics
21. मार्केट रिसर्च डिविशन, पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार. (2021). इंडिया टुरिज़म स्टेटिस्टिक्स, 2021. https://tourism.gov.in/market-research-and-statistics
22. मार्केट रिसर्च डिविशन, पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार. (2022). इंडिया टुरिज़म स्टेटिस्टिक्स, 2022. https://tourism.gov.in/market-research-and-statistics
23. मार्केट रिसर्च डिविशन, पर्यटन मंत्रालय, भारत सरकार. (2023). इंडिया टुरिज़म स्टेटिस्टिक्स, 2023. https://tourism.gov.in/market-research-and-statistics

अध्याय-9

लोकलुभावनवाद का उदय और वैश्वीकरण के लिए उभरती चुनौतियाँ

युक्ति गुप्ता
सहायक प्रोफेस, राजनीतिविज्ञान,
जेईसीआरसी विश्वविद्यालय जयपुर,
राजस्थान

शीत युद्ध की समाप्ति और उसके बाद 1991 में सोवियत संघ के पतन ने इतिहास में एक महत्वपूर्ण क्षण को चिह्नित किया, जिससे गहन वैश्विक परिवर्तन के युग की शुरुआत हुई। समवर्ती रूप से, पूर्वी यूरोप, एशिया, लैटिन अमेरिका और अफ्रीका में पूर्व उपनिवेशों में विउपनिवेशीकरण की लहर बह गई, जिससे उदार लोकतंत्र का उदय हुआ। इस अवधि में वैश्वीकरण को व्यापक रूप से अपनाया गया, हालाँकि सफलता और समानता की अलग-अलग डिग्री के साथ। 1989 में, अमेरिकी राजनीतिक वैज्ञानिक फ्रांसिस फुकुयामा ने प्रसिद्ध रूप से अपने वैचारिक विरोधियों पर उदारवाद की विजय की घोषणा की। हालाँकि, अब वह उदारवादी क्षण के संभावित अंत पर विचार करते हुए आगाह करते हैं कि उदारवादी व्यवस्था के लिए सबसे बड़ा खतरा बाहरी ताकतों के बजाय राष्ट्रों के भीतर से उत्पन्न होता है। लैरी डायमंड ने बढ़ती लोकतांत्रिक मंदी के संकेत देने वाले छह प्रमुख रुझानों की पहचान की है: वैश्विक स्वतंत्रता और लोकतंत्र के घटते स्तर, कानून के शासन का क्षरण, अनुदार लोकलुभावनवाद में वृद्धि, सोशल मीडिया द्वारा बढ़ाए गए बढ़ते ध्रुवीकरण, सत्तावाद का पुनरुत्थान, और लोकतांत्रिक में गिरावट मूल्य और विश्वास, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप में। इस पेपर का उद्देश्य लोकलुभावनवाद की घटना में गहराई से उतरना, इसके उदय की जांच करना, विशेषताओं और क्षेत्रीय विविधताओं को परिभाषित करना है। इसके अलावा, यह लोकलुभावन उछाल को बढ़ावा देने में वैश्वीकरण की भूमिका और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को नया आकार देने में इसके संभावित प्रभावों का विश्लेषण करना चाहता है। लोकलुभावनवाद, कथित अभिजात वर्ग के खिलाफ आम लोगों की शिकायतों के प्रति अपनी अपील की विशेषता, हाल के वर्षों में एक शक्तिशाली राजनीतिक ताकत के रूप में उभरा है। अद्वितीय ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक कारकों से प्रभावित होकर, इसकी अभिव्यक्तियाँ विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ मामलों में, लोकलुभावनवाद राष्ट्रवादी और ज़ेनोफ़ोबिक स्वर अपनाता है, जबकि अन्य में, यह अधिक स्थापना-विरोधी और वैश्वीकरण-विरोधी रुख अपनाता है।

वैश्वीकरण, अपने अंतर्संबंध और आर्थिक उदारीकरण के साथ, लोकलुभावन बयानबाजी का उत्प्रेरक और लक्ष्य दोनों रहा है। जबकि वैश्वीकरण ने अभूतपूर्व आर्थिक विकास और एकीकरण को सुविधाजनक बनाया है, इसने समाज के कुछ वर्गों में असमानताओं और अव्यवस्था को बढ़ाने में भी योगदान दिया है। लोकलुभावन नेता वैश्वीकरण को राष्ट्रीय पहचान, संप्रभुता और आर्थिक सुरक्षा के लिए खतरा बताकर इन शिकायतों का फायदा उठाते हैं। विभिन्न यूरोपीय देशों और संयुक्त राज्य अमेरिका में लोकलुभावन नेताओं के उत्थान का वैश्वीकरण के भविष्य और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। संरक्षणवाद, व्यापार बाधाओं और राष्ट्रवादी बयानबाजी की विशेषता वाली उनकी नीतियां, मुक्त व्यापार और बहुपक्षीय सहयोग के सिद्धांतों को चुनौती देती हैं।

इसके अलावा, उदार लोकतांत्रिक मानदंडों और संस्थानों की उनकी अस्वीकृति वैश्विक शासन की नींव को कमजोर करती है। लोकलुभावनवाद का उदय वैश्विक राजनीति और अर्थशास्त्र के लिए दूरगामी प्रभाव वाली एक जटिल और बहुआयामी घटना का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी चुनौतियों पर प्रभावी प्रतिक्रिया तैयार करने के लिए इसके चालकों, गतिशीलता और क्षेत्रीय विविधताओं को समझना आवश्यक है। इसके अलावा, लोकलुभावन भावनाओं को बढ़ावा देने वाली अंतर्निहित सामाजिक-आर्थिक असमानताओं और शिकायतों को संबोधित करना तेजी से परस्पर जुड़ी दुनिया में समावेशी और लचीले समाज के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है।

लोकलुभावनवाद क्या है?

पॉपुलिज़्म: ए वेरी शॉर्ट इंट्रोडक्शन में, कैस मुडे और उनके सह-लेखक, क्रिस्टोबल कल्टवासेर, समकालीन लोकलुभावनवाद को "अलोकतांत्रिक उदारवाद के प्रति असहिष्णु लोकतांत्रिक प्रतिक्रिया" के रूप में वर्णित करते हैं - जो "सही प्रश्न पूछता है लेकिन गलत उत्तर प्रदान करता है"।

यह मतदाताओं के बीच 'विशिष्टता' की धारणा पैदा करने के बारे में है। इस बात पर बहस चल रही है कि क्या यह एक विचारधारा है, एक प्रवचन है या एक राजनीतिक रणनीति है लेकिन बहुत सरलता से इसे 'अन्य' की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। मड्डे आगे कहते हैं कि लोकलुभावनवाद एक पतली विचारधारा है जो खुद को एक अन्य प्रमुख विचारधारा से जोड़ती है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार होते हैं। समाज में सबसे महत्वपूर्ण विभाजन "लोगों" के बीच एक विरोधी विभाजन है, जिसे मौलिक रूप से अच्छा समझा जाता है, और "अभिजात वर्ग" को मौलिक रूप से भ्रष्ट और रोजमर्रा की जिंदगी के संपर्क से बाहर माना जाता है। सभी लोकलुभावन लोग यह भी मानते हैं कि राजनीति "सामान्य इच्छा" की अभिव्यक्ति होनी चाहिए - इच्छाओं का एक समूह जिसे सभी "लोगों" द्वारा सामान्य ज्ञान के रूप में साझा किया जाता है। 'द डेमोगॉग' लोगों को सत्ता वापस देने और लोगों के लिए काम करने की इस भावना पर काम करता है, जैसा कि ट्रम्प अमेरिका में अपनी 'अमेरिका फर्स्ट' नीति के साथ कर रहे हैं। ताकतवर लोकलुभावन लोगों को यह विश्वास दिलाता है कि वह उन्हें जीवन के दुखों से मुक्ति दिलाएगा और लोगों की छिपी हुई चिंताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें वह देगा जो उनका हक है। अपनी पुस्तक, द ग्लोबल राइज़ ऑफ़ पॉपुलिज़्म: परफॉर्मेंस, पॉलिटिकल स्टाइल एंड रिप्रेजेंटेशन में, बेंजामिन मोफ़िट ने लोकलुभावनवाद को एक राजनीतिक शैली के रूप में देखा है जो प्रतीकों के माध्यम से मध्यस्थ है, बड़े पैमाने पर मीडिया के माध्यम से प्रसारित किया जाता है और संचार के मौखिक और गैर-मौखिक तरीकों के माध्यम से किया जाता है। वह जांच करता है कि शैली, विचारधारा और पहचान कैसे परस्पर क्रिया करती हैं और घुलमिल जाती हैं; और लोकलुभावन विषयों और प्रवचनों को विभिन्न अभिनेताओं द्वारा अलग-अलग डिग्री तक कैसे अपनाया जा सकता है। यह बहुसंख्यकों द्वारा सामना की जाने वाली संरचनात्मक समस्याओं का एक 'आसान रास्ता' है और लोकतंत्र के वादों और उनके पूर्ण, स्थायी कार्यान्वयन की असंभवता के बीच की दरारों में जीवन पाता है। चूंकि लोकलुभावनवाद खुद को एक प्रमुख विचारधारा से जोड़ता है जो बदले में इसके चरित्र को परिभाषित करता है, यह स्पेक्ट्रम के दोनों छोर पर मौजूद है यानी लोकलुभावन दक्षिणपंथी के साथ-साथ लोकलुभावन वामपंथी भी मौजूद है। लोकलुभावन राजनेताओं के लिए जातीय-राष्ट्रीय/सांस्कृतिक दरार के साथ लामबंद होना आसान होता है जब

वैश्वीकरण का झटका आप्रवासन और शरणार्थियों के रूप में प्रमुख हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप दक्षिणपंथी लोकलुभावनवाद होता है। यह मोटे तौर पर यूरोप के उन्नत देशों की कहानी है। दूसरी ओर, जब वैश्वीकरण का झटका मुख्य रूप से व्यापार, वित्त और विदेशी निवेश का रूप ले लेता है, तो आय/सामाजिक वर्ग के आधार पर संगठित होना आसान हो जाता है। बदले में यही स्थिति दक्षिणी यूरोप और लैटिन अमेरिका की है जिसके परिणामस्वरूप वामपंथी लोकलुभावनवाद हुआ।

लोकलुभावन कट्टरपंथी अधिकार - यह आप्रवासन के सवालों और शुद्ध लोगों की धारणा और उनकी सीमाओं के भीतर लोगों के बढ़ते प्रवाह के कारण किसी देश के 'मूल निवासियों' के सामने आने वाले खतरे से संबंधित है। दक्षिणपंथी रुझान वाले लोकलुभावन लोगों को प्रेस के साथ-साथ बुद्धिजीवियों और नागरिक समाज के सदस्यों पर भी संदेह है। वे अपने उद्देश्य में नैतिकता की भावना का भी आह्वान करते हैं, लोगों की अंतरात्मा को बहुत गहरे स्तर पर जागृत करते हैं, खुद को उस उद्धारकर्ता के रूप में चित्रित करते हैं जिसकी उन्हें हमेशा से आवश्यकता रही है। विचारधारा या नेता का यह नैतिककरण मतदाता समेकन में तब्दील हो जाता है, जिसमें नागरिक अपनी संबंधित राजनीतिक पसंद का समर्थन करने के लिए बहुत कम या बिना किसी तर्क के सामूहिक रूप से मतदान करते हैं।

लोकलुभावन वामपंथी- यहां के नेता 'आर्थिक रूप से श्रेष्ठ अभिजात वर्ग' पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो सत्ता के शीर्ष पर बने रहने के लिए बहुसंख्यक आबादी का दमन करते हैं। उनका मानना है कि हर गुजरते दिन के साथ अमीरों के और अमीर होने का एक मुख्य कारण वैश्वीकरण है और इसलिए वे कड़ी आर्थिक बाधाओं और राष्ट्रवादी नीतियों के लिए तर्क देते हैं। इतिहासकार माइकल कज़िन को उद्धृत करने के लिए,

“वामपंथी विचारधारा की सदस्यता लेने वाले लोकलुभावन नेता” एक ऐसी भाषा का उपयोग करते हैं जो आम लोगों को एक महान समूह के रूप में कल्पना करती है जो वर्ग द्वारा संकीर्ण रूप से सीमित नहीं है; अपने संभ्रांत विरोधियों को स्वार्थी और अलोकतांत्रिक मानते हैं, और विरोधियों को विरोधियों के ख़िलाफ़ लामबंद करने की कोशिश करते हैं।” 2008 की वित्तीय दुर्घटना के बाद, स्पेन (पोडेमोस) और ग्रीस (सीरिज़ा) में वित्तीय संस्थानों और लोगों के छोटे समूह के खिलाफ गुस्से से प्रेरित होकर कई तपस्या विरोधी आंदोलन शुरू हुए, जिन्होंने सभी लाभ अर्जित किए लेकिन उन्हें वास्तव में महत्व नहीं दिया गया। लोकलुभावन आंदोलनों के रूप में। मोइसेस नईम के अनुसार, लोकलुभावनवाद महज बयानबाजी है जिसका इस्तेमाल 'डेमोगॉग' सत्ता बनाए रखने के लिए करते हैं। दुनिया के सबसे पुराने लोकतंत्र संयुक्त राज्य अमेरिका में 2016 में देश के राष्ट्रपति के रूप में डोनाल्ड ट्रम्प और उनके प्रतिद्वंद्वी के रूप में बर्नी सैंडर्स के उदय के साथ वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों झुकाव वाले लोकलुभावनवाद का सहवर्ती मिश्रण देखा गया है। अमेरिकी राष्ट्रपति चुनावों में दोनों लोकलुभावन राजनेताओं ने एक समान निदान ("अमेरिकी सपना खत्म हो गया") साझा किया, लेकिन इसे संबोधित करने के लिए अलग-अलग नीतियों का प्रस्ताव रखा। जान वर्नर मुलर ने चेतावनी दी कि एक लोकलुभावन 'लोगों के नाम' पर बात करने का दावा कर सकता है लेकिन सत्ता संभालने के बाद वे उन सभी को बाहर करना शुरू कर देते हैं जिन्हें 'उचित' लोगों का हिस्सा नहीं माना जाता है। बहुत से विचारक लोकलुभावनवाद को विभाजनकारी, साजिशों पर पनपने वाला, इसके सभी

विरोधों की आलोचना करने वाला और यह दावा करने वाला बताते हैं कि घरेलू स्तर पर असंतुष्ट और आलोचक विदेशी सरकारों के लिए काम कर रहे हैं और अपने देश की संप्रभुता को कमजोर करना चाहते हैं।

एंटनी गिडेंस ने अपनी पुस्तक 'रनअवे वर्ल्ड' में कहा कि लोकलुभावनवाद वैश्वीकरण की इस भागती हुई दुनिया में अर्थ की खोज है। इसके अलावा, गिडेंस कहते हैं, यह दुनिया 'अराजक, अव्यवस्थित, फैशन... चिंताओं से भरी हुई' उभर रही है, साथ ही गहरे विभाजन और इस भावना से भी डरी हुई है कि हम सभी 'उन ताकतों की पकड़ में हैं जिन पर हम काबू पा रहे हैं। 'कोई नियंत्रण नहीं' इस आख्यान के अनुसार, आधुनिक लोकलुभावन समस्या के केंद्र में इतना अर्थशास्त्र नहीं है जितना कि पहचान और अर्थ जो कि असंबद्धता के एक समूह द्वारा संचालित हैं, लेकिन फिर भी महत्वपूर्ण प्रश्न हैं कि मैं कौन हूँ, मैं क्या हूँ, और क्या मैं अभी भी अपने आप में रहता हूँ क्या यह देश समान मूल्यों और निष्ठाओं को साझा करने वाले लोगों से घिरा हुआ है?

लोकलुभावन राजनीति के उत्थान में वैश्वीकरण की भूमिका

बहुत से लोग यह मानने लगे हैं कि वैश्वीकरण का विचार साकार होते ही नष्ट हो गया है। वैश्वीकरण और सूचना के माध्यम के रूप में इंटरनेट के विकास ने लोगों के जीवन में गहरा बदलाव लाया और लोकलुभावनवाद ने इस विकास का फायदा उठाया। वैश्वीकरण के आने से निर्यातकों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों, निवेशकों और अंतरराष्ट्रीय बैंकों के साथ-साथ प्रबंधकीय वर्गों के लिए अवसरों का विस्तार हुआ जिससे विकास को बढ़ावा मिला और गरीबी में कमी आई। लेकिन दानी रोड्रिक के अनुसार, वैश्विक असमानता में गिरावट के साथ-साथ घरेलू असमानता और दरार में भी वृद्धि हुई है। लोग 'पीछे छूट गए' अपने राजनेताओं और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों से ठगा हुआ महसूस किया जो उनके इशारे पर अमीर और सफल बन गए। उनका मुख्यधारा के राजनीतिक दलों और नेताओं तथा लोकतंत्र के विचारों से मोहभंग हो गया और यही मोहभंग है जिसने लोकलुभावन लोगों को अपने हमले शुरू करने के लिए आवश्यक स्थान दिया। ऑब्ज़र्वर रिसर्च फाउंडेशन द्वारा आयोजित एक चर्चा में, कई लोकलुभावन विशेषज्ञों ने हमसे लोकलुभावन नेताओं के व्यवहार में द्वन्द्व पर ध्यान देने के लिए भी कहा। उन्होंने तर्क दिया कि भले ही वे घरेलू स्तर पर विशिष्टतावादी हैं, लेकिन अंतरराष्ट्रीय मोर्चे पर वे वैश्विकवादी हैं। वे अपनी अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने के लिए अधिक विदेशी व्यापार और निवेश लाने की उत्सुकता प्रदर्शित करने के लिए द्विपक्षीय और बहुपक्षीय मंचों का उपयोग करते हैं।

भारतीय अर्थशास्त्री अरविंद सुब्रमण्यम का तर्क है कि अति वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप वर्तमान समय में लोकलुभावनवाद फिर से उभर रहा है। उनके अनुसार 2008 की वैश्विक वित्तीय दुर्घटना और उसके बाद सुधार के बाद, बहुत सारी सरकारों और नागरिकों ने उन अर्थशास्त्रियों को अलग कर दिया जिन पर उन्होंने सभी प्रमुख निर्णयों के लिए भरोसा किया था। 2008 में अटलांटिक के दोनों किनारों पर सरकारों की त्वरित और निर्णायक कार्रवाई ने वित्तीय मंदी को रोक दिया, लेकिन एक तीव्र मंदी और बहुत धीमी गति से सुधार हुआ, जो सुस्त विकास, स्थिर या उदास जीवन स्तर और कम उत्पादकता की विशेषता थी। पुनरुत्थानवादी रूसी राष्ट्रवाद, आतंकवाद, मध्य पूर्वी अराजकता, अधिक मुखर चीन, शरणार्थियों की बेकाबू बाढ़ और अब परमाणु-सशस्त्र उत्तर कोरिया के साथ बातचीत करने वाले इन सभी परिवर्तनों ने युद्धोत्तर उदारवादी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था को संकट में डाल दिया। वैश्वीकरण

की गाड़ी को अपनी कमोबेश सुगम यात्रा के दौरान जिस गति विराम का सामना करना पड़ा, उसमें उसे राजमार्ग से पूरी तरह से गिराने की क्षमता थी। बहुत से विचारक यह भी बताते हैं कि वैश्वीकरण ही एक कारण है कि लोकलुभावनवाद ने अपने पैर फैलाना शुरू कर दिया। उनके अनुसार वास्तविक संकट 'आर्थिक शासन की टूटी हुई व्यवस्था' है जिसे वे नवउदारवाद के रूप में परिभाषित करते हैं। इस नए आदेश ने संतुलन को पूंजी की ओर और श्रम से दूर कर दिया और कम मुद्रास्फीति, कम विकास दर, कम निवेश दर, कम उत्पादकता, बढ़ती संपत्ति और आय असमानता और कम नौकरी सुरक्षा को जन्म दिया। ये सभी चीजें वित्तीय मंदी के कारण और भी बदतर हो गईं और इसलिए लोकलुभावनवाद के रूप में प्रतिक्रिया हुई है।

अजय गुडावर्ती ने अपनी पुस्तक, "इंडिया आफ्टर मोदी" में कहा है कि:

एक नई वैश्विक प्रक्रिया के रूप में उभरी समानता शायद नव-उदारवाद (अनिवार्य रूप से सामाजिक कल्याण नीतियों को वापस लेने के विचार से जुड़ी) और उससे जुड़ी सामाजिक और आर्थिक असमानताओं और पुराने वामपंथियों की अपील में गिरावट से जुड़ी है। इसके प्रगतिशील-धर्मनिरपेक्ष मूल्य। हालाँकि आर्थिक असमानताएँ और वैश्विक पूँजीवादी संरचनाओं की भूमिका विस्थापित नहीं हुई है, वैश्वीकरण के बाद पूँजीवाद की बिखरी हुई प्रकृति के कारण ऐसी संरचनाओं का अनुभव अधिक जटिल हो गया है।

दुनिया में अब हो रहे महान शक्ति परिवर्तन के बारे में भी बहुत घमंड किया गया है कि दूसरे यानी एशियाई देश अब दुनिया चलाएंगे और पश्चिम नीचे की ओर जा रहा है। इस अवधारणा ने प्रमुख यूरोपीय और अमेरिकी देशों में लोगों के बीच बहुत अनिश्चितता और चिंता पैदा कर दी है, जिसके निवारण के लिए वे उन राजनेताओं और पार्टियों का सहारा लेते हैं जो पश्चिम के लिए खड़े होने की घोषणा करते हैं या संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की भाषा में कहते हैं। 'अमेरिका को फिर से महान बनाएं'। यह एक सुनहरे कल्पित अतीत की धारणा है, जो हमारा अधिकार है उसे पुनः प्राप्त करने और पूर्ण समृद्धि और खुशी के समय में वापस जाने की जो उनके मतदाताओं को आकर्षित करती है।

आगे का रास्ता

1870 के दशक में वैश्वीकरण की प्रारंभिक अवधि और आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था के बीच अंतर के बारे में इतिहासकारों और अर्थशास्त्रियों का कहना है कि हालांकि इन दोनों कालांतरों में आर्थिक परिवर्तन हुआ है, लेकिन राजनीतिक खतरे अभी भी उत्पन्न हो रहे हैं। पहले चरण में, वैश्वीकरण को बचाने के लिए जो दृष्टिकोण अच्छा काम करते थे, वे राजनीतिक गठबंधन बनाने पर केंद्रित थे जो व्यक्तिगत-लक्षित समाधानों के बजाय संरक्षणवादी रियायतों के साथ-साथ व्यापक वित्तीय और सामाजिक सुधारों की पेशकश करते थे। आजकल, वैश्विक अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए वैश्विकरण के पुनर्संतुलन की आवश्यकता है। इसे बनाए रखने के लिए, हमें पूंजी, व्यवसाय, और श्रम से लेकर शेष समाज तक, वैश्विक शासन से लेकर राष्ट्रीय शासन तक, और छोटे और बड़े आर्थिक लाभ के क्षेत्रों में समान ध्यान देना चाहिए। वैश्विकरण के नियमों को स्थापित करने में, श्रम को भी समान भागीदारी मिलनी चाहिए। इसके साथ ही, पर्यावरण संरक्षण, कराधान, और सामाजिक मानक प्रावधानों के संबंध में प्रवर्तन तंत्र भी पेश किया

जाना चाहिए। वैश्विकरण के प्रमुख लाभों के साथ, इसके असारता और असमानताओं को भी ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। इसका बेहतरीन तरीका है कि हम उन समूहों को सहायता प्रदान करें जो इस प्रकार की असमानताओं को संभाल सकते हैं। वैश्विक अर्थव्यवस्था के बीच किसी भी संघर्ष का समाधान करने के लिए, हमें अनुभवों के प्रभाव को समझने और उसके आधार पर नीतियों को अनुकूलित करने की आवश्यकता है। यह न केवल वैश्विक समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि एक समृद्ध और संतुलित समाज की रचना के लिए भी।

निष्कर्ष

राजनीतिक परिवर्तनों से चिह्नित युग में, वैश्विक परिदृश्य में गहरा परिवर्तन आया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में ट्रम्प के प्रशासन से बिडेन के प्रशासन में हालिया परिवर्तन, यूरोपीय संघ से यूनाइटेड किंगडम के औपचारिक प्रस्थान के साथ मिलकर, समकालीन भूराजनीति की गतिशील प्रकृति को रेखांकित करता है। समवर्ती रूप से, रूस, तुर्की, हंगरी और पोलैंड जैसे देशों में ताकतवर नेताओं के उदय ने लोकलुभावनवाद के स्पष्ट खतरे को बल दिया है। यह प्रतिमान परिवर्तन दुनिया के अलग-अलग हिस्सों तक ही सीमित नहीं है; बल्कि, यह स्थापित अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के प्रति संदेह की व्यापक प्रवृत्ति को दर्शाता है। संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन और यूरोपीय संघ जैसे क्षेत्रीय गुटों को बढ़ती जांच का सामना करना पड़ रहा है, जो उनकी वैधता को कमजोर करने के लोकलुभावन नेताओं के ठोस प्रयासों से और भी बदतर हो गया है। आत्मविश्वास का यह ह्रास वैश्विक शासन की नींव के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है। इसके अलावा, हाल के सर्वेक्षण, जैसे कि याशा मौंक द्वारा किया गया सर्वेक्षण, युवा पीढ़ी के बीच एक चिंताजनक प्रवृत्ति का संकेत देते हैं। लोकतांत्रिक सिद्धांतों के प्रति बढ़ती मोहभंग की स्थिति उभरी है, एक उल्लेखनीय वर्ग सत्तावादी शासन को प्राथमिकता दे रहा है, बशर्ते वे लोकलुभावन वादों को पूरा करें। निरंकुश शासन के प्रति भावना में यह बदलाव पारंपरिक लोकतांत्रिक मूल्यों से चिंताजनक विचलन का प्रतिनिधित्व करता है।

इन चुनौतियों के साथ-साथ संरक्षणवाद का मंडराता खतरा और वैश्वीकरण का क्षरण भी है, जो चल रही महामारी के दूरगामी प्रभावों के कारण और भी बदतर हो गया है। कोविड-19 संकट ने परस्पर जुड़ी वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं में निहित कमजोरियों पर प्रकाश डाला है, जिससे मुक्त वैश्वीकरण की खूबियों का पुनर्मूल्यांकन हुआ है। इस पुनर्गणना का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और सहयोग के भविष्य के प्रक्षेप पथ पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन घटनाक्रमों के आलोक में, अटलांटिक के दोनों किनारों पर मुख्यधारा के राजनीतिक दलों और नेताओं के लिए वर्तमान वास्तविकताओं को स्वीकार करना और सहयोग और स्थिरता को प्राथमिकता देने वाली कार्रवाई का एक तरीका तैयार करना अनिवार्य है। लोकलुभावन बयानबाजी के आकर्षण के आगे झुकने या अलगाववाद में पीछे हटने के बजाय, बहुपक्षवाद और लोकतांत्रिक शासन के सिद्धांतों को बनाए रखने के लिए ठोस प्रयासों की तत्काल आवश्यकता है। इस प्रयास का केंद्र उनकी खामियों के बावजूद अंतरराष्ट्रीय संस्थानों में निहित मूल्यों के प्रति पुनः प्रतिबद्धता है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन से लेकर संघर्ष समाधान तक वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए एक महत्वपूर्ण मंच बना हुआ है। इसी प्रकार, यूरोपीय संघ जैसे क्षेत्रीय समूह सदस्य देशों के बीच सहयोग और आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा देने के लिए एक मंच प्रदान करते हैं। इसके अलावा, लोकलुभावन आंदोलनों को चलाने वाली अंतर्निहित शिकायतों को दूर करने के प्रयासों को केवल बयानबाजी से आगे बढ़कर ठोस नीतिगत

पहल तक बढ़ाया जाना चाहिए। इसमें आर्थिक असमानता, सामाजिक हाशिए पर जाने और राजनीतिक मताधिकार से वंचित होने के मुद्दों को संबोधित करना शामिल है, जिसने लोकलुभावन नेताओं के उदय को बढ़ावा दिया है। वर्तमान भू-राजनीतिक परिदृश्य की जटिलताओं से निपटने में दूरदर्शिता और सहयोग सर्वोपरि है। समावेशी शासन और सामूहिक कार्रवाई की दृष्टि को अपनाकर, राजनीतिक नेता लोकलुभावनवाद से उत्पन्न खतरों को कम कर सकते हैं और वैश्विक स्थिरता और समृद्धि की नींव की रक्षा कर सकते हैं। केवल ठोस प्रयासों और लोकतांत्रिक मूल्यों की पुष्टि के माध्यम से ही हम अनिश्चित भविष्य की चुनौतियों से निपटने की उम्मीद कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. अहमद, एजाज. "लोकलुभावनवाद के विभिन्न रंगों को समझना. विशेषज्ञ बोलते हैं. ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन, एन.डी.
2. बर्जर, सुज़ैन. "वैश्वीकरण एक बार पहले लोकलुभावनवाद से बच गया - और यह फिर से हो सकता है. बोस्टन समीक्षा, एन.डी.
3. चैथम हाउस. "आर्थिक लोकलुभावनवाद- एक ट्रान्साटलांटिक परिप्रेक्ष्य. मीटिंग सारांश. 2016.
4. कॉक्स, माइकल. "लोकलुभावनवाद का उदय और वैश्वीकरण का संकट: ब्रेक्सिट, ट्रम्प और उससे आगे. एलएसई रिसर्च ऑनलाइन (2018).
5. डेलर, गुलाब. "पुस्तक समीक्षा: लोकलुभावनवाद का वैश्विक उदय: बेंजामिन मोफिट द्वारा प्रदर्शन, राजनीतिक शैली और प्रतिनिधित्व. नवंबर 2017.
6. गुडावर्ती, अजय. मोदी के बाद का भारत. नई दिल्ली: ब्लूम्सबरी इंडिया, 2019.
7. हेज़ल, माइकल और जॉन केन. "लोकलुभावनवाद, वैश्वीकरण और अभिजात वर्ग की विफलता. लोवी संस्थान 18 अक्टूबर 2017.
8. मौंक, याशा. जनता बनाम लोकतंत्र. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2018.
9. ओकैम्पो, एमिलियो. "लोकलुभावनवाद: एक वैश्विक खतरा. रणनीतिक और अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन केंद्र, 9 अप्रैल 2018.
10. ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑनलाइन. लोकलुभावनवाद और विदेश नीति. एन.डी. रोड्रिक, दानी. "लोकलुभावनवाद और वैश्वीकरण का अर्थशास्त्र. अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति के जर्नल (2018).

अध्याय-10

पूर्व प्राथमिक शिक्षा का मुख्यधारा में समावेशन: राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेप

गौरव सिंह
आचार्य, केंद्रीय शैक्षणिक प्रौद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नयी दिल्ली -110016

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत में शिक्षा के विविध स्तरों पर गुणात्मक सुधार के प्रयास निरंतर होते रहे हैं। यदपि इनकी दिशा उच्च से निम्न की ओर रही. स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद, पहला आयोग "विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग-1948-49" बना, जिसने भारत में उच्च शिक्षा संस्थाओं में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए उपयोगी सुझाव दिए। वर्ष 1952-53में माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता उन्नयन की दृष्टि से "माध्यमिक शिक्षा आयोग" बना और उसके बाद डॉ. डी. एस. कोठारी की अध्यक्षता में बने "शिक्षा आयोग-1964 -66 " में शिक्षा में तीन प्रमुख स्तरों (उच्च, माध्यमिक और प्राथमिक) पर शिक्षा में गुणवत्ता लाने के लिए उपयोगी सुझाव दिए। वर्ष 1953 में प्रारंभिक बाल शिक्षा समिति ने प्राथमिक विद्यालय परिसरों के भीतर पूर्व-विद्यालय स्थापित करने की आवश्यकता पर बल दिया। एकीकृत बाल विकास योजना (आईसीडीएस) वर्ष 1974 में प्रायोगिक रूप से देश के 33 विकास-खण्डों में प्रारम्भ हुयी, जिसने कल्याण से विकास-आधारित सेवाओं के आधार पर बच्चों को राष्ट्रीय संसाधन के रूप में मानने पर ध्यान केंद्रित किया। कई वर्षों से, आईसीडीएस, विश्व में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा का सबसे व्यापक कार्यक्रम है। आईसीडीएस के तहत चलने वाले आंगनबाड़ी केंद्र पूरे देश के दूरदराज के क्षेत्रों में छह साल से कम उम्र के बच्चों, माताओं और किशोरों को स्वास्थ्य, शिक्षा और पोषण सेवाएं प्रदान कर रहे हैं।

भारत में आई प्रमुख शिक्षा नीतियों (शिक्षा की राष्ट्रीय नीति, 1968; शिक्षा की राष्ट्रीय नीति, 1986, क्रियान्वयन कार्यक्रम-1992) में भी मुख्यतः तीन स्तरों की शिक्षा की स्थिति का विवेचन कर सुझाव दिए और उन्ही में अनुसार सुधार लागू किए गए, परन्तु इस सभी में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा (जिसे प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के नाम से भी जाना जाता है), मुख्य धारा से बाहर ही रही।

यहाँ तक की भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 में भी (86वे संविधान संशोधन से पूर्व तक) छह वर्ष से 14 वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा के निशुल्क और अनिवार्य करने का संकल्प व्यक्त किया गया था। वर्ष 2002 में हुए 86 वें संविधान संशोधन में भी जब शिक्षा को मूल अधिकार के रूप में मान्यता दी गयी, तब भी संविधान के अनुच्छेद 21-अ में केवल 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को नि: शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया। यदपि इस संशोधन में अनुच्छेद 45 को पुनर्परिभाषित करते हुए राज्य से अपेक्षा की गयी कि वह 6 वर्ष की आयु पूर्ण करने तक बच्चों की प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा की व्यवस्था करेगा, परन्तु यह प्रावधान शिक्षा के अधिकार का अंग नहीं बना। वर्ष 2009 में जब बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार

(आरटीई) अधिनियम आया, तब उसमें भी 6 से 14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को एक औपचारिक विद्यालय में संतोषजनक और न्यायसंगत गुणवत्ता की पूर्णकालिक प्राथमिक शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया।

विश्व भर में बाल-मनोविज्ञान और बाल-विकास पर हुए शोधों इस ओर इंगित कर रहे थे कि बच्चे के मस्तिष्क का सर्वोत्तम विकास 6-7 वर्ष की आयु तक हो जाता है। *बच्चे के मस्तिष्क विकास की पहली महत्वपूर्ण अवधि 2 वर्ष की आयु के आसपास प्रारंभ होती है और 6 वर्ष की आयु के आसपास समाप्त होती है। यह बच्चों के लिए एक समग्र शिक्षा की नींव रखने का एक प्रमुख अवसर प्रदान करता है* (श्रीराम, 2020)।

> *यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है कि 6 वर्ष की आयु तक का प्रारंभिक बचपन, उल्लेखनीय मस्तिष्क विकास की अवधि है जब संचयी रूप से आजीवन सीखने की नींव रखी जाती है। 3 से 5 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चे आसपास के वातावरण में पाई जाने वाली वस्तुओं के साथ तीव्र और जीवंत जिज्ञासा दिखाते हैंऔर प्रयोग करते हैं।*
>
> \- *(9.13.3 सुब्रमण्यम समिति, 2016)*

ब्राउन एवं जेर्निगें, (2012) ने भी लिखा है कि “*पूर्वविद्यालयी वर्ष व्यापक मनोवैज्ञानिक विकास के समय का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसमें कई मनोवैज्ञानिक क्षमताओं की प्रारंभिक अभिव्यक्ति होती है जो युवा वयस्कता में परिष्कृत होती रहेंगी। इसी तरह, इस आयु में मस्तिष्क के विकास की विशेषता इसकी "पुष्पित-पल्लवित होती" प्रकृति है, जो इसके कुछ सबसे गतिशील और विस्तृत शारीरिक परिवर्तनों को दर्शाती है।*“ परन्तु लम्बे समय तक यह आयु वर्ग वर्षों से भारत में या तो अनौपचारिक व्यवस्था का अंग रहा या उपेक्षित रहा। *सरकारी विद्यालय पूर्व-प्राथमिक शिक्षा प्रदान नहीं करते हैं क्योंकि विद्यालय आम तौर पर केवल पहली कक्षा से शुरू होते हैं। एकीकृत बाल विकास सेवा (आई. सी. डी. एस.) कार्यक्रम का उद्देश्य प्रारंभिक बाल शिक्षा प्रदान करना था लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ है,* (9.13.1 सुब्रमण्यम समिति, 2016)। आंगनबाड़ी केंद्र केवल पोषाहार वितरण और देखभाल केंद्र बनकर रहे गए या फिर आर्थिक रूप से सक्षम अभिभावकों ने निजी क्षेत्र में चल रहे पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों में अपने बच्चों का प्रवेश करा दिया।

राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा नीति (2013) में बनी, जिसमें छह वर्ष से कम आयु के सभी बच्चों के इष्टतम विकास और सक्रिय अधिगम की क्षमता के लिए समावेशी, समतापूर्ण और प्रासंगिक अवसरों को बढ़ावा देने की बात की गयी। इसके आधार पर वर्ष 2014 में एक राष्ट्रीय प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा पाठ्यक्रम *रूपरेखा* भी बनी।

वर्ष 2016 में आए राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रारूप, जिसे सुब्रमण्यम समिति का प्रतिवेदन कहा जाता है, में पहली बार पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की शिक्षा की मुख्य धारा में लाने का सुझाव दिया गया। उन्होंने सुझाव दिया की 4 से 5 बर्ष तक के बच्चों की पूर्व-विद्यालयी शिक्षा को एक अधिकार के रूप में घोषित कर देना चाहिए और इसके लिए एक योजना तत्काल लागू होनी चाहिए, (सुब्रमण्यम समिति, 2016, 9.13.4, पृ. 127) 11 जनवरी, 2०18 को हुयी

केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (CABE) की बैठक में जब इस विषय पर विचार विमर्श हुआ तो यह आवश्यकता अनुभव की गयी, कि भारत में “शिक्षा का अधिकार” अधिनियम का दायरा बढाया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और पूर्व-विद्यालयी शिक्षा

भारत में सम्पूर्ण विश्व के साथ मिलकर वर्ष 2014 में संपोषणीय विकास एजेंडा-2030 को आत्मभूत किया। इसके लक्ष्य 4, जिसे “वैश्विक शिक्षा विकास लक्ष्य” कहतें हैं, जिसमें "सभी के लिए समावेशी और न्यायसंगत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने और सभी के लिए आजीवन सीखने के अवसरों को बढ़ावा देने" के प्रयास करने की अपेक्षा की गयी है, उस दिशा में प्रयास प्रारंभ किए। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, इसके अनुपालन में प्रत्येक व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता के विकास पर विशेष जोर देती है। शिक्षा नीति यह मानती है कि शिक्षा को न केवल संज्ञानात्मक क्षमताओं (साक्षरता और संख्यात्मकता की 'मूलभूत क्षमताओं'), वरन उच्च-संज्ञानात्मक क्षमताओं, जैसे कि आलोचनात्मक सोच और समस्या समाधान, का भी विकास करना चाहिए, और सभी में सामाजिक, नैतिक और भावनात्मक क्षमताओं और प्रवृत्तियों के विकास का प्रयास करना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के मूलभूत सिद्धांतों में कहा गया है कि “शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक दोनों क्षेत्रों में, प्रत्येक विद्यार्थी की अनूठी क्षमताओं को जानना, पहचानना, और उन्हें प्रोत्साहन देना, शिक्षकों के साथ-साथ माता-पिता का भी कर्त्तव्य है, और साथ ही इसमें कक्षा 3 तक सभी विद्यार्थियों में मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता की क्षमता प्राप्त करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है (पृ.७.)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में वर्तमान विद्यालयी संरचना का पुनर्गठन करते हुए, पहली बार, पूर्व-विद्यालयी शिक्षा को 5+3+3+4 के नए शैक्षणिक और पाठ्यक्रम संरचना में सम्मिलित किया और 3 से18 वर्ष तक की आयु वाले बच्चों की शिक्षा पर बल दिया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने स्वीकार किया है कि “ एक बच्चे के कुल मस्तिष्क विकास का 85% से अधिक 6 साल की आयु से पहले ही हो जाता है,” जो स्वस्थ मस्तिष्क के विकास को सुनिश्चित करने के लिए प्रारंभिक वर्षों में बच्चों की उचित देखभाल के महत्व को दर्शाता है। वर्तमान में, गुणवत्तापूर्ण पूर्व बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा के अवसर करोड़ों छोटे बच्चों, (विशेष रूप से सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित पृष्ठभूमि के बच्चों) के लिए उपलब्ध नहीं है। पूर्व बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा में मजबूत निवेश से सभी छोटे बच्चों को इस तरह की क्षमता विकसित करने में लाभ होगा, जिससे वो अपने पूरे जीवन में शिक्षा में भाग लेने और आगे बढ़ने में सक्षम हो सकते हैं। (१.१., पृ. ७)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इस दिशा में प्रयास करने का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) को सौंपा। जिसने वर्ष 2020 में प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा को समाहित करते हुए आधारभूत स्तर (फाउंडेशन स्टेज) के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा (एनसीएफ-एसई) संरेखित की।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में उल्लिखित है कि भारत में वर्तमान में विविध प्रकार की प्रारंभिक बाल शिक्षा संस्थानों की एक श्रृंखला है, जिसमें एकल आंगनबाड़ियां, प्राथमिक विद्यालयों के साथ सह-स्थित आंगनवाड़ियां, मौजूदा प्राथमिक विद्यालयों के साथ सह-स्थित पूर्व-प्राथमिक विद्यालय/अनुभाग, और केवल पूर्व-प्राथमिक विद्यालय,

संचालित हो रहे हैं, परन्तु इनमें कार्यरत कार्मिकों/शिक्षकों में उचित प्रशिक्षण का अभाव है, और उनके पाठ्यक्रमों में भी भिन्नता है। नीति ने प्रस्ताव दिया कि एक ऐसी पाठ्यचर्या रूपरेखा विकसित की जाए जिसमें वर्षों से चली आ रही भारत की कई समृद्ध स्थानीय परंपराओं को भी उपयुक्त रूप से सम्मिलित किया जाए, जिसमें कला, कहानियाँ, कविता, खेल, गीत और बहुत कुछ सम्मिलित हो। यह रूपरेखा माता-पिता और प्रारंभिक बाल देखभाल और शिक्षा संस्थानों, दोनों के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में काम करे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, आंगनबाड़ियों में उच्च गुणवत्ता वाले शिक्षकों की कमी से भलीभांति परिचित थी, इसलिए ऐसे शिक्षकों का प्रारंभिक संवर्ग तैयार करने के लिए, वर्तमान आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं/शिक्षकों को एनसीईआरटी द्वारा विकसित पाठ्यक्रम/शैक्षणिक ढांचे के अनुसार एक व्यवस्थित प्रयास के माध्यम से प्रशिक्षित करने की अपेक्षा की गयी। ऐसे अप्रशिक्षित शिक्षकों की बड़ी संख्या की देखते हुए ही नीति ने सुझाव दिया की इस प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए शैक्षणिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाये, जिसमें इन कार्यक्रमों को डी. टी. एच. चैनलों के साथ-साथ स्मार्टफ़ोन का उपयोग करके डिजिटल/दूरस्थ मोड के माध्यम से चलाया जा सकता है।

आधारभूत स्तर की राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा (एनसीएफ-एसई)-२०२२

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2022 के अनुपालन में वर्ष 2022 में एनसीईआरटी द्वारा आधारभूत स्तर की राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा (एनसीएफ-एसई) विकसित की गयी। इसमें 3-8 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के लिए शैक्षिक प्रावधानों, पाठ्यक्रम, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, आकलन, आदि की विस्तृत रूपरेखा प्रदान की गयी है। इस रूपरेखा की विशेषता यह है कि इसमें विद्यालय में प्रवेश से पूर्व, बच्चो के घरेलू परिवेश में विकास के आयामों को भी सम्मिलित किया गया है। बच्चे के विकास में माता-पिता, परिवार, पड़ोस, निकट-समुदाय के अन्य-सदस्य, सभी का योगदान होता है।

इस रूपरेखा की एक विशेषता यह है कि इसके निर्माण के समय भारतीय विचार और विचारकों के योगदान को महत्व दिया गया है। फिर चाहे सावित्रीबाई फुले और ज्योतिबा फुले द्वारा समाज के सभी वर्गों (विशेष रूप से वंचित वर्गों) के बच्चों की शिक्षा की आवश्यकता पर बल देने की बात हो, या रविंद्रनाथ ठाकुर द्वारा बच्चों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में प्रकृति की भूमिका, जिसमें वह स्वतंत्रता, आनंद, सृजनात्मकता और देश की सांस्कृतिक विरासत की भूमिका को रेखांकित करते हैं। प्रारंभिक बाल्यावस्था में अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता और खेल-खेल में जीवन कौशलों का विकास, उनके प्रमुख विचार है। रूपरेखा में स्वामी विवेकानंद के शरीर, मन और आत्मा के समन्वित विकास का विचार और सभी में समता देखने की मानवीय चेतना, महात्मा गाँधी के तात्कालिक परिवेश के महत्व और मातृभाषा में शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक बच्चे की योग्यता को पहचानने और समाज के निर्माण में उसके योगदान को रेखांकित करने का विचार, सभी को महत्व दिया गया है। महात्मा गाँधी नेछह वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम भी विकसित किया था, जिसमें उन्होंने 3-एच (हैण्ड, हार्ट, और हेड) के विकास पर बल दिया. महर्षि अरविन्द मानते थे की बच्चे का विकास केवल संज्ञानात्मक ही नहीं, वरन शरीर, चित्त, मन, और अध्यात्मिक भी होता है। उनका विश्वास था की बच्चे का तात्कालिक परिवेश और मातृभाषा में दी गयी शिक्षा, उसके शिक्षण का मुख्य आधार होना चाहिए। जिद्दू कृष्णमूर्ति के विचारों में बच्चों को स्वतंत्रता

और प्रेम देने से उनमे अच्छाई पुष्पित होती है। जिससे अंततः समाज में परिवर्तन होता है। इन सब विचारों में 2022 की पाठ्यचर्या रूपरेखा के निर्माण में मार्गदर्शन दिया है।

यह पाठ्यचर्या रूपरेखा दो स्तरों पर पाठ्यक्रम के सुझाव देती है, एक 3 से 6 वर्ष, हो पूर्व विद्यालय अवस्था है, और दूसरी 6 से 8 वर्ष, जिसमे कक्षा 1-2 सम्मिलित है। पाठ्यचर्या में स्वास्थ्य, सुरक्षा, देखभाल और पोषण पर निरंतर ध्यान देने पर बल दिया गया है, और स्व-सहायता कौशल,, स्वच्छता, व्यायाम के माध्यम से शारीरिक विकास, माता-पिता और दूसरों के साथ भावनाओं को व्यक्त करना और संवाद करना, अपने साथियों से सहज होना, काम पूरा करने के लिए बैठना, नैतिक विकास, और अच्छी आदतें बनाना, इन पर विशेष ध्यान केन्द्रित है। पाठ्यचर्या रूपरेखा यह मानती है कि बच्चे नैसर्गिक रूप से प्रारंभिक वर्षों में खेल-आधारित तरीकों के माध्यम से बेहतर तरीके से सीखते हैं और उनका अच्छा विकास होता हैं। भारतीय परंपरा से आधार लेते हुए, यह पाठ्यचर्या रूपरेखा बच्चे के समग्र विकास की पंचकोशीय विकास की अवधारणा को स्वीकारती है।

पंचकोशीय विकास भारतीय परंपरा में विकास का प्रमुख आधार हैं, जिसमें अन्नमय कोश (भौतिक आयाम) प्राणमय कोश (जीवनशक्ति/ऊर्जा आयाम) मनोमय कोश (मन का आयाम) विज्ञानमय कोश (बौद्धिक आयाम) और आनंदमय कोश (आंतरिक स्व के विकास का आयाम), सम्मिलित हैं। एक बच्चे का समग्र विकास के लिए इन पाँच आयामों के विकास के लिए शिक्षा और पोषण को ध्यान में रखने का आग्रह किया गया है। कोई भी भारतीय परंपरा बच्चों को कभी खाली स्लेट के रूप में नहीं देखती, यहाँ सदैव माना जाता है कि बच्चों पास कुछ स्वभाविक गुण होते हैं जो विश्व में उसके अस्तित्व को प्रभावित करते हैं और उसे एक अद्वितीयता प्रदान करते हैं। इन सबको आधार बनाकर, एक विस्तृत पाठ्यचर्या रूपरेखा मार्गदर्शक के रूप में उपलब्ध तो है, परन्तु एक बड़ी संख्या में इसकी पहुँच बिना प्रौद्योगिकी की सहायता के संभव नहीं लगती।

आधारभूत स्तर की राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा का क्रियान्वयन (जादुई पिटारा)भारत की बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिकता में बच्चों के देखभाल और शिक्षा के विविध स्रोत और विधियाँ विद्यमान हैं। स्थानीय परम्परागत खेल, बच्चों के खिलोने, माँ की लोरियाँ, लोक कथाएँ और लोक गीत, बच्चों की देखभाल के तरीके, अलग-अलग मौसम में उनका खानपान, यह सब हमारी समृद्ध विरासत भी है और बच्चों की देखभाल और शिक्षा का माध्यम भी। आधारभूत स्तर के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा - 2020 को आधार बनाते हुए और भारत की समृद्ध विरासत और विविधता को संजोने की दृष्टि से एन.सी.ई.आर.टी. ने 2023 में एक "जादुई पिटारा" विकसित किया और उसे विविध विद्यालयों को उपलब्ध करने के साथ-साथ उन्हें स्थानीय स्तर पर अपने-अपने जादुई पिटारे के निर्माण को भी प्रोत्साहित किया। बाल-बाटिका के बच्चों के लिए आनंद और शिक्षकों के मार्गदर्शन के लिए उन्मुख नाम से दो पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित की गयीं, और उनकी उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास भी किया गया। इस पिटारे में 'खेल के माध्यम से' सीखने

स्रोत: दीक्षा, एन.सी.ई.आर.टी वेबसाइट

के लिए पंचकोशीय विकास के लक्ष्य को ध्यान मने रखते हुए विविध प्रकार की सामग्री उपलब्ध करायी गयी है। इस पिटारे में खिलौने, पहेली, कठपुतली, पोस्टर, फ्लैश कार्ड,वर्कशीट और आकर्षक किताबें, आदि को इस प्रकार समावेशित किया गया कि इससे शिक्षक स्थानीय वातावरण, और संदर्भ और समुदायिक जीवन, स्थानीय उदाहरण, आदि में बसी भारतीयता को बच्चों में जीवंत कर सकें। जादुई पिटारा को उन लोगों से अनुकूल प्रतिक्रिया मिली, जिन्होंने इसके लॉन्च के बाद से इसकी सामग्री को देखा, प्रयोग किया और उसके सम्बन्ध में बच्चों और उनके शिक्षकों के साथ बातचीत की। प्रशासकों, शिक्षकों और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि छोटे बच्चों ने इसे एक परिवर्तनकारी प्रकृति और खेल पर शैक्षणिक ध्यान केन्द्रित करने के प्रतीक के रूप में इसे उत्साहपूर्वक अपनाया है। जादुई पिटारा छोटे बच्चों में आश्चर्य, जिज्ञासा और आनंद पैदा करता है।

ज्ञात आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 9.3 लाख विद्यालयों में प्राथमिक, १.९ लाख विद्यालयों में पूर्व-प्राथमिक कक्षाएं संचालित होती है। 1.7 लाख विद्यालयों में आंगनवाड़ी केंद्र स्थित हैं। 2011 तक भारत में लगभग 14 लाख आंगनवाड़ी केंद्र संचालित हो रहे थे। 1 से 4 वर्ष की आयु के लगभग २ करोड़ बच्चे पूर्व-प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, जो इस आयुवर्ग की जनसंख्या का लगभग 40% ही थे, (स्रोत: NCFFS, 2022, p. 29)। यदपि यह सम्पूर्ण आंकड़े नहीं है परन्तु इनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कितनी बड़ी संख्या में संसाधनों की आवश्यकता है, और भौतिक रूप से संसाधन उपलब्ध कराना एक दुरूह कार्य है। अतः सबसे बड़ी चुनौती प्रत्येक आंगनबाड़ी या पूर्व-प्राथमिक विद्यालय तक जादुई पिटारा को सर्वसुलभ करना रहा, और इसका समाधान दिया शैक्षणिक प्रौद्योगिकी ने।

प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेप

दीक्षा (DIKSHA)

भारत सरकार ने विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में "डिजिटल इनिशिएटिव फॉर नॉलेज शेयरिंग" दीक्षा के नाम से "एक देश-एक प्लेटफार्म" को प्रस्तुत किया हा। इस डिजिटल मंच के माध्यम से विद्यालयी शिक्षा और शिक्षक प्रशिक्षण की दृष्टि से विविध प्रकार की सामग्री विविध भाषाओं में सभी को उपलब्ध करायी जाती है। पूर्व-विद्यालयी शिक्षा की सामग्री उपलब्ध कराने की दृष्टि से इसी मंच पर एक वेब-पेज "जादुई-पिटारा" के नाम से जोड़ा गया, और वह सभी सामग्री, जो भौतिक पिटारे में थी, उसे डिजिटल माध्यम से उपलब्ध कराया गया है।

स्रोत: दीक्षा, एन.सी.ई.आर.टी वेबसाइट

ई-जादुई पिटारा

एक बार फिर इसे जन-सुलभ बनाने के उद्देश्य से एक मोबाइल एप्प "ई-जादुई पिटारा" 2024 में विकसित किया गया और इससे विभिन्न भारतीय भाषाओं में पूर-प्राथमिक शिक्षा की समस्त सामग्री, मोबाइल के माध्यम से उपलब्ध

करायी गयी है। डिजिटल प्रौद्योगिकियां और प्रौद्योगिकी-सक्षम चैनल, एनसीएफ-एफएस के परिवर्तनकारी प्रभाव को तीव्र और प्रवर्धित कर सकते हैं, इसी अपेक्षा के साथ भारत सरकार ने भौतिक सीमाओं की बाध्यता को कम करने के लिए जादुई पिटारा के भौतिक स्वरुप के पूरक के रूप में एक डिजिटल जादुई पिटारा प्रारंभ करने का सुझाव दिया।

ई-जादुई पिटारा न केवल शिक्षकों के लिए (जैसा कि भौतिक जादुई पिटारा के मामले में है) बल्कि माता-पिता और विविध समुदायों के लिए भी बच्चे के लिए आयु-उपयुक्त प्रासंगिक सामग्री को बहुभाषाओं में उपलब्ध कराता है। यह दिव्यांग बच्चों को समान पहुंच और उनका समावेशन सुनिश्चित करने के लिए विविध भाषाओं, चैनलों, स्थानों और प्रारूपों में सामग्री तक पहुंच प्रदान कर रहा है ताकि शिक्षार्थी के लिए एक सुखद अनुभव निर्मित किया जा सके और बच्चे की जन्मजात उत्कंठा, आश्चर्य, जिज्ञासा और आनंद को पोषित किया जा सके।

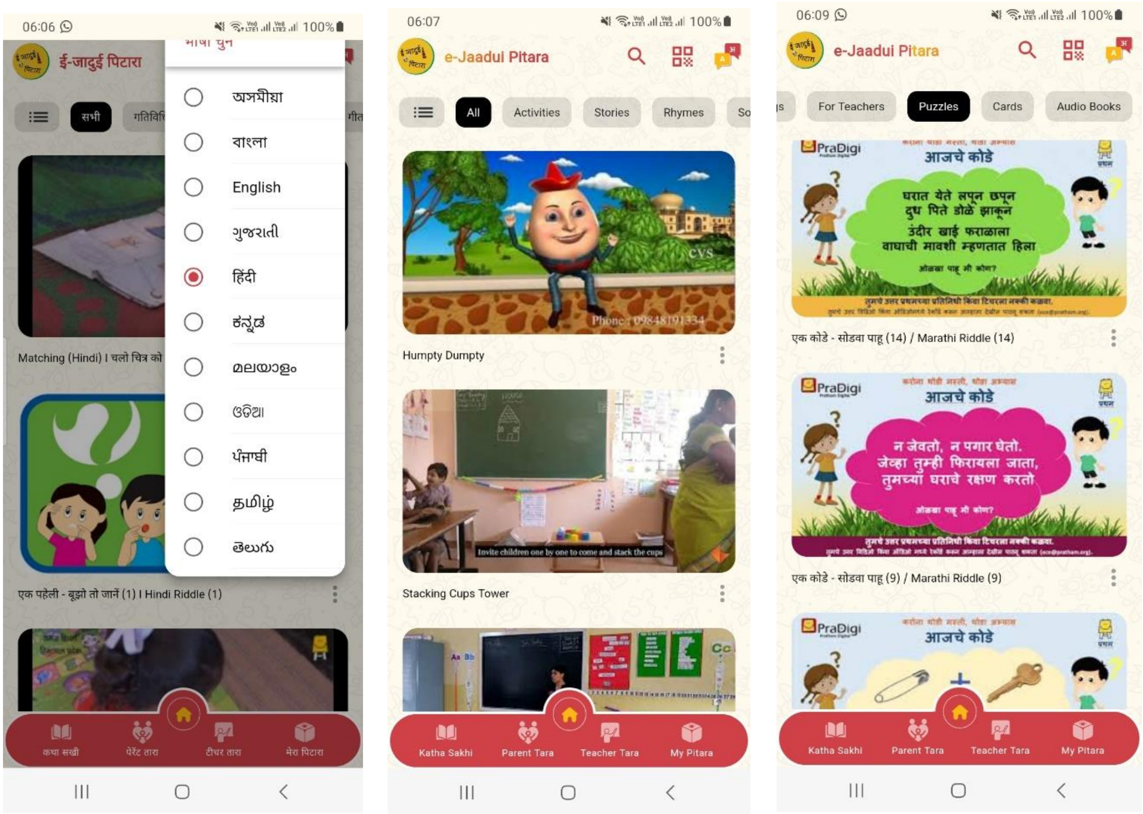

चित्र: ई-जादुई पिटारा का बहुभाषी स्वरुप

ई-जादुई पिटारा शिक्षकों और माता-पिता के क्षमता विकास में सहायता करता है जिससे बच्चों को शिक्षित करते हुए माता-पिता/शिक्षक संवादात्मक सामग्री को सक्षमता के साथ प्रयोग कर सकें। ई-जादुई पिटारा देश भर से सर्वोत्तम उदाहरणों को एकत्र कर, सभी के समावेश को बढ़ावा दे रहा है, जिससे नवाचार और रचनात्मकता को अधिक बढ़ावा मिलता है। इसका निर्माण एक एंड्राइड एप्प के रूप में किया गया है जो आधुनिक प्रौद्योगिकी, जैसे- वहाट्सएप्प, वेब-रेडियो, इंटरैक्टिव संवाद के साथ-साथ भविष्य की प्रौद्योगिकी, जैसे- कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस) आधारित चैटबोट का अनोखा सम्मिश्रण है। इसमें AI आधारित भारतीय भाषाई नवाचारों (अनुवादिनी

और भासिनी) की विशेषताओं को समिश्रित करते हुए, इसे बहु-भाषी स्वरुप में उपलब्ध कराया गया है। ई-जादुई पिटारा मोबाइल एप्प को इस प्रकार से निर्मित किया गया है कि यह बच्चों में हाथ में मोबाइल देने की प्रथा को बढ़ावा न देकर, शिक्षकों और माता-पिता को उनके लालन-पालन और पूर्व-विद्यालयी शिक्षण के लिए सक्षमता प्रदान करे।

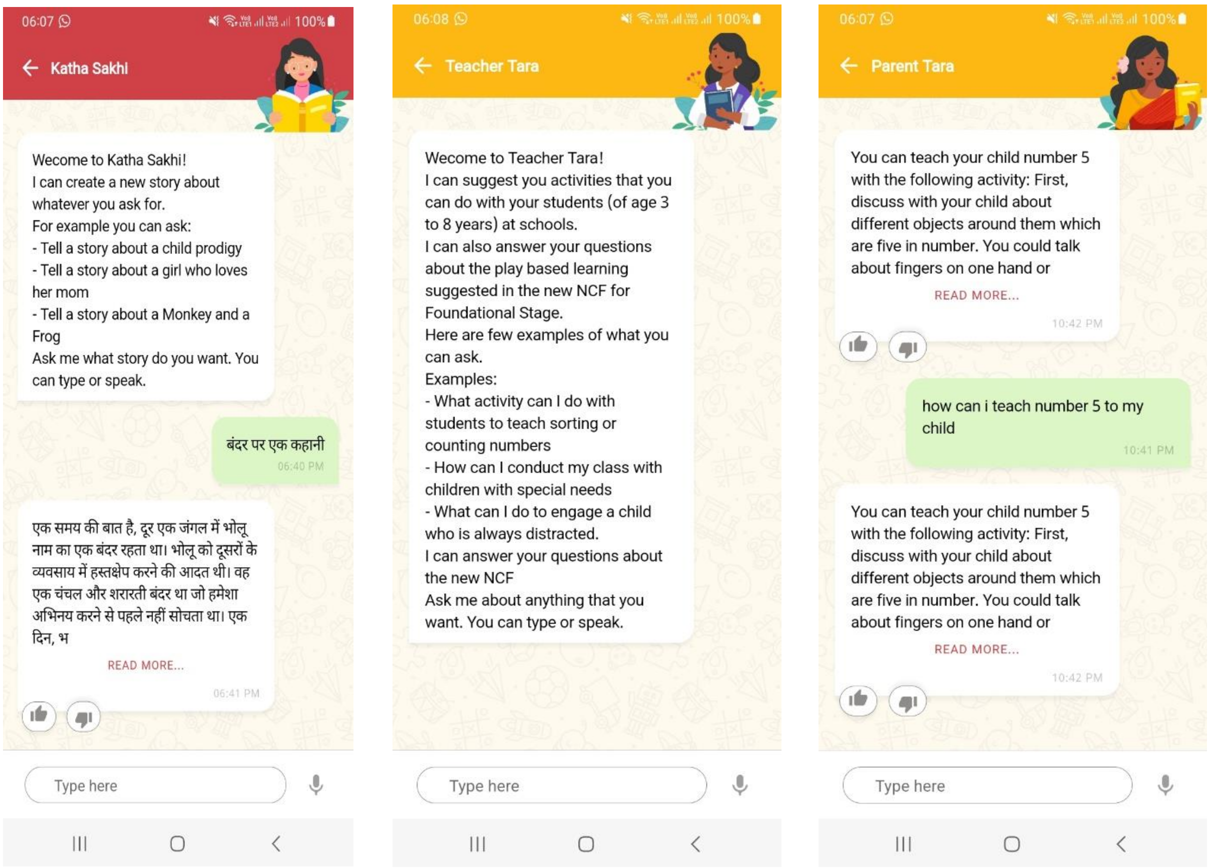

चित्र: ई-जादुई पिटारा के AI आधारित चैटबोट

इस एप्प में विषय सामग्री की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिए एन.सी.ई.आर.टी. को दायित्व सौंपा गया है कि किसी भी विषय सामग्री (जो विविध स्रोतों, जैसे कि-राज्यों की शैक्षणिक संस्थाएँ, गैर-सरकारी उपक्रमों, निजी रूप से शिक्षकों/अभिभावकों से प्राप्त होती है), को इस एप्प पर उपलब्ध करने से पूर्व उसका उपयुक्तता और गुणवत्ता की दृष्टि से परीक्षण करे। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं: इसमें AI आधारित तीन चैटबोट: कथासखी, शिक्षक तारा, और अभिभावक तारा हैं, जो एक अलग तरह का अंत:क्रियात्मक अनुभव उपलब्ध कराते हैं। **कथा-सखी** से कोई भी शिक्षक या अभिभावक, अपनी भाषा में लिखकर या बोलकर कोई भी कहानी निर्मित करने को कह सकता है, और फिर उस कहानी को बच्चों को सुनाया जा सकता है। **शिक्षक-तारा** को इस प्रकार से प्रशिक्षित किया गया है कि शिक्षक, कक्षा में आने वाली समस्याओं या शिक्षण को आसान और अंत:क्रियात्मक बनाने की लिए कोई भी प्रश्न पूछ सकता है, जैसे: आज बच्चे शिक्षण में रूचि नहीं ले रहे, मुझे क्या करना चाहिए?, एक बच्चा किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा, मैं क्या क्रियाकलाप करा सकता/सकती हूँ? **अभिभावक-तारा**, घर में बच्चों की देखभाल और शिक्षण को रुचिपूर्ण बनाने के लिए, उनके द्वारा पूछे जा रहे प्रश्नों का उत्तर देती है।

समाहार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में पूर्व-विद्यालयी शिक्षा की मूलभूत शैक्षिक संरचना का अंगा बनाने का जो सपना देखा गया, उसे फलीभूत करने की दिशा में आधारभूत स्तर की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ.-एफ.एस.)-2022 ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। इस पाठ्यचर्या रूपरेखा ने न केवल भारतीय परंपरागत ज्ञान को बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा का मूल आधार बनाया, वरन भारत की विविधता और बहुभाषिकता को एक सूत्र में पिरोकर राष्ट्र-निर्माण के बच्चों को तैयार करने का उचित आधार निर्मित किया है। आज के तकनीकी युग में किसी भी नवाचार को जन-जन तक पहुँचाने में सूचना-सम्प्रेषण प्रौद्योगिकी की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। दीक्षा और ई-जादुई पिटारा जैसे माध्यमों से प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा से सम्बंधित गुणवत्तापूर्ण सामग्री की सुलभता सुनिश्चित की गयी है। भविष्य की प्रौद्योगिकी, जैसे- कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस) आधारित चैट-बोट के समेकन से यह भी प्रदर्शित हुआ है कि कैसे प्रौद्योगिकी का सकारात्मक उपयोग, शिक्षा की बहुत सारी समस्याओं को दूर कर सकता है। भारत को विकसित राष्ट्र बनाने की दिशा में ऐसे सभी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं और सभी तक अपनी भाषा में गुणवत्तापूर्ण सामग्री की पहुँच से सभी को एक सूत्र में पिरो दिया गया है।

संदर्भ सूची

- https://dsel.education.gov.in/rte
- NCERT (2022). National Curriculum Framework for Foundational Stage, 2022, https://ncert.nic.in/pdf/focus-group/NCF-FS_2022.pdf
- ब्राउन, टी, टी, एवं जेर्निगें, टी, एल, (२०१२). ब्रेन डेवलपमेंट डयूरिंग थे प्री स्कूल इयर्स, न्यूरोसाइकोलॉजिकल रिव्यु, Dec; 22(4):313-33. doi: 10.1007/s11065-012-9214-1
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (२०१६). नेशनल पालिसी ऑन एजुकेशन, २०१६, रिपोर्ट ऑफ़ द कमिटी फॉर इवोल्यूशन ऑफ़ द न्यू एजुकेशन पालिसी, https://www.niepa.ac.in/download/NEP2016/ReportNEP.pdf
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय (२०२०). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf
- श्रीराम, आर. (२०२०). व्हाई ऐज 2-7 मैटर सो मच फॉर ब्रेन डेवलपमेंट, यूटोपिया, जून, २४, https://www.edutopia.org/article/why-ages-2-7-matter-so-much-brain-development

अध्याय-11

अनुसूचित जनजातियों / आदिवासियों के हितों के संरक्षण के लिए संवैधानिक प्रावधान

विनोद कुमार
सहायक आचार्य, राजनीती विज्ञान विभाग,
श्री राधेश्याम आर. आर. मोरारका राजकीय
महाविद्यालय, झुंझुनूं (राजस्थान)

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आदिवासी समुदाय(अनुसूचित जनजातियों के समुदाय) अपनी विशिष्ट पहचान एवं अलग अस्तित्व बनाये हुए है। आदिवासी समाज को ऐसे समुदाय के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसकी विशिष्ट संस्कृति, धर्म, भाषा और नृजातीय पहचान होती है। आदिवासियों को वनवासी, देशज, आदिम, मूल निवासी के नाम से भी जाना जाता है। महात्मा गाँधी ने आदिवासियों के लिए 'गिरिजन''' शब्द का प्रयोग किया है। संविधान निर्माताओं ने संविधान सभा में लम्बी बहस एवं विचार विमर्श के पश्चात् आदिवासियों के लिए '''अनुसूचित जनजाति''' शब्द प्रयुक्त किया। भारत के संविधान में आदिवासी, वनवासी और गिरिजन के लिए '''अनुसूचित जनजाति''' शब्द का प्रयोग किया है। जनजाति एक मानवशास्त्रीय अवधारणा है जबकि अनुसूचित जनजाति एक संवैधानिक और प्रशासनिक अवधारणा हैं।[1] अनुसूचित जनजाति की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति है जिसके अंतर्गत उनके रहन-सहन एवं जीवन यापन का पूर्ण समावेश जैसे-भाषा, धार्मिक-विश्वास, कला, दस्तकारी प्रथाएँ और परम्पराएं आतें है। संविधान के अनुच्छेद-366 के उपखंड-25 में अनुसूचित जनजाति का अर्थ स्पष्ट करते हुए परिभाषित किया गया है कि "ऐसी आदिवासी जाति या आदिवासी समुदाय या इन आदिवासी जातियों और आदिवासी समुदायों के भाग या उसके समूह के रूप, जिन्हें इस संविधान के उद्देश्यों के लिए अनुच्छेद-342 में अनुसूचित जनजातियाँ माना गया हैं।[2]" अनुच्छेद-342 में प्रावधान है "राष्ट्रपति किसी राज्य या संघ शासित क्षेत्र के संबंध में वहां के राज्यपाल से परामर्श के पश्चात् लोक अधिसूचना द्वारा उन जनजातियों या जन-जाति समुदायों अथवा जनजातियों या जनजाति समुदायों के भागों या उनमे के समूहों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुसूचित जनजातियाँ समझा जायेगा।[3] "किसी समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में विनिर्दिष्ट करने के लिए निम्नलिखित मानदंडों का अनुसरण किया जाता है[4]-आदिम लक्षणों के संकेत, विशिष्ट संस्कृति, भौगोलिक एकाकीपन, बड़े पैमाने पर समुदाय के साथ संपर्क में झिझक तथा पिछड़ापन यद्यपि इन मानदंडों का उल्लेख संविधान में नहीं है, परन्तु ये सुस्थापित और स्वीकृत हो चुके है। यह 1931 की जनगणना, प्रथम पिछडा वर्ग आयोग(काका कालेलकर),1955, अनुसूचित जातियों/ अनुसूचित जनजातियों की सूची के संशोधन संबंधी लोकुर समिति,1965 तथा अनुसूचित जातियाँ तथा अनुसूचित जनजातियों संबंधी संयुक्त संसदीय समिति के आदेश(संशोधन) विधेयक,1967 और चंदा समिति,1969 में उल्लेखित परिभाषाओं को ध्यान में रखा जाता है। केंद्र और राज्य सरकारों के साथ साझेदारी में नागरिक समाज की कार्रवाई को बढ़ाने के लिए केन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय के अधीन एक स्वतंत्र सोसायटी के रूप में केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा 3सितम्बर, 2013 को गठित भारत ग्रामीण आजीविका फाउंडेशन के मुख्य कार्यकारी अध्यक्ष प्रथमेश अम्बस्ता ने कहा: "अगर हम किसी भी मुद्दे पर नजर

डाले, चाहे वह स्वच्छता का हो, पोषण का हो, पीने के पानी तक पहुँच का हो तो हम देखेंगे कि आजादी के बाद आदिवासी सबसे ज्यादा वंचित हैं।"

संवैधानिक प्रावधान

भारत के संविधान की प्रस्तावना भारत के नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय उपलब्ध कराने का संकल्प करती है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संविधान के विभिन्न भागों एवं अनुसूचियों में अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष प्रावधान किए गए है। संविधान में अनुसूचित जनजातियों के हितों की सुरक्षा एवं संरक्षण से संबंधित प्रावधानों का लक्ष्य उनके शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देकर सामाजिक असमानता को दूर करना है। संविधान निर्माताओं ने भारतीय समाज में विद्यमान असमानता की यथार्थता को समझते हुए अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान में विशेष उपबंध किए जिससे सभी व्यक्ति समान रूप से आर्थिक व राजनीतिक विकास प्रक्रिया में अपनी भागीदारी निभा सके। देश के विभिन्न भागों में निवास करने वाले जनजातीय समूह को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना तथा उन तक विकास की पहुँच बनाना एक बहुत बड़ी चुनौती है।

अनुसूचित जनजाति के रूप में समुदायों की परिभाषा और निर्धारण

भारत में जनजाति व्यवस्था स्वदेशी समुदायों की विशिष्ट सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक संरचना को इंगित करती है। इसमे जनजातीय शासन, रीति-रिवाज, परम्पराएं और भाषाओँ को संरक्षित किए हुए है। आदिवासी समाज अपेक्षित रूप से एक पृथक समाज है। भारत में जनजातियाँ ऐसे स्वदेशी समुदाय है जिनकी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक विशेषताएं है जो अपनी विशिष्ट परम्पराओं, रीति-रिवाजों और भाषाओँ को संरक्षित किये हुए है। संविधान के अनुच्छेद-366 के उपखंड-25 में उन जनजातियों की परिभाषित किया है जिन्हें अनुच्छेद-342 के अधीन अनुसूचित जनजातियाँ समझा जाता है। संविधान के अनुच्छेद-342 के तहत 730 से अधिक अनुसूचित जनजातियाँ अधिसूचित है। अनुच्छेद-342 में प्रावधान है "राष्ट्रपति संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात् लोक अधिसूचना के द्वारा उन जनजातियों या जनजाति समुदायों अथवा जनजातियों या जनजाति समुदायों के भागों या उनमे के समूहों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा और संसद अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जनजातियों की सूची में सम्मिलित या उसमे से अपवर्जित कर सकेगी।"[5]

जनजातियों को अनुसूचित जनजातियों की सूची में शामिल करने के मापदंड

भारत सरकार ने समुदायों को अनुसूचित जनजातियों की सूची में सम्मिलित या उसमें से अपवर्जित करने के लिए समय-समय पर प्रावधान जारी किये है। किसी समुदाय को अनुसूचित जनजाति में सम्मिलित या अपवर्जित करने की प्रक्रिया राज्य सरकार द्वारा प्रस्ताव तैयार कर सिफारिश करने पर शुरू होती है।[6] इन सिफारिशों को जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार को भेजा जाता है, जो इनकी समीक्षा करता है और तत्पश्चात अनुमोदनार्थ भारत के महापंजीयक और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के समक्ष रखा जाएगा। इसके बाद अंतिम दौर में मंत्रिमण्डल के निर्णय लिए भेजा जाता है तत्पश्चात भारत सरकार द्वारा राष्ट्रपति संबंधित अधिसूचना के तहत संशोधन को लागु करने के लिए संसद के सम्मुख प्रस्ताव रखवाएगा।

अनुसूचित क्षेत्रो से संबंधित प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद-244 में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन से संबंधी प्रावधान किये गए है। संविधान की अनुसूची-5 के प्रावधान असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम को छोड़कर अन्य किसी

राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के लिए लागु होंगे। 5वीं अनुसूची के अधीन किसी क्षेत्र को 'अनुसूचित क्षेत्र' घोषित करने के लिए निम्नलिखित मानदंड[7] हैं-

(1) जनजातीय जनसंख्या का बाहुल्य

(2) सघनता तथा क्षेत्र का औचित्यपूर्ण आकार

(3) व्यावहारिक प्रशासनिक अस्तित्व

(4) निकटवर्ती क्षेत्रों की तुलना में आर्थिक पिछड़ापन|

असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम में अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के लिए संविधान की छठीं अनुसूची के प्रावधान लागु होंगे। छठी अनुसूची से संबंधित विषयगत मामले गृह मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र के तहत आते है। असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम की जनजातीय समुदायों के लोग इस राज्य के अन्य लोगों की दिनचर्या से घुलमिल नहीं पाये है। इन राज्यों के लोग अभी भी अपनी संस्कृति, रिवाजों और सभ्यता से जुड़ें हैं, यद्यपि भारत के अन्य क्षेत्रों के जनजातीय समुदाय के लोगों ने अपने बीच के बहुसंख्यको की संस्कृति को कम या अधिक अपना लिया है। इसलिए इन क्षेत्रों को संविधान द्वारा विशेष स्थान देकर स्वशासन के लिए जनजातीय समुदायों को पर्याप्त स्वायतता प्रदान की गई है।[8] ये स्वायत क्षेत्र संबंधित राज्य की कार्यकारी सत्ता की परिधि के बाहर नहीं होते है लेकिन इनके कुछ विशिष्ट विधायी और न्यायिक प्रकार्यों के सम्पादन के लिए जिला परिषदों और क्षेत्रीय परिषदों के गठन का प्रावधान है।[9]

संविधान के अनुच्छेद-339 में प्रावधान है कि राष्ट्रपति, अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और राज्यों के अनुसूचित जनजाति के कल्याण के बारें में प्रतिवेदन देने के लिए एक आयोग की नियुक्ति करेगा। राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना संविधान में 89वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के द्वारा अनुच्छेद 338क जोड़कर, 19फरवरी, 2004 में की गई।

राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के कार्य

संविधान के अनुच्छेद-338क के खंड(5) में राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के कार्यों का उल्लेख मिलता है जोकि निम्नानुसार है-

(1) अनुसूचित जनजातियों के लिए प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों से संबंधित सभी मामलों की जांच तथा निगरानी करना।

(2) अनुसूचित जनजातियों को उनके अधिकारों और सुरक्षा उपायों से वंचित किए जाने के संबंध में विनिर्दिष्ट शिकायतों की जांच करना।

(3) अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया में भाग लेना और उन पर सलाह देना और संघ तथा किसी भी राज्य के अधीन उनके विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना।

(4) राष्ट्रपति को, वार्षिक तौर पर और अन्य ऐसे समयों पर, जब भी आयोग उपयुक्त समझे, उन सुरक्षा उपायों के आकलन पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना।

(5) अनुसूचित जनजातियों के संरक्षण, कल्याण, विकास और उन्नयन के संबंध में ऐसे अन्य कार्यों का क्रियान्वयन।

सामाजिक सुरक्षा से संबंधित प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद-14 के तहत सभी नागरिकों को कानूनी समानता का अधिकार प्रदान किया गया है।

संविधान के अनुच्छेद-15(1) में प्रावधान है कि राज्य किसी भी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान आदि के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 15(4) में प्रावधान है कि अनुच्छेद-15 या अनुच्छेद-29 के खंड(2) की कोई बात राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिको के अनुसूचित जनजाति सहित किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी। इसका आशय है कि यदि राज्य द्वारा इन जनजातियों के सदस्यों के पक्ष में विशेष उपबंध किए जाते है तो अन्य नागरिक ऐसे उपबंधों की विधि मान्यता पर इस आधार पर आक्षेप नहीं कर सकते कि वे उनके विरुद्ध विभेदकारी है।[10]

अनुच्छेद-19 के तहत नागरिकों को प्रदत स्वतंत्रताएँ और सुरक्षा उपाय अनुसूचित जनजातियों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है क्योंकि ये प्रावधान और सुरक्षा उपाय अनुसूचित जनजाति समुदाय के लोगों को देश के नागरिकों के समान अपने अधिकारों का प्रयोग करने में सक्षम बनाते है। इसके अतिरिक्त भारत के राज्य क्षेत्र में अबाध संचरण और निवास करने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को प्रदान किया गया है किन्तु अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की दशा में राज्य उनके हितों की सुरक्षा के लिए विशेष निर्बन्धन अधिरोपित कर सकेगा।[11]

अनुच्छेद-23 और 24 में मानव दुर्व्यापार, बलात श्रम/बेगार/बंधुआ मजदूरी और बाल मजदूरी के निषेध का प्रावधान है जोकि अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक और आर्थिक कमजोरियों को देखते हुए एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली कदम है।

अनुच्छेद-29 में प्रावधान है कि सांस्कृतिक या भाषाई अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा या संस्कृति के संरक्षण का अधिकार है। राज्य, उस पर समुदाय की अपनी संस्कृति के अलावा किसी अन्य संस्कृति को नहीं थोपेगा। इस प्रावधान का अनुसूचित जनजातियों के लिए विशेष महत्त्व हैं क्योंकि उनमें से अधिकांश की विशेष भाषाएँ हैं तथा कुछ समुदायों की अपनी अलग लिपि भी है। परन्तु इस प्रावधान का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि अनुसूचित जनजाति समुदायों के लोगों को केवल उनकी ही भाषा में शिक्षित किया जाए क्योंकि ऐसा करने से वे अलग हो जाएगें। उन्हें राज्य की भाषा के साथ-साथ राष्ट्रीय भाषा में भी शिक्षित किया जाए ताकि राष्ट्र की मुख्यधारा में जोड़ने के साथ-साथ उनके संघटन में मदद की जा सकें।

अनुच्छेद-350 में विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति के संरक्षण का अधिकार प्रदान किया गया है।

सार्वजनिक नियोजन से संबंधित प्रावधान

अनुच्छेद-16 में प्रावधान है कि राज्य के अधीन किसी नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों में, सभी नागरिकों को समान रूप से अवसर प्राप्त होंगे।

अनुच्छेद-335 में प्रावधान है कि संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप से संबंधित सेवाओं और पदों पर नियुक्तियां करने में अनुसुचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लोगों के दावों का प्रशासन की दक्षता बनाए रखने की संगती के अनुसार ध्यान रखा जाएगा बशर्ते कि इस अनुच्छेद की कोई बात अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के पक्ष में संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप से संबंधित सेवाओं के किसी वर्ग या वर्गों में, या

पदों पर प्रोन्नति के मामलों में आरक्षण के लिए, किसी भी परीक्षा में अहर्क अंकों में छुट देने या मूल्यांकन के मानकों को घटाने के उपबंध करने से निवृत नहीं करेगी।

आर्थिक सुरक्षा से संबंधित प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद-46 में प्रावधान है कि राज्य "समाज के कमजोर वर्गों में शैक्षणिक और आर्थिक हितों विशेषत: अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का विशेष ध्यान रखेगा और उन्हें सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से संरक्षित रखेगा।[12]

अनुच्छेद-275(1) के तहत, राज्य द्वारा उस राज्य में अनुसूचित जनजाति के कल्याण या उसमें अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासनिक स्तर के उन्नयन के लिए भारत सरकार के अनुमोदन से राज्य सरकार द्वारा शुरू की जाने वाली ऐसी विकासात्मक योजनाओं की लागतों को पूरा करने के लिए राज्यों को भारत की संचित निधि से अनुदान का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद-275 के तहत अनुसूचित जनजाति की आबादी वाले 26 राज्यों को अनुदान जारी किया जाता है। यह एक विशेष क्षेत्र के लिए कार्यक्रम है जिसके लिए 100 प्रतिशत अनुदान जारी किया जाता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास, आजीविका, पेयजल, स्वच्छता आदि के क्षेत्रों में अवसरंचना कार्यकलापों में अंतरालों को कम करने के लिए अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या द्वारा महसूस की गई आवश्यकताओं के आधार पर अनुदान जारी किए जाते है।[13]

राजनीतिक सुरक्षा उपायों से संबंधित प्रावधान

अनुच्छेद-330 के तहत लोकसभा में, अनुच्छेद-332 के तहत राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों की विधानसभाओं में, अनुच्छेद-243घ के तहत पंचायती राज संस्थाओं में और अनुच्छेद-243न के तहत नगरपालिकाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिए निर्धारित पद्धति के अनुसार सीटों के आरक्षण के लिए प्रावधान किये गये है।

संवैधानिक उपचारों से संबंधित प्रावधान

अनुच्छेद-32 के तहत राज्य या किसी व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ सुरक्षा के लिए कानूनी प्रावधान किया गया है। यह अधिकार नागरिकों के समान भारत की जनजातीय आबादी के लिए समान रूप से उपलब्ध है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान के अनुच्छेद-32 को "संविधान की आत्मा" कहा है।

अनुसूचित जनजाति के हितों की सुरक्षा के लिए सांविधिक प्रावधान

अनुसूचित जनजाति के हितों की सुरक्षा के लिए सांविधिक प्रावधान से आशय है- संविधान से इतर अनुसूचित जनजातियों के हितों की सुरक्षा के लिए किए गए प्रावधानों से है। अनुसूचित जनजातियों के लिए किये गए सांविधिक प्रावधानों में निम्नलिखित प्रमुख प्रावधान है-

नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम,1955

नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम,1955 का उद्देश्य उस चिरकालीन, पूर्वाग्रहपूर्ण सामाजिक रवैये को समाप्त करना है, जिसमें इन जातियों के लोगों को अछूत समझा जाता है और ये लोग जाति व्यवस्था की सीढी के सबसे अंतिम सिरे पर बने रहते हैं। इस अधिनियम का उद्देश्य 'अस्पृश्यता' को बढ़ावा देने और अस्पृश्यता का व्यवहार करने पर उससे संबंधित मामलों में उत्पन्न किसी भी अस्पृश्यता के खिलाफ दण्डित करने के प्रावधानों को लागु करना था।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,1989

इस अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदाय का सम्मान, स्वाभिमान, उत्थान एवं उनके हितों की रक्षा के लिए भारतीय संविधान में किए गए विभिन्न प्रावधानों के अतिरिक्त ऐसे सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध कानूनी सुरक्षा उपायों को सुनिश्चित कर इन जातियों के लोगों के साथ अत्याचार के अपराधों को रोकना हैं।

पंचायत अधिनियम(पेसा अधिनियम),1996 (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार)

इस अधिनियम का उद्देश्य संविधान के भाग-9 में उल्लेखित पंचायतों से संबंधित प्रावधानों को अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार करना हैं। इस प्रावधान के बावजूद भूमि अधिग्रहण प्रस्तावों पर निर्णय करते समय सरकारी अधिकारीयों द्वारा ग्राम सभा से केवल नाममात्र का परामर्श लिया जाता है।

अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन(वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006

इस अधिनियम का उद्देश्य जहाँ एक और वन संरक्षण करना है वहीँ दूसरी ओर वन में निवास करने वाली ऐसी अनुसूचित जनजातियाँ और पीढ़ियों से निवास करने वाले अन्य पारंपरिक वनवासी, जिनके अधिकारों को अभिलिखित नहीं किया जा सका है, वन भूमि में वन अधिकारों, अधिभोग और कब्जों को मान्यता देना और उन्हें स्वामित्व प्रदान करना हैं।[14] यह अधिनियम वन अधिकार धारकों, ग्राम सभा और ग्राम स्तर की संस्थाओं को वन्य जीवन, वन और जैव विविधता की रक्षा करने का भी अधिकार देता हैं[15]। आदिवासी और आदिवासी समुदायों और अन्य वनवासियों के साथ हुए अन्याय को संबोधित करने के लिए अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन निवासी अधिनियम, 2006 संसद द्वारा पारित किया गया है। यह उन ज़मीनों पर कानूनी अधिकार प्रदान करता है जिन पर वे सदियों से खेती कर रहे थे। वन अधिकार अधिनियम, 2006 एक गरीब-समर्थक संस्थागत सुधार होने का दावा करता है, और वास्तव में, इसके कार्यान्वयन से कई गरीब पहले ही लाभान्वित हो चुके है। हालाँकि, यह प्रक्रिया गंभीर रूप से गरीब-विरोधी रही है, इसलिए गरीबो को मिलाने वाले लाभों को प्रतिबंधित कर दिया गया है।[16]

अनुसूचित जनजाति समुदाय के हितो के संरक्षण में चुनौतियाँ- जनजातीय समुदाय के लोगों के हितों की सुरक्षा के लिए सरकार द्वारा विभिन्न स्तर पर प्रयास किये जा रहे है किन्तु इन प्रयासों के मार्ग में प्रमुख चुनौतियाँ निम्नानुसार है-

प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण- औद्यौगिकीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जनजातीय आबादी वाले क्षेत्रों के प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य की नजर पड़ी और उद्योगों की आवश्यकता के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर जनजातीय समुदायों के अधिकारों को कमजोर किया गया तथा प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य के नियंत्रण ने जनजातीय नियंत्रण को प्रतिस्थापित कर दिया गया है। वैश्वीकरण के दौर में राज्य और सरकार की उदारीकरण की नीतियाँ आर्थिक विकास के लिए संसाधनों के उपयोग को प्राथमिकता देती है जिसके कारण सरकार और जनजातीय समुदाय द्वारा संसाधनों के उपयोग के दृष्टिकोण में टकराव उत्पन्न होता है।

विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापन और पुनर्वास की समस्या- सरकार द्वारा आधारभूत ढांचे के विकास, औद्योगिक संयत्रों, विद्युत् परियोजनाओं और बड़े बांधो के निर्माण की प्रक्रिया में जनजातीय समुदाय की भूमि अधिग्रहण से इस समुदाय की आबादी का विस्थापन हुआ है। इन विस्थापित समुदायों को समुचित पुनर्वास के लिए संघर्ष करना पड़ता है। विस्थापन के कारण इस समुदाय के लोगों को मजबूरन शहरों की ओर पलायन करना

पड़ता है जोकि इन समुदायों के लिए मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कारण बनता है क्योंकि जनजातीय समुदाय के लोग शहरी जीवन शैली और मूल्यों को अच्छी तरह से समायोजित करने में सक्षम नहीं होते जिसके कारण दोयम दर्जे का जीवन जीने के लिए विवश है। विकास परियोजनाओं से प्रभावित जनजातीय समुदायों को उचित पुनर्वास के लिए उचित मुआवजा, पर्याप्त आवास और स्थायी आजीविका को सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

बेरोजगारी और गरीबी – वैश्वीकरण और उदारीकरण के दौर में जनजातीय समुदाय के लोगों के हितों की सुरक्षा और कल्याण की बजाय बाजारवाद को प्राथमिकता दी जाने लगी है जिसके फलस्वरूप जनजातीय समुदाय के लोग बेरोजगार हो रहे है या फिर कम वेतन एवं शोषणकारी परिस्थितियों वाली नौकरियों में कार्य करने के लिए मजबूर है। इस चुनौती से निपटने के लिए जनजातीय क्षेत्रों में कौशल विकास और रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देना होगा।

शिक्षा का अभाव– जनजातीय समुदाय के लोगों का शैक्षिक स्तर देश के अन्य नागरिकों की तुलना में निम्न है जिसका प्रमुख कारण शिक्षा से तात्कालिक आर्थिक लाभ न होने के कारण जनजातीय समुदाय के माता-पिता अपने बच्चों को लाभकारी रोजगार में लगाना पसंद करते है। इसके अतिरिक्त जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा के बुनियादी ढांचे की भी कमी है। जनजातीय समुदाय के लोगों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा के बुनियादी ढांचे में सुधार करने पर इन समुदायों के कल्याण में मदद मिल सकेगी।

स्वास्थ्य और पोषण की समस्या- असुरक्षित आजीविका एवं आर्थिक पिछड़ेपन के कारण जनजातीय समुदाय के लोगों को स्वास्थ्य और पोषण की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे- उच्च शिशु मृत्यु दर, एनीमिया आदि के कारण उनकी जीवन प्रत्याशा भी कम है।

लैंगिक मुद्दे- जनजातीय क्षेत्रों में बाजारवाद की पहुँच से उपभोक्तावाद और महिलाओं के वस्तुकरण को बढ़ावा मिला है जिसके फलस्वरूप जनजातीय समुदाय की महिलाएं विशेष रूप से प्रभावित होती है क्योंकि बाजारवाद की संस्कृति से उत्पन्न शोषणकारी परिस्थितियों से वे सीधे प्रभावित होती है। आर्थिक पिछड़ेपन के कारण जनजातीय क्षेत्रों से काम की तलाश में शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करना पड़ता है। जहाँ उन्हें शोषण और खराब जीवन स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

सांस्कृतिक पहचान का ह्रास- जनजातीय क्षेत्रों में आधारभूत ढांचे और विकास परियोजनाओं के कारण बाहरी लोगों के आवागमन के कारण जनजातीय समुदाय की संस्कृति, पारंपरिक संस्थाएं और कानूनों का आधुनिक संस्थानों के साथ संघर्ष उत्पन्न हो रहा है, जो आदिवासियों में अपनी पहचान को बनाए रखने के बारे में आशंका उत्पन्न करते है।

निष्कर्ष

भारत में अनुसूचित जनजातियों के समुदाय के लोग समाज में सबसे पिछड़े और वंचित तबके का प्रतिनिधित्व करते है। अनुसूचित क्षेत्रों एवं अनुसूचित जनजातियों के समुदायों के विकास के लिए नीति निर्माण एवं निर्धारण एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि इन वंचित समुदायों को इनके सामाजिक और आर्थिक परिवेश में बदलाव किये बिना समाज की मुख्यधारा में कैसे लाया जा सकता है।

अनुसूचित जनजातीय समुदायों के लिए सामाजिक सुरक्षा के विभिन्न उपायों के बावजूद भी उन्हें सामाजिक वंचना का शिकार होना पड़ रहा है। इन समुदायों की सामाजिक और शैक्षिक स्थिति समाज के अन्य समुदायों से

कमतर बनी हुई है। अनुसूचित जनजातियों के मानव विकास सूचकांक स्तर को अन्य समुदायों के स्तर पर लाने की आवश्यकता है।

संविधान के अनुच्छेद-275(1) के तहत राज्यों को अनुदान देने के लिए जनजातीय मामलों के मंत्रालय के लिए उपलब्ध निधि में पर्याप्त वृद्धि की आवश्यकता है, ताकि जनजातीय क्षेत्रों में संस्थानों को सशक्त करने और प्रशासन के उन्नयन के लिए मंत्रालय राज्यों को व्यापक सहयोग प्रदान कर सकें।

लोक नियोजन में अवसर की समानता का प्रावधान होने के बावजूद सार्वजनिक सेवाओं में अनुसूचित जनजातियों का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है। इस दिशा में समुचित उपाय किये जाने की आवश्यकता है। जनजातीय क्षेत्रों के लिए प्रशासनिक तंत्र को स्वायतता प्रदान कर और अधिक मजबूत बना कर अनुसूचित जनजातियों के समुदाय के लोगों की प्रशासनिक तंत्र तक पहुँच सुनिश्चित कर स्थानीय समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता है। जनजातीय समुदायों को उनके जीवन और संसाधनों से संबंधित निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सम्मिलित कर सशक्त बनाना चाहिए। उनकी पारंपरिक शासन प्रणालियों और सांस्कृतिक संस्थानों को पहचान कर, उन्हें संरक्षित करना चाहिए।

अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों के सुरक्षण के लिए किये गए विभिन्न सांविधिक प्रयासों के फलस्वरूप इन समुदायों की वैधानिक स्थिति में तो परिवर्तन आया है किन्तु क़ानून में मान्यता प्राप्त परिवर्तित स्थितियों को आत्मसात करने में नीतियाँ और कार्यान्वयन सुस्त रहे हैं। पंचायत अधिनियम(पेसा अधिनियम),1996, अनुसूचित जनजाति और अन्य पारंपरिक वन(वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 का अनुपालन अनिच्छा से ही हुआ है। इनके कार्यान्वयन की प्रक्रिया का समर्थन करने के लिए संस्थागत प्रणाली को सशक्त करने की आवश्यकता है, जिसमें ग्राम सभाओं को मजबूत करना भी शामिल हैं।

भाषा, संस्कृति और परम्पराओं के संरक्षण और अस्मिता की हानि से स्वयं की रक्षा के उनके अधिकार को चिह्नित, संरक्षित, दर्ज करने और उन्हें एक गतिशील जीवित संस्कृति के रूप में विकास करने का अवसर देने की आवश्यकता हैं। जनजातीय समुदायों की विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के उपाय किये जाने चाहिए। पारंपरिक रीति रिवाजों,प्रथाओं और कलाओं को प्रोत्साहन देकर ऐसे वातावरण को बढ़ावा देना जरुरी है जहाँ आदिवासी समुदाय स्वयं को संरक्षित महसूस करें और देश के अन्य नागरिकों के समान अवसरों और अधिकारों का लाभ उठा सके।

भारत में जनजातीय समुदायों के हितों की सुरक्षा और विकास के लिए संविधान में सुनियोजित और व्यापक प्रावधान किये गए है। इसके बावजूद भी जनजातीय समुदायों के हितों की सुरक्षा और विकास के लिए उठाये जाने वाले कदम ज्यादा प्रभावी नजर नहीं आते है। आदिवासी परम्पराएं, अशिक्षा, रूढिगत प्रथाएँ आदि के कारण जनजातीय समूह पिछड़ा बना हुआ है। ऐसे में आवश्यकता है इनके सामाजिक,शैक्षणिक और आर्थिक पिछड़ेपन को दूर कर इनके जीवन स्तर में गुणवत्ता लाने की है ताकि इनका जीवन स्तर देश के अन्य नागरिकों के बराबर आ सकें।

संदर्भ सूची

1. अनिल मीणा, मानवशास्त्र, विनायक प्रतियोगिता टाइम्स, इंदौर, 2008, पृ.स.-1
2. भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, सातवाँ संस्करण, 2013, पृ.स.-214

3. भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, ग्यारहवां संस्करण संस्करण, 2019, पृ.स.-301
4. वार्षिक रिपोर्ट-2021-22, जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.स.-54
5. वार्षिक रिपोर्ट-2021-22, जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.स.-142
6. **http://tribal.nic.in/ST/LatestListofScheduledtribes.pdf**
7. वार्षिक रिपोर्ट-2021-22, जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.स.-57
8. एम.पी. जैन, इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ, लेक्सिस नेक्सिस, चतुर्थ संस्करण,1987, पृ.सं.-236
9. निपुण आलाम्बायन, भारतीय राजव्यवस्था संविधान और शासन(प्रथम संस्करण),सुपर पॉवर पब्लिकेशन, मुखर्जी नगर, दिल्ली,2013
10. आचार्य डॉ. दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान एक परिचय, लेक्सिसनेक्सिस, गुडगाँव, हरियाणा, 2013, पृ.स.-455
11. वही पृ.स.-455-456
12. भारत का संविधान, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, सातवाँ संस्करण, 2013, पृ.स.-192
13. **http://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1887949**
14. ट्राइब, जनजाति विधिक अधिकार विशेषांक, खंड49-50(1) जुलाई-दिसंबर 2017 जनवरी-मार्च 2018, माणिक्य लाल वर्मा आदिम जाति शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर(राजस्थान), पृ.स.-2
15. वार्षिक रिपोर्ट-2021-22, जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.स.-71
16. रेड्डी एमजी, कुमार केए, राव पीटी, स्प्रिंगेट-बैगिंस्की ओ. आंध्र प्रदेश में वन अधिकार अधिनियम के कार्यान्वयन से संबंधित मुद्दे, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक. 2011:73-81.

अध्याय-12

भारत के संविधान में सामाजिक न्याय के प्रमुख प्रावधान : एक अवलोकन

अशोक कुमार
राजनीति विज्ञान विभाग,
पटना कॉलेज, पी.यू., पटना-5

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि ''हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, लोकतंत्रात्मक, धर्मनिरपेक्ष समाजवादी गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय .... को अंगीकृत, अधिनियमित तथा आत्मार्पित करते हैं।'' भारतीय संविधान की प्रस्तावना से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संविधान द्वारा भारत में समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्रदान किया गया है।

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए भारतीय संविधान में देश के समस्त नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गई हैं। भारतीय संविधान के अन्तर्गत कई प्रावधान किये गये हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों का विकास करने तथा अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की रक्षा के लिए भारतीय संविधान में विशेष व्यवस्था की गई है।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्रमुखता के साथ सामाजिक न्याय हेतु अनेक प्रावधान किया गए है, जिसमें भाग-3 अर्थात् मौलिक अधिकारों के सूची के अन्तर्गत के प्रमुख प्रावधानों का उल्लेख सर्वप्रथम आवश्यक प्रतीत होता है। वास्तव में, अधिकारों की प्रभावी उपस्थिति व्यक्ति को एक तरफ शोषण से रक्षा करती है, तो दूसरी तरफ उसको जीवन के सर्वांगीण विकास की स्थिति में लाती है। स्पष्टतः अधिकार सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न समाज के लिए वह उपयोगी कार्य कर सकता है। मनुष्य की तटस्थ और सामाजिक हित की माँगे ही समाज और राज्य की स्वीकृति प्राप्त कर लेने पर अधिकार कहलाती है।

भारतीय संविधान के भाग-3, अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत विधि की समानता तथा विधि के समान संरक्षण के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है, जिससे लोकतांत्रिक तथा समाजवादी उद्देश्यों की पूर्ति होती है। वस्तुतः लोकतांत्रिक तथा समाजवादी मूल्यों की स्थापना में ही भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा को बल मिलता है। विधि की समानता तथा विधि के समान संरक्षण के सिद्धान्त से सभी व्यक्ति को एक समान समझा जाता है, जिससे भी प्रबल रूप में सामाजिक न्याय की अवधारणा को औचित्य प्राप्त होता है। वस्तुतः समता ही एक सकारात्मक अवधारणा है तथा कोई भी व्यक्ति अवैधानिकता में समता का दावा नहीं कर सकता है।1 यह भी स्पष्ट है कि विधि की समानता की अवधारणा सभी पर लागू होती है, चाहे वह विदेशी नागरिक ही क्यों नहीं हो।2 भारत के संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि राज्य किसी व्यक्ति के विरूद्ध धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी भी

आधार पर विभेद नहीं कर सकती है।3 इतना ही नहीं, नागरिकों के बीच सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग पर भी विभेद नहीं किया जा सकता है।4

भारत के संविधान के द्वारा सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में राज्य को विशेष प्रावधान का अधिकार प्रदान किया गया है। राज्य को इस बात का अधिकार एवं प्राधिकार है कि वह बच्चों के लिए भी निःशुल्क शिक्षा विषयक प्रावधान कर सकता है। राज्य को सामाजिक हित में कई महत्वपूर्ण निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है तथा इस सन्दर्भ में पिछड़े वर्ग के विधार्थियों को आरक्षण प्रदान की गई है।5 राज्य के द्वारा शैक्षणिक संस्थानों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिए पचास प्रतिशत तक स्थान आरक्षित किया जा सकता है तथा यह राज्य के स्वविवेक शक्ति के अन्तर्गत आता है। राज्य को ऐसा प्राधिकार प्राप्त है।6 भारतीय संविधान के अन्तर्गत लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता का उपलबन्ध किया गया है।7 दूसरी ओर सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में भी सकारात्मक अपवाद के रूप में कुछ प्रावधान किया गया है।8 भारतीय संविधान में यह प्रावधान कर दिया गया है कि राज्य अपने राज्य के अन्तर्गत के सार्वजनिक नौकरियों में अधिनियम अर्थात् निवास के आधार पर विभेद कर सकता है अर्थात् राज्य द्वारा कुछ रोजगार किसी क्षेत्र के निवासियों के लिए आरक्षित किया जा सकता है।9 राज्य को सामाजिक न्याय हेतु सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष उपबंध करने का अधिकार प्राप्त है।10 स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के भाग-3 के अनुच्छेद 16 के उपखण्ड (3) से (5) के बीच का प्रावधान किसी न किसी रूप में सामाजिक न्याय की अवधारणा को ही सार्थक कर रहा है। यदि भारत में सामाजिक न्याय की दिशा में सार्थक संवैधानिक प्रावधान अथवा सबसे महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान की बात की जाये तो संविधान के भाग-3, मौलिक अधिकारों के सूची में उपबंध हैं, तो उसे अस्पृश्यता का अन्त विषयक प्रावधान11 कहना ही सबसे सही है। भारतीय समाज की प्राचीन विशेषता वर्ण-व्यवस्था रहा है तथा वही वर्ण-व्यवस्था उत्तर वैदिक काल से जाति-व्यवस्था में परिवर्तित हो गई, जिसके बाद में भारतीय समाज में छुआछूत अर्थात् अस्पृश्यता को जन्म दिया। भारतीय समाज में अस्पृश्यता की उपस्थिति लोकतंत्र के मार्ग में सबसे बड़ी समस्या तथा सभ्य समाज पर एक कलंक है। इस कलंक की समाप्ति में ही सामाजिक न्याय की अवधारणा को अनिवार्य बना देती है। भारतीय संविधान के भाग-3, अनुच्छेद-17 में अस्पृश्यता निवारण विषयक उपबंध किया गया है, जो सामाजिक जीवन में विभेद और छुआछूत को समाप्त करके सामाजिक न्याय की अवधारणा को व्यावहारिक बनाता है तथा यही संविधान का प्रावधान संसद को छुआछूत निवारण के लिए आवश्यक कदम उठाने की बात करता है। इसी प्रावधान के आलोक में भारत की संघीय विधायिका यानी संसद ने वर्ष 1955 में छुआछूत की समाप्ति हेतु अधिनियम को पारित किया था, जिसे अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, 1955 की संज्ञा दी जाती है। इतना ही नहीं, संवैधानिक प्रावधान के अनुरूप राज्य और व्यक्ति को भी संविधान दायित्व सौंपता है कि वह छुआछूत की समाप्ति में सहयोग दें।12

भारतीय संविधान में उपाधियों की अंत का प्रावधान करने के पीछे कहीं न कहीं समाज के अन्दर विभेद को समाप्त करते हुए सामाजिक न्याय की अवधारणा को सार्थक करने का उद्देश्य निहित है।13 मूल भारतीय संविधान में शिक्षा का अधिकार उपबंधित नहीं था, परन्तु बाद में भारतीय संविधान के अन्तर्गत शिक्षा का अधिकार भाग-3, अनुच्छेद 21(क) में प्रावधान भी कर दिया गया है, जिसके आधार पर 6 से 14 वर्ष की उम्र के बच्चों को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का अनिवार्य संवैधानिक प्रावधान कर दिया गया है।14 इस प्रावधान से कमजोर लोगों के बच्चों

को शिक्षा प्राप्त होंगी, जो वास्तविक अर्थ में सामाजिक न्याय के लिए अनिवार्य प्रतीत होता है। जब तक समाज में लोगों को व्यापक शिक्षा तथा समान शिक्षा प्राप्त नहीं होती है, तबतक सामाजिक न्याय को सार्थकता संदिग्ध प्रतीत होती है वास्तव में, शिक्षा का अधिकार लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के साथ-साथ सामाजिक न्याय की अवधारणा को भी प्रभावी बनाता है। यदि व्यापक सन्दर्भ में देखा जाये तो भारतीय संविधान के भाग-3 के अन्तर्गत अनुच्छेद 19 से लेकर 22 के सभी प्रावधान से न्याय, समानता और स्वतन्त्रता की लोकतांत्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति और समर्थन प्राप्त होता है, जिसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में सामाजिक न्याय को ही मजबूत एवं प्रभावशाली आधार प्राप्त होता है।

भारतीय संविधान के भाग-3 में शोषण के विरूद्ध अधिकार प्रदान किया गया है,15 जो वास्तविक रूप में सामाजिक न्याय का बुनियाद अथवा अनिवार्य शर्त है। भारत का संविधान मानव के दुर्व्यापार, बेगार, बलात श्रम, सहित सभी प्रकार के शोषण को निषिद्ध करता है।16 यहाँ इस बात का स्पष्टीकरण भी आवश्यक है कि दुर्व्यापार का मतलब है कि विक्रय, बेगार एवं बिना वेतन के कार्य नहीं कराया जा सकता है। इस प्रावधान से समाज में शोषण की प्रवृत्ति पर नियन्त्रण लगता है, जो सामाजिक न्याय की स्थापना, क्रियान्वयन तथा प्रभावशीलता हेतु अनिवार्य प्रतीत होता है। यहाँ इस बात का स्पष्टीकरण एवं प्रस्तुतीकरण भी आवश्यक है कि अमरीका भले ही 1789 में स्वतंत्र संविधान को लागू कर लिया अर्थात् फिलाडेल्फिया घोषणा 1776 को सार्थक कर लिया था, परन्तु उसने अपने संविधान में 13वें संशोधन द्वारा दासता का अंत करके सामाजिक न्याय की अवधारणा को सार्थक बताया था। वस्तुतः शोषण के विरूद्ध अधिकार के प्रावधान से सामाजिक लोकतंत्र की अवधारणा सार्थक होती है, जिसकी पृष्ठभूमि में सामाजिक न्याय को ही प्राथमिक रूप में अनिवार्य माना जाता है।

भारत में उस समय तक सामाजिक न्याय की अवधारणा सार्थक नहीं हो सकती है, जबतक संवैधानिक रूप में बाल श्रम पर प्रतिबन्ध स्थापित नहीं किया जाये। भारतीय संविधान में बाल श्रम को प्रतिबंधित किया गया है,17 ताकि सामाजिक न्याय की बुनियाद को मजबूत तथा प्रभावकारी बनाया जा सके। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रभावी बनाने के लिए मौलिक अधिकार विषयक इन प्रावधानों के आलोक में अनेक अधिनियम पारित किये जाते रहे हैं, जिनमें बाल श्रम (प्रतिषेध एवं नियमन) अधिनियम, 1988 सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वर्ष 2005 में बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम भी भारत की संसद ने पारित किया है, जिसके आधार पर वर्ष 2007 में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग का गठन किया गया है तथा राज्यों में भी राज्य स्तरीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की रक्षा अथवा संरक्षण में संवैधानिक उपचारों का उपबंधन भी किया गया है।18 इनसे भी लोकतंत्र को सुरक्षा प्राप्त होती है; कमजोर लोगों के अधिकारों की प्रभावी सुरक्षा होती है तथा अन्ततः सामाजिक न्याय की अवधारणा को सार्थकता प्राप्त होती है। भारतीय संविधान के भाग-3 में उपबंधित अन्य अनुच्छेदों से सामाजिक न्याय की उदार अवधारणा किसी न किसी रूप में मजबूत एवं सार्थक होती है।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत राज्य के नीति निदेशक तत्वों का प्रावधान भाग-4, अनुच्छेद 36 से 51 के बीच किया गया है। उनमें कई अनुच्छेद प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सामाजिक न्याय की अवधारणा को ही सार्थक एवं प्रभावी

बनाते हैं। दूसरे शब्दों में, भारतीय संविधान के भाग-4 यानी राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के प्रावधान के मूल में समाजवादी, उदारवादी तथा गाँधीवाद उद्देश्यों की प्राप्ति ही प्राथमिक हैं, जिनकी प्राथमिक सम्बद्धता और उद्देश्य मौलिक अधिकारों को प्रभावी बनाने के साथ-साथ सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना हेतु सामाजिक न्याय की अवधारणा को सार्थक एवं प्रभावी बनाना है। वस्तुतः भारतीय संविधान का भाग-4, अनुच्छेद 36 से 51 तक के प्रावधानों के द्वारा लोक कल्याणकारी राज्य के निर्माण, सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक लोकतंत्र की स्थापना हेतु केन्द्र और राज्य सरकारों का मार्गदर्शन किया जाता हैं। इन प्रावधानों को अमल में लाकर ही सामाजिक न्याय की अवधारणा को अधिकाधिक सार्थक बनाया जा सकता है, जिससे भारत में महान लोकतंत्र की सपना साकार हो सकता है। वास्तव में, भाग-4 के प्रावधान से ही लोकतंत्र का सामाजिक-आर्थिक बुनियाद मजबूत होता है।

भारत के संविधान के अन्तर्गत लोक कल्याण की अभिवृद्धि हेतु सामाजिक व्यवस्था बनाने तथा आय की असमानताओं को दूर करने का प्रयास किया गया है।19 इतना ही नहीं, संविधान में इस बात का प्रावधान भी किया गया है कि सामूहिक हित के परिप्रेक्ष्य में भौतिक संसाधनों का स्वामित्व एवं नियन्त्रण स्थापित किया जायेगा।20 सामाजिक न्याय के लिए स्त्री और पुरुष समाज में समानता की परम आवश्यकता को आज अधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है। इस उद्देश्य से पुरुषों व स्त्रियों, दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन देने की बात की गई है। भारत के संविधान में संशोधन करके अनुच्छेद 39 ‘क’ जोड़ा गया है, जो समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता को उपलब्ध कराने से सम्बन्धित है।21 इस अनुच्छेद से भी भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा को सहयोग प्राप्त होता है। संविधान के भाग-4 का अनुच्छेद 40 ग्राम पंचायत के गठन से सम्बन्धित है, जिसे 73वें संविधान संशोधन, 1992 द्वारा प्रभावी बनाया गया है तथा उसके माध्यम से समाज के कमजोर लोगों को आरक्षण का लाभ देकर सामाजिक न्याय को ही सार्थक बनाने का प्रयास किया गया है। संविधान के भाग-4, राज्य के नीति की निदेशक तत्वों में काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता की दशाओं में लोक सहायता के अधिकार को सुरक्षित किया गया हैं।22 वस्तुतः इन महत्वपूर्ण प्रावधानों से ही भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा धरातल पर स्थापित होती है। प्रस्तुत भाग में काम को न्यायसंगत बनाने के साथ-साथ मानवोचित दशाएँ तथा प्रसूति सहायता की बात भी की गई है;23 जिनसे सामाजिक न्याय की अवधारणा को मजबूती प्राप्त होता है। वस्तुतः इन प्रमुख प्रावधानों से उदारवादी परिप्रेक्ष्य में सामाजिक न्याय की अवधारणा परिभाषित एवं समर्थित होती है। भारतीय संविधान के भाग-4, राज्य के नीति की निदेशक तत्वों में सभी कामगारों के लिए निवार्ह मजदूरी, उत्तमजीवन के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक अवसर का उपबंध करता है।24 इतना ही नहीं, संविधान में कुटीर उद्योग को प्रोत्साहित किया गया है, जिससे आर्थिक समानता के आधार पर सामाजिक न्याय की अवधारणा ही सार्थक एवं प्रभावी होती है।25 उद्योगों के प्रबन्ध में कामगारों की भागीदारी से स्वशासन सहित सामाजिक न्याय को बल मिलता है।

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय को प्रभावी बनाने में भाग-3 तथा भाग-4 को एक-दूसरे का सहयोगी प्रावधान कहा जाता है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत भाग-3 के अनुच्छेद 24 तथा अनुच्छेद 21 (क) की भावना व उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए भाग-4 के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है। संविधान के भाग-4, राज्य के नीति की निदेशक तत्वों में कहा गया है कि सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पुरी करने तक निःशुल्क एवं अनिवार्य

शिक्षा की व्यवस्था राज्य के द्वारा किया जाना अपेक्षित है।26 सामाजिक न्याय को प्रभावी बनाने के लिए भारत में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों को अनेकानेक रूप् में सुविधा सुरक्षा तथा कल्याण विषयक प्रावधान किया गया है। भाग-4 में राज्य के नीति की निदेशक तत्वों में भी कहा गया है कि अनुसूचित राज्य के द्वारा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य कमजोर वर्ग के लोगों के लिए विशेष कल्याणकारी कार्यो का निष्पादन किया जाना अपेक्षित है।27 स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के भाग-4 के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण प्रावधान किये गये हैं, जिनसे सामाजिक लोकतंत्र की अवधारणा आर्थिक लोकतंत्र के साथ सार्थकता और व्यवहारिकता को प्राप्त करती है, जिनकी बुनियादी आवश्यकता को ही सामाजिक न्याय को मान लिया गया है।

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु भाग-10 तथा पाँचवी व छठी अनुसूची के अन्तर्गत अनुसूचित तथा जनजातीय क्षेत्र विषयक विशेष उपबन्ध है। इस उपबन्ध से जनजातीय संस्कृति परिरक्षित व सुरक्षित रहती है तथा शोषण से उनकी रक्षा होती है। भारतीय संविधान में दो तरह के विशिष्ट क्षेत्रों तथा उनके प्रशासन से सम्बन्धित प्रावधानों का उपबन्ध किया गया है।28 यहाँ इस बात को भी स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि संविधान में अनुसूचित क्षेत्र29 तथा जनजातीय क्षेत्र30 का प्रावधान पृथक्-पृथक् रूप में 12 अनुसूचियों में है, जिसमें 5वीं अनुसूची में असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम जैसे राज्यों को छोड़कर अन्य सभी राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों तथा अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों में क्रियान्वित होती है। दूसरी ओर 6वीं अनुसूची में असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों के जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन विषयक संवैधानिक उपबन्ध है। वस्तुतः अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन अन्य राज्यों की तुलना में विशेष प्रकार का होता है, जो इन समाज के लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए आवश्यक माना जाता है। भारतीय संविधान में यह प्रावधान किया गया है कि राष्ट्रपति के द्वारा राज्य में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु तथा अनुसूचित क्षेत्र के प्रबन्धन हेतु एक आयोग के गठन का आदेश दिया जा सकता है।31

भारतीय संविधान के अन्तर्गत मौलिक अधिकारों के तहत स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है। संविधान का अनुच्छेद-19(1) यह प्रावधान करता है कि भारतीयों को भारत के राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत विचरण करने का अधिकार है, परन्तु अनुसूचित और जनजातीय क्षेत्रों के सन्दर्भ में कुछ प्रतिबन्ध का उपबंध है। भारतीय संविधान में यह भी प्रावधान है कि प्रत्येक नागरिक को भारत के राज्य क्षेत्र में निर्बाध संचरण करने तथा देश के किसी भाग में निवास करने या बस जाने का अधिकार है, परन्तु इस अधिकार पर अनुसूचित और जनजाति क्षेत्रों के निवासियों के सांस्कृतिक हित अथवा अन्य हित के सम्बन्ध में युक्ति युक्त प्रतिबन्ध का स्थापित किया जा सकता है।32 स्पष्टः भारतीय संविधान के अन्तर्गत अनुसूचित तथा अनुसूचित जनजाति विषयक प्रावधान के पीछे भी विशेष सन्दर्भ में सामाजिक न्याय की अवधारणा को ही प्रभावी बनाने का उद्देश्य निहित है।

भारतीय संविधान के प्रस्तावना में उल्लेखित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की प्राप्ति के लिए कुछ वर्गों से सम्बन्धित विशेष उपबंध भी किया गया है। वस्तुतः भारत के संविधान निर्माता समाज में व्याप्त असमानता और शोषण की व्यवस्था से परिचित थे। इसीलिए उनलोगों ने सामाजिक-आर्थिक विकास अर्थात् सामाजिक न्याय हेतु कुछ विशेष प्रावधान किया था। भारतीय संविधान में इस प्रकार के विशेष प्रावधान किये गये हैं जैसे संघीय तथा

राज्य विधायिका में अनुसूचित जाति-जनजाति समाज के लोगों के लिए आरक्षण विषयक प्रावधान, शैक्षणिक अनुदान, सार्वजनिक नियोजन में आरक्षण, राष्ट्रीय आयोग का गठन तथा विशेष प्रकार के जाँच आयोगों का गठन आदि। यह उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति तथा जनजाति समाज के लिए विशेष प्रावधान भले ही किया गया है, परन्तु संविधान में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की कोई परिभाषा नहीं दी गई है। राष्ट्रपति को राज्यों के राज्यपाल के परामर्श पर अनुसूचित जाति और जनजाति की सूची बनाने की शक्ति प्रदान की गई है।33 संसद को ऐसी सूची का समय-समय पर पुनर्निरीक्षण का संवैधानिक प्राधिकार प्राप्त है।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत एक 'राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग'नाम से संवैधानिक निकाय के गठन विषयक प्रावधान किया गया है।34 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति का उपबंध है जो अनुसूचित जातियों तथा जन-जातियों के संवैधानिक संरक्षण से सम्बन्धित मामलों में राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है, ताकि इस समाज का कल्याण और विकास-करके सामाजिक न्याय की अवधारण को सार्थक बनाया जा सके। यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 2003 में अनुच्छेद-338 को संशोधित कर दिया गया है। अब अनुच्छेद-338 के तहत राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग तथा अनुच्छेद 338(क) के तहत राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग के गठन विषयक प्रावधान कर दिया गया है।35 वर्ष 2006 में झारखण्ड, ओडिसा तथा मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़ राज्य में जनजाति कल्याण मंत्री की नियुक्ति का प्रावधान किया गया है। संविधान में प्रारम्भ में यह प्रावधान केवल बिहार, मध्य प्रदेश व ओडिशा के लिए किया गया था, जो बाद में बिहार को वहाँ से हटा दिया गया और उसके स्थान पर झारखण्ड एवं छत्तीसगढ़ राज्य को रख दिया गया है।36

भारत में संसदीय प्रजातंत्र है, जहाँ एक सीमा तक संसद को विशेष अधिकार प्रदान किया गया है। भारत की संघीय विधायिका ब्रिटिश संसद के समान सम्प्रभु नहीं होने के बाद भी विशेषाधिकार का प्राधिकार रखती है तथा कई मामलों में उसने सर्वोच्चता सदृश स्थिति का भी परिचय दिया है। भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा को सार्थक बनाने के लिए आवश्यक है कि इसमें अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों को आरक्षण प्रदान किया जाये। भारतीय संविधान के द्वारा लोक सभा में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थानों को आरक्षित किया गया है।37 यह उल्लेखनीय है कि वर्ष 2008 के परिसीमन के बाद लोक सभा में अनुसूचित जातियों के लिए 84 सीट आरक्षित किया गया है, जबकि अनुसूचित जनजातियों के लिए 47 सीट आरक्षित किया गया है।38 इसप्रकार लोक सभा में कुल 131 सीट अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित किया गया है। संविधान में संशोधन करके यह प्रावधान किया गया है यह आरक्षण प्रावधान 2026 तक प्रभावी रहेगा।39 भारतीय संविधान के अन्तर्गत लोक सभा के समान राज्य की विधान सभाओं में भी अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों को आरक्षण प्रदान किया गया है40 तथा संविधान में संशोधन करके उसे भी वर्ष 2026 तक के लिए सुनिश्चित कर दिया गया है।41

भारत में ग्रामीण विकास तथा व्यापक लोकतंत्रीकरण हेतु मूल संविधान में अनुच्छेद-40 के अन्तर्गत ग्राम पंचायत के गठन का प्रावधान किया गया था, जिससे ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की अवधारणा को बल मिला है। वस्तुतः स्थानीय स्वशासन के दो प्रकार अथवा स्वरूप है- ग्रामीण स्थानीय शासन (पंचायती राज) तथा नगरीय स्थानीय

शासन (नगरपालिकाएँ)। भारत में स्थानीय प्रशासन का इतिहास 1870 के मेयो प्रतिवेदन से प्रारम्भ होता है, लेकिन लार्ड रिपन के प्रयास से वर्ष 1882 से यह स्थापित हुआ, जो 1919 तथा 1935 के भारत शासन अधिनियम से व्यवस्थित एवं विकसित होता गया।42 स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सामुदायिक विकास कार्यक्रम (2 अक्टूबर, 1952) ने ग्रामीण स्थानीय प्रशासन का श्रीगणेश किया।43 उसके बाद बलवन्त राय मेहता समिति (1957), अशोक मेहता समिति (1977-78), जी०वी०के० राव समिति (1985-86), एल०एम० सिंधवी समिति (1989) आदि से भी स्थानीय प्रशासन के विकास को संवैधानिक सहयोग एवं आधार प्राप्त हुआ।44 भारत में स्थानीय शासन को व्यापक तथा संवैधानिक बनाने में 73वाँ संविधान संशोधन तथा 74वाँ संविधान संशोधन की भूमिका व प्रावधान क्रांतिकारी रहा है। भारत में ग्रामीण स्थानीय प्रशासन अर्थात् पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक बनाया गया।45 दूसरी ओर वर्ष 1992 में ही नगरीय स्थानीय प्रशासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के लिए भारतीय संविधान में महत्वपूर्ण संशोधन किया गया है।46 भारत में स्थानीय प्रशासन का दोनों ही रूप यानी ग्रामीण और नगरीय स्थानीय प्रशासन अब संवैधानिक महत्व को प्राप्त कर लिया है। इसके माध्यम से सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। ग्रामीण स्थानीय प्रशासन में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं को आरक्षण प्रदन करके सामाजिक न्याय देने का संवैधानिक प्रावधान कर दिया गया है।47 राज्य सरकारों को आरक्षण की दायरा को बढ़ाने का भी अधिकार दिया गया है।48 यह भी उल्लेखनीय है कि अगस्त, 2009 में केन्द्र सरकार ने स्थानीय निकायों में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान भी कर दिया है। न केवल ग्रामीण स्थानीय निकायों में, बल्कि नगरीय स्थानीय निकायों में भी सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रभावी बनाने के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है।49 स्पष्टतः भारत के संविधान में स्थानीय शासन के अन्तर्गत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं को आरक्षण देकर सामाजिक न्याय को व्यापक, प्रभावी एवं सार्थक बनाया गया है।

स्वतन्त्र भारत के संविधान में जनजातियों के कल्याण के लिए कई विशेष प्रावधान किये गये हैं। संविधान देश के सभी नागरिकों के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, मान्यता, धार्मिक स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता का आश्वासन देता है। इसके अन्तर्गत किसी भी जाति अथवा लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव वर्जित माना गया है।50 भारतीय संविधान के अनुच्छेद-335 के अनुसार सार्वजनिक सेवाओं और सरकारी नौकरियों में देश की जनजातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने का आश्वासन दिया गया है। अनुच्छेद-325 में कहा गया है कि किसी को भी धर्म, प्रजाति, जाति एवं लिंग के आधार पर मताधिकार से वंचित नहीं किया जायेगा। आदिवासियों के जन-प्रतिनिधियों के लिए लोकसभा व राज्य विधान सभाओं में अनुच्छेद-330 व 332 के अनुसार स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं। इन आरक्षित स्थानों पर विधानमण्डलों में प्रतिनिधित्व जनजातियों एवं अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त अन्य कोई चुनाव नहीं लड़ सकता। अनुच्छेद-338 में राष्ट्रपति द्वारा इनके लिए विशेष अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी है। इसी प्रकार से संविधान के दसवें भाग तथा पाँचवीं व छठी अनुसूचियों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में विशेष प्रावधान किये गये हैं। अनुच्छेद 342 व 344 में राज्यपालों को भारतीयों के सन्दर्भ में विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 47 में राज्य का यह दायित्व माना गया है कि वह जनजातियों की शिक्षा की उन्नति और आर्थिक हितों की सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान दे। इसी प्रकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 164 में असम के अतिरिक्त उड़ीसा, बिहार, मध्य प्रदेश

आदि राज्यों में जनजातियों के कल्याण हेतु पृथक् मन्त्रालय स्थापित करने का प्रावधान किया गया है। इसी तरह से अनुच्छेद 224(2) के अन्तर्गत असम की जनजातियों के लिए जिला और प्रादेशिक परिषदें स्थापित करने का प्रावधान किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि संविधान में रखे गये विभिन्न प्रावधानों का उद्देश्य जनजातियों को देश के अन्य नागरिकों के समकक्ष लाना है, उन्हें देश की मुख्य जीवनधारा के साथ जोड़ना और उनका एकीकरण करना है, ताकि वे देश की आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में अपने हिस्से का भागीदार बन सकें।51

आन्ध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, गुजरात, राजस्थान, उड़ीसा और महाराष्ट्र के कुछ क्षेत्र अनुच्छेद 224 और संविधान की पाँचवीं अनुसूची के अन्तर्गत 'अनुसूचित' किये गये हैं। इस सम्बन्ध में इन राज्यों के राज्यपाल अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को देते हैं। असम, मेघालय और मिजोरम का प्रशासन संविधान की छठी अनुसूची के उपबन्धों के आधार पर किया जाता है। इन प्रदेशों के कुछ जिले स्वायत्तशासी जिलों के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार के आठ जिले हैं। ये जिले हैं-असम के उत्तरी कछार व धूधड़ी जिले तथा मिजोरम के चकमा, लोखर व पावी जिले। इनमें एक जिला परिषद् कार्य करती है जिसमें 30 से अधिक सदस्य नहीं होते। इस परिषद् को प्रशासनिक, वैधानिक और न्यायिक अधिकार प्राप्त हैं।52

भारत सरकार के गृह मन्त्रालय का यह दायित्व है कि वह इन जातियों के कल्याण के लिए योजनाएँ बनाये और उन्हें क्रियान्वित करे। सन् 1978 में संविधान के अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत इन जातियों के लिए एक कमीशन की स्थापना की गयी है। यह कमीशन इन लोगों के लिए किये गये सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधानों की जाँच करता है और उचित उपायों का सुझाव देता है। केन्द्र सरकार ने सन् 1968, 1971 व 1973 में संविधान में प्रदत्त सुरक्षा एवं उनके कल्याण की जाँच के लिए तीन संसदीय समितियाँ भी नियुक्त की हैं।

निष्कर्ष: शोध आलेख के अबतक के विवेचन एवं विश्लेषण से यह बिल्कुल स्पष्ट होता है कि भारत में सामाजिक न्याय के लिए अनेक संवैधानिक प्रावधान किये गये हैं। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की सूची से लेकर राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में ही नहीं, संविधान के अनेक अनुच्छेदों में सामाजिक न्याय के प्रावधान किये गये हैं तथा इनके माध्यम से भी सामाजिक न्याय की अवधारणा को साकार करने का प्रयास किया जाता रहा है। भारत सरकार तथा राज्यों की सरकारों के शासकीय नीति एवं कार्यक्रमों में सामाजिक न्याय हेतु संवैधानिक प्रावधानों को निर्धारित किया जाता है। भारतीय संविधान में उपबंधित सामाजिक न्याय विषयक प्रावधान भारत के लोकतंत्र को महान बनाता है।

संदर्भ सूची

1. उत्तर प्रदेश राज्य शुगर कॉरपोरेशन लि० बनाम संत राज सिंह, ए०आई० आर० 1978, एस० राज सिंह, ए०आई० आर० 1978, एस०सी-507

2. डा० बसन्ती लाल बाबेल, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, तेरहवाँ संस्करण, 2014, पृष्ठ-99

3. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद 15 (1) के अन्तर्गत प्रावधान।

4. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद 15 (2) के अन्तर्गत प्रावधान।

5. 93वें संविधान संशोधन, 2003 द्वारा केन्द्रीय शैक्षणिक संस्थान (प्रवेश में आरक्षण) अधिनियम, 2006 पारित।

6. आसित कुमार मैती बनाम स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल, ए०आई०आर० 1995, कलकता-160

7. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-16 के अन्तर्गत प्रावधान।

8. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-16 (3) से लेकर अनुच्छेद 16 (5) तक के अन्तर्गत का प्रमुख प्रावधान।

9. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-16 (3)।

10. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-16 (4)।

11. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-17 में उपबंध।

12. तदैव

13. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-18 के अन्तर्गत प्रावधान।

14. 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002।

15. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद 23 तथा 24 के अन्तर्गत उपबंधित।

16. तदैव, अनुच्छेद-23 में उपबंधित।

17. तदैव, अनुच्छेद-24 में उपबंधित।

18. भारतीय संविधान, भाग-3, अनुच्छेद-32 में उपबंधित।

19. भारतीय संविधान, भाग-4, अनुच्छेद-38 के अन्तर्गत उपबंध।

20. भारतीय संविधान, भाग-4, अनुच्छेद-39 में उपबंध।

21. 42वें संविधान संशोधन, 1976 द्वारा उपबंधित।

22. भारतीय संविधान, भाग-4, अनुच्छेद-41 के अन्तर्गत उपबंधित।

23. भारतीय संविधान, भाग-4, अनुच्छेद-42 में उपबंधित।

24. तदैव, अनुच्छेद 43 में उपबंधित।

25. तदैव, अनुच्छेद, 43 (क) में उपबंधित।

26. तदैव, भाग-4, अनुच्छेद-45 में उपबंधित।

27. तदैव, भाग-4, अनुच्छेद-46 में उपबंधित।

28. भारतीय संविधान, भाग-10, अनुच्छेद-244 में उपबंध।

29. तदैव, अनुच्छेद-244 (1)

30. तदैव, अनुच्छेद-244 (2)

31. तदैव, अनुच्छेद-3399 (1) में उपबंधित।

32. तदैव, अनुच्छेद-19 (1) (5) के तहत उपबंधित।

33. तदैव, अनुच्छेद-341 तथा 342 में उपबंधित।

34. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-338 के अन्तर्गत उपबंधित।

35. भारतीय संविधान का 89वाँ संशोधन, वर्ष 2003।

36. भारतीय संविधान में 94वाँ संशोधन अधिनियम में 102वाँ संशोधन अधिनियम, 2018।

37. भारतीय संविधान, अनुच्छेद-330 के अन्तर्गत उपबंधित।

38. डा० अशोक कुमार, राजनीति विज्ञान, उपकार प्रकाशन बुक-कोड-2258, चतुर्थ संस्करण, वर्ष 2020, पृष्ठ-634।

39. भारतीय संविधान में 84वाँ संशोधन अधिनियम 2001 द्वारा उपबंधित।

40. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 332 के अन्तर्गत प्रावधान।

41. भारतीय संविधान में 84वाँ संशोधन अधिनियम, 2001 द्वारा उपबंधित।

42. सौरभ एवं राहुल गुप्ता, भारतीय राज व्यवस्था एवं प्रशासन, अरिहन्त पब्लिकेशन्स (इंडिया) लिमिटेड, मेरठ, पृष्ठ संस्था-143

43. तदैव,

44. तदैव, पृष्ठ-144

45. 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992, भाग-9 में अनुच्छेद 243, 243(a) से 243(b) तक में प्रावधान।

46. 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के द्वारा, संविधान के भाग-9(2) में अनुच्छेद 243(P) से लेकर 243(ZG) तक में प्रावधान।

47. भारतीय संविधान, भाग-9, अनुच्छेद-243(D) के द्वारा उपबंधित।

48. तदैव।

49. भारतीय संविधान भाग-9 (A) अनुच्छेद-243 (T) के अधीन उपबंधित।

50. पुखराज जैन, नागरिक शास्त्र की रूपरेखा, एस०बी०पी०डी०, आगरा वर्ष-2002, पृष्ठ-341 से 342।

51. तदैव, पृष्ठ-342।

52. तदैव, पृष्ठ-342।

***

अध्याय-13

विकसित भारत @2047: नीतियाँ व चुनौतियां

बृजेश चंद्र श्रीवास्तव
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़

संजीत कुमार
शोधार्थी, भूगोल विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़

सौरव भड़वाल
शोधार्थी, भूगोल विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़

भारत के 75वें स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर, प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने देश के लिए एक महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित किया कि 2047 में भारत द्वारा अपना 100वां स्वतंत्रता दिवस मनाने तक एक विकसित राष्ट्र बनना है।

सबसे पहले विकसित देश क्या है हमें यह समझने की आवश्यकता है; प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय के आधार पर, विश्व बैंक देशों को चार आय समूहों में वर्गीकृत करता है - निम्न, निम्न-मध्यम, उच्च-मध्यम और उच्च आय। भले ही कुछ साल पहले शब्दों पर बहस के कारण विकसित और विकासशील शब्दों का उपयोग नहीं किया जा रहा है, एक विकसित देश का मतलब उच्च आय वाली अर्थव्यवस्था होगा। प्रत्येक उच्च आय वाली अर्थव्यवस्था विकसित देश नहीं है, क्योंकि विचार करने के लिए कई अन्य कारक हैं। उदाहरण के लिए, अधिकांश विकसित देशों का मानव विकास सूचकांक (एचडीआई) स्कोर 0.8 या उससे अधिक है। विकसित देशों में स्थिर अर्थव्यवस्थाएं, सभ्य जीवन स्तर, बेहतर जीवन प्रत्याशा होती है। जब प्रति व्यक्ति आय की बात आती है, तो 2021 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 2200 डॉलर थी, जो संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, दक्षिण कोरिया जैसे विकसित देशों की प्रति व्यक्ति आय से काफी पीछे है। इससे पता चलता है कि विकसित देश में आम लोग भारत के लोगों की तुलना में कहीं अधिक कमाते हैं, और उनकी क्रय शक्ति भी हमसे अधिक है। यह उन्हें बेहतर गुणवत्ता वाला जीवन जीने और हमारी तुलना में बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने की अनुमति देता है। उच्च मानव विकास के लिए 0.800 की सीमा की तुलना में भारत का एचडीआई में स्कोर 0.624 है। अतः उच्च मानव विकास के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसे संकीर्ण दृष्टिकोण से नहीं निपटा जा सकता है। सामुदायिक जुड़ाव, प्रौद्योगिकी, सार्वजनिक रूप से मान्य डेटा के माध्यम से अंतिम-मील के संकटों को हल करना और वंचितों की भागीदारी की पहचान अधिक समावेशी भारत के लिए प्रमुख व्यापक चुनौतियाँ हैं। हमारे सामने मौजूद साक्ष्यों के आधार पर शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, कौशल और आजीविका में भी बदलाव हो रहे हैं। भारत को 2047 तक विकसित बनाने में इन बदलावों का विशेष योगदान होगा और इस बदलावों में नीतिगत निर्णयों का विशेष महत्व होगा।

भारत को 2047 तक विकसित देश बनाने में नीतियों का महत्व:

भारत को 2047 तक एक विकसित देश बनने के लिए 8 प्रतिशत से अधिक वार्षिक वृद्धि की आवश्यकता है। यह केवल स्पष्ट व व्यापक विदेश नीति, मानव पूंजी विकास पर जोर देने, उत्पादकता और मजदूरी बढ़ाने के लिए कौशल

 ISSN: 2321-0443

बढ़ाने और सार्वजनिक व निजी निवेश की उच्च दर के माध्यम से है जो गुणवत्तापूर्ण रोजगार पैदा करता है। हम आशा कर सकते हैं कि हम वहीं होंगे जहां हम होना चाहते हैं। भारत को 2047 तक विकसित देश बनाने में नीतियों का महत्व है:

भारतीय विदेश नीति का महत्व:

भारत 2023 में वैश्विक शिखर सम्मेलन के केंद्र में है। ग्रुप ऑफ ट्वेंटी (जी20) की अध्यक्षता से लेकर, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (यूएनएससी) के अध्यक्ष और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस पर ग्लोबल पार्टनरशिप (जीपीएआई) के प्रमुख के रूप में कार्य किया। शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ), और ग्रुप ऑफ सेवन (जी7), ब्रिक्स (ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका), क्वाड और दक्षिणपूर्व एशियाई देशों के संगठन (आसियान) जैसे महत्वपूर्ण शिखर सम्मेलनों में भागीदारी की जो वर्तमान में भारत की राजनयिक महत्ता को प्रदर्शित करता है। शिखर सम्मेलनों के अलावा, भारत की विदेश नीति का एजेंडा प्रमुख शक्ति तनाव, संसाधन बाधाओं, ऋण संकट और निरंतर डिजिटल व्यवधानों की विशेषता वाले अस्थिर अंतरराष्ट्रीय माहौल में देश के पथ को अधिकतम करने के लिए बनाई गई, विकसित और समेकित नई साझेदारियों के साथ व्यापक हो गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) के साथ सकारात्मक संबंधों ने जापान और ऑस्ट्रेलिया, दोनों क्वाड भागीदारों के साथ रणनीतिक साझेदारी को प्रेरित किया है। दरअसल, वैश्विक स्वास्थ्य, जलवायु परिवर्तन और डिजिटल मुद्दों जैसे अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को संबोधित करने के लिए क्वाड की बारी नई दिल्ली को इंडो-पैसिफिक में क्षेत्रीय सार्वजनिक हितों में योगदान करने का अवसर देती है।

आर्थिक सुरक्षा बढ़ाने की साझा इच्छा से प्रेरित, यूरोपीय संघ (ईयू)-भारत संबंध उन्नति पर हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि यूक्रेन पर रूस के आक्रमण पर ऐसी प्रमुख शक्तियों के साथ असहमति ने भारत के प्रति उनकी कूटनीतिक प्राथमिकता को प्रभावित या धीमा नहीं किया है। नई दिल्ली का महत्व वैसे ही बना हुआ है। दिल्ली ने मध्य पूर्व, लैटिन अमेरिका और दक्षिण पूर्व एशिया में राजनयिक अवसरों का लाभ उठाने पर भी ध्यान दिया है। इज़राइल, मिस्र, संयुक्त अरब अमीरात, सिंगापुर और ब्राजील जैसे देश आर्थिक संबंधों को बेहतर बनाने और क्षेत्रीय चुनौतियों से निपटने में मदद के लिए भारत के साथ साझेदारी कर रहे हैं। आश्चर्यजनक रूप से, प्रमुख और मध्य शक्तियों के साथ बढ़ता अभिसरण वैश्विक दक्षिण देशों के हितों की रक्षा और समर्थन की कीमत पर नहीं आया है। अतः वर्तमान भारतीय विदेश नीति वसुधैव कुटुम्बकम के भाव से विश्व के अधिकांश देशों से आपसी रिश्ते में प्रगाढ़ता को प्रदर्शित कर रही है व विकसित भारत की ओर प्रगति पथ को अग्रसर कर रही है।

अन्य नीतियों का महत्व:

2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनने के लिए, भारत को विदेश नीति के महत्व अतिरिक्त अन्य कई नीतियों का भी अत्यंत महत्व है व कुछ नीतियों में सकारात्मक बदलाव व सुधार की भी जरूरत है:

सामाजिक विकास क्षेत्र में निम्नलिखित सुधारों की तत्काल आवश्यकता है:

ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूचियों में सूचीबद्ध क्रमशः ग्रामीण क्षेत्रों के 29 क्षेत्रों और शहरी क्षेत्रों के 18 क्षेत्रों के लिए निधि, कार्यों और पदाधिकारियों को निर्वाचित स्थानीय सरकारों को हस्तांतरित किया जाना चाहिए। ग्राम पंचायतों और शहरी स्थानीय निकायों (यूएलबी) द्वारा विकास योजनाओं में स्थानीय सरकार के अधिकार क्षेत्र में खर्च किए गए केंद्र और राज्य सरकारों के पूर्ण बजट को प्रतिबिंबित किया जाना चाहिए। बजटीय संसाधनों का उपयोग कैसे किया जाए इसका अंतिम निर्णय स्थानीय सरकारों के पास होना चाहिए।

अंतिम छोर की जरूरतों को पूरा करने के लिए असीमित निधियों के साथ लचीला वित्तपोषण, आवश्यकतानुसार कौशल सेट सुनिश्चित करने के लिए मानव संसाधन संलग्नता में नवाचार, सहमत मानकों के विरुद्ध निगरानी और आवश्यकता के अनुसार प्रबंधन क्षमता का विकास होने चाहिए। सामाजिक ऑडिट, जियो-टैगिंग, आईटी/डीबीटी, आंतरिक वित्तीय ऑडिट, साक्ष्य-आधारित अनुसंधान और वास्तविक समय प्रबंधन सूचना प्रणाली जैसे कई तरीकों का उपयोग करके सभी डेटा और निगरानी आवश्यक रूप से सार्वजनिक डोमेन में होनी चाहिए। एक शिकायत निवारण प्रणाली होनी चाहिए जो समुदाय के स्वामित्व वाली हो और शिकायतों के पंजीकरण तक आसानी से पहुंच हो।

अलग-अलग क्षेत्रों के लिए, निम्नलिखित अतिरिक्त नीतिगत विशिष्ट सुझाव प्रस्तावित हैं:

शिक्षा

मिश्रित शिक्षा को वास्तविकता बनाने के लिए हर स्कूल में टेलीविजन के साथ ऑडियो और दृश्य-श्रव्य सामग्री हो। सार्वजनिक अंतिम मील गैजेट समर्थन के माध्यम से मिश्रित शिक्षा में समानता को भी संबोधित करें। प्रत्येक बच्चे के लिए गैर-धमकाने वाली मूल्यांकन प्रणाली जो आवश्यकता-आधारित सीखने की सुविधा को सक्षम बनाती है। प्रत्येक शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रत्येक अध्याय और उसके प्रभावी शिक्षण की समीक्षा की जाएगी, और सभी के लिए सीखने के परिणामों को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रत्येक अध्याय के लिए तैयार की गई ऑनलाइन सामग्री का उपयोग किया जाएगा। स्कूलों में अशांति फैलाने वाले और बच्चों के सीखने के परिणामों में बाधा डालने वाले शिक्षकों के लिए कोई गैर-शैक्षणिक कर्तव्य नहीं होगे।

स्वास्थ्य

हर घर को स्वास्थ्य सुविधा से जोड़ें। प्रत्येक भारतीय को पता होना चाहिए कि स्वास्थ्य संबंधी समस्या होने पर किससे संपर्क करना है। सभी को राष्ट्रीय डिजिटल स्वास्थ्य मिशन में नामांकित करें और ऐसे मेडिकल रिकॉर्ड बनाएं जो गोपनीयता का सम्मान करते हों और केवल मरीजों के हित में हों। जैसा कि तमिलनाडु मेडिकल सर्विसेज कॉरपोरेशन (टीएनएमएससी) ने किया है, गुणवत्तापूर्ण जेनेरिक दवाओं की एक कम्प्यूटरीकृत प्रणाली स्थापित की है जो अच्छी तरह से परीक्षण की गई है और आईटी-सक्षम जिला गोदामों से उपलब्ध है। प्रत्येक स्वास्थ्य सुविधा में एक दवा पास बुक होनी चाहिए। कम से कम 24 राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों में पहले से ही टीएनएमएससी जैसा निगम है; गोदामों का अंतिम-मील कम्प्यूटरीकरण, दवा पासबुक की शुरूआत, और कड़ाई से पूर्व-योग्य निर्माताओं से खरीदी गई जेनेरिक दवाओं का बैच-वार पेशेवर परीक्षण, वास्तविक चुनौती है।

स्वास्थ्य और कल्याण केंद्रों को प्रधान मंत्री जन आरोग्य योजना (पीएमजेएवाई) के तहत माध्यमिक और तृतीयक अस्पताल में भर्ती देखभाल तक पहुंच में गेट-कीपिंग की भूमिका निभानी चाहिए। फैमिली मेडिसिन में स्वास्थ्य और कल्याण केंद्रों के डॉक्टरों को प्रशिक्षित करें, आवश्यक कौशल सेट की कमी को पूरा करने के लिए जीवन रक्षक एनेस्थेटिक कौशल (एलएसएएस), आपातकालीन प्रसूति देखभाल (ईएमओसी), 24-सप्ताह की अवधि के बाल चिकित्सा/सर्जरी पाठ्यक्रम को बढ़ावा दें। आवश्यकतानुसार देखभाल करने वालों की संख्या बढ़ाएँ और उनके क्षमता विकास कार्यक्रमों की गुणवत्ता पर ध्यान दें।

पोषण

स्थानीय सरकारों को किशोर लड़कियों, गर्भवती महिलाओं और शिशुओं में अल्पपोषण की माप, पहचान और अनुवर्ती कार्रवाई की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए कि किसी भी महसूस की गई आवश्यकता की उपेक्षा न हो, आवश्यकता आधारित डे केयर सेंटर और अन्य हस्तक्षेप स्थापित करने में लचीलापन हो। स्वच्छ पानी, स्वच्छता, सामुदायिक कार्यकर्ताओं के साथ बुनियादी दवाओं की उपलब्धता, विविध भोजन सेवन, स्कूलों में 'पोषक' उद्यान, दूध और अंडे, तेल और हरी पत्तेदार सब्जियों तक पहुंच जैसे व्यापक निर्धारकों का एक साथ समन्वय और अभिसरण सुनिश्चित किया जाता रहे। देखभाल करने वालों, पोषण और सहायता के प्रावधान के लिए आवश्यकता आधारित हस्तक्षेप के लिए स्थानीय सरकार के नेतृत्व वाली सामुदायिक कार्रवाई के लिए असीमित धनराशि उपलब्ध हो। वर्तमान में समुदाय की देखभाल करने वाले जैसे ग्रामीण आजीविका मिशन में सामुदायिक संसाधन व्यक्ति या आशा मॉडल प्रभावी विकल्प हैं। नवजात शिशुओं में सेप्सिस, निमोनिया और तीव्र श्वसन संक्रमण से जीवन बचाने के लिए जेंटामाइसिन इंजेक्शन लगाने के लिए सामुदायिक कार्यकर्ताओं का प्रमाणन हो।

कौशल

स्थानीय समुदाय युवाओं और उनकी रोजगार आकांक्षाओं और सीखने की जरूरतों की एक सूची तैयार करें। नौकरियों और कौशल प्रदाताओं की उपलब्धता के साथ आकांक्षाओं का मिलान हो।प्रत्येक ब्लॉक/जिले में प्रमाणित कौशल प्रदाताओं की प्रणाली हो। स्वरोजगार के लिए कुशल युवाओं की ऋण आवश्यकताओं के लिए समन्वय हो। महिला समूह एक अच्छे क्रेडिट योग्य उद्यम विकास के रूप में विकसित हो जो कुशल युवाओं, उद्यम और ऋण को जोड़ने का कार्य करें व मार्गदर्शन हेतु उद्यम के लिए पेशेवर सहायता और सामुदायिक संसाधन व्यक्ति प्रदान करें।

उपर्युक्त सभी सुझाव साक्ष्य आधारित हैं और बिना किसी अतिरिक्त लागत के आरंभ किए जा सकते हैं। यदि हम समावेशी विकास चाहते हैं भारत जो सालाना 8 प्रतिशत से अधिक की दर से विकास कर रहा है, उसे यही रास्ता अपनाना चाहिए। मानव पूंजी साझा विकास का मार्ग है; यह 8 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि का मार्ग भी है जिसकी विकसित भारत 2047 को आवश्यकता है।

चुनौतियां

2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनने की यात्रा बाधाओं से भरी है, और भारत को दुर्गम चुनौतियों से पार पाना होगा।प्रमुख चुनौतियां निम्न है :

1) 'यूएन स्टेट ऑफ वर्ल्ड पॉपुलेशन रिपोर्ट 2022' के अनुसार 2023 में भारत दुनिया के सबसे अधिक आबादी वाले देश के रूप में चीन को पछाड़ देगा। जीडीपी मेट्रिक्स के अनुसार, भारत ब्रिटेन को पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में प्रतिस्थापित करने के बावजूद, इसकी प्रति व्यक्ति जीडीपी - $ 2,466 (नाममात्र /नॉमिनल ; 2022) और $ 8,293 (पीपीपी शर्तों में; 2022) - इसे 142 वें रैंक (नाममात्र) और 125 वें स्थान (पीपीपी) पर विश्व स्तर पर रखता है। भारत न केवल बांग्लादेश से पीछे है, बल्कि विश्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार, 2021 में भारत की प्रति व्यक्ति जीडीपी $2,277 चीन ($12,556.3), संयुक्त राज्य अमेरिका ($69,287.5) और यूनाइटेड किंगडम ($47,334.4) से पीछे थी। यह वह विषय वस्तु नहीं है जिससे एक विकसित देश बनता है।

2) एक भूखा राष्ट्र विकसित देश नहीं हो सकता। नवीनतम ग्लोबल हंगर इंडेक्स (2022) के अनुसार, भारत 29.4 स्कोर के साथ 121 देशों में 107वें स्थान पर है। छोटे नमूना आकार के बारे में हमारे विरोध और भारत विरोधी पूर्वाग्रह के बावजूद, जीएचआई पर भारत का प्रदर्शन नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका, पाकिस्तान, रवांडा, बुर्किना फासो और सूडान से भी खराब है, अगर भारत वैश्विक आर्थिक महाशक्ति बनने की आकांक्षा रखता है तो यह अच्छा संकेत नहीं है।

3) विश्व असमानता रिपोर्ट 2022 के अनुसार, भारत विश्व स्तर पर सबसे अधिक असमानता वाले देशों में से एक है, जहां निचली आधी आबादी 53,610 रुपये कमाती है, लेकिन शीर्ष 10 प्रतिशत लोग 20 गुना कमाकर 11,66,520 रुपये कमाते हैं। आश्चर्य की बात नहीं है, जबकि शीर्ष 10 प्रतिशत के पास राष्ट्रीय आय का 57 प्रतिशत है (और शीर्ष 1 प्रतिशत के पास 22 प्रतिशत है), निचले 50 प्रतिशत का हिस्सा फिसलकर 13 प्रतिशत हो गया है। यदि भारत को अगले 25 वर्षों में एक विकसित देश बनना है तो ऐसी भयावह असमानता को युद्ध स्तर पर ठीक करने की आवश्यकता है।

4) संयुक्त राष्ट्र मानव विकास रिपोर्ट (2021/2022) के अनुसार, भारत 191 देशों में से 132वें स्थान पर है। शिक्षाप्रद रूप से, एचडीआई मानव विकास के तीन प्रमुख आयामों पर प्रगति को मापता है - एक लंबा और स्वस्थ जीवन, शिक्षा तक पहुंच और एक सभ्य जीवन स्तर।भारत का वर्तमान एचडीआई स्कोर (0.64) 1980 में किसी भी विकसित देश की तुलना में बहुत कम है। चीन ने 2004 में 0.64 का स्तर प्राप्त किया, और 0.75 तक पहुंचने में 13 साल लग गए, जो संयोगवश, यूके का एचडीआई था। भारत अभूतपूर्व जनसांख्यिकीय-लाभांश के सहारे 'विकसित राष्ट्र' का दर्जा हासिल करने की आकांक्षा रखता है, लेकिन इसके जनसांख्यिकीय लाभांश के अनियंत्रित जनसांख्यिकीय आपदा में बदलने के खतरे का सामना करना पड़ रहा है।

5) साक्षरता में भारी प्रगति के बावजूद, लगभग 25 प्रतिशत निरक्षर आबादी वाला भारत, दुनिया की सबसे बड़ी निरक्षर आबादी का घर है। इसके अलावा, शिक्षा में भारी मात्रात्मक वृद्धि के बावजूद, देश लाखों बेरोजगार शिक्षित

लोगों से भरा हुआ है। भारत को जल्द से जल्द निरक्षरता को खत्म करने और गुणात्मक शिक्षा पर ध्यान देने की जरूरत है। उच्च रोजगार योग्य शिक्षित आबादी वाला भारत एक विकसित देश बनने की पूर्व शर्त है।

भारत इन चुनौतियों का सामना कर सकता है और उसका पिछला प्रदर्शन इस आशावाद का समर्थन करता है। 1947 में एक पिछड़ी अर्थव्यवस्था से 2022 में पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था तक भारत की यात्रा इस विश्वास को प्रेरित करती है कि भारत 2047 में कहां होगा। नवाचार भारत की अर्थव्यवस्था को बदलने में महत्वपूर्ण होगा, और वैश्विक नवाचार सूचकांक 2022 में इसकी प्रगति 2015 में 81वें स्थान से अब 40वें स्थान पर पहुंच गई है जो आगे की राह का एक अच्छा संकेतक है। इसके अलावा, यदि प्रधान मंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद (ईएसी-पीएम) के भारत के लिए प्रतिस्पर्धात्मकता रोडमैप @ 100' का सख्ती से पालन किया जाता है, तो 10,000 डॉलर प्रति व्यक्ति आय प्राप्त होगी और भारत 2047 तक सतत मानव विकास सूचकांक के अनुरूप 20 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था बन जाएगा।

निष्कर्ष

भारत निस्संदेह 2047 तक एक विकसित देश होने के इस अत्यंत महत्वाकांक्षी लक्ष्य तक पहुंच सकता है, लेकिन केवल तभी जब हम अपनी कमजोरियों को स्वीकार करें और देश के आर्थिक और सामाजिक विकास पर ध्यान केंद्रित करें।एक राष्ट्र बहुत शक्तिशाली हो सकता है और उसकी सरकार के पास बहुत सारा पैसा हो सकता है, लेकिन अगर आम लोग बेहतर जीवन जीने में असमर्थ हैं, तो उस राष्ट्र को विकसित नहीं माना जा सकता है।एक 'विकसित देश' बनने के लिए भारत को निरंतर संरचनात्मक सुधारों की आवश्यकता होगी, सेवा क्षेत्र को अधिक बढ़ावा देना होगा, वैश्विक विनिर्माण केंद्र बनना होगा, कृषि पर मानव भार को कम करना होगा, जनसांख्यिकीय लाभांश प्रदान करना होगा, स्वास्थ्य और शिक्षा में बड़े पैमाने पर निवेश करना होगा।प्रगतिशील कर व्यवस्था को व्यापक आधार देना, लैंगिक असमानताओं और भ्रष्टाचार को समाप्त करना होगा।

संदर्भ सूची

1. Ahmad, S. T. (2024). Vikasit Bharat Nirman: Chunautiyan Evam Sambhavanaen. Booksclinic Publishing.
2. Aithal, P. S., & Aithal, S. (2019). Analysis of higher education in Indian National education policy proposal 2019 and its implementation challenges. International Journal of Applied Engineering and Management Letters (IJAEML), 3(2), 1-35.
3. Cassen, R. (2016). India: population, economy, society. Springer.
4. Chancel, L., Piketty, T., Saez, E., & Zucman, G. (Eds.). (2022). World inequality report 2022. Harvard University Press.

5. Deka, R. J. (2018). A study on the importance of skill development: Women entrepreneurs in India as a catalyst to women empowerment. Productivity, 58(4), 400-409.
6. Dev, S. M. (2023). Structural transformation of the Indian economy: Past performance and Way forward to 2047. India, 2047.
7. Dhaliwal, S. (Ed.). (2023). India and the Changing World Order. Taylor & Francis.
8. Gangadharan,S. & Hemamalini,M. (2021). National Health and Family Welfare Programmes in India and the Health Schemes in India. Community Health Nursing: Framework for Practice: Vol 2-E-Book, 150.
9. Ganguly, A., Chauthaiwale, V., & Sinha, U. (Eds.). (2016). The Modi Doctrine: New Paradigms in India's Foreign Policy. SCB Distributors.
10. Golchha, P., Bandopadhyay, V., & Ban, H. H.(2024). Unleashing the Full Potential: The Role of Social Protection in Aspirations for India 2047. Investing in Early Years in Human Capital for Future Resilience, 6.
11. Hertog, S., Gerland, P., & Wilmoth, J. (2023). India overtakes China as the world's most populous country.
12. Kumar, N. (2023). Unlocking India's Potential in Industrial Revolution 4.0: National Innovation System, Demography, and Inclusive Development. Indian Public Policy Review, 4(3), 67-87.
13. Kpolovie, P. J., Ewansiha, S., & Esara, M. (2017). Continental comparison of human development index (HDI). International Journal of Humanities Social Sciences and Education (IJHSSE), 4(1), 9-27.
14. Mor, N. (2020). Financing for primary healthcare in India.
15. Rao, M. G., Raghunandan, T. R., Gupta, M., Datta, P., Jena, P. R., & Amarnath, H. K. (2011). Fiscal decentralisation to rural local governments in India: Selected issues and reform options. National Institute of Public Finance and Policy, New Delhi.
16. Sahu, S., Shyama, N., Chokshi, M., Mokashi, T., Dash, S., Sharma, T. & Saxena, G. (2022). Effectiveness of supply chain planning in ensuring availability of CD/NCD drugs in non-metropolitan and rural public health system. *Journal of Health Management*, *24*(1), 132-145.
17. Sinha, A. (2024). The Last Mile: Turning Public Policy Upside Down (p. 310). Taylor & Francis.

18. Srivastava, S. (2023). New India in the 21st Century: 21 Visions for a Developed India by 2050. Notion Press.
19. Tellis, A. J., Debroy, B., & Mohan, C. R. (2023). Grasping Greatness: Making India a Leading Power. Penguin Random House India Private Limited.
20. Vaggi, G. (2017). The rich and the poor: A note on countries' classification. *PSL Quarterly Review*, *70*(279).
21. Yoganandham, G. (2022). Emerging Technologies and Sustainable Development-An Assessment.

अध्याय-14

सामुदायिक सहभागिता एवं राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन: चुनौतियां और संभावनाएं

शाईस्ता
शोधर्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया,
नई दिल्ली

स्वास्थ्य मनुष्य के जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। स्वस्थ मनुष्य राष्ट्र के विकास की कुंजी होता है एवं राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्वास्थ्य से तात्पर्य केवल शारीरिक स्वास्थ्य से नहीं है जैसे कि डब्ल्यूएचओ कहता है "स्वास्थ्य पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति है। यह केवल रोगों और दुर्बलताओं की अनुपस्थिति नहीं है" (विश्व स्वास्थ्य संगठन)। एक स्वस्थ मनुष्य रोगमुक्त होने के साथ-साथ अपनी पूरी क्षमता का उपयोग करने में सक्षम होता है। मनुष्य का स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण चर है जो विभिन्न चरों से प्रभावित होता है जैसे कि पानी, साफ-सफाई, शुद्ध हवा, स्वच्छ वातावरण, आदि। इसी के साथ मनुष्य के स्वास्थ्य पर सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली एवं सामुदायिक सहभागिता का भी प्रभाव पड़ता है। "विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सार्वजनिक स्वास्थ्य का अर्थ सभी संगठित उपायों (चाहे सार्वजनिक या निजी) से है जो बीमारी को रोकने के लिए, स्वास्थ्य को बढ़ावा देना तथा समग्र रूप से आबादी के बीच जीवन को बढ़ावा देने के लिए किए गए हो। इसकी गतिविधियों का उद्देश्य ऐसी स्थिति प्रदान करना है जिसमें लोग स्वस्थ हो सकते हैं और पूरी आबादी पर ध्यान केंद्रित करना हैं"। इस प्रकार सार्वजनिक स्वास्थ्य का संबंध कुल व्यवस्था से है न कि किसी विशेष बीमारी के उन्मूलन से।

स्वास्थ्य (चाहे सार्वजनिक या निजी) के विकास के लिए सामुदायिक सहभागिता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। आम व्यक्ति को सामुदायिक सेवाओं में केवल निष्क्रिय प्राप्तकर्ता की जगह एक सक्रिय अभिकर्ता की भूमिका निभाने की जगह सामुदायिक सहभागिता के द्वारा दी जाती है। भारत में सामुदायिक सहभागिता कोई नया उपकरण नहीं है। हमारी संस्कृति एवं इतिहास में आमजन सदियों से सामुदायिक कार्यों में सहभागिता लेते आए हैं एवं सार्वजनिक वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रबंध करते रहे हैं। "सामुदायिक सहभागिता उन हितधारकों के बीच संबंध-निर्माण है जो सेवा उपयोगकर्ताओं, सरकारी कार्यक्रमों, स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं से लेकर नीति-निर्माताओं, शोधकर्ताओं और अन्योन्याश्रित समुदायों में अपने हितों को एकीकृत करते हैं ताकि साझा स्वास्थ्य लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके जो स्थानीय आबादी और स्वास्थ्य दोनों के लिए सार्थक हों"।

भारत में सार्वजनिक स्वास्थ में सामुदायिक सहभागिता का इतिहास

भारत में सामुदायिक सहभागिता का इतिहास काफी पुराना है। हमारी संस्कृति में समुदाय बहुत पहले से सार्वजनिक कार्यों का प्रबंध करते आ रहे हैं। इसी व्यवस्था की झलक हमारी नीतियों एवं योजनाओं में पाई जाती है। 1952 में सामुदायिक सहभागिता को सार्वजनिक कार्यों के स्तर पर आरंभ करने के लिए 'सामुदायिक विकास कार्यकम' का आरंभ किया गया एवं सार्वजनिक स्वास्थ का विकास भी इस कार्यकम का एक भाग था। परंतु सामुदायिक विकास

कार्यक्रम ज्यादा कामयाब ना हो सका। इसको देखते हुए सरकार ने नव स्वतंत्र देश में जमीनी स्तर पर आमजन की सहभागिता को बढ़ाने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना की शुरुआत की। भारत में आजादी के बाद पहली पंचायत 1959 में राजस्थान के नागौर में स्थापित की गई। पंचायत के द्वारा सामुदायिक सहभागिता में वृद्धि करने की कोशिश की गई। इसके कार्य क्षेत्र में स्वास्थ्य एंव स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक भी शामिल थे जैसे कि साफ-सफाई, कूड़ा कचरा प्रबंध, आदि।(कुमार. अ.2015) 1970 का दशक आते-आते पंचायतों की स्थिति में सुधार के लिए बहुत सी कमेटियां बनाई गई, दूसरी तरफ इस समय गैर सरकारी संगठनों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही थी। इन संगठनो का कार्यक्षेत्र भी बहुत विस्तृत था जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आदि। 1975 में सरकार द्वारा आंगनवाड़ी कार्यक्रम शुरू किया गया। यह 0 से 6 वर्ष के बच्चों एवं माताओं की देखभाल एवं स्वस्थ से जुड़ा हुआ केंद्र है। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए सामुदायिक सहभागिता को केंद्र बिंदु बनाया गया (सोसाइटी फॉर पार्टीसीपेटरी रिसर्च इन एशिया)।

1977 में 'सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ता' नाम से एक कार्यक्रम चलाया गया। यह कार्यक्रम स्वास्थ्य के क्षेत्र में आमजन की सहभागिता सुनिश्चित करता था। इस कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीणों के बीच से कार्यकता को सर्वसहमति से चुन के ट्रेनिंग दी जाती थी। इस योजना के नाम को 'कम्युनिटी हेल्थ वालंटियर प्रोग्राम" के नाम से बदल दिया गया। 1983 में इसके नाम को पुनः संशोधित करते हुए "विलेज हेल्थ गाइड स्कीम" कर दिया गया। (प्रसाद. अ., 2011) 1978 अल्मा-अता (Alma-Ata) घोषणा ने संपूर्ण विश्व का ध्यान प्राथमिक स्वास्थ्य की ओर आकर्षित किया, साथ ही प्राथमिक स्वास्थ्य को हासिल करने में सामुदायिक सहभागिता की भूमिका को भी पहचान दिलाई। अल्मा-अता (Alma-Ata) घोषणा में कहा गया कि "लोगों का यह अधिकार और कर्तव्य है कि वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से स्वास्थ्य देखभाल की योजना और योजना कार्यान्वयन में भाग ले"(विश्व स्वास्थ्य संगठन,1978)। इस घोषणा के बाद सामूहिक सहभागिता को लगभग हर स्वास्थ नीति, योजना, एंव कार्यक्रम का भाग बनाया गया। इसकी झलक भारत की पहली राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति जो 1982, 1993 के दशक में राष्ट्रीय पोषण नीति, दूसरी राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2000 एंव तीसरी राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017 में भी देखी जा सकती है।

2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) के साथ ही सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में सामुदायिक सहभागिता को एक नई पहचान मिली। एनआरएचएम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य सेवाएं का विकास है। इस मिशन के साथ ही सामुदायिक सहभागिता के क्षेत्र में कई नई पहले की गई एवं उनमें से एक पहल आशा जो एक सामुदायिक महिला कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य लोगों को प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं देने में सहायता करना है। इसके साथ एनआरएचएम में पंचायतों, विलेज हेल्थ कमिटी, रोगी कल्याण समिति, आदि के द्वारा भी सामुदायिक सहभागिता सुनिश्चित करने का कार्य किया गया। (गायतोंडे. आर और आदि,2017)

राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन की शुरुआत के बाद राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन को इसका एक उपअंग बना लिया गया। साथ ही 2013 में राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन के नाम से एक नया उपअंग राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन का अंग बनाया गया। राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन भी स्वास्थ्य विकास के लिए सामुदायिक सहभागिता का उद्देश्य अपने में समुचित किए हुए हैं।(स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)

राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन

राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन को मंत्रिमंडल ने 2013 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के उपअंग के रूप में मंजूरी दी गई। राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन का मुख्य उद्देश्य शहरों में रहने वाली गरीब जनता तक स्वास्थ्य सेवाओं को पहुंचाना है जैसे कि रिक्शा चालक, रेहड़ी-पटरी का कार्य करने वाले लोग, रेलवे और बस स्टेशन के कुली, बेघर लोग, सड़क पर रहने वाले बच्चे, निर्माण स्थल पर काम करने वाले श्रमिक, आदि। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि बाकी शहरी आबादी इस मिशन के अंतर्गत सेवाएं नहीं ले सकती है।(स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय) संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 2035 तक लगभग 675 मिलियन लोग शहरों में रहेंगे जो कि संपूर्ण आबादी का 43.2 प्रतिशत है (द टाइम्स ऑफ इंडिया)। बढ़ती हुई शहरी आबादी के कारण स्वास्थ्य सेवाओं की मांग में भी बढ़ोतरी होगी, दूसरी ओर वातावरण की शुद्धि, स्वच्छ वायु, जल, पोषण युक्त भोजन, आदि की कमी के कारण भी स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव बढ़ेगा, ऐसे में राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन की भूमिका उभर कर आती है। सामुदायिक सहभागिता के द्वारा शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य का विकास करने के लिए पहले से मौजूद संस्थागत प्रणाली को भी इन विधियों में शामिल किया जा सकता है जैसे कि गैर सरकारी संगठन, स्थानीय निकाय, आदि, जो सामुदायिक सहभागिता भी सुनिश्चित करेंगे। इस मिशन के अंतर्गत सभी राज्यों की राजधानियां, जिला मुख्यालयों और 50,000 से अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र, शहर, कस्बे को शामिल किया गया है। 50,000 से कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों को राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत ही रहने दिया गया है।(स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय) इस मिशन के निम्नलिखित लक्ष्य हैं जो इस प्रकार हैं:-

1. "शहरी गरीबों और अन्य कमजोर वर्गों की विविध स्वास्थ्य देखभाल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यकता आधारित शहर विशिष्ट, शहरी स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली।
2. तेजी से बढ़ती शहरी आबादी की स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों का सामना करने के लिए संस्थागत तंत्र और प्रबंधन प्रणालियाँ।
3. स्वास्थ्य गतिविधियों की योजना, कार्यान्वयन और निगरानी में अधिक सक्रिय भागीदारी के लिए समुदाय और स्थानीय निकायों के साथ साझेदारी।
4. शहरी गरीबों को आवश्यक प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करने के लिए संसाधनों की उपलब्धता।
5. लाभ के लिए और लाभ के लिए नहीं, स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं और अन्य हितधारकों के साथ गैर सरकारी संगठनों के साथ साझेदारी"।(स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)

राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन के लक्ष्य में सामुदायिक सहभागिता सुनिश्चित करना भी शामिल है। यह मिशन विशेषकर महिला आरोग्य समिति (MAS) एवं आशा द्वारा सामुदायिक सहभागिता को सुनिश्चित करता है।

आशा कार्यकर्ता

आशा का कार्य सराहनीय रहा है। आशा कार्यकर्ता को स्वास्थ्य विकास के क्षेत्र में सफल परीक्षण माना जाएगा। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन में सामुदायिक कार्यकर्ता के रूप में आशा की शुरुआत की गई जिसका मुख्य कार्य प्राथमिक स्वास्थ्य क्षेत्र में सरकार के सहयोगी के रूप में कार्य करना है। समय के साथ आशा के कार्यों की सराहना हुई। लोगों ने भी इस पहल को सकारात्मक तरीके से लिया। 2022 में आशा को डब्ल्यूएचओ की तरफ से सम्मानित भी किया गया। इतना ही नहीं आशा के कार्यों का सकारात्मक प्रभाव कोविड-19 के दौरान भी देखा गया।

स्वास्थ्य का विकास उसके कार्य का अभिन्न भाग होता है जिसके अंतर्गत स्वास्थ्य में सुधार और स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं को प्राप्त करने के लिए समुदाय को प्रेरित करना भी उसके कार्य क्षेत्र में आता है। इसके साथ ही स्वास्थ्य संबंधी कार्यों में लोगों की भागीदारी बढ़ाना भी उसके कार्य का एक भाग है। आशा कार्यकर्ता के कार्यों में मुख्य रूप से पाँच कार्य शामिल है: पहला घरों का दौरा करना (1 सप्ताह में चार या पांच दिन 2 से 3 घंटे), दूसरा स्वास्थ्य एवं पोषण दिवस में भाग लेना, तीसरा कार्य स्वास्थ्य केंद्र में जाना, चौथा ग्राम स्तरीय बैठकों का आयोजन करना जिससे स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता में वृद्धि हो एवं सामुदायिक भागीदारी भी बढ़े, पांचवा कार्य रिकॉर्ड तैयार कार्य ज्यादा व्यवस्थित हो सके। यह कार्य करते समय आशा कार्यकर्ता को माता का स्वास्थ्य, नवजात शिशु, और शिशु स्वास्थ्य एवं रोग का नियंत्रण सुनिश्चित करना होता है। यह महिला आरोग्य समिति के साथ भी कार्य करती है। आशा कार्यकर्ता का चुनाव समुदाय में से योग्यता के आधार पर किया जाता है ताकि वे सामूहिक सहभागिता को बनाए रखने में मददगार साबित हो एवं अपना कार्य सुचारु रुप से कर सके।(स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)

महिला आरोग्य समिति

महिला आरोग्य समिति सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित करने का एक उपकरण है। महिला आरोग्य समिति स्थानीय महिलाओं को एक समूह होता है जिसकी एक अध्यक्ष भी होती है जो समूह का नेतृत्व करने का कार्य करती है। आशा कार्यकर्ता इस समूह की सचिव होती है। इस समूह का निर्माण झुग्गी-बस्तियों और झुग्गी-झोपड़ी जैसी बस्तियाँ में किया जाता है। एक समिति की परिधि में कम से कम 50 से 100 परिवार आते हैं। यह समिति स्थानीय स्तर पर स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य को निर्धारित करने वाले अन्य तत्व पोषण, साफ-सफाई, आदि कार्यों को देखती है।(स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)

यह स्थानीय समिति सामूहिक स्वास्थ्य के विकास कार्यों में प्रमुख भूमिका निभाएगी जो धीरे-धीरे विकेंद्रीकृत स्वास्थ्य योजना प्रक्रिया का रूप ले लेगी। सामुदायिक प्रक्रिया के सहयोगी ढांचे में मान्यता प्राप्त गैर सरकारी संगठन भी सहायता कर सकते हैं। महिला आरोग्य समिति के उद्देश्य का क्षेत्र विस्तृत है जिसमें पहला उद्देश्य एक मंच के रूप में कार्य करना है जो आमजन को स्वास्थ्य संबंधित सेवाओं एवं सुविधाओं के बारे में कार्यवाही करने का अवसर प्रदान करें। दूसरा उद्देश्य समुदाय को एकजुट करना एवं स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों को उठाने के लिए एक मंच के रूप में कार्य करना जैसे कि स्वास्थ्य संबंधी जरूरतें, अनुभव एवं स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच। तीसरा उद्देश्य समुदाय में स्वास्थ्य संबंधी व्यवहार को बढ़ावा देना एवं समुदाय स्तर पर स्वास्थ्य संबंधी महत्वपूर्ण मुद्दों को लेकर जागरूकता

फैलाना। यह एक महत्वपूर्ण पहल है जो समुदाय को बहुत से रोगों से बचाने में कारगर साबित होगी।(स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)

चौथा उद्देश्य वित्त से संबंधित है। समिति ने जो फंड किसी कार्यवाही पर खर्च ना किया हो उसका प्रबंधन करना भी समिति का एक उद्देश्य है। सरकार की ओर से महिला आरोग्य समिति को अपने कार्य करने के लिए ₹5000 दिए जाते हैं। पांचवा उद्देश्य समुदाय स्तर पर कार्यरत सभी कार्यकर्ताओं के कार्य में सहयोग एवं मदद करना जैसे आशा, सामुदायिक सेवा प्रदाता, आदि। इस प्रकार के आपसी सहयोग एवं मदद से मानव शक्ति का उपयोग सही प्रकार से हो सकता है साथ ही सेवाओं के दोहराव में भी कमी आएगी। छटा उद्देश्य समुदाय के लिए ऐसे मंच के रूप में कार्य करना जहां से समुदाय को सरकार द्वारा शुरू किए गए स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों एवं सरकारी प्रयासों के बारे में संपूर्ण जानकारी प्राप्त हो। सामुदायिक भागीदारी का विकास नीति निर्माण एवं नीति कार्यान्वयन के स्तर तक करने में सहायता करना ताकि स्वास्थ्य के क्षेत्र में अच्छे परिणाम हासिल किए जा सकें। सातवां एवं अंतिम उद्देश्य रेफरल संपर्क के रूप में कार्य करना। समुदाय स्तर पर स्वास्थ्य संबंधित सेवाओं को व्यवस्थित करने का कार्य करना। आशा के बाद महिला आरोग्य समिति समुदाय भागीदारी को सुनिश्चित करने का कार्य करती है।(स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय)

संभावनाएं

सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में सामुदायिक सहभागिता की भूमिका सराहनीय है। इसकी शुरुआत स्वास्थ्य में सबसे पहले हमारे पड़ोसी देश चीन में हुई जिसकी उपलब्धियों को देखते हुए संपूर्ण विश्व में स्वास्थ्य के क्षेत्र में सामूहिक सहभागिता को अपनाने पर जोर दिया गया। सामूहिक सहभागिता एक सकारात्मक कदम है, इससे केवल सरकार को ही फायदा नहीं होता बल्कि आमजन को भी फायदा होता है। सामुदायिक सहभागिता के द्वारा आमजन केवल स्वास्थ्य सेवाओं का निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं है बल्कि सक्रिय सहभागी बन जाता है।

सामुदायिक सहभागिता का कार्य केवल नीति की क्रिया के स्तर पर नहीं है बल्कि स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं के निर्माण, योजनाओं के पुनर्भरण के साथ ही योजनाओं में त्रुटि को सही करने से भी जुड़ा है। राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत सामुदायिक सहभागिता के रूप महिला आरोग्य समिति की भूमिका नीति निर्माण और कार्य अन्वेषण प्रत्येक स्तर पर देखी जा सकती है। स्वास्थ्य सेवाओं में सामुदायिक सहभागिता के जरिए स्वास्थ्य नीतियों से सकारात्मक परिणाम की आशा की जा सकती है क्योंकि आमजन अपनी परेशानियों को बेहतर ढंग से जानते हैं साथ ही वह इन परेशानियों के निवारण के लिए सामुदायिक पद्धति की अच्छी तरह से जानकारी रखते हैं। ऐसे में नीति के सभी स्तर पर उन्हें शामिल करने से सकारात्मक परिणाम हासिल किए जा सकते हैं।

सामुदायिक भागीदारी से लोगों में आत्मविश्वास भी बढ़ाया जा सकता है। जब वह सेवाओं के केवल निष्क्रिय प्राप्तकर्ता की जगह एक समुदाय के रूप में सक्रिय तौर पर पूर्ण प्रक्रिया में भाग लेते हैं वह स्वयं अपनी परेशानियों के निवारण में सहभागि की भूमिका निभाते हैं तब उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। रोगों की रोकथाम एवं स्वास्थ्य

शिक्षा संबंधित क्षेत्रों में सामुदायिक सहभागिता के द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा सकती है। सामुदायिक सहभागिता के द्वारा आमजन को स्वास्थ्य संबंधित शिक्षा दी जा सकती है जैसे कि पोषण संबंधी जानकारी, पोषणकारी भोजन का महत्व बताना, साफ सफाई की आदतों के बारे में जागरूकता फैलाना, आदि। इससे शुरुआती स्तर पर ही एक स्वस्थ समुदाय के निर्माण में बढ़ोतरी होगी। इसके साथ ही सामुदायिक सहभागिता के द्वारा मौसमी बीमारी एवं स्पर्शजन्य-रोग के बारे में जानकारी साझा करके जरूरी रोकथाम शुरुआती स्तर पर की जा सकती है। सामुदायिक सहभागिता के द्वारा सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में सूचना आमजन तक पहुँचाई जा सकती है साथ ही इन सेवाओं तक पहुंच भी सुनिश्चित की जा सकती है। ज्यादातर सामुदायिक सहभागिता कार्यकर्मों में नेतृत्व एवं मुख्य कार्यकर्ता की भूमिका निभाने वाला व्यक्ति आम लोगों में से होता है जो आम जन एवं सरकारी सेवाओं के बीच कड़ी का काम करता है जैसे कि आशा कार्यकर्ता, महिला आरोग्य समिति के सदस्य, आदि। इसके साथ ही सामुदायिक सहभागिता के द्वारा एक फायदा जो सरकार को होता है वह सामुदायिक संसाधनों की प्राप्ति चाहे वे मानव शक्ति के रूप में हो या किसी ओर रूप में। इसके साथ ही क्योंकि संसाधन समुदाय के होते हैं ऐसे में संसाधनों का सुचारु प्रयोग सुनिश्चित करने में भी समुदाय सक्रिय भूमिका निभाता है।

चुनौतियां

सामुदायिक सहभागिता कार्यकर्मों को स्वास्थ्य का विकास एवं स्वास्थ्य देखभाल क्षेत्र के अंतर्गत चुनौतियों का सामना करना पड़ रह है जो कि ज्यादातर सामुदायिक सहभागिता कार्यक्रमों की राह में पहले से ही बाधा रही हैं। सामुदायिक सहभागिता कोई नया उपाय नहीं है उसी तरह से इसके क्षेत्र में आने वाली बाधाएं भी शुरू से सामुदायिक विकास कार्यक्रम के समय से मौजूद हैं। राष्ट्रीय शहरी मिशन के संदर्भ में इनके रूप में कुछ बदलाव जरूर आते हैं जैसे शहरों में रहने वाली गरीब निवासी ज्यादातर समय प्रवासी मजदूर एवं अस्थायी निवासी होते हैं ऐसे में वह या तो सामुदायिक कार्यक्रम में रुचि नहीं लेते है या जब वह कार्यकर्म का भाग बन भी जाते तो अपने स्थाई पते पे लौटते ही सामुदायिक सहभागिता कार्यक्रम बीच में छूट जाते हैं। बार-बार कार्यक्रमों के सदस्यों की अदला-बदली से कार्यक्रम पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके साथ ही सामुदायिक कार्यक्रम में लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए सरकार के पास कोई कारगर उपाय नहीं है। अगर आमजन इन कार्यक्रमों में रुचि ना दिखाएं तो कार्यक्रम अपनी शुरुआती स्तर पर ही विफल हो जाते हैं। सामुदायिक कार्यक्रम सही नेतृत्व की कमी से भी संघर्ष कर रहे होते हैं। सही नेतृत्व बिना कोई भी कार्यक्रम अपने परिणाम को हासिल नहीं कर सकता है। कई बार एक अध्यक्ष कमेटी के सदस्य के ऊपर अपनी शक्ति का प्रयोग करता है एवं संपूर्ण कार्यक्रम को अपने अधीन कर लेते हैं ऐसे में सामुदायिक कार्यक्रम लोकतांत्रिक ना होकर एक व्यक्ति की सत्ता के रूप में स्थापित होकर रह जाते हैं एवं सामुदायिक सहभागिता नाम मात्र की बचती है।

इसके साथ ही सामुदायिक कार्यक्रम धन के अभाव को भी वहन करते हैं जैसे कि आशा कार्यकर्ता को दिया जाने वाले भत्ते का कम होना, दूसरा महिला आयोग समिति को दिए जाने वाली राशि Rs.5000 ही है। ऐसे में पूरे वर्ष का खर्च चलाना मुश्किल कार्य है। धन की कमी के कारण इन कार्यक्रमों को बनाए रखना ही अपने आप में एक चुनौती का कार्य है। सामुदायिक कार्यक्रम में भाग लेने वाले सदस्य जैसे कि महिला समिति के सदस्यों को कोई आर्थिक

लाभ अर्जित नहीं होता है। इसके साथ ही सामुदायिक कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए समुदाय के सदस्यों को अपने दैनिक कार्यों में बाधा आती है इसलिए भी इन कार्यक्रमों में लोग कम भाग लेते हैं।

सामुदायिक कार्यक्रमों में कार्य की जवाबदेही तय करना भी मुश्किल कार्य है। आमजन स्वेच्छा से कार्यकर्मों में शामिल होते हैं साथ ही छोड़ देते हैं। ऐसे में किसी कार्य की जवाबदेही तय करना मुश्किल कार्य होता है। जिससे कार्य बीच में ही छूट सकते हैं। इसके साथ ही सामुदायिक सहभागिता कार्यक्रमों के विभिन्न कार्यकर्ताओं के बीच में समन्वय स्थापित करना लाना भी एक चुनौती है। अगर इन कार्यकर्ताओं के बीच समन्वय न हो तो कार्य में दोहराव के साथ रुकावट भी आ सकती है

निष्कर्ष

सामुदायिक सहभागिता की शुरुआत दशकों पहले स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में में की गई थी। सामुदायिक सहभागिता को विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों, नीतियों एवं राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजनाओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। वैश्विक स्तर पर अल्मा-अता (Alma-Ata) घोषणा के बाद प्राथमिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में वैश्विक स्तर पर सामुदायिक सहभागिता को स्वीकारा गया। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं, स्वास्थ्य विकास के क्षेत्र में सामुदायिक सहभागिता को विभिन्न उपायों द्वारा सुनिश्चित किया गया जैसे कि आशा कार्यकर्ता, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, आदि। राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत भी सामुदायिक सहभागिता के महत्व को स्वीकारा गया है। सामुदायिक सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए महिला आरोग्य समिति एवं आशा कार्यकर्ता इस मिशन के अभिन्न अंग के रूप स्वीकारा गया। सामुदायिक सहभागिता उपाय स्वास्थ्य के विकास में कारगर भूमिका निभा सकते है अगर वे विभिन्न चुनौतियों का हल सफलतापूर्वक खोज ले जैसे कि कार्यक्रमों को मौद्रिक सहायता देना, जमीनी कार्यकर्ताओं की सराहना करना, पुरस्कार देना, सामुदायिक सहभागिता को लेकर समुदाय में समझ विकसित करना, आदि। सामुदायिक सहभागिता स्वास्थ्य के क्षेत्र में निर्णायक भूमिका निभा सकता है।

संदर्भ सूची

1. विश्व स्वास्थ्य संगठन. *विश्व स्वास्थ्य संगठन संविधान*, https://www.who.int/about/governance/constitution
2. विश्व स्वास्थ्य संगठन. *गुणवत्ता के लिए सामुदायिक सहभागिता.* https://qualityhealthservices.who.int/quality-toolkit/new-to-health-system-quality-thinking/community-engagement-for-quality
3. विश्व स्वास्थ्य संगठन. *गुणवत्ता के लिए सामुदायिक सहभागिता.* https://qualityhealthservices.who.int/quality-toolkit/new-to-health-system-quality-thinking/community-engagement-for-quality

4. वाराविकोव, ए. ई. एण्ड तुलचिनसकी द न्यू पब्लिक हेल्थ. चेप्टर-2- द कान्सेप्ट ऑफ पब्लिक हेल्थ(पृष्ट-43-90) https://doi.org/10.1016/B978-0-12-415766-8.00002
5. Mahal, et.al. (2000) Who Benefits from Public Health Spending in India, The World Bank, New Delhi.
6. Reddy, S. (2019). Make Health in India: Reaching a Billion Plus. The Oriental Blackswan.
7. कुमार. अ.(2015). पंचायती राज सिस्टम एण्ड कम्यूनिटी डेवलपमेंट इन इंडिय. https://www.researchgate.net/publication/311922199_Panchayati_Raj_System_and_Community_Development_in_India
8. प्रसाद. अ. (2011). अनलयसिंग स्टरेटेजिस फॉर कम्यूनिटी पार्टीसीपे शन इन नेशनल रुरल हेल्थ मिशन: अ डाक्यूमेन्टैशन ऑफ एक्शन रिसर्च इन फॉर स्टेट्स. Chromeextension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/http://phrsindia.org/wp-content/uploads/2016/02/7Analysing-Strategies-for-Community-Participation-in-NRHM.pdf
9. सोसाइटी फॉर पार्टीसीपेटरी रिसर्च इन एशिया. कम्यूनिटी पार्टिसपैशन अ ट्रैनिंग मॉडुल फॉर आंगनवाड़ी वर्कर. chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://pria.org/knowledge_resource/Community_Participation_-_A_Training_Module_for_Anganwadi_Workers.pdf
10. विश्व स्वास्थ्य संगठन. अल्मा-अता (Alma-Ata) घोषणा 1978. https://www.who.int/docs/default-source/documents/almaata-declaration-en.pdf
11. गाइटोनडे. आर और आदि (2017). कम्यूनिटी एक्शन फॉर हेल्थ इन इंडिया नैशनल रुरल हेल्थ मिशन: वन पॉलिसी, मेनी पाथ . सोशल साइंस एण्ड मेडिसन 188. 82-90. https://doi.org/10.1016/j.socscimed.2017.06.043
12. Tandon, Rajesh, Voluntary Action, Civil Society and the State, Mosaic Books, New Delhi.
13. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. नेशनल हेल्थ मिशन . https://main.mohfw.gov.in/sites/default/files/56987532145632566578.pdf
14. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. नेशनल अर्बन हेल्थ मिशन https://nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=1&sublinkid=970&lid=137
15. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. इन्डक्शन ट्रैनिंग मॉडुल फॉर आशा. https://nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=3&sublinkid=1299&lid=162
16. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. महिला आरोग्य समिति. https://nhm.gov.in/index1.php?lang=1&level=3&sublinkid=1299&lid=162

17. द टाइम्स ऑफ इंडिया. 30 जून 2022. इंडिया अर्बन पॉपुलेशन टू स्टैन्ड यट 675 मिलियन इन 2035, http://timesofindia.indiatimes.com/articleshow/92561747.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst
https://timesofindia.indiatimes.com/india/indias-urban-population-to-stand-at-675-mn-in-2035-behind-chinas-1-bn-un/articleshow/92561747.cms

अध्याय-15

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020: प्राथमिक शिक्षा की समस्याओं के समक्ष प्रासंगिकता

प्रवीण कुमार गौतम, शोध छात्र, लोक प्रशासन विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

चन्दन सिंह शोध छात्र, लोक प्रशासन विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

ओ०पी०बी०शुक्ला सह-आचार्य, लोक प्रशासन विभाग ,बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

प्रदीप कुमार सिंह सहायक आचार्य,लोक प्रशासन विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ

किसी भी देश के विकास के लिए शिक्षा आवश्यक कारक है। मानव पूंजी का विकास शिक्षा के गुणात्मक विकास पर निर्भर करता है। भारत मानव पूंजी का केंद्र है। लेकिन इसकी मानव पूंजी की गुणवत्ता निम्न है। इसलिए हम इस जनसंख्या का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। जब किसी भी देश की जनसंख्या पूरी क्षमता के साथ संसाधनों का उपयोग करने में सक्षम होती है, तो विकास के नए मार्ग खुलते हैं। शिक्षा क्षेत्र में विकास से स्वास्थ्य, पर्यावरण और सामाजिक सुरक्षा जैसे अन्य क्षेत्रों में भी विकास होता है। जब शिक्षा क्षेत्र का विकास होगा, तभी सर्वांगिण विकास का मार्ग प्रसस्त होगा। डा० अम्बेडकर ने लोकतांत्रिक समाज के विकास के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है और कहा है कि शिक्षा सामाजिक गुलामी को दूर करने का अस्त्र है और शिक्षा ही दबे-कुचले लोगों को आगे आने और सामाजिक स्थिति, आर्थिक सुधार और राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल करने के लिए मार्ग प्रसस्त करेगी। शिक्षा से ही पं0 जवाहर लाल नेहरू के अशिक्षा, असमानता, गरीबी और बीमारी को समाप्त करने के सपने को साकार कर सकते हैं। गांधीजी ने कहा है कि बुनियादी शिक्षा किसी भी देश में विकास का सूचक है। शिक्षा आर्थिक विकास का साधन भी है और साध्य भी। अमर्त्य सेन के अनुसार बुनियादी शिक्षा भी सामाजिक परिवर्तन की उत्प्रेरक है। वह इस बात से सहमत हैं कि सामाजिक बुनियादी ढांचे के विकास या मानव संसाधन विकास में बुनियादी शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्राथमिक शिक्षा में विकास किसी भी राज्य में मानव विकास में प्रतिद्वंद्वी परिवर्तन का सूचक है। तेजी से आर्थिक विकास और तकनीकी प्रगति हासिल करने में शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण कारक है। शिक्षा एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है और मानव अधिकार के रूप में इसका अपना अंतर्निहित मूल्य है। सभी मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुए हैं सम्मान तथा अधिकारों में सभी समान हैं। मानवाधिकार मानव सभ्यताओं के मूलभूत मूल्यों का प्रतीक हैं।राष्ट्र में शिक्षा के सार्वभौमिक विकास और मार्गदर्शन के लिए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक व्यापक रूपरेखा प्रशस्त करती है। इस पावन उद्देश्य की पूर्ति हेतु, अब तक तीन राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों का सूत्रपात किया गया है; जो यथावत हैं:-

- 1968 में, इन्द्रिरा गांधी सरकार द्वारा; राष्ट्र की पहली शिक्षा-नीति, 'राष्ट्रीय नीति-1968' को लागू किया गया।

- 1968 में, राजीव गाँधी सरकार द्वारा; राष्ट्र की दूसरी शिक्षा-नीति, 'राष्ट्रीय नीति-1986' को लागू किया गया एवं 1992 में, पी० वी० नरसिम्हा राव सरकार द्वारा इसमें यथोचित परिवर्तन किया गया।
- 2020 में, "भारत को एक वैश्विक ज्ञान महाशक्ति" बनाने के लक्ष्य के साथ राष्ट्र की तीसरी शिक्षा नीति, "राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020" को 'के० कस्तुरीरंजन" की अनुसंसा के आधार पर लागू किया गया।

उद्देश्य:

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में नीतिगत प्रावधान एवं संसुतियाँ:-

- शिक्षा प्रणाली में इ०सी०सी०एस० एवं प्री-स्कूलिंग जैसी पहलों को समाहित कर; इस नीति ने, कैम्ब्रिज और आईबी द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोणों का अनुसरण करने का प्रयास किया गया है।
- पुरानी शिक्षा पद्धति 10+2 को परिवर्तित करते हुए, '3-8' वर्ष (मूलभूत), '8-11' वर्ष (प्रारम्भिक), '11-14' वर्ष (मध्य) एवं '14-18' वर्ष (माध्यमिक) में वर्गीकृत किया है जिसे क्रमश मूलभूत, प्रारम्भिक, मध्य, एवं माध्यमिक शब्दावली से संबोधित करते हैं।
- वर्गीकृत किये गए, आयु-समूह को वैश्विक स्तर पर; बच्चों के प्रारम्भिक अधिगम के सन्दर्भ में; मान्यता दी गयी है।
- वैश्विक स्तर पर, बच्चों के अधिगम के लिए; बुनियादी 'आयु-समूह' बनाये गये हैं, जिन्हें बच्चों के प्रारंभिक विकास के लिए महत्वपूर्ण माना गया है।
- शिक्षक-शिक्षण व्यवहार, ट्रेनिंग आदि का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

शिक्षा की अवधारण सबसे पहले लार्ड मैकाले ने, सन 1835 में प्रस्तुत की। 1 शिक्षा प्रदान करना, लोकतान्त्रिक समाज के महत्वपूर्ण अवयवों में से एक है क्योंकि राष्ट्र के विकास में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति के ज्ञान, कौशल, अनुभव, अनुशासन के साथ नैतिकता का भी श्रजन करती है| गुरुकुल से लेकर शिक्षा के वर्त्तमान परिदृश्य में विहंगम परिवर्तन आए हैं तथापि अभी भी कुछ महत्वपूर्ण बदलावों की आवश्यकता है; बावजूद इसके विश्व की बेहतरीन 'शिक्षा-प्रणालीयों' में से, भारत की 'शिक्षा-प्रणाली' एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।[2] भारतीय 'शिक्षा-प्रणाली' के सैधांतिक प्रणाली में कोई कमी नही है वरन, इसके द्वारा आवश्यक कौशल नहीं प्रदान किया जा पा रहा है; इस कारण भारत में, युवा अच्छी शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद भी बेरोजगार रहते है।[3] भारत में अब उच्च शिक्षा प्राप्त करने की होड़, युवाओं में बढ़ी है; लेकिन अभी भी भारतीय शिक्षा प्रणाली की प्रमुख खामी प्रासंगिकता अनुरूप शिक्षा-शिक्षण की कमी है, यद्यपि भारत में 14 वर्ष की आयु तक मुफ्त शिक्षा प्रदान कराई जा रही है। [4 & 5] आज के चुनौतीपूर्ण युग में, "सही पद पर सही व्यक्ति की नियुक्ति" की बात की जा रही है; लेकिन इसके अनुरूप अभी शिक्षण प्रदान नहीं कराया जा रहा है, परिणामतः अधिकांश युवा अभी भी बेरोजगार हैं। इस चुनौती का सामना करने के लिए, छात्रों को अनुसंधान के क्षेत्र में प्रोत्साहित करना चाहिए

साथ ही छात्रों में 'अनुयायी-कौशल' पर फोकस करने के बजाय 'नेतृत्व-कौशल' को विकसित करने पर 'फोकस' करना चाहिए।

भारतीय-शिक्षा प्रणाली का वर्गीकरण

भारतीय शिक्षा प्रणाली को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।[(6)] जो निम्न है:-

- औपचारिक शिक्षा
- अनौपचारिक शिक्षा एवं,
- नॉन-फार्मल शिक्षा

अनौपचारिक शिक्षा को विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, विद्यालयों और प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा प्रदान कराया जाता है वहीँ अनौपचारिक-शिक्षा व्यक्ति अपने दैनिक जीवन से अनुभावों द्वारा प्राप्त करता है तथापि नॉन-फार्मल शिक्षा, शिक्षा ग्रहण करने का एक अन्य रूप है।

शिक्षा का इतिहास

भारतीय शिक्षा के इतिहास में 1937 एक महत्वपूर्ण वर्ष था। इस समकालीन समय में, महात्मा गाँधी की विचारधारा के अनुरूप; "वुड ऐबाट रिपोर्ट" की अनुशंसाओं के आधार पर, बुनियादी-शिक्षा का प्रारम्भ किया गया। महात्मा गाँधी द्वारा "साक्षरता" और "शिक्षा" में अंतर बताया गया, जहाँ "साक्षरता" से अभिप्राय; 'केवल सीखना, पढ़ना और लिखना है, वहीँ "शिक्षा" बच्चों में 'विकास' और 'प्रगति' की ओर अग्रसर करती है। प्राचीन वक़्त में बच्चे गुरु के घर जाते थे और उनसे शिक्षा प्रदान करने का आग्रह करते थे तथापि शास्त्रों का अध्ययन करते थे। भारतीय शिक्षा-प्रणाली को सामान्यत; प्राचीन वैदिक काल, मध्यकालीन बौध काल, इस्लामिक काल और आधुनिक शिक्षा प्रणाली में वर्गीकृत किया गया था। अतीत में भारत, आविष्कारों और नवप्रवर्तनों का स्थान रहा है। आर्यभट्ट ने, अंक 'शून्य' का आविष्कार किया था। 'बुद्धयान' नामक वैज्ञानिक ने, "पाई" के मान को बताया था। विश्व का पहला विश्वविद्यालय, 700 ईशा पूर्व में ही स्थापित कर दिया गया था; जहाँ '10 हजार' से अधिक छात्रों ने, दुनियां भर में '55' से अधिक विषयों में शिक्षा ग्रहण की। प्राचीन काल में 'सामुदायिक-केंद्र' और 'मंदिर', विद्याल की भूमिका का निर्वहन करते थे; जहाँ 'संस्कृत' और 'विज्ञान' में "शिक्षा-शिक्षण" होता था। इसके पश्च्यात, "गुरुकुल" शिक्षा-प्रणाली उदभवित हुई। अतीत में शिक्षा, 'ऋषि-मुनि' और 'विद्वान' द्वारा मौखिक रूप में दी जाती थी और कालान्तर में इसे पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया गया। मध्यकालीन 'बौद्ध-काल' में, विश्वविद्यालयी-शिक्षा का उदय हुआ एवं वर्त्तमान 'शिक्षा-प्रणाली', 'ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली' की परिणिती है। स्वतंत्रता प्राप्ति पश्च्यात, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 तत्पश्च्यात 1992 में, भारतीय शिक्षा प्रणाली की प्रगति के लिए कुछ लक्ष्यों का निर्धारण किया गया।

भारतीय शिक्षा प्रणाली का पाठयानुक्रम

विद्यालयी शिक्षा, भारतीय शिक्षा प्रणाली की संरचना की शुरुवाती चरण है; इस कारण विद्यालयी-शिक्षा को, प्राथमिक शिक्षा कहा जाता है। इस चरण के अंतर्गत, शिक्षा का आरंम्भ "वर्णमाला से लेकर शब्दों", "वर्तनी आदि के उच्चारण तक विभिन्न चीजों को जानना और सिखाना" जैसे अधिगम के साथ अपने जीवन का आरम्भ करता है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा की पूर्ति के पश्च्यात; बच्चा को बुनियादी-शिक्षा के लिए, उन्नयित कर दिया

जाता है। इसके पश्च्यात हाई-स्कूल, तत्पश्चयात इंटरमीडिएट की शिक्षा प्रदान की जाती है। इसके आगे छात्र डिप्लोमा या स्नातक या क्रमबद्ध चरण में दोनों स्तर की शिक्षा ग्रहण करता है। अब छात्र या तो जिवानोपार्जन हेतु रोजगार या व्यवसाय अपनातें हैं या आगे की परास्नातक की शिक्षा एवं इसी के आगे के क्रम में शोध-अध्ययन करता है। यह साभी छात्र की रूचि और परिस्थिति पर निर्भर करता है।

1950 से 1960 का दौर

- माध्यमिक शिक्षा आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य स्थापित किये।
- नैतिक मूल्यों पर केन्द्रित।

1980 का दौर

- जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की।
- शिक्षक शिक्षा को मजबूत किया।
- शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं के व्यापक एकीकरण पर जोर दिया।

21 वीं सदी

- सर्व शिक्षा अभियान की शुरुआत की गई।
- इसका उद्देश्य गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना, रचनात्मकता और रुचि को प्रोत्साहित करना है।
- पारंपरिक शिक्षा को डिजिटल भारतीय शिक्षा प्रणाली में बदलना।

भारतीय शिक्षा प्रणाली के कुछ अछूते पहलू

1. भारती शिक्षा प्रणाली में कुछ व्यवहारिक कमियां भी है यथा छात्र प्रथम श्रेणी में स्नातक एवं परास्नातक की शिक्षा को ग्रहण तो कर लेते है पर वे बुनियादी प्रश्नों का उत्तर देने में अक्षम रह जातें हैं। योग्यता के होते हुए भी जीवन के निर्वहन के लिए, धनोपार्जन हेतु किसी भी श्रोत को अपना नही पाते और यही अयोग्यता का प्रतीक है। इस कारण शिक्षार्थियों को गुणवत्तापूर्ण, प्रासंगिक शिक्षा उपलब्ध कराने के साथ ही शिक्षार्थियों में क्षमताओं का भी श्रजन करना होगा, जो जीवनोपार्जन हेतु आवश्यक हो।
2. शिक्षक, छात्रों के अधिगम में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं; इस कारण शिक्षकों को अच्छा वेतन उपलब्ध होना आवाह्यक है। वर्त्तमान में, इसी कारन अब शिक्षकों को अच्छा वेतन दिया जाता है। शिक्षक की मनोदशा और शिक्षा प्रदान करने की अभिरुचि भी महत्वपूर्ण है।
3. वर्त्तमान में, शिक्षकों द्वारा; शिक्षा का व्यवासायीकरण कर दिया गया है| सरकार ने इस पर अंकुश लगाने के लिए व्यापक नीतियों एवं कार्यों को संचालित किया है; बावजूद इसके, शिक्षा के व्यवसायीकरण में पुर्णतः अंकुश नही लग सका है। निजी संस्थानों और कोचिन्ग द्वारा; अभिभावकों और शिक्षार्थियों को आकर्षित करने के लिए विज्ञापनों, उच्च-इन्फ्रास्ट्रकचर जैसे लुभावने साधनों का उपयोग करते हैं औए उनके द्वारा प्रदान की जाने वाई शिक्षा में कोई गुणवत्ता नहीं होती|

4. छात्रों के लिए अपनायी गयी, 'मूल्यांकन-पद्धति' और 'अंक-आधारित' माप-पद्धति कि, "जो छात्र ज्यादा अंक प्राप्त करते हैं, वो ज्यादा बुद्धिमान और योग्य होते हैं- इस मापदंड में संतुलित परिवर्तन भी करना होगा जहाँ केवल 'अंक' के आधार पर "योग्य या अयोग्य" या "अवसर में अयोग्यता" पर मंथन करना चाहिए।
5. विश्व के समक्ष, जैसे-जैसे जटिल चुनौतियां आ रहीं हैं उसी के अनुरूप "पाठ्यक्रम" में भी परिवर्तन करना होगा। भारतीय शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम में पिचले 2 से 3 दशकों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है; यद्यपि हाल ही के कुछ वर्षों में कुछ आम-चूक परिवर्तन किया गया है बावजूद इसके अभी भी 'पाठ्यक्रम' में प्रासंगिक संशोधन की आवश्यकता है।
6. छात्रों में सीखने की अभिरुचि को भी बढ़ाना आवश्यक है। यदि 'अभिरुचि नही होगी तो छात्र न तो पढेंगे, ना ही उनका अधिगम होगा'।
7. छात्रों में 'रचनात्मक' सोच को भी विकसित करना होगा। ऐसा करने से, वो 'रटने' की जगह 'समझने' की आदत विकसित होगी।

समस्याएं

पिछले कुछ दशकों में शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन आया है। डिजिटल मीडिया, शिक्षा के क्षेत्र में काफी उपयोगी रहा है। आकड़ात्मक विश्लेषण के पता चलता है कि, शिक्षा में सकल नामांकन बढ़ रहा है।[8] नामांकन के बढ़ने के साथ-साथ इससे जुडी समस्याओं में भी वृद्धि हुई है। शैक्षणिक संस्थानों द्वारा समस्याओं का पता लगाने के लिए, प्रवेश लेने वाले छात्रों को; अपने पाठ्यक्रम के अनुरूप, वर्त्तमान समस्याओं और 'शिक्षा-प्रणाली' के सन्दर्भ में साक्षात्कार कर, समस्याओं को जानने का प्रयास किया। 'शिक्षा-प्रणाली' के उद्देश्य को जानने के लिए इसकी साहित्यिक समीक्षा भी की गयी, जिसके लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, दस्तावेजों, सरकारी-राजपत्रों, वेब-साईटों का अध्ययन किया है। इन अध्ययनों के आधार पर कुछ समस्याओं को सूचीबद्ध किया, जिनका सामना वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली द्वारा किया जा रहा है। ये मुद्दे निम्नवत्त हैं:-

ड्रॉपआउट

अभी भी ड्रॉपआउट वर्तमान समय की प्रमुख समस्या है। "ड्रॉपआउट" शब्द का अभिप्राय, "शिक्षा ग्रहण करने की प्रक्रिया में, शिक्षा को बीच में ही छोड़ देना" है। इसके कई कारण हो सकतें हैं यथा:- "आर्थिक-समस्या", "रूचि की कमी" इत्यादि। यद्यपि सरकार ने इस सन्दर्भ में काफी काम किये हैं फिर भी ये समस्या अभी विदमान है। नई शिक्षा-नीति ने ड्रॉपआउट के बाद मुख्य धरा में आने के लिए विशेष प्रावधान किये हैं।

उत्तीर्ण प्रतिशत में गिरावट

माध्यमिक-शिक्षा से लेकर इंटरमीडिएट और इंटरमीडिएट से लेकर व्यावसायिक-शिक्षा तक, उत्तीर्ण प्रतिशतता में कमी आ रही है। इसके भी कई कारण यथा:- 'रूचि की कमी', 'प्रभावी शिक्षण की कमी', 'उचित मूल्यांकन विधियों का अभाव', 'शिक्षक का शिक्षण व्यवहार' इत्यादि हैं।

राजनीतिक प्रभाव एवं संलिप्तता

शिक्षा के क्षेत्र को, राजनीतिक प्रभाव से प्रथक ही रहने देना चाहिए। अभी भी राज्यों की अपनी-अपनी शिक्षा नीतियां हैं और सेलेबस भी अलग-अलग है। यह भी एक प्रमुख समस्या है।

वेतन

शिक्षकों के वेतन से सम्बंधित प्रावधान भी अलग-अलग है। कुछ राज्यों जैसे उत्तर-प्रदेश में शिक्षको का वेतन बहुत अच्छा है लेकिन अन्य राज्यों में वेतन बहुत कम हैं। यह भी भारतीय शिक्षा प्रणाली को प्रभावित करती है। "क्या उचित पद पर उचित व्यक्ति" की नियुक्ति की गयी है या नही, इसकी भी समीक्षा करनी चाहिए।

पेशे का चयन

आज के वर्त्तमान समय में, पेशे का चयन मजबूरी वश किया जाता है रूचि वश चयन तो बहूत कम है। इस कारण भी शिक्षण-प्रक्रिया प्रभावित होती है रूचि ना हो तो कार्यो से संपादन पर प्रभाव पड़ता है।

सुविधाओं का अभाव

"शिक्षण संस्थानों" का 'आरामदायक' और 'स्वास्थ्य-वातावरण' युक्त होना चाहिए। सुविधाओं का अभाव, 'स्वास्थ्य-वातावरण' जैसे अवयव भी 'छात्रों के प्रदर्शन', 'शिक्षण की प्रभावशीलता, इत्यादि को प्रभावित करती है।

अनुपस्थिति

छात्रों की अनुपस्थिति भी शिक्षण को प्रभावित करती है। प्रायः यह देखा जाता है कि, छात्र सरकारी सुविधाओं का उपभोग करने के लिए, प्राथमिक विद्यालयों में नामांकन तो करवा लेते हैं लेखिन वो अनुपस्थित रहते हैं। अनुपस्थित रहने के अन्य कारण भी हो सकते हैं।

वित्तीय अक्षमता एवं पारिवारिक आय

वित्तीय अक्षमता और पारिवारिक आय भी, छात्रों की शिक्षा को प्रभावित करती है। छात्र, 'शिक्षा-ग्रहण' करने हेतु 'उत्सुक', 'जागरुक', 'जुनूनी' एवं 'उत्साहित' होते हुए भी; आर्थिक समस्याओं के कारण शिक्षित नहीं हो पाते। इस कारण भी भारतीय शिक्षा प्रणाली प्रभावित होती है।

नियम और जिम्मेदारियाँ

'राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों' के 'लक्ष्यों' को पूर्ण करने के लिए, केवल 'शिक्षक' और 'छात्र' ही नहीं जिम्मेदार हैं वरन राष्ट्र के प्रत्येक नागरिकों का भी कर्तव्य है कि, वो "लक्ष्यों" को पूर्ण करने में सहयोग करें। यह निम्नावात्त है:-

विद्यार्थी

शिक्षा व्यवस्था में, विद्यार्थियों की प्रमुख भूमिका होती है जिन्हें दो वर्गों में वर्गीकृत किया गया है| अपनी पहली भूमिका में शिक्षार्थी, यह सीखने में सक्षम हों कि 'शिक्षक' क्या पढ़ा रहे हैं एवं उनमें सीखने का जुनून और जोश होना चाहिए; वहीँ अपनी दूसरी भूमिका में, छात्रों ने जो सीखा है उसे लागू कर सकें|

शिक्षक

अध्ययन-अध्यापन, एवं शिक्षण एक जटिल, विहंगम और परिष्कृत पेशा है। एक शिक्षक की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका, छात्रों को सीखने के लिए निर्देश देना है। इसे पूरा करने के लिए शिक्षकों, को प्रभावी ढंग से तैयारी करनी चाहिए साथ ही छात्रों से 'फिडबैक' भी लेना चाहिए एवं शिक्षकों को सलाहकार और परामर्शदाता के रूप में भी कार्य करना चाहिए।

प्रबंध संस्थान

प्रबंध, एक अच्छी 'शैक्षिक-प्रणाली' के उद्देश्यों को प्राप्त कराने में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है साथ ही यह किसी संस्थान की 'प्रभावशीलता' सुनिश्चित करता है। 'शिक्षा-प्रबंधन', किसी संस्थान की विभिन्न गतिविधियों की योजना, आयोजन, निर्देशन, और नियंत्रण करने की प्रक्रिया है।

सरकारी निकाय

भारतीय शिक्षा प्रणाली से जुड़े कुछ प्रशासकीय निकाय:-

• एनसीईआरटी

• यूजीसी

• एआईसीटीई

चुनौतियाँ

भारतीय शिक्षा प्रणाली के समक्ष सबसे बड़ी समस्या सैद्धांतिक और व्यवहारिक, दोनों अवधारणाओं को सामान रूप से; प्राथमिक शिक्षा में लागू कर अनुप्रयोग उन्मुख बनाना है। इसके लिए संस्थानों को, सैद्धांतिक व्याख्या और प्रयोग के लिए; समान समय लागू आवंटित करना होगा। 'बुनियादी-शिक्षा', वर्तमान शिक्षा प्रणाली की व्यवहारिक दृष्टिकोण पर ध्यान केन्द्रित नहीं करती है; जबकि 'उच्च-शिक्षा', 'सैद्धांतिक-व्याख्या' और 'प्रयोग' के लिए सामान समय आवंटित करना होगा। वर्तमान में प्रदान कराई जाने वाली 'बुनियादी-शिक्षा', 'व्यावहारिक-शिक्षा' पर ध्यान केन्द्रित नही करती वहीँ दूसरी तरफ उच्च-शिक्षा, 'सैद्धांतिक-ज्ञान' के लिए 75% 'समय' और 'अंक' एवं व्यावहारिक ज्ञान के लिए, 25% 'समय' और 'अंक' आवंटित करती है। विद्यालयों में, छात्रों को; व्यावहारिक तरीकों से सिखाने पर, वे अवधाणाओं को जल्दी और आसानी से समझ और सीख सकेंगें। इसके अलावा, उच्च-शिक्षा संस्थान; 'सिद्धांत' और 'व्यवहार' दोनों को सामान प्राथमिकता देते हैं।

चुनौतियां

- वर्तमान पीढ़ी और प्रतिस्पर्धी समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, पाठ्यक्रम में विहंगम बदलाव लाना; अभी भी एक चुनौती है। सामान्यतः पाठयक्रम में, केवल विषय शामिल होते हैं एवं उनमें केवल मूल बातें ही होती हैं। इस कारण उन्हें, 'अद्यतन-तकनीक' में 'अपग्रेड' करना आसान नहीं है। इसलिए छात्रों को, दुनिया भर में चल रही अन्य 'अद्यतन-तकनीकों' के बारे में कोई जानकारी नहीं है। इस कारण, पाठ्यक्रम को 'संशोधित' और 'पुनः डिज़ाइन' करना आवश्यक है।
- विद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता एवं प्रासंगिकता को बनाये रखने के लिए, सम्बंधित अधिकारीयों द्वारा इसकी निगरानी की जानी चाहिए और यह भी सुनिश्चित करना होगा कि, शिक्षक अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें; छात्रों को जो भी सुविधाएं उपलब्ध करायी जा रहीं है वो, सुचारू रूप से उपलब्ध हो सकें। छात्रों का अधिगम सुचारू रूप से हो सके इसके साथ ही छात्रों का नामांकन-अनुपात और अच्छा हो सके। इसके लिए कुछ महत्पूर्ण पहलों एवं पहलुओं का ध्यान रखना होगा।
- कक्षा में, शिक्षकों को ज्यादा उदार, लचीला, और फ्रेंडली होना चाहिए। जिससे छात्र अपनी समस्याओं को शिक्षक से साझा कर सकें एवं शिक्षक को भी सामान रूप से रूचि लेकर, सीखाना चाहिए।

- छात्रों में कौशल और अन्य योग्यताओं का संचालन करने के लिए, विद्यालयों द्वारा कई तरह की अतिरिक्त गतिविधियों जैसे:- 'खेलकूद', 'अंतर-खेलकूद प्रतियोगिताओं', कुछ 'क्विज़-प्रतोयोगिताओं' जैसे अतिरिक्त 'करिकुलम' के तहत उनको और 'संवार्गिक-विकास' की ओर प्रखर करना होगा।
- शिक्षा की प्राचीन तरीका जहाँ, छात्र सिर्फ रटने पर ध्यान देते हैं; वहीँ छात्रों में चीजों को समझने पर ध्यान देना होगा और अभी से उनमें तार्किकता, समस्या समाधान, रचनात्मक-सोच, अनुभवों से सीखना जैसे गुणों का विकास काना होगा।
- शिक्षकों के "नज़रिया" एवं "कौशल" का भी ध्यान रखना होगा। शिक्षक समय से विद्यालय आए, सामान रूप से सभी छात्रो को शिक्षा दें, छात्रों के बीच भेद-भाव ना करें, साथ ही विद्यालयों में जो भी सामग्री जीतनी मात्र में विद्यालयों में आ रही हैं; वो छात्रों को मुहैया कराई जाएं। शिक्षकों को समय समय पर प्रशिक्षण दिया जाए, जिससे वो और निपुण, शिक्षा कौशल और उन्नत करने, उन्हें अपने काम के लिए प्रेरित एवं उत्साहित किये जाते रहना होगा।
- छात्रों को जीवन के नैतिक मूल्यों के बारे में भी गहराई से सिखाया जाना चाहिए। यदि भारतीय शिक्षा प्रणाली इन पर गंभीरता से विचार करे तो हम दुनिया की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा प्रणालियों में से एक हो सकते हैं। शिक्षा केवल विषयों को सीखना और अच्छे अंक प्राप्त करना नहीं है, यह विभिन्न कौशल सीखने के बारे में है और खुद को साबित करने के लिए जब भी आवश्यक हो उन्हें उजागर किया जाता है।

निष्कर्ष

इस शोध-पत्र के द्वारा भारत में, वर्तमान 'शिक्षा-प्रणाली' से जुड़ी कई 'समस्याओं' और 'मुद्दों' को सामने लाने का प्रयत्न किया गया है। जैसे-जैसे भारत में, 'शैक्षणिक-संस्थानों' की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है; वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से जुड़ी कई 'समस्याएं' और 'चुनौतियाँ' भी सामने आ रही हैं। 'शिक्षा-प्रणाली' का प्रमुख पिछड़ा पहलू, गुणवत्तापूर्ण और आज के अनुरूप प्रासंगिक-शिक्षा प्रदान ना करा पाना है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने से छात्रों को अच्छी नौकरी मिलेगी, वे विभिन्न पहलुओं से अवगत होंगे, उनके व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए नैतिकता और शालीनता का विकास होगा। इसके अलावा, बेहतरीन 'शिक्षा-प्रणाली' के लिए शिक्षकों, प्रबंधन और 'समस्त-व्यक्तियों' का योगदान भी महत्वपूर्ण है। यह 'शोध-पत्र', 'शिक्षा-प्रणाली' से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति की 'भूमिकाओं' और 'जिम्मेदारियों' को भी संबोधित करता है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' की 'संकल्पनाओं', 'मुद्दों' एवं 'समस्याओं' को कम करने और 'चुनौतियों' पर ध्यान केंद्रित करने तथा नीतियों की संकल्पनाओं को, सही समय पर; सही रूप में लागु करने से, 'भारतीय शिक्षा प्रणाली' काफी प्रभावी हो जाएगी और दुनिया में शीर्ष स्थान हासिल करेगी। इस तरह भारत की 'ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था' एवं 'विश्व-गुरु' बनाने का सपना साकार हो पाएगा।

संदर्भ सूची

1. https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/toi-editpage/indias-failing-education-system-it-is-ourchildrens-future-not-our-ancestors-pride-that-deservesour-outrage-first/
2. https://surejob.in/10-fundamental-problems-witheducation-system-in-india.html

3. Claudio Zaki Dib/ Formal, Non-Formal And Informal Education: Concepts/Applicability/ "Interamerican Conference on Physics Education", Oaxtepec, Mexico, 1987
4. Prof. Rameshwari Pandya, Dr. Avani Maniar /Non Formal Education: An Indian Context/ International E–Publication, 2014. www.isca.me.
5. Venkateshwarlu N, Raju NVS, Pradeep Kumar M. Distance Education: How Much Distance? The History, Opportunities, Issues and Challenges/ Global Journal of Enterprise Information System/ Vol 8 | Issue 3 | July-September 2016/ Print ISSN: 0975-153X | Online ISSN: 0975-1432
6. https://economictimes.indiatimes.com/industry/services/education/indias-higher-education-student-teacherratio-lower-than-brazilchina/articleshow/70212827.cms?from=mdr
7. Younis Ahmad Sheikh/ Higher Education in India: Challenges and Opportunities/ Journal of Education and Practice/ ISSN 2222-1735 (Paper) ISSN 2222-288X (Online)/ Vol.8, No.1, 2017, www.iiste.org
8. Prasad, J (2007). Principles and Practices of Teacher Education. Ansari Road, Daryaganj, New Delhi.Kanishka Publishers, Distributors. (2012). Teacher Education: Issues and their Remedies.
9. International Journal of Educational Planning & Administration. Retrieved from https://www.ripublication.com/ijepa/ijepav2n2_04.pdf
10. National Education Policy 2020. https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/nep/NEP_Final_English.pdf referred on 10/08/2020.
11. Rajput, J.S., & Walia, k. (2002). Teacher Education in India. New Delhi. Sterling Publishers Private limited.
12. Harma, S.P. (2016). Teacher Education, Principles, theories and Practices. Ansari Road, Daryaganj, New Delhi.Kanishka Publishers, Distributors.
13. Samsujjaman, (2017).Development of Teacher Education in 21st Century at Primary and Secondary Level in India. International Journal of Scientific Research and Training. Retrieved from http://ijsae.in/index.php/ijsae/article/view/180
14. https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/Draft_NEP_2019_EN_Revised.pdf
15. https://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/npe.pdf

16. https://ruralindiaonline.org/library/resource/national-education-policy-2020
17. https://blog.univariety.com/new-education-policy-2020-impact-on-your-child-curriculum/
18. https://only30sec.com/new-education-policy-2020-vs-npe-1986/
19. https://www.indiatoday.in/education-today/featurephilia/story/how-can-schools-implement-nationaleducation-policy-2020-1718932-2020-09-05
20. https://www.indiatoday.in/education-today/featurephilia/story/nep-2020-new-education-policy-is-apositive-step-towards-nation-building-and-growth-here-s-how-1716091-2020-08-28
21. Indira Priyadarshini Gandhi. Former Prime Minister of India.
22. Sharma, R. S. (2007). India's Ancient Past. Oxford India Paperbacks Oxford: England.
23. Chandra, B. (2001). History of Modern India. Oriental Black Swan Publishers: Hyderabad.
24. Ahir, R. (2013). A Brief History of Modern India. Spectrum Books (P) Ltd.: New Delhi. 19th Edition.
25. Sharma, Dr. V. K. (2016). Contemporary India and Education. Published by Laxmi Book Depot: Bhiwani, HR. New Edition.
26. Mangal, S. K. (2017). Advanced Educational Psychology. PHI Learning (P) Ltd.: Delhi. 2nd Edition.
27. Draft National Education Policy. (2019). MoHRD: New Delhi.
28. MHRD. (2020). National education policy. Govt. of India.
29. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
30. Norman, J. W. (1922). A comparison of tendencies in secondary education in England and the United States. Columbia University. books.google.com/books?id=qrmgAAAAMAAJ
31. Valmiki, O. (2007). Joothan: A Dalit's life. Samya.
32. Pawde, Kumud. (1992). The story of mySanskrit.In Arjun Dangle (ed.), Poisoned bread:
33. Translations from modern Marathi Dalit literature (pp. 97-107).Orien Longman,
34. Bama. (2012) Karukku. Oxford University Press.

35. Singh, B. & Tripathy, S. R. (2018). Education and Human Rights of Dalits. Creative Forum, 31(2), 7-17.
36. Aggarwal, J.C. (1993) Landmarks in the History of Modern Indian Education. Revised Edition, NewDelhi Vikas Publishing House Pvt. Ltd.
37. Dainik Jagran 30 July 2020; Let us know why a new national education policy was needed to change he education system of the country.
38. Draft National Education Policy 2019. Committee for Draft National Education Policy, Ministry of Human Resource Development, Government of India.
39. Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Human Resource Development. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
40. Hindustan live 30 July 2020; New education policy, school education board exam, major changes in graduation degree, learn special things,
41. Hindustan Times 2020.08.08;'NEP will play role in reducing gap between research and education in India'-PM Modi.
42. Kumar, K. (2005). Quality of Education at the Beginning of the 21st Century: Lessons from India. Indian Educational Review, 40(1), 3-28.

अध्याय-16

भारतीय राजनीति में राजनीतिक नेतृत्व के बदलते आयामों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

निभा राठी
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
महिला विश्वविद्यालय, डिग्री
कॉलेज हरिद्वार

मनस्वी सेमवाल
सहायक आचार्य, राजनीति
विज्ञान विभाग, ग्राफिक एरा
डीम्ड विश्वविद्यालय,
देहरादून

भारत वैश्विक स्तर पर एक विकासशील राष्ट्र है, sजिसने विश्व के सम्मुख अपनी पहचान शान्ति, अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करने वाले एक ऐसे राष्ट्र के रूप में विकसित की है जो निरन्तर विकास की ओर अग्रसर है। विकास की ओर अग्रसारित भारत को एक राष्ट्र के रूप में निर्मित करने में इसके नेतृत्व की विशिष्ट भूमिका रही है। भारतीय राजनीतिक नेतृत्व ने केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं वरन वैश्विक स्तर पर भी अपनी एक पहचान विकसित की है। महात्मा गाँधी ने अपने नेतृत्व में सत्यागृह, अहिंसा जैसे मानक प्रयुक्त कर सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसे नेता के रूप में अपनी पहचान स्थापित की, जिसने ब्रिटिश सरकार को अपने समक्ष झुका दिया। वैश्विक स्तर पर आज भी उनकी नेतृत्व शैली अनुसरणीय मानी जाती है। भारत के अन्य नेतृत्वकर्त्ताओं में जवाहरलाल नेहरू, सरदार बल्लभ भाई पटेल, सुभाषचन्द्र बोस जैसे अनेक नेता सम्मिलित है। समय परिवर्तित होने के साथ-साथ भारत में नेतृत्व के आयाम भी परिवर्तित होते रहे है। लाल बहादुर शास्त्री, इंदिरा गांधी, जयप्रकाश नारायण, मोरारजी देसाई, राजीव गाँधी, अटल बिहारी वाजपेयी जैसे नेतृत्वकर्ताओं के श्रेष्ठ व सशक्त नेतृत्वक्षमता के कारण ही धीरे-धीरे भारत विश्व के विकासवान देशों की श्रेणी में अपना स्थान बना रहा है।[1]

जब भी भारत में नेतृत्व पर चर्चा होती हैं तो नेतृत्व के सभी प्रारूपों पर वार्ता करना अनिवार्य होता है। उदाहरण स्वरुप सामाजिक नेतृत्व, राजनीतिक नेतृत्व व समय के अनुसार परिवर्तित होते नेतृत्व। भारतीय राजनीति में नेतृत्व के बदलते आयामों के अध्ययन हेतु उपरोक्त सभी नेतृत्व प्रतिमानों पर विचार करना आवश्यक है ताकि भारत के विकास में नेतृत्व की भूमिका तय की जा सके।

राजनीतिक नेतृत्व का अर्थ, स्वरूप एंव दृष्टिकोण

बहुत से विचारक राजनीतिक नेतृत्व के सम्बन्ध में एक सामान्य व शुद्ध परिभाषा निर्मित नहीं कर सकते क्योकि इतनी अधिक मनोवृतियों व झुकावों को एक साथ ला पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। फिर भी, नेतृत्व के सम्बन्ध में विभिन्न विचारकों के मध्य कुछ समानतायें पाई जाती है। इन्हीं में एक विद्वान है Cyert, जिन्होंने राजनीतिक नेतृत्व के सन्दर्भ में एक पृथक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है Cyert का कहना है कि एक राजनीतिक नेता संगठन की दिशा को निर्देशित करता है एक नेता उन समस्त राजनीतिक नैतिक मूल्यों के लिए जिम्मेदार होता है जिन्हें वह संगठन में लागू करना चाहता है। साथ ही एक राजनीतिक नेता सही निर्णय लेता है अपने उद्देश्य तक पहुँचने

के लिए। Cyert ने राजनीतिक नेतृत्व के सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है वह Paschen व Dishmaier द्वारा राजनीतिक नेतृत्व की बतायी गई तीन आवश्यक विशेषताओं के अभाव में पूर्ण नहीं हो सकती। प्रथम नेतृत्व एक सामाजिक परिघटना है नेता द्वारा लोगों को एक ओर निर्देशित करने के बाद, जनमानस अनुयायी बनकर नेता के दर्शन का एक भाग बन जाते हैं। द्वितीय नेतृत्व को एक उद्देश्य की आवश्यकता होती है। तृतीय नेतृत्व अपनी स्थिति के अनुसार अपनी शक्ति को पहचानता है, क्योकि शक्ति ही एकमात्र ऐसा साधन है जिससे नेता अपने अनुयायियों से अपनी आज्ञा पालन करवा सकता है Benis व Nanu ने नेतृत्व को अपनी भूमिका संगठन के भविष्य के लिए नीति निर्माता के रूप में स्थापित करने पर जोर दिया है Masciulli, Malchanorv व Knight ने राजनीतिक नेतृत्व के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि एक राजनीतिक नेता का सबसे कठिन कार्य यह होता है कि वह अनुगामियों की समझ के अनुसार अपने निर्णय ले और उन्हें उनकी रूचि के अनुसार रूपांतरित करे।[4] इन तीनों ने नेतृत्व के दो प्रमुख प्रकार बताये है। (1) समझौतावादी नेतृत्व (2) नव परिवर्तनकारी नेतृत्व।[5]

राजनैतिक नेतृत्व प्रजातान्त्रिक गतिविधियों एवं प्रयोगों का आधार स्तम्भ है। सामाजिक तनावों एवं परस्पर विरोधी विचारों, हितों व समूहों के बीच संघर्ष को कम करना ही प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का कर्तव्य है जो राजनीतिक नेतृत्व द्वारा ही सम्पन्न होता है।[6]

राजनीतिक नेतृत्व को जननीति निर्माण के सम्बन्ध में नियन्त्रण रखने की शक्ति के रूप में समझा जा सकता है। नेतृत्व के सन्दर्भ में हेनरी ट्रूमैन ने कहा है, "कि एक नेता वह व्यक्ति है जो दूसरे व्यक्ति से वह कार्य कराने की क्षमता रखता है जिसे वह व्यक्ति न तो करना चाहता है और न ही उसे पंसद करता है।

राजनीतिक नेतृत्व के सन्दर्भ में महात्मा गाँधी का कहना है कि अच्छे व्यक्तित्व को आदर्श बनाकर नेतृत्व द्वारा बहुत से अच्छे नेताओं को तैयार किया जा सकता है।

उपरोक्त विचारों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक नेतृत्व के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वत -जन के मत अत्यन्त विषमता लिए हुए है, अगर राजनीतिक नेतृत्व के सम्बन्ध में एडोल्फ हिटलर व वुडरो विल्सन के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाये तो यह निष्कर्ष निकलता है कि एक तरफ जहाँ हिटलर ऐसे नेतृत्व को स्वीकार करता है जिसमे शक्ति ऐसे शासक के पास होनी चाहिए जो समस्त सत्ता का अधिकारी होने के साथ-साथ निष्ठुर व निर्दयी भी हो। वहीं दूसरी तरफ विल्सन नेतृत्व को ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखते हैं जो कि नेता से प्रारम्भ न होकर उन अनुयायियों से प्रारम्भ होती है जिनका वह नेतृत्व करता है।[7]

भारत में राजनीतिक नेतृत्व के बदलते आयाम

भारत विश्व की सबसे बड़ी लोकतान्त्रिक व्यवस्था है. भारतीय सभ्यता विश्व के प्राचीन सभ्यताओं में से एक है, यहाँ ऐसे महान नेता हुए है जिनकी नेतृत्व क्षमता को विश्व पटल पर सराहा गया है।

चित्र– 1

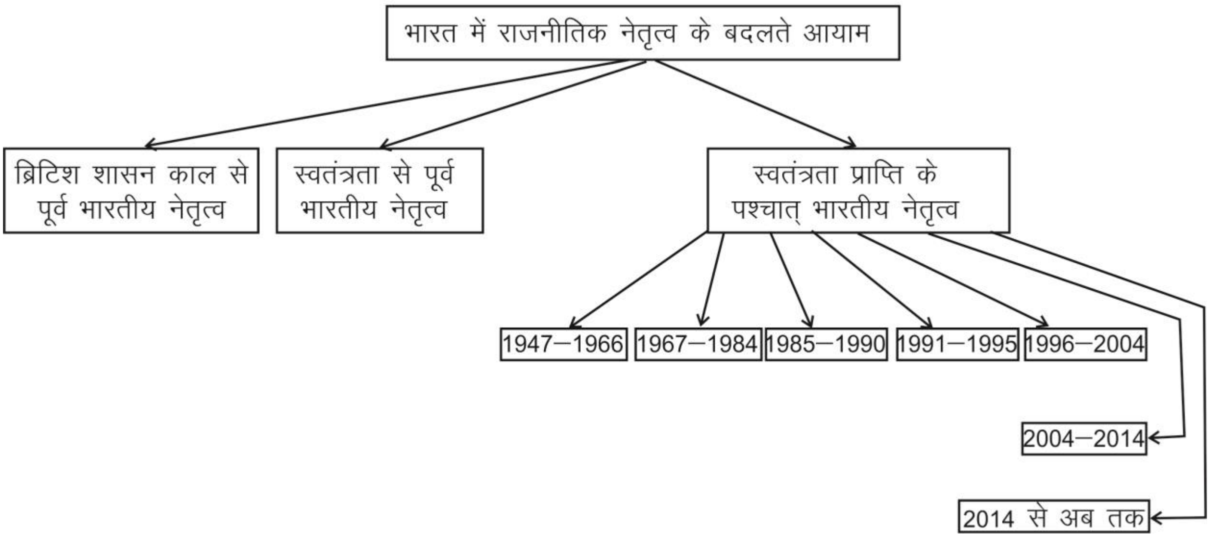

उपरोक्त चित्र में भारतीय राजनीतिक नेतृत्व के बदलते आयामों को तीन भागों में अध्ययन हेतु विभक्त किया गया है ये तीन भाग है 1. ब्रिटिश शासन काल से पूर्व भारतीय नेतृत्व 2- स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय नेतृत्व 3- स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय नेतृत्व।

इन तीन भागों का विस्तारपूर्वक वर्णन अग्रलिखित है

1- **ब्रिटिश शासनकाल से पूर्व भारतीय नेतृत्व -** लगभग 325 ई०पू० चन्द्रगुप्त भारत का प्रथम सम्राट बना व उसने मौर्य वंश की नींव डाली। 273 ई०पू० चन्द्रगुप्त का पोता अशोक भारत का सम्राट बना। निरन्तर वैमनस्य व आक्रमणों के एक युग के बाद गुप्त परिवार ने उत्तरी भारत में चौथी शताब्दी में गुप्त साम्राज्य की स्थापना की। लगभग 16 वीं शताब्दी में भारत पर बाबर ने आक्रमण किया तथा भारत पर अपना साम्रज्य स्थापित कर लिया। उसके बाद उसका बेटा हुमायूँ तत्पश्चात उसका पौत्र अकबर शासक बना। कुशल व ईमानदार नेतृत्व के लिए प्रसिद्ध अकबर के पश्चात उसके पुत्र व पौत्रों ने भारत पर शासन किया। मुगलों का अन्तिम शासक बहादुरशाह जफर था। उसके बाद भारत में ब्रिटेन की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने शासन किया जिसके विरुद्ध 1857 की क्रान्ति हुई तत्पश्चात् भारत में पूरी तरह से ब्रिटिश शासन स्थापित हुआ।[8]

2- **स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय नेतृत्व- (a) पुनर्जागरण काल -** जब विश्व में पुनर्जागरण काल का प्रकाश - फैल रहा था तो परतन्त्र भारत में भी उसकी कुछ किरणें पहुँची। भारत पुनर्जागरण के माध्यम से स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था। इसमें प्रमुख भूमिका आधुनिक भारत के जनक व पुनर्जागरण के पिता राजाराम मोहन राय द्वारा निभाई गयी। इसके अतिरिक्त ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द ऐसे नेता थे जिन्होंने बुद्धि के प्रयोग पर बल दिया। भारतीय पुनर्जागरण की विशेषता भी यही थी कि इसमें भारत के नेतृत्व कर्ता राजनीतिक पृष्ठभूमि के न होकर सामाजिक व साहित्यिक पृष्ठ भूमि से सम्बंधित व्यक्ति थे।

(b) स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय नेतृत्व – अंग्रेजों से स्वतंत्र होने में भारतीयों ने लम्बा संघर्ष किया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नेतृत्वकर्ता संगठन के तौर पर सर्वप्रथम कांग्रेस का नाम लिया जाता है इसमे

आग्रहीन व उदारवादी दो प्रकार नेतृत्व थे। उदारवादी नेतृत्व में व्योमेशचन्द्र बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, दीनशावाचा, फिरोजशाह मेहता, आनन्दमोहन बोस, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नाम सम्मिलित है जिन्होंने भारतीयों को स्वतंत्रता हेतु सुधार के मार्ग पर चलने को कहा।[9] दादाभाई नौरोजी को राष्ट्रीय आन्दोलन का पितामह कहा जाता है। कांग्रेस के उग्रवादी नेतृत्व में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राम, बिपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष को सम्मिलित किया जाता है इनकी नेतृत्व शैली में अंग्रेजी शासन का विरोध, असहयोग, राष्ट्रवाद सम्मिलित था।[10] उग्रवादी नेतृत्व से प्रेरित होकर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में क्रान्तिकारी नेतृत्व का उदय हुआ। इन क्रान्तिकारियों में भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राम प्रसाद बिस्मिल, वीर सावरकर, खुदीराम बोस, बारीन्द्र कुमार घोष, मदन लाल धींगरा, लाला हरदयाल, देशबन्धु चितरंजन दास, रास बिहारी बोस इत्यादि का नाम सम्मिलित है। इनकी नेतृत्व शैली क्रान्तिकारी, हिंसक, साहस व कर्मठतायुक्त थी। महात्मा गाँधी भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले नेता थे, जिन्होंने अहिंसा, सत्य को नेतृत्व का आधार बनाया। महात्मा गाँधी ने सम्पूर्ण विश्व को आदर्शवादी, सुधारवादी, अहिंसावादी नेतृत्व से परिचित कराया। गाँधी के अनुयायियों में मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, बल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद आदि स्वतन्त्रता संग्राम में भागीदारी करने वाले प्रमुख व्यक्तित्व है। सुभाष चन्द्र बोस की नेतृत्व शैली सैन्य व कूटनीतिक थी।

3- स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय नेतृत्व

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। यह स्वतन्त्रता नेतृत्व की उत्कृष्ट शैलियों तथा कडे संघर्ष के पश्चात् प्राप्त की गयी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय राजनीतिक नेतृत्व को कालक्रमानुसार विभक्त किया जा सकता है।

(a) **1957 – 1966** – स्वतन्त्र भारत के प्रथम आम चुनाव 1952 में सम्पन्न हुए। 1952 के चुनाव में कांग्रेस पार्टी ने विजय प्राप्त की व पं० जवाहरलाल नेहरू प्रथम प्रधानमंत्री बने। नीरद सी० चौधरी लिखते हैं, नेहरू कांग्रेस के ही नेता नही है अपितु हिन्दुस्तान की जनता के नेता है। एक तरफ देश के भीतर नेहरू सार्वभौम जनता व मध्यवर्गीय शासक वर्ग के बीच के सेतु है तो दूसरी ओर वे भारत व सम्पूर्ण विश्व के मध्य भी पुल का काम कर रहे हैं।[11] प्रधानमंत्री के तौर पर भी उन्होंने विदेशमंत्री की भूमिका का निर्वहन बेहतर तरीके से किया।[12] नेहरू के अतिरिक्त उस समय के महत्वपूर्ण नेताओं में सरदार बल्लभ भाई पटेल थे जिन्होंने राष्ट्रीय एकीकरण के माध्यम से रियासतों को मिलाकर भारत को एक राष्ट्र का रूप दिया।[13] इसी समय के महत्वपूर्ण नेताओं में संविधान निर्माता डा० भीमराव अम्बेडकर को सम्मिलित किया जा सकता है जिन्होंने अपने नेतृत्व के माध्यम से सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक लोकतंत्र को समान स्थान दिया।[14] इन सबके अतिरिक्त कृषक मजदूर पार्टी के नेता जे.बी.कृपलानी, जयप्रकाश नारायण, जनसंघ के श्यामा प्रसाद मुखर्जी को सम्मिलित किया जा सकता है। नेहरू के पश्चात् कांग्रेस पार्टी के श्री लाल बहादुर शास्त्री भारतीय प्रधानमंत्री बने, जिन्होंने 1965 के भारत-पाक युद्ध में 'जय जवान जय किसान' का नारा देते हुए सेना व किसान को एक साथ जोड़ते हुए सीमा व खाद्यान समस्या के समाधान का बेहतर परिचय दिया।

(b) **1967-1984 -** लाल बहादुर शास्त्री की 1966 में आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् नेहरू की पुत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने भारतीय नेतृत्व को संभाला। 1971 में भारत-पाक युद्ध में पाकिस्तान को पराजित कराने के साथ-साथ बांग्लादेश को पृथ्क् राष्ट्र के रूप निर्माण कराकर उत्कृष्ट कूटनीतिक नेतृत्व का परिचय दिया। बी.आर. कृष्णा अय्यर ने उनकी इस उपलब्धि को परिपक्व नेतृत्व की संज्ञा दी। 26 जून 1975 को उनके द्वारा घोषित आपातकाल ने उन्हें तानाशाही नेतृत्व में सम्मिलित कर दिया। इन्दिरा गाँधी को उनके द्वारा लिए गए आपातकाल के निर्णय के कारण 1977 के लोकसभा चुनाव में हार का सामना पड़ा करना पड़ा। इनके बाद मोरारजी देसाई भारत के प्रधानमन्त्री बने। मोरारजी देसाई पुराने कांग्रेसी नेता थे और उनका प्रशासनिक अनुभव अत्यन्त विशिष्ट था। किन्तु गठबन्धन की सरकार शीघ्र ही गिर गई व मोरारजी देसाई के बाद किसान नेता चौधरी चरण सिंह भारत के नये प्रधानमन्त्री बने वो केवल छः माह तक भारत के प्रधानमन्त्री बने। मध्यावधि चुनाव में पुनः कांग्रेस की वापसी हुई व इंदिरा पुनः भारत की प्रधानमन्त्री बनी। अपने दूसरे कार्यकाल में श्रीमती गाँधी ने स्वर्ण मन्दिर को आंतकवादियों से मुक्त कराया, इंदिरा गाँधी में नेतृत्व के गुण थे साथ ही संकटकाल में फैसला लेने की अद्भुत क्षमता भी। 30 अक्टूबर 1984 को उनकी हत्या कर दी गई।

(c) **1985-1990-** इंदिरा गाँधी के पश्चात राजीव गाँधी को कांग्रेस संगठन और जनता दोनों ने भारत का नया नेता चुना। राजीव गाँधी को कामकाज के प्रति गंभीर व ईमानदार माना जाता था।[15] राजीव गाँधी की तुलना जॉन एफ कैनड़ी से की जाती है। उन्होंने असम, मेघालय, मिजोरम व् पंजाब समस्या को अपने बेहतरीन नेतृत्व क्षमता से सुलझाया। 1989 के चुनाव में कांग्रेस पार्टी हार गई व संयुक्त गठबंधन की सरकार बनी।

(d) **1991-1995 -** 1991 के चुनाव में पुनः कांग्रेस की सरकार बनी, जिसमे पहली बार गाँधी परिवार से बाहर के पी० वी० नरसिम्हाराव को प्रधानमन्त्री बनाया गया, जिन्होंने अपने नेतृत्व में अन्य पिछड़े वर्ग के आरक्षण को मंजूरी दी, लुक ईस्ट पॉलिसी के माध्यम से नये राष्ट्रों से भारत के सम्बन्ध बनाये व सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक उदारीकरण के माध्यम से भारत को अर्थिक संकट से निकाला। इसी कारण इन्हें आर्थिक सुधारों के सबसे बडे नेता के रूप में स्मरण किया जाता है।

(e) **1996-2004 -** इन वर्षों में अटल बिहारी वाजपेगी, एच०डी० देवगौड़ा, व इन्द्र कुमार गुजराल भारत के प्रधानमंत्री पद पर रहे। इंद्र कुमार गुजराल ने अपने नेतृत्व के माध्यम से पडोसी देशों के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्ध बनाने हेतु गुजराल सिद्धान्त विकसित किया। अटल बिहारी वाजपेयी उत्कृष्ट नेतृत्वशैली युक्त प्रधानमंत्री रहे। उन्होने अपनी इसी उत्कृष्ट नेतृत्व क्षमता के माध्यम से भारत में परमाणु परीक्षण करवाये। भारत व पाकिस्तान के बीच कारोबार बढ़ाने और वीजा की प्रक्रिया को उदार बनाने के लिए अनेक समझोते वाजपेयी की उत्कृष्ट नेतृत्व क्षमता के उदाहरण है। 1999 में कारगिल हमले में पाकिस्तान के साथ युद्ध में उनके उत्कृष्ट नेतृत्व से पूर्ण निर्णय के कारण ही भारत ने विजय प्राप्त की। अटल एक ऐसे नेता थे जिनकी स्वीकार्यता विपक्ष में भी नेहरू के समकक्ष ही कही जा सकती है।[16]

(f) **2004-2014 -** 2004 के लोकसभा चुनाव में संप्रग ने विजय प्राप्त की। जिसमें प्रधानमंत्री पद डा० मनमोहन सिंह को दिया गया। इन्होंने अपने नेतृत्व काल में सूचना का अधिकार, शिक्षा का अधिकार,

काम का अधिकार जैसे लोककल्याण कानून बनाये। मनमोहन सिंह की मुश्किल यह भी कि वे एक सामतावादी दल के तथाकथित लोकतान्त्रिक नेता थे। तथाकथित इसीलिए कि वे सरकार के प्रमुख बने नहीं थे बल्कि संयोगवश बना दिए गए थे।[17] फिर भी मनमोहन सिंह ईमानदार व कुशल वित्त विशेषज्ञ नेता के तौर पर स्थापित रहे।

(g) **2014-से अबतक -** 2014 में भारतीय राजनीति में दो नये राजनीतिक नेताओं का अविर्भाव राष्ट्रीय राजनीति में हुआ। राहुल गाँधी जो गांधी परिवार की नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे व दूसरे गुजरात के मुख्यमंत्री, भाजपा के पीएम पद के दावेदार श्री नरेन्द्र मोदी। श्री नरेन्द्र मोदी ने अपने नेतृत्व को विकास शब्द से जोड़ा और नारा दिया, 'सबका साथ, सबका विकास'। नरेन्द्र मोदी ने जनसंघ की संस्कृति को बदल दिया। विकेन्द्रीकरण का नारा देने वाली भाजपा को पूरा राष्ट्रीय नेतृत्व केन्द्रीकरण की ओर बदल दिया। भाजपा में मोदी युग का प्रारम्भ पार्टी के नेतृत्व में पीढ़ी का परिवर्तन नहीं है। यह नेतृत्व के स्तर पर बदलते सामाजिक समीकरण की दस्तक है।[18] आज अगर भाजपा के बारे में विचार करे तो मोदी का चेहरा सामने आ जाता है मोदी ने स्वयं को पार्टी से बड़ा कर लिया है। आज के समय में अगर देखे तो मोदी बी.जे.पी. के पर्याय बन गए है। मोदी के बिना भाजपा का होना असम्भव सा प्रतीत होता है। अगर राहुल गाँधी की नेतृत्न शैली पर विचार किया तो उन्होंने स्वयं को गरीबों व किसानों से सम्बद्ध कर उनका नेता बनने का प्रयास किया है, जिसमें उन्हें अभी तक सफलता प्राप्त नहीं हो पाई है। उनकी सबसे बड़ी समस्या है कि वे नेतृत्व तो करना चाहते हैं पर जिम्मेदारियों का निर्वहन करने से बचते है, जो उनकी नेतृत्व क्षमता का नकारात्मक पहलू है शायद इसी कारण वे मोदी के समकक्ष नहीं बन पाये है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत की विकास यात्रा में उनका नेतृत्व करने वाले नेताओं की बड़ी भूमिका रही है। नेहरू को अगर भारत के विकास की नींव रखने वाले नेतृत्वकर्ता के रूप में वर्णित किया जाये तो इसे अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता। भारत ने अपने पड़ोसी देश चीन व पाकिस्तान से अनेक आक्रमणों का सामना किया है। चीन के साथ युद्ध को छोड़कर भारत ने पाकिस्तान को हमेशा युद्ध में पराजित किया है, इसका अधिकांश श्रेय भारत के नेतृत्व को जाता है, जिसने सही समय पर सही निर्णय लेकर राष्ट्र को विजित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। भारत ने परमाणु बम बनाया, नई आर्थिक नीति को अपनाया, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान विकसित की। विदेश नीति के माध्यम से अपने सम्बन्धों को सुदृढ़ किया, आर्थिक स्तर पर विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बना। इसका पूर्ण श्रेय भारत के नेतृत्व को दिया जाता है, जिसने अपनी उत्कृष्ट नेतृत्व क्षमता के माध्यम से भारत को श्रेष्ठ राष्ट्र बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

सन्दर्भ सूचि

1- राठी, निभा, 2017, उत्तराखंड में राजनितिक नेतृत्व के बदलते आयाम, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ, हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय (केंद्रीय विश्वविद्यालय), श्रीनगर, पृष्ठ 125

2- Cyert, 2010, Defining Leadership explicating the Process Congagre Learning, Baston, P 503

3- Paschen M. & Dinsmaier E., 2013, The Psychology of Human leadership : How to develop charisma and authority, Springer science & business Media, Berlin P – 06

4- Bennis W.,Nanus B., 2012, Leaders: Strategies for taking charges, Harper Collinis P -83-100

5- Langlais, Stephane 2014, The meaning of Leadership Political System, Unpublish Research Thesis, Linnaeus University, Sweden, P 58-60

6- राठी, निभा, उपरोक्त, पृष्ठ 99

7- उपरोक्त, पृष्ठ 101

8- उपरोक्त, पृष्ठ 137

9- चतुर्वेदी, दिनेश चन्द्र, 1998, भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, मिनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ 73

10- उपरोक्त, पृष्ठ 90-93

11- Chaudhary, Nird Co., 1953, After Nehru Who? Electreted Weekly of India, 10 May

12- Nehru, Jawaharlal, 1938, Peace and Empire, & Peace and India, The India League , London, P – 42

13- Lal,Aurther, 1981, The Emergence of Modern India, Newyork University Press New York, P 128

14- गुहा, रामचंद्र, 2012, भारत गाँधी के बाद, मेगुएन बुक्स, गुडगाँव, पृष्ठ 1521

15- Gill, S.S., 1996, The Dynasty of a Political Biography of the Premium Ruling Family of Modern India, Harparcallien Pub. India, P 394-395

16- इंडिया टुडे, 1 मार्च 1999,आवरण कथा, पृष्ठ 18-22

17- प्रकाश, ए , 2014, दैनिक जागरण, मई पृष्ठ 7

18- सिंह, प्रदीप, 2014, दैनिक जागरण, मई पृष्ठ 7

अध्याय-17

मार्क्स, लोहिया और गांधी

शकील हुसैन
सहायक प्रध्यापक, राजनीति विज्ञान,
शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर
स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़

मार्क्स, गांधी और लोहिया परिवर्तनवादियों की त्रयी है। मार्क्स उद्भट दर्शनिक हैं, लोहिया उत्कृष्ट चिंतक तो गांधी सर्वोत्कृष्ट और अनुकरणीय राजनीतिक क्रियाविद्। मार्क्स एवं लोहिया में समाजवाद जहां सामान्य हैं वहीं गांधी किसी "वाद" के पाश से मुक्त हैं। लोहिया का समाजवाद मार्क्स की बजाए फेबियनवादियों और लोकतांत्रिक समाजवादियों के अधिक निकट है। लोहिया का द्वन्द्ववाद मार्क्स की तुलना में हैगेल के अधिक निकट हैं अर्थात् चेतनता अधिक प्रधान हैं। वर्तमान की व्याख्या में लोहिया और मार्क्स की दृष्टि ऐतिहासिक है। इतिहास की व्याख्या के आधार पर उन्होंने वर्तमान को समझने का प्रयत्न किया। मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या से जहां साम्यवादी क्रांति का तर्क प्रस्तुत किया वहीं लोहिया की इतिहास व्याख्या सामाजिक परिवर्तन का आधार रही है। यद्यपि दोनों की व्याख्या वर्ग प्रधान है तथापि मार्क्स के वर्ग जहां स्थायी हैं वहीं लोहिया के गतिशील। इस दृष्टि से वे मार्क्स की तुलना में 'परेटो' जैसे अभिजनवादियों के अधिक निकट है। लोहिया के लिए 'वाद' से 'वाद' तक की यात्रा उर्ध्वाधर न होकर चक्रीय है। मार्क्स के लिए आर्थिक स्वतंत्रता अधिक महत्वपूर्ण है, विशेषतः सर्वहारा की। वहीं लोहिया के लिए स्वतंत्रता सर्वोच्य मूल्य है, विशेषतः राजनीतिक स्वतंत्रता। इस क्षेत्र में वे जे. एस. मिल की सीमा तक जाते है। लोहिया की आदर्श 'विश्व सरकार' भी वर्गीय न होकर लोकतांत्रिक है।

गांधी की दृष्टि इतिहासवादी नही है। अतः गांधी की शैली बौद्धिक व्यायाम की बजाय कार्यकर्ता की है। उन्होनें बाइबिल और गीता के उपदेशों, रस्किन, थोरो एवं टालस्टाय से जो प्राप्त किया उसे राजनीतिक क्रियाविधि का रूप दिया। वही उनके सिद्धांत है। वे न तो उद्भट दार्शनिक है न चिंतक किन्तु क्रियाविद् के रूप में अतुलनीय हैं। एक आम आदमी द्वन्द्ववाद में निष्णात हुए बिना किस प्रकार व्यवस्था परिवर्तन का हेतु बन सकता है यह गांधी ने विश्व को दिखाया। सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन स्थायी न होकर गतिशील होते हैं, तथा 'विचार' एवं 'क्रिया' केवल इसके साधन मात्र है। यह तत्व मार्क्सवाद की बजाए गांधीवाद में प्रमुखतः व्याप्त है। इसलिए लोहिया मार्क्स की तुलना में गांधी के अधिक निकट है।

विद्यमान समाज की समझ: ऐतिहासिक बनाम अनैतिहासिक व्याख्या

मार्क्स, गांधी और लोहिया तीनों हीं विद्यमान व्यवस्था को समझने और उसकी परेशानियों व व्याधियों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। तीनों का ही विवरण नि:संदेह रूप से देशकाल स्थिति से प्रभावित है। कार्ल मार्क्स के सामने औद्योगिक क्रांति के विकराल दुष्परिणाम, श्रमिकों का शोषण अपनी पराकाष्ठा पर थे, तो गांधी के सम्मुख सैकड़ों वर्षों की दासता से पीड़ित एक विपन्न और गुलाम देश जिस पर तत्कालीन विश्व के सर्वाधिक

शक्तिशाली देश का अत्याचारी शासन था। एक अतुलनीय औपनिवेशिक शक्ति का सामना, उससे संघर्ष कर विजय प्राप्त करने के लिए जनता को तैयार करने का दायित्व था, वह भी केवल उच्च नैतिक व अहिंसक साधनों से। लोहिया के सम्मुख स्वतंत्र भारत का अपना शासक वर्ग था किन्तु नेहरू के राज्य औद्योगिकरण द्वारा राष्ट्र निर्माण की आर्थिक पद्धति उन्हें स्वीकार न थी, इसमें वह देश के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक परिवर्तन का कोई भविष्य नहीं देख रहे थे। उनकी दृष्टि में सामाजिक परिवर्तन का हेतु समाजवाद था किंतु यह समाजवाद भारतीय था और नेहरू के समाजवाद से किंचित भिन्न था। किन्तु मार्क्स-लोहिया विद्यमान व्यवस्था मे आमूल चूल परिवर्तन चाहते थे, जबकी गांधी की दृष्टि सुधारात्मक है। तीनों ने ही विद्यमान व्यवस्था को समझने और व्याख्यायित करने की कोशिश की जिससे परिवर्तन का साध्य और साधन स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

सामाजिक परिवर्तन की यात्रा की शुरुआत मार्क्स और लोहिया निर्विवाद रूप से विद्यमान व्यवस्था को समझने की अंतर्दृष्टि और पद्धति विज्ञान के रूप में ऐतिहासिक पद्धति का पालन करते हैं। कार्ल मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक और भौतिकवादी व्याख्या की और यह स्थापित किया कि इतिहास के समस्त कालों में सामाजिक संरचना उत्पादन के साधनों द्वारा निर्धारित हुई है, जैसे उत्पादन के साधन होते हैं वैसे ही सामाजिक संबंध होते हैं। उत्पादन के संबंध ही वे भौतिक परिस्थितियां बनाते हैं जिससे मनुष्य की चेतना का निर्माण होता है। अतः मानवीय चेतना से भौतिक परिस्थितियों निर्धारित नहीं होती बल्कि भौतिक परिस्थितियों से उसकी चेतना का निर्माण होता है। समाज के जिस वर्ग का उत्पादन के साधनों पर अधिकार होता है उसके द्वारा एक मिथ्या चेतना का निर्माण किया जाता है जिससे शोषितो को यह विश्वास दिलाया जा सके कि यह सब उनकी नियति है, तथा इस चेतनामय नियति के अनुसार ही भौतिक स्थितियां चल रही हैं, जबकि होता है इसके ठीक विपरीत है। और उसी के अनुरूप शोषण चक्र चलता रहता है।

"अपने अस्तित्व के सामाजिक उत्पादन में, मनुष्य अनिवार्य रूप से निश्चित संबंधों में प्रवेश करते हैं, जो उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं, अर्थात् उत्पादन के संबंध जो उनके उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास में एक निश्चित चरण के लिए उपयुक्त होते हैं। उत्पादन के इन संबंधों की समग्रता समाज के वास्तविक आधार, आर्थिक संरचना का निर्माण करती है, जिस पर एक कानूनी और राजनीतिक अधिसंरचना (सुपर स्ट्रक्चर) उत्पन्न होती है और जिसके अनुरूप सामाजिक चेतना के निश्चित रूप होते हैं। भौतिक जीवन की उत्पादन पद्धति सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन की सामान्य प्रक्रिया को निर्धारित करती है। यह मनुष्यों की चेतना नहीं है जो उनके अस्तित्व को निर्धारित करती है, बल्कि उनका सामाजिक अस्तित्व ही उनकी चेतना को निर्धारित करता है।" *(मार्क्स,1859)*

एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन वस्तुतः उत्पादन के साधनों की तकनीकि में होने वाले परिवर्तनों पर आधारित होता है। उत्पादन के साधन स्थिर नहीं होते। उत्पादन के नए साधनों का विकास तब होता है जब उत्पादन के पुराने साधन या तकनीकी अपनी परिपक्वता की स्थिति पर आ जाते हैं यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। तथा इनके बदलते ही सामाजिक संबंध भी बदल जाते हैं।

"परिवर्तन की ऐसी अवधि का मूल्यांकन सामाजिक शक्तियों और उत्पादन के संबंधों के बीच भौतिक जीवन के अंतर्विरोधों से, मौजूदा संघर्ष से समझाया जाना चाहिए उसकी चेतना के आधार पर नहीं। बल्कि, इसके विपरीत, इस चेतना को उत्पादन की शक्तियों के आधार पर समझा जाना चाहिए। कोई भी सामाजिक व्यवस्था उन सभी उत्पादक शक्तियों के विकसित होने से पहले कभी नष्ट नहीं होती, जिनके लिए वह पर्याप्त है, और उत्पादन के नए श्रेष्ठ संबंध कभी भी पुराने संबंधों का स्थान नहीं लेते, इससे पहले कि उनके अस्तित्व के लिए भौतिक परिस्थितियाँ पुराने समाज के ढांचे के भीतर परिपक्व हो जाएँ।" (मार्क्स,1859)

इस प्रकार कार्ल मार्क्स इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या द्वारा यह स्थापित करना चाहते हैं की सामाजिक विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में परिवर्तन उत्पादन के साधनों में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर होता है उत्पादन के साधनों के अनुकूल सामाजिक संबंधों का विकास होता है क्योंकि उत्पादन के साधनों पर शोषक वर्ग का अधिकार होता है और परिपक्वता की विशेष अवस्था में पहुंचने के बाद दूसरे चरण का आगमन होता है उसे प्रक्रिया के अनुसार कार्ल मार्क्स प्राचीन सामंती, एशियाई और आधुनिक बुर्जुआ समय का काल विभाजन करते हैं और यह मानते हैं कि आधुनिक बुर्जुआ समय सामाजिक विकास की इस अवस्था का अंतिम विकास है जिसके बाद क्रांति के द्वारा समाजवाद का आगमन होगा।

"विकास के एक निश्चित चरण में, समाज की भौतिक उत्पादक शक्तियां उत्पादन के मौजूदा संबंधों के साथ संघर्ष में आ जाती हैं, यह केवल संपत्ति संबंधों के साथ कानूनी शब्दों में वही बात व्यक्त करती है जिसके ढांचे के भीतर वे अब तक संचालित होते रहे हैं। उत्पादक शक्तियों के विकास के रूपों से ये रिश्ते (शोषण) उनकी बेड़ियाँ बन जाते हैं। फिर शुरू होता है सामाजिक क्रांति का युग। आर्थिक बुनियाद में परिवर्तन देर-सवेर संपूर्ण विशाल अधिरचना के परिवर्तन की ओर ले जाता है।...समस्या तभी उत्पन्न होती है जब इसके समाधान के लिए भौतिक स्थितियां पहले से ही मौजूद होती हैं या कम से कम गठन के दौरान होती हैं। व्यापक रूपरेखा में, उत्पादन के प्राचीन, सामंती, एशियाई,और आधुनिक बुर्जुआ तरीकों को समाज के आर्थिक विकास में प्रगति को चिह्नित करने वाले युगों के रूप में नामित किया जा सकता है। उत्पादन का बुर्जुआ तरीका उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया का अंतिम विरोधी रूप (स्तर) है, जो वैयक्तिक विरोध के अर्थ में नहीं, बल्कि एक ऐसे विरोध के रूप में है, जो व्यक्तियों के अस्तित्व की सामाजिक स्थितियों से उत्पन्न होता है। अतः बुर्जुआ समाज के भीतर विकसित होने वाली उत्पादक शक्तियां इस विरोध के समाधान के लिए भौतिक निर्माण भी करती हैं। तदनुसार, मानव समाज का ऐतिहासिक काल इस सामाजिक गठन के साथ समाप्त हो जाता है।*" (मार्क्स,1859)*

लोहिया के अनुसार इतिहास की प्रकृति चक्रीय है। इसलिए वह इतिहास की चक्रीय व्याख्या करते हैं जिद्दी पी लोहिया मार्क्स के इतिहास वादी सिद्धांत की आलोचक रहे हैं।

"कार्ल मार्क्स के इतिहास संबंधित दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य विभिन्न युगों से होकर गुजरा है।...केवल यूरोप ही नहीं बल्कि समस्त दुनिया का मानव इतिहास इन तीन या चार युगों में बांटा जा सकता है, इसमें गंभीर शंका है यह सिद्ध करने के लिए कि दास युग मे भारत मे भी निरंकुशता थी, तथ्यों को बहुत अधिक तोड़ना *मरो*डना पड़ेगा।*"*

(लोहिया 1977, पृ 25-26)

लोहिया मार्क्स के सिद्धांत की आलोचना करते हुए अपने तर्क आगे बढ़ाते हैं कि मार्क्स इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या पूंजीवादी पर आकर समाप्त हो जाती है, जबकि इतिहास और समय निरंतर चलते रहने वाली प्रक्रिया है, इसीलिए इसकी इसका स्वरूप चक्रीय है। मार्क्स कि गलती यह है कि उसने केवल शोषक और शोषित के दो ही वर्ग माने, संतुलन के किसी तीसरे बिन्दू की तलाश नही की, फलतः उसे एक बिंदु पर अपना विश्लेषण समाप्त करना था। लोहिया कहते हैं कि "रिश्ते तीन प्रकार संभव हो सकते हैं। (शोषित)अधीन, (शोषक)स्वतंत्र और अन्योन्याश्रित। वर्तमान सभ्यता ने केवल पहले दो प्रकारों की खोज की है।" (लोहिया 1977, पृ 35)

यदि पारस्परिकता या अन्योन्याश्रितता के तीसरे संतुलन बिन्दू की संभावनाओं को देखा जाए तो इतिहास के चक्र की प्रक्रिया के चलते रहने का समाधान हो जाता है। इसी से समाज की गत्यात्मकता निर्धारित होती है। किंतु लोहिया मार्क्स के इस सिद्धान्त की आलोचना के बाद भी बहुत हद तक उससे प्रभावित भी रहे हैं।

"इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या का सारा ढांचा पैदावार की बढ़ती हुई शक्तियों और पैदावार के स्थित संबंधों के संघर्ष के आंतरिक तर्क पर खड़ा है वास्तव में यह तर्क अपने आप में पूरा निश्चित और संगत है।....समाज स्वयं गतिशील है और भौतिकवादी व्याख्या में इस गति की कुंजी है,बढ़ती हुई शक्तियों और जकड़े हुए संबंधों शोषितों और मालिकों के संघर्ष में। कुंजी इतनी सरल है और सृष्टि के भेद का पता इससे इतनी अच्छी तरह लगता मालूम होता है कि यह बहुत ही आकर्षक मालूम पड़ती है।"*(लोहिया* 1977, *पृ* 32) इस प्रकार लोहिया की इतिहास की चक्रीय व्याख्या में वर्ग एक महत्वपूर्ण कारक है जो सामाजिक व्यवस्था को गतिशीलता प्रदान करता है और परिवर्तन के लिए भी मार्ग प्रशस्त करता है।

गांधी ने वर्तमान को समझने के लिए इतिहास का सहारा नहीं लिया उनका वर्तमान बोध ऐतिहासिक बोझ से दबा हुआ नहीं है, बल्कि वह वर्तमान को समझने के लिए इतिहासवादी दृष्टि की आलोचना करते हैं। गांधी स्वराज में उन्होंने इसकी कठोर आलोचना की है क्योंकि इतिहास से कुछ सीखना है तो सद्भाव और प्रेम सीखा जा सकता है किंतु हम इससे उलट इतिहास से केवल हिंसा सीखते हैं और इतिहास को इसी रूप में देखते हैं। वह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि-

"हमें यह जान लेना होगा कि इतिहास कहते किसे हैं? इतिहास का शब्दार्थ तो है 'ऐसा हुआ (इति+ह+आस) इतिहास का आप यह अर्थ करें तब तो आपको सत्याग्रह के पचासों प्रमाण दिए जा सकते हैं पर अगर शब्द अंग्रेजी का हिस्ट्री है जिसका अर्थ बादशाहों की तवारीख है तो उसमें सत्याग्रह का प्रमाण नहीं मिल सकता। अंग्रेजों में कहावत है कि जिस राष्ट्र की हिस्ट्री नहीं है वह राष्ट्र सुखी है। हिस्ट्री में तो यही मिलेगा कि राजा कैसे खेलते थे कैसे खून कत्ल करते थे और कैसे बैर पालते थे। अगर यही इतिहास हो तो दुनिया कब की डूब गयी होती। ..... दुनिया में आज भी जो इतने अधिक मनुष्य विद्यमान है यह तथ्य ही हमें यह बताता है कि विश्व का विधान शस्त्रबल पर नहीं बल्कि सत्य दया और आत्मबल पर आधारित है। आत्म बल की सफलता का सबसे बड़ा ऐतिहासिक प्रमाण तो

यही है कि इतने युद्धों हंगामों के होते हुए भी दुनिया अब तक कायम है। यह इस बात सबूत है कि युद्धबल की बजाए कोई और बाल उसका आधार है।"(गांधी 1910, पृ 87-88)

वस्तुतः गांधी इस तथ्य से सजग थे कि इतिहासवाद सभी प्रकार के सर्वाधिकारवाद की शरण स्थली है। क्योंकि उन्होने देखा कि कालान्तर मे योरोप मे मुसोलिनी और हिटलर ने इटली और जर्मनी में इसी इतिहासवादी दृष्टि का सहारा लेकर कितने अमानवीय अत्याचार किए थे और सर्वाधिक हिंसक राज्यों की स्थापना की थी। जबकि इतिहास में ईसा और राम,कृष्ण जैसे अनेक उदाहरण जो सत्य,अहिंसा और प्रेम पर आधारित है इसलिए गांधी की इतिहासवादी दृष्टि उनकी सत्य अहिंसा प्रेम की दृष्टि पर आधारित है इसलिए वह इतिहास से वैसे नतीजे नहीं निकलते जो कार्ल मार्क्स और लोहिया ने निकाले थे। वह इतिहास को वर्ग संघर्ष की शरण स्थली के रूप में नहीं देखते बल्कि सत्य,प्रेम सद्भाव और सत्याग्रह की प्रेरणा इतिहास से प्राप्त करते हैं।

सामाजिक संरचना: वर्ग और वर्ण

कार्ल मार्क्स के वर्ग सम्बन्धी दृषेटिकोण के मुख्य स्रोत उनकी रचना 'कैपिटल, विशेशतः तीसरा वोल्यूम और कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो 1848, है। मार्क्स का वर्गसंघर्ष का सिद्धांत विश्व प्रसिद्ध है। मार्क्स के अनुसार आदिम काल से आधुनिक काल तक समाज में केवल दो ही वर्ग रहे हैं शोषण और शोषित। मानव इतिहास इसी वर्ग संघर्ष का इतिहास है जैसा कि कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो *1848* इसी महान वाक्य से प्रारंभ होता है

"अब तक विद्यमान समस्त समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है।*"* *(*मार्क्स एवं एंगेल्स *1848)* वास्तव में मार्क्स के वर्ग संरचना संबंधी विचार जितने स्पष्टता के साथ प्रसारित किए जाते हैं वह उतने स्पष्ट व सरल नहीं है। इसमें कई समस्याएं हैं सबसे प्रधान समस्या यह है कि मार्क्स ने कैपिटल के तृतीय खंड में वर्ग दो प्रकार की नहीं बल्कि तीन प्रकार के बताएं हैं।

"केवल श्रम-शक्ति के मालिक, पूंजी के मालिक, और भूमि-मालिक, जिनकी आय के संबंधित स्रोत मजदूरी, लाभ और भूमि-किराया हैं, दूसरे शब्दों में, दिहाड़ी मजदूर, पूंजीपति और भूमि-मालिक, तीन बड़े वर्ग हैं आधुनिक समाज उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति पर आधारित है।*"*

*(*मार्क्स, पृ *633)*

इसके अलावा (द क्लासेस) वर्ग का अध्याय ' पूंजी' के तीसरे खण्ड का अंतिम अध्याय है और इसको पूर्ण भी नहीं किया गया। इसलिए मार्क्स के कुछ दूसरे प्रमुख विचारों की भांति ही उसके वर्ग संबंधी विचार भी उसके साहित्य मे बिखरे हुए हैं और व्याख्याकारो कि टीकाकरण के फलस्वरूप रूप इनका विकास हुआ है। वर्ग संबंधी विचार मूल रूप से उसके श्रम के मूल्य सिद्धांत पर और पूंजी सिद्धांत पर आधारित किए जाते हैं अर्थात वस्तु के अतिरिक्त मूल्य से पूंजी का निर्माण होता है और इस पूंजी के संकेंद्रण के प्रवृत्ति के कारण शोषण चक्र चलता है और उत्पादक वर्ग शोषण होता है। अर्थात वर्गो की संरचना का आधार आय नही बल्कि पूंजी है। अतः पूंजी धारण करने वाला वर्ग पूंजी के संकेंद्रण और लाभ प्रवृत्ति के कारण शोषक बन जाता है। शोषक और शोषित के बीच का यह

संघर्ष अनवरत रूप से चलता है जो पूंजीवाद की अपनी अंतिम अवस्था में अपनी पूर्णता तक पहुंचता है और क्रांति के द्वारा इसका विनाश हो जाता है। जैसा कि उसने क्रिटिक ऑफ़ पोलिटिकल इकॉनमी की प्रस्तावना में लिखा है -

"उत्पादन का बुर्जुआ तरीका उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया का अंतिम विरोधी रूप (स्तर) है, जो एक ऐसे विरोध के रूप में है, जो व्यक्तियों के अस्तित्व की सामाजिक स्थितियों से उत्पन्न होता है।....तदनुसार, मानव समाज का ऐतिहासिक काल इस सामाजिक गठन के साथ समाप्त हो जाता है।" *(मार्क्स, 1859)*

जिस प्रकार मार्क्स में इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में शोषण और शोषण दो वर्गों को मन उसी प्रकार लोहिया की इतिहास की चाकरी व्याख्या भी दो वर्गों पर आधारित है यह दो वर्ग शोषक और शोषित न होकर वर्ग और वर्ण (जाति) हैं। लोहिया के अनुसार इतिहास में दो प्रकार की शक्तियां ही हैं एक शक्ति का संबंध शक्ति और समृद्धि से है तथा दूसरी शक्ति का संबंध समाज के आंतरिक संगठन से है जिसे वह जाति कहते हैं समृद्धि और शक्ति से प्रेरित शक्तियां बदलती रहती हैं अर्थात इनमें गतिशीलता रहती है इसीलिए शक्ति और समृद्धि के केंद्र विश्व में समय-समय पर बदलते रहे हैं दूसरी ओर समाज के आंतरिक संगठन की शक्तियां तथा स्थिति को बनाए रखने में लगी रहती हैं जिससे वर्णो की उत्पत्ति होती है।

"समाज या सभ्यता अपनी प्रारंभिक दिशा में अधिकतम कौशल अर्जित करने की कोशिश करती है फिर अपने ही बोझ तले दबाव से नष्ट हो जाती है। जब तक कौशल बढ़ता रहता है तब तक स्वास्थ्य शक्ति और गति साधारण रहती है और समाज के भीतर वर्ग अपनी दशा सुधारने के लिए वर्ग संघर्ष करते रहते हैं और समाज के बाहरी बाहरी का सामना करते हैं जब अधिकतम कौशल की सीमा आ जाती है और आंतरिक वर्ग संघर्ष असहनीय हो जाता है उसे वह बाह्य रूप से न्यायपूर्ण वर्ण व्यवस्था में बदलने की कोशिश की जाती है। ऐसी दशा में उस सभ्यता का पिछड़ना या गिरना कुछ देर के लिए रूक जाता है लेकिन अंतिम परिणाम के बारे में से कोई शंका नहीं रह जाती, क्योंकि वर्णों से सड़न पैदा होती है और बाहरी दबाव से बिखराव। यह दोनों बातें समाज के भीतर वर्गों तथा वर्णों का वर्गों में बदलना और बाहर राष्ट्र की शक्ति का घटना बढ़ाना अब तक ज्ञात सभी समाजों में रहा है।" *(लोहिया, 1977,पृ 36)*

लोहिया के अनुसार वर्ग गतिशील हैं जबकि वर्णों की प्रकृति स्थाई है समाज में गतिशीलता और अस्तित्व की प्रवृत्ति शास्त्र चलती है यह दोनों विरोधाभासी प्रवृत्ति ही समाज को वास्तविक गतिशीलता प्रदान करती हैं वैश्विक स्तर पर कहीं वर्गों की प्रधानता है और कहीं पर वर्णों की प्रधानता है अमेरिका में वर्गों की प्रधानता रही है तो भारत में वर्णों की प्रधानता रहेगी लेकिन भारत में वर्ग नहीं है या उनका भाव ऐसा नहीं है वर्गों से वर्णों में या वर्णों से वर्गों में रूपांतरण और प्रत्यावर्तन चलता रहता है। लोहिया ने रोम और भारत के ऐतिहासिक उदाहरण से सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि वर्ग और वर्ण की गतिशीलता ऐतिहासिक रूप से सामाजिक परिवर्तन की हेतु रही है -

"प्राचीन रोम में पिटीशन और प्लिबन लगभग हमेशा ही वर्ग संघर्ष में व्यस्त रहे....जब भी रोम की शक्ति व आर्थिक ताकत बड़ी यह संघर्ष अपेक्षाकृत खुला खेल बन गया। वर्ग से वर्ण और वर्ढ से वर्ग के बदलाव के रोमन अनुभव अनेक स्थितियों से गुजरे।...समाज में समता लाने के लिए अक्सर रोमन नागरिकों के लिए वर्ग, संघर्ष की

प्रेरणा होता था।...भारत वर्णो के विरूद्ध दो आन्दोलो से परिचित है। पहला आन्दोलन *2600* वर्षो पूर्व हुआ। ....वर्णो के विरूद्ध अंतिम आन्दोलन *1200* वर्षो से अधिक चला, इस अवधि मे वर्ण व्यवस्था मे पूरा जकड़ाव बना रहा। ...भारत वर्ग और वर्ण के बीच बदलाव उतार-चढ़ाव की कथा में कई हीरो की चमक दिखाई पड़ सकती है किंतु जो सबसे बड़ी विशेषता है की आंतरिक वर्ण निर्माण और बाय आधार पाटन साथ-साथ चलता है पूरे समाज का बढ़ता कौशल निश्चित रूप से विभिन्न वर्गों के भीतर हरकत वह उधर चढ़ा के साथ जुड़ा हुआ है।" *(*लोहिया *1977,* पृ *37-43)*

इस प्रकार लोहिया की व्याख्या भी इतिहास एवं वर्ग आधारित है यद्यपि उन्होने अक्षरशः मार्क्स के मार्ग का पालन नहीं किया किंतु स्थूल रूप मे मार्ग वही है। उनकी दृष्टि में भी ऐतिहासिक रूप से समाज की संरचना वर्गीय रही है तथा वर्ग संघर्ष ही इतिहास को गति प्रदान करता रहा है तथा सामाजिक परिवर्तन में वर्ग संघर्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

गांधी के लिए सामाजिक गतिशीलता का आधार वर्ग और वर्ग संघर्ष नहीं बल्कि मनुष्य की सदभावना प्रेम और अहिंसा की भावना है जो सनातन काल से उसे एक रखती आई है। आज जो विश्व की आबादी है और सभ्यताएं जिस तरह से निरंतरता के रूप में आगे बढ़ी है उससे स्पष्ट होता है कि हिंसा और संघर्ष चाहे वह व्यक्तिगत आधार पर हो चाहे वर्गीय आधार पर सामाजिक गतिशीलता का आधार नहीं रहा है। यदि ऐसा होता तो संपूर्ण विश्व नष्ट हो गया होता महायुद्ध और विश्व युद्धों से भी यही संदेश निकलता है की हिंसा गतिशीलता का आधार नहीं है और न ही वर्ग संघर्ष समाज को कोई गति या दिशा प्रदान कर सकता है। बल्कि प्रेम और सहिष्णुता ही समाज का आधार स्तंभ रहे हैं। इसलिए गांधी समाज की वर्गीय संरचना में विश्वास नहीं करते। मार्क्स की वर्गीय संरचना का आधार श्रम और पूंजी का सिद्धांत है बहुत हद तक अप्रत्यक्ष रूप से लोहिया भी इससे सहमत दिखाई देते हैं लेकिन गांधी इससे पूर्णतः असहमत है। उनके लिए श्रम जीवन का साधन है। बाइबिल का यह कथन उन्हे प्रिय था कि पसीना बहाने पर ही रोटी मिलेगी। "ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि इसलिए की कि वह अपनी रोटी के लिए श्रम करे, और कहा जो बिना श्रम किए खाते हैं, वे चोर हैं|" *(*यंग इण्डिया *13-10-1921,* पृ. *325,* गांधी के विचार पृ *202* मे नीहित *https://mkgandhi.org)*

वह मार्क्स की इस बात से सहमत है कि श्रम से ही पूंजी का निर्माण होता है लेकिन वह पूंजी को प्रूधों की भांति चोरी नहीं समझते और न हीं निजी सम्पत्ति के विरोधी है। वस्तुत: पूंजी और श्रम में वे कोई अंतर्विरोध नहीं देखते जो कि मार्क्सवाद का मूल आधार है। मार्क्सवाद मे श्रम और पूंजी परस्पर विरोध में खड़े दिखाई देते हैं लेकिन गांधीवाद में श्रम एक पवित्र वस्तु है इसलिए श्रम का श्रम को वह पूंजी के विरुद्ध नहीं देखते उन्हें पूंजी से नहीं बल्कि पूंजीवाद से समस्या है। समझते हैं विश्वास इनकार नहीं करते केशव की श्रम और श्रमिकों के स्तर पर कोई मतभेद या विभेद नहीं होता लेकिन वे इसे अपने असहयोग और सत्याग्रह किस स्तर पर ही देखते हैं -

"कर्तव्य यह है कि मैं अपने शरीर से श्रम करूं और तदनुरूप उपचार यह है जो व्यक्ति मुझे मेरे श्रम के फल से वंचित करे, उसके साथ असहयोग करूं।" *(*यंग, *26-3-1931,* पृ. *49) (*गांधी के विचार पृ *203* मे नीहित)

इस प्रकार जाने के अनुसार श्रम से वर्गों का निर्माण नहीं होता और ना ही वर्ग संघर्ष होता है। लोहिया की भांति गांधी वर्ण को मानते हैं। भारतीय वर्ण व्यवस्था में उनका विश्वास था, लेकिन उसे रूप में नहीं जिस रूप में यह आज प्रचलित है अर्थात जातिवादी रूप मे। उनकी दृष्टि से जाति प्रथा और वर्ण व्यवस्था का कोई संबंध नहीं है जाति प्रथा के विकास का कारण छुआछूत है जो की एक गंभीर बुराई है।

"वर्ण का जाति प्रथा से कोई संबंध नहीं वर्णन के नाम पर प्रचलित जाति प्रथा के असुर का नाश कीजिए। वर्ण के इस व्यक्तित्व स्वरूप नहीं भारत का पतन किया है" (कुनप्पा, 1960, पृ 175) गांधी वर्ण को प्राकृतिक मानते थे गांधी की दृष्टि में वर्ण से स्थाई है क्योकि यह जन्मना आधारित है किंतु यह इस दृष्टि से अस्थाई है कि यह कर्म आधारित भी है अर्थात यदि कोई भी व्यक्ति अपने वर्ण धर्म का पालन नहीं करता है तो वह उसे वर्ण से अलग हो जाता है। गीता के स्व कर्म ही स्व धर्म है पर गांधी की गहरी श्रद्धा थी। वर्ण के बारे में वह कहते हैं कि

"यह मनुष्य की ईजाद की हुई वस्तु नहीं है परंतु प्रकृति का अटल नियम है यह प्रकृति की एक प्रवृत्ति का वर्णन है जो न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियम की भांति हमेशा विद्यमान और सक्रिय है। (कुनप्पा 1960 पृ 175) गांधी यद्यपि वर्ण धर्म के पारिवारिक कार्य को उचित समझते थे क्योंकि यह आत्म निर्भरता की कुंजी थी और एक आध्यात्मिक संतोष था। किंतु जन्मना आधारित वर्ण में भी उन्हें कार्य के परिवर्तन से कोई समस्या नहीं थी। किसी एक वर्ण का व्यक्ति कोई दूसरा कार्य भी कर सकता था किंतु इस कार्य में कोई लालच या लाभ वृत्ति नहीं होनी चाहिए। इसके वे वैश्विक उदाहरण भी देते हैं। उन्ही के शब्दों में -

"सिसरो के काल में वकील का धंधा निशुल्क था। किसी बुद्धिमान बढ़ई वकील *का* बन जाना बिल्कुल ठीक होगा किंतु रुपए के लिए नहीं बल्कि सेवा के लिए। *वैद्य* लोग भी समाज की सेवा करते थे और समाज से जो कुछ मिल जाता था उसे संतोष कर लेते थे, परंतु अब वे व्यापारी और समाज के लिए खतरा तक बन गए हैं। मैं अपने पिता का धंधा करूं तो मुझे उसे सीखने के लिए पाठशाला जाने की जरूरत नहीं होती मेरी मानसिक शक्ति आध्यात्मिक प्रयत्न के लिए मुक्त हो जाती है क्योंकि मेरी आजीविका तो निश्चित ही है।" (कुनप्पा 1060, पृ 175-76)

किस प्रकार गांधी की सामाजिक व्यवस्था में वर्ग और वर्ण संघर्ष का कारण नहीं बल्कि स्थायित्व का हेतु यह सामाजिक संतुलन की स्थापना करते हैं सामाजिक संघर्ष और सामाजिक क्रांति की नहीं। किंतु यह भी उल्लेखनीय है कि गांधी के संपूर्ण सामाजिक राजनीतिक दर्शन में वर्ण पर उनके विचार सर्वाधिक आलोचना आमंत्रित करते रहे हैं। गांधीवाद से बहुत अधिक प्रभावित विद्वान भी वर्ण पर उनके विचारों से पूर्ण सहमति अक्सर नहीं स्थापित कर पाते वर्ण को स्थाई मानना राजनीतिक दर्शन के किसी भी मानक पर सही मानना कठिन हो जाता है।

सामाजिक परिवर्तन के हेतु

सभी परिवर्तनवादियों के सम्मुख एक समस्या होती है, सामाजिक स्थिति के प्रति का संतोष होता है जो सामाजिक परिवर्तन का मुख्य औचित्य होता है कार्ल मार्क्स के सम्मुख पूंजीवादी औद्योगिक क्रांति के कारण उत्पन्न व्यापक शोषण चक्र और आर्थिक पद्धति की विफलता वह मूल प्रश्न था जो सामाजिक परिवर्तन का मुख्य कारण

बना। वस्तुतः सामाजिक परिवर्तन के संज्ञा के अनुरूप परिवर्तन का आधार सबके लिए एक नहीं होता किसी के लिए स्थापित अमूल सामाजिक प्रणाली को बदल देना ही सामाजिक परिवर्तन होता है अर्थात समाज में विद्यमान वर्ग और स्तरीकरण संरचना इत्यादि को भंग कर एक वर्ग विहीन, स्तरीकरण विहीन सामाजिक संरचना स्थापित करना ही सामाजिक परिवर्तन होता है, तो मार्क्स जैसे किसी दार्शनिक के लिए सामाजिक परिवर्तन का अर्थ आर्थिक प्रणाली में आमूल चूल परिवर्तन करना है। क्योंकि आर्थिक संरचनाओं ही वास्तव में सामाजिक संरचनाओं का निर्धारण करती हैं मार्क्स के लिए आर्थिक संरचना और सामाजिक संरचना में कोई अंतर नहीं है क्योंकि उत्पादन के संबंध सामाजिक संबंधों को निर्धारित करते हैं। कार्ल मार्क्स इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या सही है सिद्ध करते है कि इतिहास के सारे संबंध वर्ग संघर्ष के संबंध है और वर्ग संघर्ष के समाप्ति के द्वारा ही सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है।

इस सामाजिक परिवर्तन का मुख्य आधार मार्क्स की दृष्टि में एक हिंसात्मक क्रांति है और इस संसार में क्रांति के द्वारा ही स्थापित शोषणकारी वर्गीय संरचना का समूह नाश संभव है। समाजवादी क्रांति वर्तमान पूंजीवादी बुर्जुआ समाज के लिए अवश्यंभावी है, क्योंकि बुर्जुआ समाज शोषण की अंतिम स्थिति तक पहुंच जाता है जिससे श्रमिकों में चेतना जागती है और वे क्रांति को अग्रसर होते हैं।

"मजदूर वर्ग, विकास के क्रम में, पुराने बुर्जुआ समाज के स्थान पर एक ऐसा संघ बनाएगा जो वर्गों और उनके विरोध को समाप्त कर देगा, और कोई और राजनीतिक शक्ति समूह नहीं होंगे, क्योंकि राजनीतिक शक्ति वास्तव में वर्ग विरोध की आधिकारिक अभिव्यक्ति है बुर्जुआ समाज में।" *(पृ.182, जर्मन संस्करण, 1885)* *(*marxists.org/archive/lenin/works/)

इस समाजवादी क्रांति के पश्चात श्रमिकों की एक अल्पकालिक तानाशाही स्थापित की जाएगी जिसमें रचनात्मक कार्य होंगे और प्रतिक्रियावादी शक्तियों का समूह नाश किया जाएगा तथा वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी। लेनिन ने 'स्टेट एण्ड रिवोलूशन' इसे बहुत अधिक महिमा मण्डित किया है।

"यहां हमारे पास राज्य के विषय पर मार्क्सवाद के सबसे उल्लेखनीय और सबसे महत्वपूर्ण विचारों में से एक का सूत्रीकरण है, अर्थात्, "सर्वहारा वर्ग की तानाशाही" का विचार (जैसा कि मार्क्स और एंगेल्स ने पेरिस कम्यून के बाद इसे कहना शुरू किया); और, साथ ही, राज्य की एक बेहद दिलचस्प परिभाषा, जो मार्क्सवाद के "भूल गए शब्दों" में से एक है: "राज्य, यानी, शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा।" (marxists.org/archive/lenin/works/)

यह वर्ग विहीन समाज मार्क्स का आदर्श साम्यवादी समाज है जिसने सबको सब की जरूरत के अनुसार और सबको सब की क्षमता के अनुसार प्राप्त होगा। मार्क्स की भांति लोहिया भी एक मौलिक चिंतक थे और मार्क्स के मुकाबले उनके सामने सहूलियत यह थी कि उनसे पहले कार्ल मार्क्स जैसा महान दार्शनिक एक महान अकादमिक और दार्शनिक साहित्य छोड़ गया था जिसका अवलोकन मूल्यांकन करने का अवसर लोहिया के पास था। दूसरी ओर उन्होंने गांधी युग भी देखा था और गांधी के आध्यात्मिक राजनीतिक विचार भी उनके सामने थे। अपनी पुस्तक

'मार्क्स गांधी एंड सोशलिज्म' के विभिन्न अध्यायों 'इकोनॉमिक्स आफ्टर मार्क्स, मार्क्सिज्म एंड सोशलिज्म, गांधीजी एंड सोशलिज्म, द मीनिंग ऑफ़ इक्वलिटी और डॉक्ट्रिनल फाउंडेशन ऑफ़ सोशलिज्म आदि मे उन्होंने समाजवाद को एक वैकल्पिक प्रणाली के रूप में अथवा सामाजिक परिवर्तन के हेतु के रूप में प्रस्तुत किया। वह एक उद्भट समाजवादी थे इसमें कोई संदेह नहीं किंतु उनका समाजवाद पूर्णत भारतीय था वह यूरोपियन मॉडल के समाजवाद से सहमत नहीं थे चाहे वह फेबियन वादी समाजवाद हो या क्रांतिकारी समाजवाद उनकी दृष्टि में यूरोपियन समाजवाद यूरोप की सामाजिक संरचना के अनुकूल था भारत की सामाजिक आर्थिक संरचना यूरोप जैसी नहीं है इसलिए भारतीय समाजवाद भारतीय परिस्थितियों के अनुरूपी होना चाहिए इसलिए वह पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों की आलोचना करते हैं। उनकी दृष्टि मे पूंजीवाद और उपनिवेशवाद सहोदर है।

अभिषेक के अनुसार पूंजीवाद का विकल्प साम्यवाद नहीं है क्योंकि दोनों ही गैर पश्चिमी देशों के लिए पूरी तरह असंगत है। पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों ही आधुनिक सभ्यता के दो चेहरे हैं दोनों ही आधुनिक सभ्यता को संकट से नहीं बचा सकते। उनकी दृष्टि में मार्क्स की सबसे बड़ी गलती है थी कि उसने समाजवाद को एक स्थाई प्रणाली बना दिया था। जिससे सामाजिक परिवर्तन की गति बाधित हो रही थी अर्थात समाजवादी क्रांति के पश्चात अन्य किसी भी प्रकार के सामाजिक परिवर्तन की कोई आवश्यकता ही ना रहेगी। किंतु इतिहास के चक्रीय सिद्धांत के अनुसार समाज एक गतिशील प्रणाली है, जिसमें परिवर्तन इतिहास में भी होते रहें है और भविष्य में भी होते रहेगे। अतः सामाजिक प्रणाली को स्थिर नहीं किया जा सकता।

गांधी के लिए समाजवादी क्रांति एक अच्छा विचार नहीं था क्योंकि वह हिंसा के किसी भी रूप के विरुद्ध थे 1917 में साम्यवादी क्रांति की उन्होंने आलोचना की थी एंथोनी परेल ने इसके बारे में लिखा है कि -

"मैं जानता हूं कि जहां तक यह हिंसा और ईश्वर को नकारने पर आधारित है, यह मुझे विकर्षित करता है... मैं सबसे अच्छे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी हिंसक तरीकों का कट्टर विरोधी हूं। "(परेल 1997, 70-71)

अतः स्वाभाविक रूप से भारत के समाजवादियों विशेष कर क्रांतिकारी समाजवादियों द्वारा गांधी कि इस बारे में कठोर आलोचना की गई,और बाद में भी उनके समाजवादी विचारों कि यह करके निंदा की गई कि वह सर्वहारा के साथ नहीं बल्कि बुर्जुआ के साथ खड़े हैं।

"रवि मिस्त्री ने अपने लेख 'गांधी: द मिथ्स बिहाइंड द महात्मा' में दृढ़ता से कहा है कि "औद्योगिक श्रमिकों के प्रति गांधी का रवैया पितृसत्तात्मक और कृपालु था" क्योंकि वह "स्वयं भारतीय बुर्जुआ के प्रतिनिधि थे।" (सदफ बानो mkgandhi.org/articles/Gandhi-the-socialist)

किंतु उनकी आलोचना संगत है क्योंकि गांधी सामाजिक परिवर्तन के किसी भी क्रांतिकारी उपाय से सहमति नहीं रखते थे उनके दृष्टि में समाज में ऐसी गंभीर व्याधिया नहीं हैं कि उनको रातों-रात उलट दिया जाए। उनका विश्वास मनुष्य की सद्भावना, सहिष्णुता, अहिंसा और प्रेम भावना में था। इसी प्रकार से वे समस्त राजनीतिक अवधारणाओं के बारे में अपना विचार रखते थे। राष्ट्र के बारे में भी उनका यही विचार था कि मैं अपने राष्ट्र से प्रेम करता हूं लेकिन किसी भी दूसरे राष्ट्र की का नुकसान किए बिना। इसलिए उन्होंने कोई समाज की वैकल्पिक प्रणाली का सुझाव

प्रस्तुत नहीं किया जो कार्ल मार्क्स और लोहिया के चिंतन में विद्यमान है उन्होंने कोई वैकल्पिक आर्थिक राजनीतिक प्रणाली नहीं बताई जिसका पालन स्वतंत्र भारत को किया जाना है उन्होंने एक प्रक्रियात्मक स्वराज बताया जो कोई लक्ष्य नहीं बल्कि एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें आत्म नियंत्रण और सत्याग्रह महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। स्वतंत्र होने का अर्थ यह नहीं है कि राजनीतिक रूप से निष्क्रीय हुआ जाए। वे अपने ही सरकार के ऐसे कार्यों के विरुद्ध सत्याग्रह के लिए तैयार रहने को उचित मानते हैं जो जन विरोधी है या जिससे नागरिक सहमत ना हो। *"*स्वशासन का अर्थ है, सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र होने का निरंतर प्रयास चाहे वह विदेशी सरकार हो या चाहे वह राष्ट्रीय हो*" (*अप्पाडोराई*, 1969* पृष्ठ *313)*

निष्कर्ष

मार्क्स के एक उत्कृष्ट दार्शनिक होने में कदाचित ही किसी को संदेह हो किंतु वह जितना शह कुशल समस्या के विश्लेषण में थे उतने ही समस्या के समाधान और भविष्यवाणियों में वह उतना ही असफल सिद्ध हुए। उन्होंने समस्या को जिस रूप में देखा पद्धति के रूप में एक पक्षीय होने के बावजूद वैज्ञानिक रूप से उसमें बहुत तार्किकता थी अर्थात उन्होंने समाज की गतिशील ऊर्जा के रूप में आर्थिक प्रणाली को एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया जोकि उचित भी है, लेकिन उनकी गलती यह है उन्होंने से एकमात्र प्रणाली मान लिया। इसमें व्यवहारिकता की बहुत कमी थी जो रूसी की क्रांति के समय ही उजागर हो गयी थी। एक व्यवहार एक व्यवहारवादी क्रांतिकारी के रूप में लेनिन को इसमें व्यापक परिवर्तन करने पड़े। राजनीतिक चेतना जागृत करने में ट्रेड यूनियन की बजाय साम्यवादी दल को भूमिका सौपना, एक क्रांतिकारी साम्यवादी दल की आवश्यक बताना, क्रांति का अल्प मार्ग बताना, और सर्वहारा की अल्पकालिक तानाशाही के स्थान पर दीर्घकालीन तानाशाही की आवश्यकता बताना आदि ऐसे परिवर्तन थे जो लेनिन ने मार्क्सवाद में किए जिससे वह इतना बदल गया कि वह मार्क्सवाद की बजाए है लेनिनवाद हो गया। सोवियत संघ की विफलता और चीन के पूंजीवादी रूपांतरण ने मार्क्सवाद को सामाजिक परिवर्तन के एक स्वीकार सिद्धांत के रूप में लगभग खारिज कर दिया है। तथा पी सामाजिक परिवर्तन के दार्शनिक पद्धति के रूप में मार्क्सवाद एक विशेष अंतर्दृष्टि अवश्य प्रदान करता है यह स्थापित करता है की समझ में आर्थिक कारक और आर्थिक तत्व समाज की गत्यात्मकता के लिए आवश्यक होते हैं और उनकी अनदेखी क्रांतियां और विकल्पों को जन्म देती है समझौता यही कारण था की कार्ल मार्क्स के दर्शन का सर्वाधिक लाभ पूंजीवादी अमेरिका को हुआ यह कोई सहयोग नहीं है की 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से अमेरिका में लोक प्रशासन जैसे विषय पैदा होने शुरू हो गए जिससे वैज्ञानिक प्रबंध जैसे विषय पैदा हुए जिन्होंने अमेरिका के औद्योगिक वातावरण को दुरुस्त किया। इसी प्रकार विकासशील देशों के राजनीतिक प्रणालियों के अध्ययन करने के लिए व्यवहारवादी और उत्तर व्यवहार वादी क्रांतियां हुई और तुलनात्मक राजनीति नाम का एक पूरा विषय उत्पन्न हो गया। उसके पृष्ठभूमि में कहीं ना कहीं रेड फोबिया आवश्यक था। लोहिया के नवीन समाजवादी विकल्प के बारे में भी लगभग यही बात लागू होती है। भारत में समाजवाद के जो मॉडल अपनाए गए प्रारंभिक सफलता के बाद उसकी परेशानियां सामने आई और 1990-91 में आर्थिक।

अंततः इन सब का त्राण गांधीवादी विचार मे ही मिलता है। वास्तव में 21वीं शताब्दी में गांधीवादी सामाजिक आर्थिक राजनीतिक प्रणाली की प्रासंगिकता और भी अधिक हो गई है क्योंकि गांधी ने किन्ही क्रांतिकारी

परिवर्तनों का कोई सुझाव नहीं दिया, उनके लिए सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है, अहिंसक, न्यायपूर्ण व सदभावपूर्ण सामाजिक प्रणाली, आत्म निर्भरता की आर्थिक प्रणाली, और सत्य के प्रति आग्रह युक्त स्वराज वाली राजनीति प्रणाली। राज्यो की बाध्यकारी शक्तियो के विरूद्ध आज की सिविल सोसायटी जिस प्रकार वैश्विक स्तर पर खड़ी रहती है वह गांधीवादी स्वराज प्रणाली ही है। यही कारण है कि गांधी की राजनीतिक कार्यप्रणाली और दर्शन सामाजिक और राजनीतिक दार्शनिकों और विद्वानों को आकर्षित करता रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि हर देश की स्थिति और उसकी समस्याओं को शांतिपूर्वक हल करने के लिए गांधीजी सबसे उपयुक्त थे। मार्टिन लूथर किंग से लेकर अमेरिका से लेकर यूरोप में लेक वालेसा तक और नेल्सन मंडेला से लेकर आंग सांग सू की तक, कई राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने गांधी से प्रेरणा ली और अपने राजनीतिक लक्ष्य हासिल किए। दूसरे शब्दों में, गांधीजी के दर्शन की प्रासंगिकता अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका और दक्षिण पूर्व एशिया में हर जगह सिद्ध हो चुकी है। अतः गांधी की प्रासंगिकता समय की प्रासंगिकता की तरह है, जो सदैव बनी रहती है।

संदर्भ **सूची**

1. मार्क्स के (1959): प्रीफेस, ए कन्ट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक आफ पोलिटिकल ईकोनामी. https://www.marxists.org/archive/lenin/works/1917/staterev/ch02.htm
2. अप्पाडोराई ए. (1969): सामाजिक सिद्धांत में गांधी का योगदान, राजनीति की समीक्षा, जुलाई, 1969, खंड. 31, नंबर 3 पृष्ठ 312-328. राजनीति की समीक्षा की ओर से नोट्रे डेम डु लैक विश्वविद्यालय के लिए कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, https://www.jstor.org/stable/1406548
3. ब्राउन जे. और परेल ए. (2011), गांधीजी का कैम्ब्रिज साथी, न्यूयॉर्क: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. गांधी एम के(1910). हिन्द स्वराज https://www.mkgandhi.org/articles/gandhi-and-politics.html
5. कुनप्पा (1960): मेरा धर्म (गांधी) नवजीवन प्रकाशन अहमदाबाद.
6. लोहिया आर (1977): इतिहास चक्र लोक भारती प्रकाशन , इलाहाबाद.
7. परेल ए (1997): हिंद स्वराज और अन्य लेख, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

अध्याय-18
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विशेष विद्यार्थी: संभावनाएं एवं चुनौतियां

राजेंद्र प्रसाद
सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, केंद्रीय
शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय

किसी भी देश का आर्थिक विकास एवं सतत प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि उस देश के नागरिक एक संसाधन के रूप में कितने कुशल हैं। मानव के चरित्र एवं कौशलों का विकास गुणात्मक शिक्षा के द्वारा ही संभव है, क्योंकि शिक्षा ही वह माध्यम है जो मानव के अंदर छुपी हुई प्रतिभाओं को बाहर निकलती है। इसलिए, मानव के सर्वोत्तम संवर्धन एवं विकास हेतु अच्छी शिक्षा नीतियों का होना अति आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में एक दूरदर्शी एवं व्यापक दृष्टिपत्र होता है जिसके आधार पर सरकार भविष्य में शिक्षा से संबंधित विभिन्न आयामों के परिप्रेक्ष्य में समतामूलक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हेतु नियम कानून बना सकती है। पूर्ववर्ती सरकारों ने राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के केवल उन हिस्सों को लागू किया जिनको लागू करना उस समय उचित समझा गया। यही कारण है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 के दस्तावेज पूर्णतया लागू नहीं किए गए। भारत सरकार द्वारा 2020 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का एक बहुत ही व्यापक दस्तावेज़ प्रकाशित किया गया जिसमें शिक्षा के विभिन्न आयामों पर विस्तृत आधारभूत शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक दूरदर्शी और व्यापक अनुशंसाएं प्रस्तुत की गई हैं। लेकिन प्रस्तुत आलेख विशेष विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था से संबंधित विभिन्न आयामों के विश्लेषण तक ही सीमित है जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 के साथ तालमेल, स्कूल कॉम्प्लेक्स का निर्माण, परख की स्थापना, असमर्थ गंभीर और गहन विद्यार्थी हेतु गृह-आधारित शिक्षा एवं ऑडिट का प्रबंध, शिक्षण के विशिष्ट क्षेत्रों में अल्प-अवधि के सर्टिफिकेट कोर्स का प्रबंध, सक्षम तंत्र की व्यवस्था, पाठ्यचर्या सहायता के माध्यम से पूर्व हस्तक्षेप प्रदान करना, शिक्षा के निजीकरण में विशेष विद्यार्थी एवं चुनौतियां आदि आयामों का विश्लेषण किया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 के साथ तालमेल/अनुरूपता की स्थापना

किसी भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति का विशेष विद्यार्थियों के शैक्षिक सशक्तिकरण हेतु उनसे जुड़े हुए अधिनियम, कानून, नीतियों के साथ तालमेल होना आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि "यह नीति आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 के सभी प्रावधानों के साथ तरह से सुसंगत है तथा स्कूली शिक्षा के संबंध में इसके द्वारा प्रस्तावित सभी अनुशंसाओं को पूर्ण करती है। "राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करते समय एनसीईआरटी द्वारा दिव्यांगजन विभाग के राष्ट्रीय संस्थानों जैसे विशेषज्ञ संस्थाओं के साथ परामर्श सुनिश्चित किया जाएगा" (सेक्शन 6.10, पेज-26)। उपरोक्त उपबंध का सीधा लाभ विशेष अधिगम अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों को होगा क्योंकि उन्हें पीडब्ल्यूडी अधिनियम 1995 में डिसेबिलिटी की श्रेणी में माना ही नहीं गया जबकि यूरोपीय देश पहले ही विशेष अधिगम अक्षमतायुक्त बालकों को एक अलग डिसेबल्ड श्रेणी के रूप में मान चुके थे जिसके कारण पीडब्ल्यूडी अधिनियम 1995 का पूर्ववर्ती शिक्षा नीतियों के साथ अनुरूपता/सामंजस्य ना होने के बजह से विशेष अधिगम अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों के लिए ना तो कोई नियम कानून बन पाया ना ही शिक्षा से संबंधित नीतियों से कोई विशेष लाभ विशेष अधिगम अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों के वर्ग को मिल पाना सुनिश्चित हो पाया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम 2016 के साथ अनुरूपता की स्थापना से न केवल विशेष अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण समावेशी शिक्षा प्राप्त होगी बल्कि उनके सामाजिक समावेशन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम होगा।

स्कूल कॉम्प्लेक्स का निर्माण एवं विशेष विद्यार्थी

यह बात सही है कि प्रत्येक स्कूल के पास शारीरिक शिक्षा, संगीत ,व्यावसायिक शिक्षा आदि के शिक्षकों का अभाव होता है। अच्छे एवं सुगम पुस्तकालयों का की भी कमी होती है। इसलिए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में स्कूल कॉम्प्लेक्स के निर्माण की व्यवस्था दी गई है जिसके द्वारा किसी क्षेत्र में स्थानीय स्तर पर आसपास के विद्यालयों को जोड़ा जाएगा तथा उपलब्ध शिक्षकों तथा संसाधनों का लाभ अधिकतम उठाना संभव हो सकेगा। "स्कूलों में शिक्षकों की साझेदारी को राज्य/ केंद्र शासित प्रदेशों की सरकारों द्वारा अपनी गई ग्रुपिंग-ऑफ़-स्कूल प्रारूप के अनुसार किया जा सकता है"। (सेक्शन 5.6, पेज-20). इसके अलावा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के सेक्शन 7.7 में भी यह व्यवस्था की गई है कि "स्कूल कॉम्प्लेक्स/क्लस्टर बनाने से और कॉम्प्लेक्स में संसाधन के साझे उपयोग से दूसरे भी बहुत से लाभ होंगे, जैसे दिव्यांग बच्चों के लिए बेहतर सहयोग" (पेज-29)। इस व्यवस्था का सीधा लाभ विशेष विद्यार्थियों को भी प्राप्त होगा क्योंकि प्रत्येक स्कूल के पास विशेष शिक्षक नहीं होता तथा विशेष संसाधन कक्ष का भी अभाव होता है जिसमें विशेष विद्यार्थियों के पठन-पाठन से संबंधित सामग्री यथा- ब्रेल वर्णमाला, ब्रेल अंकमला, संकेत भाषा चार्ट, ब्रेल स्लेट, स्टाइलस, मोबाइल केन, बोलने वाली पुस्तकें, एडजेस्टेबल फर्नीचर, आवाज विभेदक खिलौने आदि उपलब्ध होते हैं। स्कूल भौतिक रूप से दूर होते हुए भी संसाधनों के अधिकतम उपयोग की दृष्टि से एक साझेदारी के रूप में परिवर्तित होंगे। जैसे समावेशन मॉड्यूल पर आधारित सामान्य बच्चों के साथ-साथ दिव्यांग बच्चों को सम्मिलित करते हुए अंतर-संस्थागत/ कॉम्प्लेक्स खेलकूद, वाद-विवाद, नाटक, भाषण, सांस्कृतिक कार्यक्रम अदि प्रतियोगिताओं का नियोजन व आयोजन किया जाना। अतः स्कूल कॉम्प्लेक्स के निर्माण से आसपास के स्कूल क्लस्टर में जुड़े हुए विद्यालयों के विशेष विद्यार्थियों को न केवल विशेष शिक्षकों की सेवाओं का लाभ मिलेगा बल्कि संसाधन कक्ष में उपलब्ध विविध उपकरणों का प्रयोग विशेष विद्यार्थियों के अधिगम को सुगम एवं सरल बनाने में अधिकतम उपयोग किया जाना संभव सकेगा। इस प्रकार की प्रतियोगिताएं विशेष विद्यार्थियों में सहभागिता व प्रतियोगी भावना का आधार तैयार करेंगी यह भविष्य में करियर/रोज़गार परक प्रतियोगी परीक्षाओं के परिपेक्ष में आत्मविश्वास निर्माण की दिशा में एक सार्थक कदम साबित होंगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, विशेष विद्यार्थी, परीक्षा, और परख की स्थापना

परीक्षा उच्च एवं निम्न उपलब्धि प्राप्त विद्यार्थियों में क्षमता भेदन करती है। दृष्टि बाधित विद्यार्थियों के लिए परीक्षा से जुड़ी चिंताएं बहुआयामी हैं बल्कि बहुकोणीय हैं यथा- विषय से संबंधित सामग्री को स्वतंत्र रूप से ना खोज पाना एवं विषय सामग्री का ब्रेल लिपि में उपलब्ध न होना आदि। दृष्टि बाधित विद्यार्थियों का लेखन स्वाभाविक नहीं होता है क्योंकि वे कोई भी परीक्षा हस्त लेखक की सहयता से लिखते हैं। कई बार परीक्षा कक्ष में दृष्टिबाधित विद्यार्थी की सोच, प्रश्न के उत्तर को बोलने की शैली, एवं गति का मिलान/ समंजन लेखक की लिखने की गति से नहीं हो पाता जिसके कारण न केवल अधिक समय लगता है बल्कि दोनों में तारतम्यता का अभाव होने के कारण दृष्टिबाधित विद्यार्थी का ध्यान भी प्रश्न के उत्तर से भंग होने की संभावना बनी रहती है जोकि विषय को भूलने की स्थिति को उत्पन्न करने की संभावना का निर्माण भी करती है।. इसके अलावा, दृष्टिबाधित विद्यार्थी को यह भी पता नहीं रहता कि लेखक प्रश्न का उत्तर व्याकरण रूप से कितना शुद्ध लिख रहा है? कहीं मात्राओं की त्रुटि तो नहीं कर

रहा है। क्या लिखावट के शब्दों का आकार एवं स्पेस सही है? क्या लिखने की गति उपयुक्त है आदि प्रश्न उनके की मन में गहरी चिंता उत्पन्न करते हैं।

परीक्षा के परिप्रेक्ष्य में, दृष्टि बाधित छात्रा, स्वीटी, ने परीक्षा के अनुभवों को साझा करते हुए कहा कि "परीक्षा के दिन के सुबह से ही मेरी चिताओं में वृद्धि होने लगती है कि लेखक परीक्षा हॉल में समय से पहुंचेगा या नहीं? लेखक परीक्षा के समय मना भी कर सकता है। मन में डर बना रहता है कि परीक्षा कैसे पूरी होगी? मन में तनाव रहता है कि लेखक ठीक से लिख रहा है या नहीं। कहीं कुछ शब्दों को छोड़ ना दे। लेखक का हस्त लेखन एक बड़ी चिंता होती है कि अगर मूल्यांकनकर्ता को उत्तर समझ में नहीं आया तो हमारे नंबर ठीक आएंगे या फिर नहीं। कभी-कभी लेखक अपनी सुविधा के अनुसार प्रश्न उत्तर लिखने लग जाते हैं। हमारे द्वारा बताए गए प्रश्नों में से कुछ छोड़ने लग जाते हैं। यह सबसे बड़ा डर बना रहता है"। इसी प्रकार, दृष्टिबाधित छात्रा, खुशबू कुमारी, ने कहा कि "मैं हिंदी माध्यम की छात्रा हूं। परीक्षा के दिन में काफी नर्वस महसूस करती हूं क्योंकि एक बार वेस्टर्न पॉलीटिकल थ्योरी वाले पेपर की परीक्षा से पहले हस्त लेखक ने मना कर दिया। मुझे बहुत रोना आ रहा था कहीं फेल न हो जाऊं! उस दिन मुझे डिसेबिलिटी का एहसास हुआ। मेरी कक्षा अध्यापक ने मदद करते हुए कॉमर्स प्रथम वर्ष की इंग्लिश माध्यम की छात्रा को हस्त लेखक बनाया जो कि हिंदी के शब्दों को ठीक से नहीं समझ पा रही थी। उसे मुझे हिंदी की मात्राएं भी बतानी पड़ रही थी। किसी तरीके से मेरा पेपर परीक्षा पूर्ण हुई और मुझे 36 अंक प्राप्त हुए"।

यहाँ प्रश्न दृष्टिबाधित विद्यार्थियों की बुद्धि. मेहनत, प्रतिबद्धता, एवं लगन का है ही नहीं। यहाँ बड़ा प्रश्न उपयुक्त की उपलब्धता, सहयोग,समंजन, समझ, लिखने की गति,एवं व्याकरणीय शुद्धता का है जिस पर काफी हद तक दृष्टि बाधित विद्यार्थी की परीक्षा अंक निर्भर करते हैं जिससे उनका भविष्य निर्धारित होता है। उपरोक्त परीक्षा से संबंधित समस्याओं की परिपेक्ष में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सेक्शन 6.13 में "उपयुक्त आकलन और प्रमाणन के लिए एक अनुकूल इकोसिस्टम बनाने के परिप्रेक्ष्य में यह कहा गया है कि प्रस्तावित नए राष्ट्रीय मूल्यांकन केंद्र सहित मूल्यांकन और प्रमाणन एजेंसियां दिशा निर्देश बनाएंगी और बुनियादी स्तर से लेकर उच्च शिक्षा (प्रवेश परीक्षाओं सहित) के स्तर तक इस तरह के मूल्यांकन के संचालन के लिए उपयुक्त तरीकों की सिफारिश करेगी, जिससे सीखने की अक्षमता वाले सभी छात्रों के लिए समान पहुँच और अवसर सुनिश्चित किया जा सकें" (पेज-27)। इस नीति में परीक्षा से संबंधित समस्याओं के समाधान हेतु कहीं पर भी पाठ्यक्रम में कटौती करना/ कम करना या परीक्षा के भार/बोझ कम करने जैसी कमजोर /असार्थक अनुशंसा नहीं की गई है ताकि किसी भी दशा में दृष्टि बाधित विद्यार्थियों के ज्ञान का विस्तार सीमित ना हो बल्कि इससे आगे देखते हुए परख नामक संस्था की स्थापना की अनुशंसा विभिन्न अक्षमताओं वाले विद्यार्थियों की परीक्षा से संबंधित समस्याओं का निदान एवं सम्यक समाधान प्राप्त होने की दिशा में एक महत्वपूर्ण एवं सार्थक कदम है।

असमर्थ गंभीर और गहन विद्यार्थी, गृह-आधारित शिक्षा एवं ऑडिट का प्रबंध

गंभीर श्रेणी के विशेष विद्यार्थी कहीं ना कहीं औपचारिक शिक्षा में पिछड़ जाते हैं। गंभीर श्रेणी की दिव्यांगता उनके शैक्षिक हांशियाकरण का एक बड़ा कारण होती है क्योंकि एक तरफ उनकी आवश्यकताओं के अनुसार विद्यालयों में संसाधनों की उपलब्धता का अभाव होता है वहीं दूसरी ओर उनके सामान्य विद्यार्थियों के साथ समायोजन जैसे गंभीर मुद्दे को हल करना एक अतिरिक्त चुनौती होती है। इसलिए, राष्ट्रीय शिक्षा नीति के (सेक्शन-6.12) में यह प्रावधान किया गया है कि "स्कूल जाने में असमर्थ गंभीर और गहन दिव्यांगता वाले बच्चों के लिए गृह-आधारित शिक्षा के रूप में एक विकल्प उपलब्ध रहेगा। गृह-आधारित शिक्षा के तहत शिक्षा ले रहे बच्चों को अन्य सामान्य प्रणाली में शिक्षा ले रहे किसी भी अन्य बच्चे के समतुल्य माना जाएगा। गृह-आधारित शिक्षा की दक्षता एवं प्रभावशीलता की जांच हेतु समता व अवसर की समानता के सिद्धांत के आधार पर ऑडिट कराया जाएगा"

(पेज-27)। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति में गंभीर श्रेणी के विशेष विद्यार्थियों के पठन-पाठन हेतु शिक्षा के समतामूलक अधिकार को सुनिश्चित करने हेतु औपचारिक शिक्षा का विस्तार उनके घर तक किया जाना सुनिश्चित गया है ताकि वे भी औपचारिक शिक्षा प्रणाली का एक अहम हिस्सा बनकर समावेशित हो सकें जिससे उनके शैक्षिक बहिष्करण को रोका जाना सुनिश्चित किया जा सके।

शिक्षा में विशेष विद्यार्थियों के नामांकन में वृद्धि के परिप्रेक्ष्य में गंभीर चिंताएं

जनगणना 2011 की रिपोर्ट के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़ में से 2.68 करोड़ पर्सन्स विद डिसेबिलिटी हैं जो कि कुल जनसंख्या का 2.1% प्रतिनिधित्व करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 यू-डीआईएसई के आंकड़ों को आधार बनाते हुए दिव्यांग बच्चों के नामांकन के परिप्रेक्ष्य में कहती है कि "दिव्यांग बच्चों का नामांकन प्राथमिक स्तर पर 1.1% है जो गिरकर माध्यमिक स्तर पर 0.25% हो जाता है। यह बहुत ही अधिक गंभीर विषय है" (सेक्शन 6.2.1, पेज-25)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रदर्शित उपरोक्त आंकड़ों से पता चलता है कि दिव्यांग बच्चों का नामांकन1.1% प्राथमिक स्तर पर भी बहुत ही निम्न स्तरीय है जो कि माध्यमिक स्तर पर जाकर और अधिक घट जाता है। इसके अलावा दिव्यांगजनों की उच्च शिक्षा स्तर पर नामांकन की स्थिति तो और अधिक दयनीय है क्योंकि ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन (2020-21) की रिपोर्ट के अनुसार उच्च शिक्षा में मात्र 79035 दिव्यांगजन नामांकित हैं जो की 0.001 % से भी कम है। अतः यह आश्चर्जनक है कि दिव्यांगजनों की जनसंख्या भारत में करोड़ों में है जबकि उच्च शिक्षा में नामांकन की स्थिति लाख में भी नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में दिव्यांगजनों के नामांकन स्थिति को गंभीर स्तरीय बताए जाने के कारण भविष्य में उनके नामांकन में वृद्धि करने हेतु विशेष प्रयास होने की संभावना है।

शिक्षण के विशिष्ट क्षेत्रों में अल्प-अवधि के सर्टिफिकेट कोर्स की व्यवस्था

सामान्य विद्यार्थियों की पढ़ाने की कला (पेडागोजी) से विशिष्ट विद्यार्थियों को पढ़ना उतना प्रभावकारी नहीं होता है क्योंकि विशिष्ट विद्यार्थियों को पढ़ाने की कला एवं युक्ति आवश्यकता आधारित होती है जैसे-दृष्टिबाधित विद्यार्थियों को ब्रेल लिपि के द्वारा पढ़ाया जाता है जिसे सामान्य शिक्षक सामान्यतः नहीं जानते क्योंकि ब्रेल लिपि का प्रशिक्षण सामान्य शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम का हिस्सा नहीं होता। शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में दृष्टिबाधित छात्रों की समस्याओं के बारे में सामान्य जानकारी शिक्षक को दृष्टिबाधितों दृष्टिबाधितों के शिक्षण हेतु दक्ष बनाने में पूर्णता सक्षम नहीं होती। वहीं पर श्रवण बाधित विद्यार्थियों को संकेत भाषा के द्वारा पढ़ाया जाना प्रभावकारी होता है जिसका प्रशिक्षण भी सामान्य प्रशिक्षण कार्यक्रम का हिस्सा नहीं होता। इसी प्रकार, विशेष अधिगम अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों जैसे-डिस्लेक्सिया या डिस्केलकुलिया अधिगम अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों को सामान्य शिक्षण तकनीकियों से शिक्षण, पठन-पाठन किया जाना उत्पादकता पूर्ण एवं प्रभावी नहीं होता क्योंकि शिक्षण अधिगम सामग्री का निर्माण भी अलग-अलग विशेष आवश्यकता युक्त विद्यार्थियों की आवश्यकता के आधार पर किया जाता है यद्यपि दृष्टि बाधित एवं श्रवण बाधित विद्यार्थियों को पढ़ने हेतु तो कुछ कोर्स भारत में उपलब्ध हैं लेकिन विशेष अधिगम अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों के पठन-पाठन की आवश्यकताओं संदर्भ में शिक्षक तैयार करने के परिपेक्ष में शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का बहुत अधिक अभाव है। इसलिए, उपरोक्त पढ़ने की कला, युक्ति, एवं तकनीकी के परिप्रेक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सेक्शन 5.26 में यह व्यवस्था की गई है कि "बहु- विषयक कॉलेज और विश्वविद्यालय में शिक्षकों को बी.एड. के बाद कुछ अल्प-अवधि के सर्टिफिकेट कोर्स भी व्यापक रूप से उपलब्ध कराए जाएंगे विशेष रूप से विशेष जरूरत वाले विद्यार्थियों के शिक्षक के संदर्भ में(पेज-24)। इसके अलावा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति का सेक्शन 6.14 अधिगम अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों के पठन-पाठन की

समस्याओं को रेखांकित करते हुए यह प्रबंध करता है कि "विशिष्ट दिव्यांगता वाले बच्चों (सीखने से संबंधित अक्षमताओं के साथ) को कैसे पढ़ाया जाए, इससे संबंधित जागरूकता और ज्ञान को सभी शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए" (पेज-27)।. राष्ट्रीय शिक्षा नीति की उपरोक्त अनुशंसा से भविष्य में अच्छे परिणाम प्राप्त होने की संभावना है क्योंकि विशेष विद्यार्थियों के उत्पादकता व सुगम अधिगम हेतु विशेष शिक्षकों के एक समूह का निर्माण हो सकेगा जिससे विशेष विद्यार्थियों को सामान्य विद्यार्थियों की तरह गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हेतु समतामूलक अवसर प्राप्त हो सकेंगे।

सक्षम तंत्र विकसित कर विशेष आवश्यकता बच्चों को सहायता प्रदान करना-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 भारत में दिव्यांग बच्चों सहित सभी बच्चों के लिए स्कूलों को बेहतर बनाने में मदद करने पर बल देती है। साथ ही नीति यह सुनिश्चित करती है कि दिव्यांग बच्चे अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर सकें और अपने लक्ष्य तक पहुंच सकें। नीति बल देती है कि नीति निर्माता, शिक्षकों और समुदाय जैसे लोग मिलकर काम करें, तो एक बड़ा बदलाव लाया जा सकता है और दिव्यांग बच्चों की मदद की जा सकती है जिससे सुनिश्चित होगा कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने हेतु समता मूलक अवसर सुलभ हो सकें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति छात्रवृत्ति एवं नकद हस्तांतरण के माध्यम से आर्थिक बाधा को कम करने का प्रयास करती है जबकि परिवहन सहायता के माध्यम से विद्यालय पहुँच को आसान बनाने का प्रयास करती है क्योंकि कई क्षेत्रों में विद्यालय घर से काफी दूरी पर स्थित हैं जिस कारण से अभिभावक अपने बच्चों को विद्यालय भेजने में असहज महसूस करते हैं और अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेजते हैं। ऐसा विशेष आवश्यकता युक्त लड़के एवं लड़कियों के साथ अधिक होता है। ऐसी स्थिति में परिवहन सहायता के माध्यम से दिव्यांग बच्चों की स्कूली भागीदारी गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्रदान करना सुनिश्चित हो सकता है। इस हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति छात्रवृति, नकद हस्तांतरण एवं परिवहन सहायता के माध्यम से सहायता प्रदान करने की व्यवस्था करती है जिससे कि विशेष आवश्यकता बच्चों की स्कूली भागीदारी बढ़ाई जा सके (सेक्शन 6.11, पेज-26)।

इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय शिक्षा नीति गंभीर दिव्यांगता वाले बच्चों की आवश्यकता पूर्ति हेतु संसाधन केंद्र की स्थापना करने पर बल देती है क्योंकि गंभीर दिव्यांगता वाले बच्चों को अधिक बाधा का सामना करना पडता है इस अनुशंसा द्वारा गंभीर दिव्यांगता के कारण शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभावों के अंतर को कम किया जा सकेगा (सेक्शन 6.11, पेज-26)। साथ ही नीति कक्षा गतिविधि में सुगम भागीदारी के लिए सहायक उपकरण उपलब्धता सुनिश्चित करने पर बल देती है। दिव्यांग बच्चों को कक्षा सहायता के लिए सहायक उपकरणों की आवश्यकता होती है, तकनीकी सहायता एवं शिक्षण सामग्री उपलब्धता के माध्यम से सहायता प्रदान करके दिव्यांग बच्चों को सीखने-सिखाने की प्रक्रिया आसान बनाया जा सकता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति माता-पिता एवं अभिभावकों का कौशल विकास के माध्यम से देखभाल प्रक्रिया में सुधार करने पर बल देती है (सेक्शन 6.11, पेज-26) जिससे दिव्यांग बच्चों के जीवन पर दिव्यांगता के प्रभावों को कम किया जा सके क्योंकि दिव्यांग बच्चों की देखभाल करने की मुख्य जिम्मेदारी परिवार की होती है। परिवार ही वह संस्था है जो दिव्यांग बच्चे के सामाजिक भागीदारी एवं समाजीकरण में प्रमुख सहयोग देती है। अतः माता-पिता एवं अभिभावकों का कौशल विकास के माध्यम से दिव्यांगता के प्रभाव को न्यूनतम करके दिव्यांग बच्चों के जीवन स्तर में सुधार सुनिश्चित करना इस नीति के प्रमुख प्रावधानों में से एक है।

विशेष विद्यार्थियों हेतु आधारभूत शिक्षा की सर्वोच्च प्राथमिकता

प्रारंभिक बाल्यकाल देखभाल शिक्षा जिसे आधारभूत शिक्षा भी कहा जाता है, को पूर्व हस्तक्षेपी शिक्षा के रूप में माना जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति आधारभूत शिक्षा में दिव्यांग बच्चों को सम्मिलित करके समान भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु सर्वोच्च प्राथमिकता देती है। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति विशेष आवश्यकता बच्चों को आधारभूत स्तर की शिक्षा में सम्मिलित करके, तात्कालिक हस्तक्षेप प्रदान करके दिव्यांगता के कारण बच्चे के जीवन पड़ने वाले प्रभावों को बाल्यकाल से ही कम करने का प्रबंध करती है (सेक्शन 6.10, पेज-26)। सभी बच्चों को साथ सीखने (दिव्यांग एवं सामान्य बच्चों) के लिए प्रणाली विकसित कर विशेष आवश्यकता की पूर्ति करना भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य है।

पाठ्यचर्या सहायता के माध्यम से पूर्व हस्तक्षेप प्रदान करना

सभी बच्चों को लिए एक समान पाठ्यचर्या का उपयोग उचित नहीं होता क्योंकि सभी बच्चों में सीखने की विशेष क्षमता एवं गति होती है। विशेष तौर पर विशेष विद्यार्थियों में सीखने की गति एवं क्षमताओं का विचलन कुछ अधिक होता है। इसीलिए नीति बल देती है कि पाठ्यचर्या विकास के दौरान विशेष आवश्यकता बच्चों को ध्यान में रखकर पाठ्यचर्या विकसित करना अति आवश्यक कदम होता है इसलिए, "राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा तैयार करते समय एनसीईआरटी द्वारा दिव्यांगजन विभाग की राष्ट्रीय संस्थानों जैसे विशेषज्ञ संस्थानों के साथ परामर्श सुनिश्चित किया जाएगा" (सेक्शन 6.10, पेज-26)। यह प्रावधान विशेष विद्यार्थियों के सीखने के अंतराल को कम करने में सहायक होगा क्योंकि विशेष आवश्यकता बच्चों को कक्षा में सीखने में समस्या का सामना करना होता है ऊपर से सामान्य शिक्षक विशेष समस्या समाधान करने की कला में पूर्ण रूप से निपुण नहीं होते। राष्ट्रीय शिक्षा नीति विद्यालय परिसर को बधारहित बना कर विशेष आवश्यकता बच्चों के अनुकूल बनाने पर बल देती है जिससे कि विशेष आवश्यकता बच्चों को स्कूल पहुँच आसान बन सके एवं भवन भी उनके अनुकूल बनाने पर भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति बल देती है (सेक्शन 6.11, पेज-26)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं शिक्षा के निजीकरण में विशेष विद्यार्थी

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का दस्तावेज शिक्षा के निजीकरण की ओर इशारा करता है जिससे राज्यों की भूमिका सीमित होने की संभावना को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता लेकिन इस दस्तावेज में कहीं पर भी यह भी नहीं कहा गया है कि सरकार की भूमिका सीमित रहेगी या अपने उत्तरदायित्व से हाथ खींचेगी बल्कि इसके उलट यह सिफारिस की गई है कि सरकार को शिक्षा पर और अधिक पैसा खर्च करना चाहिए। सरकार के इंटरवेंशन के बिना स्कूल अच्छे तरीके से संचालित नहीं हो सकते लेकिन कहीं ना कहीं शिक्षा के निजीकरण को सही तरीके से एड्रेस नहीं किया जाना प्रदर्शित होता है क्योंकि विशेष विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था बिना सरकारी क्षेत्र के अधूरी रहेगी। इसका कारण यह है कि शिक्षा के बाजारीकरण के मूल में कहीं ना कहीं लाभांश छुपा होता है इसलिए शिक्षा के बाजारीकरण के लाभ के हिस्से के कारण विशेष विद्यार्थियों के कहीं ना कहीं शिक्षा के संदर्भ में पीछे रह जाने की संभावना के निर्माण से इनकार तो नहीं किया जा सकता। लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति विशेष विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में ठोस प्रबंध करते हुए यह प्रावधान करती है कि "दिव्यांग बच्चों की शिक्षा राज्य की जिम्मेदारी है" (सेक्शन-6.12, पेज 27)। अतः कहा जा सकता है कि शिक्षा के निजीकरण का प्रभाव विशेष विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था पर पड़ने की संभावना कम है लेकिन राइट टू एजुकेशन अधिनियम (2009) के अधीन निजी शिक्षण संस्थानों में आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों के लिए निर्धारित 25% आरक्षण में विशेष विद्यार्थियों के प्रतिनिधित्व के संदर्भ में कुछ ठोस कदमों का अभाव अवश्य दिखता है। इसलिए, शिक्षा के निजीकरण , 25%आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों

के लिए निर्धारित आरक्षण में विशेष विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था के आलोक में शिक्षा के निजीकरण को नए सिरे से मूल्यांकन करने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति और चुनौतियां

यद्यपि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विशेष विद्यार्थियों की गुणात्मक एवं समावेशी शिक्षा हेतु ठोस प्रावधान किए गए हैं लेकिन इन्हें लागू करने के मार्ग में कुछ चुनौतियां नजर आती हैं जिनका विश्लेषण निम्न प्रकार किया गया है।

विशेष विद्यार्थियों के समूह की पहचान की चुनौती

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में "सामाजिक न्याय और समानता प्राप्त करने हेतु शिक्षा को एकमात्र और सबसे प्रभावी साधन माना गया है" (सेक्शन 6.1, पेज-24)। इसलिए, राष्ट्रीय शिक्षा निति सेक्शन 6.6 में सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े एवं वंचित समूह की शैक्षिक असमानता के संदर्भ में भौगोलिक रूप से आकांक्षी क्षेत्रों में शैक्षिक प्रदर्शन को बदलने के लिए न केवल विशेष हस्तक्षेप पर बल दिया गया है बल्कि शिक्षा हेतु शिक्षा प्रणाली और सरकारी नीतियों को प्रभावित तरीके से लागू करने के लिए स्पेशल जोन बनाने की संस्तुति की गई है जिसमें विशेष विद्यार्थी भी शामिल हैं लेकिन यहां पर सबसे बड़ी चुनौती यह है कि सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े एवं वंचित समूहों की पहचान तो जनगणना 2011 के आंकड़ों के आधार पर की जा सकती है लेकिन विशेष विद्यार्थियों के समूह की पहचान करना चुनौती पूर्ण कार्य है क्योंकि विशेष विद्यार्थी किसी स्पेशल जोन में निवास नहीं करते। इसके अलावा, सभी प्रकार की दिव्यांग श्रेणी के परिप्रेक्ष्य में जनगणना के आंकड़े मौजूद नहीं हैं क्योंकि पीडब्ल्यूडी एक्ट, (1995) में मात्र 7 प्रकार की निःशक्तताओं का वर्णन था जिसके आधार पर 2011 की जनगणना संपादित की गई लेकिन पीडब्ल्यूडी एक्ट, (2016) के अनुसार 21 प्रकार की निशक्ताओं का वर्णन किया गया है जिनके आंकड़े अभी तक मौजूद नहीं हैं क्योंकि 2011 के बाद कोई भी जनगणना नहीं हुई है। जनगणना के आंकड़ों के अभाव में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सेक्शन 6.2 में दिए गए प्रावधानों को विशेष विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य में प्रभावित तरीके से लागू करना नीति निर्धारक, प्रशंसकों, एवं भारत सरकार के लिए एक बड़ी चुनौती उभर कर सामने आ सकती है क्योंकि विशेष विद्यार्थियों की परिपेक्ष में स्पेशल जोन घोषित करने हेतु मानकों एवं मापदंड के अभाव में उनके शैक्षिक विकास हेतु किसी विशेष हस्तक्षेप को लागू करना एक बड़ी चुनौती होगी।

विभिन्न मंत्रालयों एवं रेगुलेटरी बॉडीज में समन्वय के स्थापना की चुनौती

विशेष विद्यार्थियों के सशक्तिकरण एवं शिक्षा के क्षेत्र में भारत में मौजूद विभिन्न मंत्रालय/ रेगुलेटरी बॉडीज अलग-अलग तरीके से काम करती हैं उदहारण- सामाजिक न्याय एवं सशक्तिकरण मंत्रालय, मिनिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन , कानून एवं न्याय मंत्रालय, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग, भारतीय पुनर्वास परिषद, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद ऊपर से अलग-अलग राज्यों में प्रत्येक राज्य की अलग-अलग रेगुलेरिटीज बॉडीज होती हैं। इनमें एक साथ संयोजन, सहयोग व साझेदारी स्थापित होना एक बड़ी चुनौती होगी। हालांकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति में यह कहा गया है कि सारी रेगुलेटरी बॉडीज को एजुकेशन कमिशन ऑफ़ इंडिया के बैनर तले जोड़ा जाएगा लेकिन फिर भी वर्तमान परिस्थितियों में उपरोक्त सभी रेगुलेटरी बॉडीज के मध्य एक सकारात्मक तालमेल स्थापित करना आसान कार्य नहीं होगा। आइये, इसे एक उदाहरण से समझते हैं। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद सामान्य बच्चों के शिक्षकों के लिए शिक्षक तैयार करने हेतु विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का नियोजन एवं क्रियान्वयन करती है। वहीं पर भारतीय पुनर्वास परिषद, विशेष विद्यार्थियों से जुड़े शिक्षक प्रशिक्षण विभिन्न कार्यक्रमों नियंत्रण, नियोजन एवं क्रियान्वयन का कार्य करती है। अतः दोनों रेगुलेटरी बॉडीज का एक ही काम शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों

के द्वारा कुशल, दक्ष ,और प्रतिबद्ध शिक्षकों का निर्माण है लेकिन राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद मिनिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन के अधीन है वहीं पर भारतीय पुनर्वास परिषद,सामाजिक न्याय एवं सशक्तिकरण मंत्रालय के अधीन कार्य करती है। यही कारण है कि संपूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्पेशल एजुकेशन जैसे शब्द का इस्तेमाल न करके समावेशन शब्द का इस्तेमाल पर अधिक बल दिया गया है। अतः यहां प्रश्न उठता है कि जब दोनों परिषदों का काम एक ही है तो क्यों ना इन दोनों को एक ही मिनिस्ट्री के अधीन लाया जाए जिससे दोनों रेगुलेटरी बॉडीज में सार्थक समन्वय के साथ-साथ बेहतर साझेदारी स्थापित हो सके।

विशेष शिक्षकों की कमी को पूर्ण करना

शिक्षा की संरचना में दिव्यांग बच्चों को प्रारंभिक बाल्यकाल देखभाल शिक्षा में सम्मिलित करने से अतिरिक्त विशेष शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी। पीडब्ल्यूडी एक्ट, (1995) में दिए गए सात प्रकार की निःशक्तताओं के लिए कहीं ना कहीं विशेष शिक्षक मौजूद होंगें लेकिन शेष बची हुई 14 निःशक्तताओं के लिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम मौजूद नहीं हैं क्योंकि शेष 14 नई निःशक्तताओं को पीडब्ल्यूडी एक्ट, (2016) के द्वारा सम्मिलित किया गया है जिसके आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई गई है। अतः न केवल प्रारंभिक बाल्यकाल देखभाल शिक्षा के लिए बल्कि शिक्षा के अन्य स्तरों के परिप्रेक्ष में विशेष शिक्षक प्रशिक्षण प्रशिक्षकों के शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना भी एक चुनौती पूर्ण कार्य होगा ताकि विशेष विद्यार्थियों को भी सामान्य विद्यार्थियों के समान समतामूलक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिल सके।

गृह-आधारित शिक्षा हेतु विशेष शिक्षक प्रशिक्षण एवं ऑडिट मानदंडों के निर्माण की चुनौती

राष्ट्रीय शिक्षा नीति गहन एवं गंभीर श्रेणी के विशेष विद्यार्थियों को गृह-आधारित शिक्षा को एक विकल्प के रूप में प्रदान करने की संस्तुति करती है लेकिन इस प्रावधान को लागू करना भी चुनौती पूर्ण कार्य होगा क्योंकि गृह-आधारित शिक्षा हेतु भारत में अभी तक कोई शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम नहीं है जो गृह-आधारित शिक्षा हेतु शिक्षक तैयार करता हो हालांकि दिव्यांगजनों से जुड़े हुए राष्ट्रीय संस्थान कुछ ऐसे कुछ कोर्स चलाते हैं जिनको केवल देखभालकर्ता (केयर गिवर) कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है लेकिन देखभालकर्ता (केयर गिवर) कार्यक्रमों को शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इनमें कहीं पर भी पढ़ने की कला, युक्ति, तकनीकी,पाठ्यचर्या निर्माण,पाठ्य सहगामी गतिविधियों का आयोजन एवं संगठन आदि तत्वों का कोई स्थान नहीं होता। देखभालकर्ता कार्यक्रम केवल इस बात पर बल देते हैं कि गंभीर दिव्यांगता से पीड़ित बालकों की देखभाल कैसे की जाए? राष्ट्रीय शिक्षा नीति गहन एवं गंभीर श्रेणी के विशेष विद्यार्थियों हेतु चलाई जाने वाली गृह-आधारित शिक्षा की प्रभाव शीलता का परीक्षण ऑडिट के माध्यम से करने की संस्तुति करती है। अतः इस संदर्भ में गृह-आधारित शिक्षा की ऑडिट हेतु उन मानकों एवं मापदंडों का निर्माण करने की चुनौती संबंधित रेगुलेटरी बॉडी के लिए होगी।

विशेष विद्यार्थी, ऑनलाइन एजुकेशन, डिजिटल डिवाइड, और सुगंम्यता

ऑनलाइन एजुकेशन का संदर्भ यथा- ऑनलाइन एजुकेशन आर्थिक रूप से कमजोर एवं अन्य वंचित समूहों तक कैसे पहुंचे, का विषय चर्चा में बना रहता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति देश में ऑनलाइन एजुकेशन के माध्यम से भी शिक्षा प्रदान करने की संस्तुति करती है लेकिन इस प्रावधान को लागू करने से पहले विशेष विद्यार्थियों के परिपेक्ष में डिजिटल डिवाइड की समस्या का समाधान करना होगा। डिजिटल डिवाइस न केवल विशेष विद्यार्थियों हेतु उपलब्ध

हों बल्कि सुगम भी होनी चाहिए ताकि विशेष विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से बिना दूसरों पर निर्भर हुए इनका प्रयोग करके ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसके अलावा, डिसेबिलिटी फ्रेंडली सॉफ्टवेयर्स का उपलब्ध होना भी अति आवश्यक है अन्यथा विशेष विद्यार्थियों का ऑनलाइन एजुकेशन में पिछड़ जाने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

विशेष शिक्षक प्रशिक्षकों के बिना विशेष शिक्षकों का निर्माण कैसे?

राष्ट्रीय शिक्षा नीति विशेष विद्यार्थियों की गुणात्मक शिक्षा हेतु शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में गुणात्मक सुधार हेतु अनुशंसा करती है ताकि दक्ष एवं कौशलपूर्ण विशेष शिक्षकों का निर्माण संभव हो सके लेकिन यह अनुशंसा उन परिस्थितियों में ही साकार रूप ले सकती है जब विशेष शिक्षकों को शिक्षक प्रशिक्षण प्रदान करने वाले विशेष प्रशिक्षक (स्पेशल टीचर एजुकेटर) उपलब्ध हों। अतः सर्वप्रथम विशेष टीचर एजुकेटर के निर्माण हेतु सशक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम होना चाहिए ताकि अच्छे विशेष शिक्षकों का निर्माण किया जाना संभव हो सके क्योंकि किसी भी शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उनका प्रशिक्षण प्रदान करने वाले प्रशिक्षक कितने दक्ष एवं कौशल पूर्ण हैं, का राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अच्छी शिक्षकों के निर्माण पर तो चर्चा हुई है लेकिन निपुण शिक्षक प्रशिक्षकों के निर्माण पर उतना ध्यान नहीं दिया गया है।

निष्कर्ष

विशेष विद्यार्थियों के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के विभिन्न प्रावधानों एवं आयामों के विश्लेषण से यह साबित होता है कि यह नीति समता मूलक और समावेशी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु प्रतिबद्ध है क्योंकि यह नीति न केवल विशेष विद्यार्थियों की विभिन्न समस्याओं की पहचान करती है बल्कि उनके समाधान हेतु ठोस अनुशंसाएं भी करती है। सभी प्रकार की निशक्तताओं एवं अधिगम अक्षमतायुक्त विद्यार्थियों हेतु गुणात्मक समावेशी शिक्षा सुनिश्चित करने के साथ-साथ बाधारहित वातावरण एवं सुगमता आदि पर बल देती है। गृह-आधारित शिक्षा गंभीर दिव्यांगजनों के हाशियाकरण को रोकने हेतु एक सक्षम तंत्र साबित हो सकती है। वहीं पर दिव्यांगजनों की परीक्षा से संबंधित समस्याओं के समाधान हेतु परख की स्थापना अच्छी पहल है लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति को प्रभावी ढंग से लागू करने के मार्ग में चुनौतियां भी कम नहीं हैं जिनके प्रभाव को कम करने हेतु ठोस कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। अतः समग्र रूप में कहा जाय तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति विशेष विद्यार्थियों की शिक्षा व्यवस्था के नियमन, गवर्नेंस, पुनर्गठन के साथ-साथ सभी पक्षों में सुधार हेतु ठोस प्रस्ताव प्रस्तुत करती है ताकि विशेष विद्यार्थी बदलते हुए वैश्विक तंत्र, रोजगार, एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों पक्षों में अपने आप को पीछे ना पाएं।

संदर्भ

मिनिस्ट्री ऑफ़ लॉ एंड जस्टिस (लेजिसलेटिव डिपार्मेंट) (2016) द राइट्स ऑफ़ पर्सन्स विद डिसेबिलिटीज एक्ट,2016 http://www.upfcindia.com/documents/rpwd_101017.pdf

मिनिस्ट्री ऑफ़ लॉ, जस्टिस एवं कंपनी अफेयर्स (लेजिसलेटिव डिपार्मेंट) पीडब्ल्यूडी एक्ट, (1995) द पर्सन्स विद डिसेबिलिटीज (एकवेल अपॉर्चुनिटी, प्रोटेक्शन ऑफ़ राइट्स एंड फुल पार्टिसिपेशन) एक्ट, 1995. https://sjsa.maharashtra.gov.in/sites/default/files/pwd-act-1995-eng.pdf

मिनिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन (2023) ऑल इंडिया सर्वे ऑन हायर एजुकेशन (2020-21) (एआईएसएचई) भारत सरकार। https://aishe.gov.in/aishe/BlankDCF/AISHE%20Final%20Report%202020-21.pdf

ऑफिस ऑफ़ द रजिस्ट्रार जनरल और सेंसस कमिश्नर, इंडिया 2011 सेंसस ऑफ़ इंडिया 2011, भारत सरकार।. https://censusindia.gov.in/census.website/data/census-tables

मिनिस्ट्री आफ ह्यूमन रिसोर्स एंड डेवलपमेंट (2009) द राइट ऑफ़ चिल्ड्रन टू फ्री एंड कंपल्सरी एजुकेशन एक्ट,2009, भारत सरकार।

मिनिस्ट्री ऑफ़ ह्यूमन रिसोर्स एंड डेवलपमेंट (1968) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 भारत सरका। https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/NPE-1968.pdf

मिनिस्ट्री ऑफ़ ह्यूमन रिसोर्स एंड डेवलपमेंट (1986). राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986, डिपार्टमेंट ऑफ़ एजुकेशन, भारत सरकार । https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/NPE86-mod92.pdf

मिनिस्ट्री ऑफ़ ह्यूमन रिसोर्स एंड डेवलपमेंट (1986). संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1992, डिपार्टमेंट ऑफ़ एजुकेशन, भारत सरकार। https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/NPE86-mod92.pdf

अध्याय-19

उपनिषदों एवं भगवदगीता में अधिकारों की संकल्पना: भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों के विशेष संदर्भ में

रजत कोहली
शोध छात्र,
राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय,मेरठ

मानसी त्यागी
शोध छात्रा,
राजनीति विज्ञान विभाग,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

भारत में मनुष्य का जीवन मिलना दुर्लभ एवं मुक्ति के लिए अवसर की दृष्टि से देखा जाता है, क्योंकि मनुष्य रहते ही मुक्ति की संभावना होती है, यहाँ मुक्ति का अभिप्राय जीवन- मृत्यु चक्र से मुक्ति को लेकर है। 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्यां'[1] का उपनिषदो के भाष्य में प्रयुक्त यह वाक्य इस बात की पुष्टि ही नहीं परंतु जीवन का एक दर्शन हमारे समक्ष रखता है। जगत को मिथ्या बताने वाला यह वाक्य इंद्रियगोचर इस जगत को प्रकृति द्वारा रचित माया बताता है जो ईश्वरीय प्रेरणा से रची गई है। मनुष्य के पास विवेक का ऐसा यंत्र है जिसके माध्यम से वह विकास के पथ पर सदा से चलता आया है ओर पृथ्वी के समस्त जीवो में प्रथम स्थान ग्रहण किया है। महाभारत के शांतिपर्व में भी यह श्लोक भलीभाँति इस बात को प्रदर्शित करता है, यह इस प्रकार है

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।

धर्मो हि तेषामधिको विशेष: धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥[2]

यानि आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये तो पशु एवं मानवों में समान है जो मानव को पशु से भिन्न करता है, वह धर्म है। धर्म विवेकशील बुद्धि की देन है। मानव के विकास की दृष्टि से स्वतंत्र विचारों का प्रवाह एवं मनुष्य का विवेक परस्पर अवलंबित है क्योंकि विवेकशील बुद्धि द्वारा ही स्वतंत्र विचारों का निर्माण किया जा सकता है तथा विवेकशील प्राणी को अपने विचारों को समाज के समक्ष रखने हेतु स्वतंत्र विचारों को ग्रहण करने वाले समाज की आवश्यकता होती है। संपूर्ण विश्व लंबे समय से मानव सभ्यता के विकास के दृष्टिकोण से ऐसे क्रियाकलापों में सन्निहित है जिसके माध्यम से जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से आगे जाकर ज्ञान के शिखर को प्राप्त किया जा सके, परंतु मानव व्यवहार जिसमें पाशविक वृति के अंश सदा से ही मौजूद है, इस ध्येय में बाधक बनकर खड़े रहते है। जो विवेक मनुष्य को पशु से भिन्न करता है, वह ही उसे पुनः पशु बनने में सहायक भी है क्योंकि जब तक विवेक इंद्रियों द्वारा इस संसार को जानने-पहचानने एवं अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु इस्तेमाल किया जाए तब तक तो ठीक परंतु जब ये विवेक इंद्रियों से परे देखे बगेर पूर्ण रूप से स्वयं को केंद्र में रखकर इसका इस्तेमाल कर इंद्रिय सुख में डूब जाए, उसके बाद वह अपने सिवा कुछ नहीं देखता इस प्रकार ये दो धारी तलवार की तरह काम करता है। भारतीय साहित्य में तो इसके बहुत से उदाहरण मिलते है कि कैसे सदबुद्धि को श्रेष्ठ माना गया परंतु जर्मन चिंतकों द्वारा भी इसको प्रदर्शित किया गया कि कैसे निरे विवेक से कुबुद्धि इस संसार में त्राहि मचा सकती है, इमेनुएल काँट

अपनी पुस्तकों, 'क्रिटीक ऑफ प्युर रीज़न' एवं 'क्रिटीक ऑफ प्रैक्टिकल रीज़न' में इसका विरोध करते है एवं बिसवी शताब्दी के जर्मन चिंतक फ्रेडरिक नीत्शे भी विवेक की मर्यादाओ को दर्शाते है। इसी कुबुद्धि को संयमित करने हेतु प्राचीन समय से ही वैधिक एवं दंड की व्यवस्था का निर्माण हुआ जिसे पूरे विश्व ने प्रकारांतर से अपने-अपने राज्यों में आत्मसात किया। दंड की उपयोगिता कौटिल्य के इस वाक्य से समझ आ जाती है जब वह कहता है

न ह्योवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दंड इत्याचार्या:[3]

यानि 'दंड के सिवा ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मनुष्य को नियंत्रण में कर सके'। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस प्रकार की दंड एवं विधान की आवश्यकता है जिससे समाज में अराजकता ना पोषित हो पाए। राज्य जैसी संस्था की उत्पत्ति का एक यह भी कारण, कौटिल्य के सामाजिक समझौता से इंग्लैंड के सोलहवी एवं सत्रहवी शताब्दी के सामाजिक समझौता वादियों में जिसमें थॉमस हॉबस और जॉन लॉक मुख्य है, अनायास ही दिखता है। मानव के ऊपर बहुत से संस्थानों के नियंत्रण के कारण जिसमें धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक शामिल है, मानव की स्वतंत्रता को गहरी चोट पहुंचाए जाने के बाद मानव अधिकारो, विधि के शाषन, संविधानवाद की बात शुरू हुई और वहीं से प्रकारांतर से राज्यों द्वारा अपने संविधान निर्माण के दौरान कुछ मौलिक अधिकारो को संविधान का हिस्सा बनाया, जो अधिकार मानव के विकास में सहयोगी सिद्ध होंगे। भारतीय संविधान में भी मौलिक अधिकारों की व्याख्या संविधान के भाग तीन में की गई है, विद्वानों का यह मत कि भारत ने अपने मौलिक अधिकारो को अमेरिकी संविधान के बिल ऑफ राइट्स से लिया है, इसमें पूरी सच्चाई नहीं है। मौलिक अधिकारो की भाषा वह हो सकती है जो अमेरिकी संविधान में रही हो परंतु इस बात में कोई संदेह नहीं किया जा सकता की कोई भी विचार आकस्मक रूप से जन्म नहीं लेता परंतु एक पूरी यात्रा तय करता है, उसके पीछे पूरा दर्शन काम करता है। यह दर्शन भारत में भी थोड़े प्रयत्न करने पर दिखने लगता है। सुभाष कश्यप अपनी पुस्तक 'हमारा संविधान' में लिखते है 'धर्म की प्रभुत्वता की अवधारणा किसी भी प्रकार विधि के शासन, संविधानवाद या सीमित सरकार से भिन्न नहीं है'।[4] भारत के जिस ऐतिहासिक कृति की पूरे विश्व में ख्याति है, दुनिया की हर भाषा में जिसका अनुवाद हुआ है ऐसी श्रीमदभगवद्गीता में उन अधिकारो के दर्शन होते है एवं वेदों का ज्ञान कांड समझे जाने वाले ग्रंथ जिन्हे पढ़कर जर्मन चिंतको की एक पूरी पीढ़ी तैयार हुई ऐसे उपनिषदों में अनायास हमें ना सिर्फ मानव अधिकारो के दर्शन होते है परंतु जीव मात्र की चिंता होती दिखाई देती है। आगे श्रीमदभगवद्गीता एवं उपनिषदों में मानव अधिकारों के सूत्रों की व्याख्या एवं उन पर चिंतन-मनन किया जाएगा।

उपनिषद, भगवदगीता एवं भारतीय संविधान

उपनिषद एवं श्रीमदभगवद्गीता भारतीय ज्ञान परंपरा के दो ऐसे आभूषण है जो भारत की देह को सुंदरता के चरम पर ले जाते है। उपनिषद का शाब्दिक अर्थ है 'समीप बैठना' यानि समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना। उपनिषद को वेदों का ज्ञान कांड भी कहा जाता है क्योंकि इनमें ब्रह्मज्ञान पर चिंतन-मनन हुआ है एवं ज्ञान को शीर्ष पर ले जाने की ख्याति

इन्हें ही प्राप्त है। श्रीमदभगवद्गीता गेय होने के कारण ही गीता कहलाई जाती है, अगर मुझे गीता एवं उपनिषदों के महत्व को समझना हो तो वह स्मृतिकारों के इस श्लोक से सरलता से समझ में आ जाता है कि

सर्वोपनिषदों गावो दोग्धा गोपालनंदनः।

पार्थो वत्सः सुधीःभोक्ता दुग्धं गीता अम्रतं महत्।।[5]

इस श्लोक में सभी उपनिषदों को गाय, श्री कृष्ण को दूध निकालने वाला, अर्जुन को गाय के बछड़े के समान दूध पीने वाला एवं गीता को दूध कहा गया है।

उपनिषद एवं श्रीमदभगवद्गीता : अध्यात्म से परे की उपयोगिता

उपनिषद एवं श्रीमदभगवद्गीता को अध्यात्म के ग्रंथों की श्रेणी में रखा जाता है परंतु हमारे लिए जानना आवश्यक है की इन ग्रंथों की सीमा निर्धारित करते ही हम ऐसे ज्ञान से वंचित हो जाते है जो समाज के लिए बहुमूल्य साबित हो सकता है। इन ग्रंथों में समग्रता से चिंतन किया गया है, हमारे पूर्ववर्ती चिंतकों ने इन्हे कभी पंथ एवं ईश्वर को प्राप्त करने के माध्यम से आगे नहीं बढ़ने दिया। प्रस्थानत्रयी, जिसमें श्रीमदभगवद्गीता, उपनिषद एवं ब्रह्मसूत्र शामिल है, पर भारत में लंबे समय से काम होता आया है, शंकर की प्रस्थानत्रयी पर व्याख्या के बाद बहुत से ज्ञानी पंडितों ने इन पर व्याख्या की एवं अपनी व्याख्याओ को शंकर की व्याख्या से भिन्न स्थापित कर विभिन्न संप्रदायों की स्थापना की जिसमें विशिष्ट अद्वैत, द्वैतवाद, द्वैताद्वैत एवं अन्य शामिल है। किसी भी चिंतक द्वारा इन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीति के मौलिक दर्शन के तत्वों के स्त्रोत के रूप में नहीं देखा। किसी भी जीवन पद्धति के मूल में ज्ञान की वह प्रेरणा होती है जिसको लंबे समय के विश्लेषण एवं संश्लेषण के बाद अपनाया गया होता है। भारत में वह प्रेरणा हमें वेदों एवं वेदोत्तर साहित्य में देखने को मिलती है क्योंकि वेदोत्तर साहित्य भी मौलिक रूप से वेदों से ही प्रभावित है। वेदों में जिस जीवन पद्धति का विकास हुआ, वह प्राथमिक रूप से तो ऋत से प्रभावित दिखती है यानि प्रकृति सम्मत जीवन के दर्शन हो जाते है परंतु कालांतर में आवश्यकतानुसार जो बदलाव हुए वह भी प्रकृति के बहुत विपरीत जाकर नहीं हुए। यही कारण भी है कि इसे सनातन संस्कृति कहा गया जो 'नित नूतन एवं चीर पुरातन' यानि नए से नई और पुराने से पुरानी हो। ग्रीक एवं रोमन दर्शन में भी स्टोइसिज़्म का बोलबाला दिखता है जो प्राकृतिक कानूनों को नागरिक विधि एवं कानूनों का मूल मानने की वकालत करता हुआ दिखता है। स्टोइसिज़्म, एपीकूरियानिसम, डेमोक्रेटिसिस्म के दर्शन जिनका जन्म स्थान यूनान को मानते है और रोम का रोमन सम्राज्य बनने का श्रेय भी यूनान के दर्शन को देते है उसके विषय में मार्क्स ने अपने डोकटोरल डिसर्टेशन में यह कहा है कि 'डेमोक्रिटस भारत के ऋषियों से ज्ञान की खोज में मिला था'।[6] ये भी ठीक है कि मार्क्स ने यह जिक्र करते हुए मिस्त्र को भी ज्ञान के केंद्र के रूप में स्वीकार किया है।

भारतीय संविधान: भारत की भावभूमि का प्रतिबिंब

किसी भी देश का संविधान उस देश की भावभूमी से जुड़ा हुआ होना चाहिए एवं भावभूमि का विकास एक दिन में नहीं होता, ये विकास परम्पराओं के रूप में सामने आता है। परम्पराये जीवन को आगे लेकर जाती है ओर उन

परम्पराओं को मान्यता लोक की स्वीकार्यता के पश्चात ही प्राप्त होती है। इसलिए आधुनिक काल में जब संविधान को मान्यता प्राप्त हुई तो उसका भी लोक की भावभूमि के अनुकूल होना अति आवश्यक हो जाता है। हमारा संविधान, जो की बड़े संघर्ष के बाद हमें प्राप्त हुआ, भी एक दम से प्रस्फुटित नहीं हुआ परंतु लंबे समय से चली आ रही व्यवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए ही निर्मित किया गया। चिंतकों का यह मानना है की हमारा सारा संविधान उधार का थैला है, जिसे हमने विभिन्न देशों के संविधान से लिया है ओर मुख्य रूप से भारत शासन अधिनियम,1935, हमारे संविधान का मूलभूत स्रोत रहा है। हालांकि सुभाष कश्यप ने माना है कि 'यह कहना गलत होगा कि हमने अंग्रेजी संसद व्यवस्था पूर्णरूप से आत्मसात की है'।[7] भारत शासन अधिनियम के विषय में कहा जाता है कि यह भी लंबी प्रक्रिया द्वारा ही उस रूप को प्राप्त हुआ जिसको हमने अपनाया। इसके लिए कहा जाता है की इसका विकास रेगुलटींग ऐक्ट, 1773 से माना जाता है उसके बाद चार चार्टर ऐक्ट जो बीस-बीस वर्षों के अंतर पर आए तत्पश्चात 1858 का भारत शासन अधिनियम जिसके माध्यम से देश की सत्ता कंपनी के हाथों से ब्रिटेन की रानी के सीधे नियंत्रण में आ गई। हमारे संविधान में मूल में 22 भाग, 395 अनुच्छेद हमारे संविधान को आत्मसात करने के समय थे। इनमें से संविधान के दार्शनिक भाग के रूप में भाग तीन में वर्णित मौलिक अधिकार एवं भाग चार में वर्णित राज्य के नीति निर्देशक तत्वों को रखा जाता है इसका कारण यह है कि यह नागरिकों के विकास में मिल का पत्थर साबित होंगे एवं इन्ही को दृष्टिगत रखते हुए सभी कानूनों का निर्माण होना चाहिए, ऐसा सोचा गया। इनके विषय में कहा जाता है कि यह हमें अमेरिका के बिल ऑफ राइट्स से एवं राज्य के नीति निर्देशक तत्व हमने आयरलैंड के संविधान से लिए है। ये ठीक है कि मौलिक अधिकारों की भाषा हमने अमेरिका के संविधान से ली हो किन्तु उसमें विद्धमान दर्शन तो भारत के साहित्य में अनायास ही दिख जाता है, ये ही नहीं उस दर्शन की सत्यता, न्यायप्रियता तथा तर्क भी उसी में विद्धमान है जबकि आज संविधान में वर्णित तार्किक आधारों को अलग व्याख्याओं की आवश्यकता होती है। उपनिषद एवं गीता में ना सिर्फ अधिकारों की बात ही की गई है, साथ ही उनको तर्कपूर्ण शैली में रखना और उसे अध्यात्म से भी जोड़ना, जिससे इसका लोक व्यापीकरण हो सके ओर अतिरिक्त ऐसे विधान की आवश्यकता ना पड़े जिससे व्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित करना पड़े। आगे इन अधिकारो का विश्लेषण करकर देखा जाएगा की क्या यह अधिकार संविधान में वर्णित अधिकारो की ही तरह व्यक्ति के विकास में भूमिका निभाते है या यह अधिकार सहज रूप में व्यक्ति के पास है किन्तु इनका महिमामंडन नहीं किया गया है। इन अधिकारों का संस्थाकरण जिस प्रकार संविधान में किया गया है जिससे यह यन्त्रीकृत हो गए एवं अब इन्हे विधि में बिना व्यावहारिकता को देखते हुए इस्तेमाल किया जाएगा, न्याय के विषय में जॉन रॉल्स द्वारा दिए गए सिद्धांतों की आलोचना अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक 'द आइडिया ऑफ जस्टिस' में इन्ही आधारों पर की एवं व्यावहारिक पक्ष की उपयोगिता का भान कराया।[8] विधि को या दंड को अधिकारों का रक्षक मानना एक भूल के सिवा कुछ ओर नजर नहीं आता क्योंकि विधि को व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार इस्तेमाल करना जानता है। आज हम इसका साक्षात उदाहरण देखते है कि किस प्रकार विधि का इस्तेमाल अपने हित साधने के लिए किया जाता है और जो जितना पढ़ा- लिखा है वह उतनी ही चतुराई के साथ इसका इस्तेमाल करते है। वहीं भारतीय साहित्य में इन्हें व्यवहार में उतारने के प्रयत्न अनायास ही दिख जाते है। इस विषय में तिलक भी गीतारहस्य में चिंतन करते से प्रतीत होते है। गीतारहस्य में तिलक कहते है कि "प्राणिमात्र में समबुद्धी होते ही परोपकार करना तो देह का स्वभाव ही बन जाता है"।[9]आगे वह कहते है कि "प्राणिमात्र में एक आत्मा अथवा आत्मौपम्य बुद्धि के तत्व से व्यावहारिक नीति-धर्म की जैसी अच्छी उपपत्ति लगती है, वैसी

और किसी भी तत्व से नहीं लगती"।[10] इमेनुएल काँट नामक जर्मन दार्शनिक ने राज्य का संचालन नैतिक आधारों को माना है ओर ना सिर्फ इतना ही उन्होंने तो राज्य को नैतिक संस्था के रूप में स्थापित किया है। इसी कारण से भारतीय विचारों के सबसे करीब काँट का ही दर्शन समझ जाता है।

उपनिषदों एवं भगवदगीता में अधिकार

समानता की दृष्टि

संविधान में वर्णित मौलिक अधिकारों को यदि देखा जाए तो सर्वप्रथम समानता के अधिकार का वर्णन आया है जिसमें 'विधि के समक्ष समानता' एवं 'विधियों का समान संरक्षण' को लेकर यह निर्देशित किया गया है कि विधि समानता के लिए ध्रुव का काम करती है जिसके बिना किसी प्रकार के अधिकार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वहीं यदि हम उपनिषदों एवं गीता में समानता के तत्वों का चिंतन करे तो जैसा पूर्व में भी कहा जा चुका है कि यह बहुत कुछ आध्यात्मिक चिंतन से जुड़ा है ओर यही कारण भी है की तात्विक चिंतन द्वारा यह आर्य सत्य हमें ज्ञात हो जाता है जिसमें कुछ भी मानने की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार से संविधान में विधि के समक्ष सभी को समान माना जाता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जो व्यवस्था सुगम जीवन के लिए बनाई जाती है उसे सभी स्वीकार करेंगे ऐसा आवश्यक नहीं है क्योंकि मानव द्वारा बनाए जाने के कारण उसमें त्रुटि देखने के प्रयास होना स्वाभाविक सी बात है परंतु ऐसा सत्य जिसे नकारा नहीं जा सकता सहज ही स्वीकार्य होगा। उपनिषद के ऋषि सभी जीवों में एक ही ईश्वर की प्रतीति करते है जैसा कि इशावस्य उपनिषद के पहले मंत्र में ही वर्णन आया है

ईशावास्यमिदं *सर्वं* यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।[11]

यानि 'इस जगत के कण-कण में एक ही ईश्वर का वास है इसीलिए त्याग पूर्वक उपभोग करना चाहिए' जिससे सभी के जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं पूरी हो सके यह चिंतन कितने उच्च विचारों पर आधारित होगा जो ना सिर्फ मनुष्य की परंतु जीव मात्र को एक बंधन में बांधते है। इसी मंत्र में ना सिर्फ मनुष्य में ईश्वर को देखकर समान भाव की स्थापना हो रही है बल्कि सभी जीवों में एक जैसा भाव देखने की बात कही गई है परिणाम स्वरूप ये ना सिर्फ मानव अधिकारों को स्थापित करते है परंतु जानवरों के अधिकारों और प्राकृतिक संपदा का आवश्यकता अनुसार इस्तेमाल किए जाने की स्वीकार्यता के कारण प्रकृति सम्मत जीवन की कल्पना को स्वीकार करता है।

एक मनुष्य का धर्म, जाती, रंग, भाषा के आधार पर घृणा ना सिर्फ आज की ही समस्या है परंतु यह लंबे समय से मानव जाती के लिए अभिशाप की तरह है, अपने आप को ओरो से बढ़कर मानना वो भी उन आधारों पर जो विवेक से परे है, घृणा को जन्म देता है ओर ऐसी व्यवस्थाओं के निर्माण में भूमिका निभाता है जो मानव जाती को अंधविश्वास एवं रूढ़िवाद के ऐसे गड्ढे में धकेल देता है जिससे उसका निकलना मुश्किल हो जाता है। भारतीय संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद 15 में इन भेदभावों के विरुद्ध अधिकार प्राप्त है। इशावस्य उपनिषद के ही छटे मंत्र में यह स्पष्ट किया है कि क्यों मनुष्य को एक-दूसरे से घृणा नहीं करनी चाहिए। यह कहता है

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मनेवानुपश्यति।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥[12]

यानि 'जब हम संपूर्ण प्राणियों को ईश्वर में एवं ईश्वर के दर्शन सभी प्राणियो में करते हैं तो किसी से भी घृणा नहीं करते'। क्या इससे वैज्ञानिक प्रमाण होगा जो हमें ये सिद्ध कर दे कि हमें असमानता का व्यवहार क्यूँ त्याज्य होना चाहिए। वैज्ञानिक इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि जिस प्रकार ऊर्जा एवं द्रव्य में कोई भेद नहीं होता जो अल्बर्ट आइन्सटाइन द्वारा प्रतिपादित समीकरण $E=MC^2$ के माध्यम से देखने को मिलता है,[13] तो जिसे सृष्टि के आदि उपनिषदो द्वारा स्वीकार किया गया है वह वैज्ञानिकों की ऊर्जा ही प्रतीत होती है।

ब्रहदारण्यक उपनिषद में वर्णित यह श्लोक भी सभी में समानता के भाव की पुष्टि करता है जो इस प्रकार है " यत्र वा अस्य सर्वमात्मैव भूत्"।[14] इसका अर्थ है जिसे सर्व आत्ममय हो गया है वह साम्य बुद्धि से ही सबसे बरतता है।

उपनिषदों में ही नहीं किन्तु भगवदगीता में भी इसी समानता के सूत्र विद्धमान दिखते है जब उसमें कहा जाता है 'समः सर्वेषु भूतेषु'[15], गीता के इन्ही सिद्धांतों की व्याख्या तिलक अपनी गीतारहस्य में विस्तार से करते हुए दिखते है। गीता के छठे अध्याय में "सर्वभूतहस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि"[16] में समानता के सिद्धांत दृष्टिगोचर होते है।

पूर्ण स्वतंत्रता: बाह्य एवं आंतरिक

स्वतंत्रता के अधिकार जिसका वर्णन संविधान के भाग तीन अनुच्छेद 19 से अनुच्छेद 22 तक किया गया है उसके मूल में व्यक्ति की स्वतंत्रता परिलक्षित होती है। जैसा की पूर्व में भी यह बताया गया है कि गढ़े गए सिद्धांतों के पीछे एक दर्शन काम करता है, यदि स्वतंत्रता के अधिकार के पीछे के दर्शन पर ध्यान दिया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्रता व्यक्ति के विकास में प्रमुख भूमिका निभाती है। स्वतंत्रता शब्द 'स्वयं के तंत्र' के आधार पर जीवन का निरूपण करता है। संविधान में स्वतंत्रता शब्द व्यक्ति को राज्य के विरुद्ध जो अभिव्यक्ति, सम्मेलन, संघ निर्माण, संचरण, व्यवसाय, की स्वतंत्रताएं, अपराध दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण, व्यक्ति के प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकारों का वर्णन मिलता है। इन अधिकारों का संबंध व्यक्ति के विकास से संबंधित है क्योंकि बिना इन अधिकारों के व्यक्ति अपने चतुर्मुखी विकास की कल्पना नहीं कर सकता परंतु इन अधिकारों का प्रयोग व्यक्ति केवल उन स्वतंत्रताओ को पाकर कर सकता है जिसका वर्णन भारतीय साहित्य में किया गया है। जब भारत में वर्णित स्वतंत्रता की बात की जाए तो यह स्वतंत्रता केवल बाह्य ना होकर भीतरी भी है, इसका अर्थ यह है कि बाह्य स्वतंत्रता मिलने के पश्चात भी क्या विकास निश्चित है अगर अंदर से हम स्वतंत्र नहीं है, अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी कौन सी वस्तु है जो हमें स्वतंत्र नहीं होने दे रही और वह हमारे भीतर ही निवास कर रही है। शास्त्रों में इन्हें षडरिपु कहा गया है जिसमें काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष समाहित है।[17] यह दोष इंद्रियों द्वारा जनित है एवं व्यक्ति के विकास के आड़े आते है। व्यक्ति को चैन से नहीं बैठने देते एवं संतोषरहित कर देते है। इन विकारों से छूटने के बाद ही सही मायने में स्वतंत्रता की अनुभूति हो सकती है। यह विचार भारतीय साहित्य में अनायास प्राप्त हो जाता है किन्तु उन्नीसवी शताब्दी में यूरोप में भी इस विचार की उपयोगिता को स्वीकार किया गया, जब थॉमस ग्रीन द्वारा 'पाज़िटिव स्टेट' एवं 'पाज़िटिव फ्रीडम' का विचार रखा गया जिसमें इतना भर आवश्यक नहीं कि केवल नागरिकों को स्वतंत्रता दे

दी जाए परंतु यह भी आवश्यक हो जाता है कि उनका विकास जिसमें वो स्वयं सक्षम नहीं है उसके लिए भी विचार होना चाहिए और बीसवीं शताब्दी में अमर्त्य सेन द्वारा लिखी अपनी किताब 'डेवलपमेंट एज़ फ्रीडम' में यह स्वीकार किया है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास द्वारा ही उसे सही मायने में स्वतंत्रता मिल सकती है। श्रीमदभगवद्गीता में दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञ पुरुष का वर्णन करते हुए यह कहा गया है

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।2.55।।[18]

यानि 'मन की सभी कामनाओ को त्यागकर आत्म में से आत्म में रहने वाला पुरुष ही स्थितप्रज्ञा पुरुष होता है'। आगे इस स्थिति तक किस प्रकार पहुँचा जाए उस प्रक्रिया का भी भलीभातिं निरूपण मिलता है जब श्रीमदभगवद्गीता में ही यह कहा गया

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।2.58।।[19]

यानि 'जिस प्रकार कछुआ खतरे को देख कर अपने अंगों को सिकोड़ लेता है उसी प्रकार ही जो विभिन्न विषयों से अपनी इंद्रियों को सब ओर से समेट लेता है तभी उसकी बुद्धि स्थित होती है'

उपनिषदों में भी इस विकास को प्राप्त होने के लिए किस प्रकार अपनी बुद्धि का प्रयोग करकर अपनी इंद्रियों को शांत रखा जाए इसका वर्णन सुंदर उपमा के माध्यम से किया गया है , कठोपनिषद की तृतीय वल्ली में वर्णित है यह श्लोक

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयां स्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।। [20]
(कठोपनिषद्-1.3.3-4)

इस श्लोक में बुद्धि द्वारा मन एवं मन द्वारा इंद्रियों को नियंत्रण को दर्शाया गया है। उपनिषदों एवं गीता में इन्ही आधारों के माध्यम से व्यक्ति की स्वतंत्रता सही मायने में किस प्रकार उसे प्राप्त हो सकती है इस पर प्रकाश मिलता है। बीसवी शताब्दी के एक ओर प्रामाणिक ग्रंथ 'हिन्द स्वराज' में भी गांधी स्वराज का उल्लेख करते हुए आंतरिक स्वराज पर अधिक जोर देते हुए दिखते है[21] क्योंकि उसके माध्यम से ही राज्य का संचालन अच्छे से किया जा सकता है। इसलिए जिस प्रकार की स्वतंत्रता का वर्णन संविधान में किया गया है उसके आधार एवं उससे भी अधिक जिस स्थिति को प्राप्त करने की बात उपनिषद एवं

श्रीमदभगवद्गीता करते है उनके लिए किसी प्रकार का कोई संस्थाकरण करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है।

शोषण से परे मानवता के दर्शन

संविधान में शोषण के विरुद्ध अधिकारो का उल्लेख भी हमें भाग तीन में ही अनुच्छेद 23-24 में मिलता है जिसमें बाल श्रम एवं मानव तस्करी के विरुद्ध अधिकारों की बात की गई है। अगर हम इन अधिकारों के कारणों का अवलोकन करें तो इनके मूल में व्यक्ति में मूल्यों का ह्रास स्पष्ट ही दिखता है जिस कारण मानवता को ताक पर रख कर व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय बनाने की पागल दौड़ का भाग हो चला है। भारत में जीवन दर्शन का केंद्र धर्म को समझा गया है, जो अपने आप में व्यापक है जिसको हम अंग्रेजी के 'रीलिजन' के समकक्ष नहीं रख सकते। धर्म के केंद्र में दया का भाव सन्निहित है जैसा तुलसी कहते है

दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान

तुलसी दया ना छाड़िए जब लग घट में प्राण

धर्म के मूल में दया होने के कारण व्यक्ति अपने आप में मानवता के प्रति औदार्य भाव रखता है क्योंकि हर व्यक्ति को धार्मिक होने का संदेश बचपन से ही दिया जाता है जिससे धर्म के विरुद्ध आचरण से नरक जाने का भय भी सभी में व्याप्त होता है जो की बचपन में ही मस्तिष्क में डाल दिया जाता है। मनु एवं याज्ञवलक्य द्वारा धर्म के लक्षणों की व्याख्या में जो लक्षण देखने को मिलते है उनसे यह साफ हो जाता है कि यदि वह व्यक्ति के आचरण का भाग हो जाएं तो वह किसी का भी शोषण नहीं कर सकता। इन अधिकारों के संस्थाकरण करने मात्र से व्यक्ति का आचरण नहीं बदला जा सकता परंतु तात्विक विवेचन की आवश्यकता है जो भारतीय साहित्य में देखने को मिलता है ओर अगर उसका संस्थाकरण करना भी हो तो उसमें भी ईश्वरीय संकल्पना को डालना भारतीय ज्ञान का वैशिष्टि है। धर्म के लक्षणों में धैर्य, क्षमा एवं इंद्रियों के दमन होने मात्र से यह पुष्टि हो जाती है कि किसी बाहरी व्यवस्था की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। फिर भी राज्य इस बात का ध्यान रखता था जिससे किसी प्रकार का कोई भी शोषण समाज में अपनी जगह ना बना सके। छान्दोग्य उपनिषद में एक व्रतांत में राजा अश्वपति अपनी प्रजा को सुखी बताते हुए कहते है 'मेरे राज्य में न तो कोई चोर ही है तथा ना ही अदाता, मद्यप, अनाहिताग्नी, अविद्वान और परस्त्रीगामी ही है; फिर कुलटा स्त्री तो आई कहा से'।[22]

शिक्षा एवं संस्कृति: सुख के अग्रदूत

यदि संविधान के भाग तीन में ही अनुच्छेद 29-30 को देखे तो उन्मे शैक्षिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की बात की गई है यहाँ पर अल्पसंख्यकों की शिक्षा एवं शैक्षिक संस्थानों की व्यवस्था का अधिकार भी दिया गया है। अनुच्छेद 21 'क' के अनुसार निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा छह से 14 वर्ष के आयु के सभी बालकों का मौलिक अधिकार है। इन अधिकारों के विषय में यदि उपनिषदों में देखे तो बहुत से व्रतांत ऐसे मिल जाएंगे जो शैक्षिक अधिकारों का ना सिर्फ संरक्षण को दर्शाते है परंतु मुक्त शिक्षा प्रणाली के द्योतक है। छान्दोग्य उपनिषद में जाबालि सत्यकाम एवं ऋषि गौतम के मध्य शिक्षा संबंधी संवाद इस व्यवस्था को मुक्त शिक्षा व्यवस्था की ना सिर्फ पुष्टि करता है परंतु

सत्यकाम का जाबालि नामक दासी का पुत्र होने के पश्चात भी गौतम द्वारा उनको शिष्य के रूप में स्वीकार करना इस बात की पुष्टि करता है कि हर एक को पढ़ने का अधिकार प्राप्त था इस शर्त के साथ के वह सत्य का अनुगामी होना चाहिए। कठोपनिषद में नचिकेता द्वारा मृत्यु से किए गए यम-नचिकेता संवाद उस मुक्त शिक्षा प्रणाली को दर्शाते हैं जो हम आज लागू करने के लिए अधीर हुए जा रहे है। याज्ञवलक्य एवं मैत्रेयी संवाद भी शिक्षा को महिला-पुरुष सभी के लिए कल्याणकारी एवं ज्ञान का स्त्रोत होने की पुष्टि करता है। श्रीमदभगवद्गीता भी ज्ञान के उस शिखर पर अर्जुन को ले जाता है जो केवल श्री कृष्ण जैसे गुरु द्वारा ही दिया जा सकता था। ऋण त्रयी की संकल्पना में ऋषि ऋण, शिक्षा की अनिवार्यता को दर्शाता है ओर इतना अधिक आवश्यक समझता है की उसका संस्थाकरण ऋण के रूप में कर दिया जाता है जिसमें बालक को बिना शिक्षा के मुक्ति संभव नहीं है।

उपसंहार

प्रस्तुत शोध पत्र में किसी तुलना के प्रयोजन से तथ्य साझा नहीं किए जा रहे क्योंकि तुलना की ही नहीं जा सकती। जिस प्रकार की शब्दावलियों के माध्यम से आज अधिकारों को समझा जाता है ऐसा संभव नहीं कि उन्हीं के माध्यम से इन्हे समझा जाता रहा हो। इतना ही नहीं मौलिक दर्शन में भी भेद स्पष्ट ही झलकते है जहाँ आज राज्य सर्वेसर्वा है वही भारत में समाज ने स्वयं अग्रणी भूमिका प्रायः निभाई है। नागरिकों को अधिकार विधि के माध्यम से देना कुछ भ्रामक भी प्रतीत होता है क्योंकि कभी भी दंड के माध्यम से व्यक्ति का मौलिक व्यवहार नहीं परिवर्तित किया जा सकता परंतु भय के माध्यम से उसे नियंत्रण में तो रखा जा सकता है पर जैसे ही उसे प्रतीत होगा कि किसी के द्वारा उसका निरीक्षण नहीं किया जा रहा, वह उचित व्यवहार को त्याग देगा ओर अपनी इच्छाओ के अनुरूप व्यवहार करेगा। परंतु यदि उचित व्यवहार करने का तार्किक आधार उसे बता दिया जाए चाहे वह अध्यात्म से संबंधित क्यूँ ना हो। क्योंकि भारत में कोई भी विषय एकांतिक रूप से नहीं देखा जाता बल्कि हर चीज को एक-दूसरे से जोड़ा जाता है। इसी संपूर्णता में किए गए चिंतन के कारण भारत ज्ञान के शिखर पर पहुँचा और उपनिषद जैसे अद्वितीय ग्रंथ हमें प्राप्त हुए। इन ग्रंथों में जीवन पद्धति ही नहीं जीवन का पूर्ण दर्शन मिल जाएगा और गीता द्वारा प्रतिपादित निष्काम कर्म जो की सृष्टि चक्र के चलने का माध्यम है उपनिषदो के साथ सामंजस्य बिठाकर एक पूर्ण जीवन को हमारे समक्ष रखता है।

संदर्भ सूची

1. श्रीशंकराचार्य, विवेक-चूड़ामणि, गीताप्रेस गौरखपुर, कोड स.- 133, पृ.स.-11
2. वेदव्यासप्रणीत महाभारत, शांतिपर्व, गीताप्रेस गौरखपुर, संo २०७९, 294.29
3. वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, संo 2017, 1.3, पृ.स.-13
4. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान , नैशनल बुक ट्रस्ट, संo- 2011, पृ.स.- 8
5. बाल गंगाधर तिलक, गीतारहस्य, डायमंड बुक्स, संo- 2022, पृ.स.-38
6. कार्ल मार्क्स फ्रेडरिच एंजेलस कलेक्टिड वर्क्स, खंड-1, प्रोग्रेस पब्लिशर, संo 1975, पृ.स.-40-41
7. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, नैशनल बुक ट्रस्ट, संo- 2011, पृ.स.- 49
8. अमर्त्य सेन, आइडिया ऑफ जस्टिस, पेंगविन बुक्स, संo- 2010, पृ.स.-9

9. बाल गंगाधर तिलक, गीतारहस्य, डायमंड बुक्स, सं० 2022, पृ.स.-330
10. बाल गंगाधर तिलक, गीतारहस्य, डायमंड बुक्स, सं० 2022, पृ.स.-331
11. शंकरभाष्यार्थ, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस गौरखपुर, बुक कोड- 1421, सं० २०८०, पृ.स.-25-26
12. शंकरभाष्यार्थ, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस गौरखपुर, बुक कोड- 1421, सं० २०८०, पृ.स.-37
13. अल्बर्ट आइन्सटाइन, रेलेटिविटी, पुष्पक पब्लिकैशन, सं० 2024, पृ.स.-1
14. शंकरभाष्यसहित, बृहदारण्यक उपनिषद्, गीताप्रेस गौरखपुर, पृ.स.-573
15. श्रीमदभगवद्गीता, गीताप्रेस गौरखपुर, कोड स.-2025, सं० २०७८, पृ.स.-307
16. श्रीमदभगवद्गीता, गीताप्रेस गौरखपुर, कोड स.-2025, सं० २०७८, पृ.स.-120
17. वाचस्पति गैरोला, सं० 2017, कौटिलीय अर्थशास्त्रम, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, 1.3, पृ.स.-13
18. श्रीमदभगवद्गीता, गीताप्रेस गौरखपुर, कोड स.-2025, सं० २०७८, पृ.स.-57-58
19. श्रीमदभगवद्गीता, गीताप्रेस गौरखपुर, कोड स.-2025, सं० २०७८, पृ.स.-59
20. शंकरभाष्यार्थ, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस गौरखपुर, बुक कोड- 1421, सं० २०८०, पृ.स.-260
21. महात्मा गांधी, हिन्द स्वराज, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 2014, पृ.स.-54-55
22. उपनिषद-अंक, गीताप्रेस गौरखपुर, बुक कोड- 659, सं० २०७६, पृ.स.-450

अध्याय-20

विनोबा भावे: जीवन एवं शिक्षा दर्शन

आद्या शक्ति राय
सह आचार्य, विशेष शिक्षा संकाय,
डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

महाराष्ट्र भूमि अपने उन महान विचारकों, समाज सुधारकों, संतों के कारण जानी जाती है, जिन्होंने अपने कार्यों, विचारों एवं जीवन दर्शन से अपने देश को ही नहीं, अपितु विश्व को भी नयी प्रेरणा व विचार शक्ति दी है। संत विनोबा भावे समाज सुधारक, राजनीतिक एवं शैक्षिक दर्शन के लिए जाने जाते हैं।

इनका जन्म महाराष्ट्र के कुलावा जिले में गगोड़ा ग्राम में 11 सितंबर, 1895 को एक सदाचारी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका मूल नाम विनायक नरहरी भावे था। इनके पिता पंडित श्री नरहरी शभुराव थे जो बड़ौदा राज्य में टेक्सटाइल इंजीनियर थे। उनकी माता रुक्मणी देवी थी जो अत्यंत धर्म- परायण महिला थी। ब्राह्मण परिवार होने के नाते उनका परिवार धर्म ग्रंथों के प्रति गहरी निष्ठा रखता था, साथ ही धार्मिक विधि-विधान का नियमित पालन भी करते थे।[1]

बाल्यावस्था से विनोबा भावे को प्रकृति परिवेश से अत्यंत प्रेम था। देशभक्ति की प्रेरणा उन्हें अपने चाचा गोपाल भावे से मिली। कुशाग्र बुद्धि के मालिक विनोवा ने 8 वर्ष की अवस्था में सभी धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन पूरा कर लिया था। 10 वर्ष की अवस्था में उपनयन के साथ ब्रह्मचर्य का संकल्प भी लिया। 1916 को इंटरमीडिएट करने के पश्चात विनोबा भावे अहमदाबाद स्थित गांधी के आश्रम में पहुंचे वहां से कुछ समय के पश्चात सूरत और उत्तर प्रदेश पहुंचकर भिक्षुक की भांति जीवन बिताया। 1920 में वर्धा आश्रम के संचालन का काम उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। गांधी की ही भांति वे सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के माध्यम से अंग्रेज विरोधी आंदोलन आंदोलनों का नेतृत्व किया। नागपुर में झंडा सत्याग्रह करके सजा भी काटी। 1940 में पावनार में प्रथम सत्याग्रही के रूप में अपना भाषण दिया। 9 अगस्त, 1942 को भारत छोड़ो आंदोलन के कारण वे जेल भी गए। 9 जुलाई 1945 को जेल से निकलने के बाद पुनः पवनार आश्रम का कार्यभार ग्रहण किया। 15 अगस्त, 1947 को आजादी मिलने के बाद बंगाल में दीन दुखियों के कष्ट निवारण के लिए निकल पड़े।

विनोबा भावे ने सत्याग्रह पर विश्वास रखते हुए सर्वोदय समाज की स्थापना की। 7 मार्च 1951 में पैदल यात्रा करते हुए भूदान आंदोलन की शुरुआत की। नरगोड़ा के पोचमपल्ली गांव में 13 अप्रैल 1951 को भूमिहीन हरिजनों की पुकार सुनी, वहां के जमीदार रामचंद्र रेड्डी ने 100 एकड़ जमीन देकर विनोबा भावे के भूदान यज्ञ की शुरुआत की। इस तरह उन्होंने भूदान के लिए कई क्षेत्रों की पदयात्रा की।

 ISSN: 2321-0443

1960 में चंबल के डाकू को आत्मसमर्पण करवाया, 1974 को अखिल भारतीय स्त्री सम्मेलन में भाग लेते हुए स्त्री शक्ति के महत्व का लोगों को ज्ञान कराया, 25 दिसंबर 1974 को मौनव्रत धारण किया और साथ ही गोवध के विरोध में अनशन भी शुरू किया। आंदोलन के दौरान उनकी तबीयत बिगड़ते देखकर मोरारजी देसाई ने पशु संवर्धन को केंद्रीय सूची में शामिल किया। गांधी के सच्चे अनुयायी मद्य निषेध तथा सामाजिक बुराइयों के लिए निरंतर संघर्ष करते हुए अपने भूदान आंदोलन को जारी रखा। पावनार में रहते हुए 15 नवंबर 1982 को उनकी मृत्यु हो गई। वह 1958 में रमन मैग्सेसे एवं 1983 में भारत रत्न पुरस्कारों से सम्मानित हुए और उन्होंने मैत्री तथा महाराष्ट्र धर्म नामक पत्रिकाओं का संपादन भी किया था।[2]

विनोबा भावे का जीवन दर्शन :

विनोबा भावे ने धर्म को अध्यात्मिक से अलग माना। अध्यात्म को व्यावहारिक व निरपेक्ष मानते थे। उनका मानना था कि "विज्ञान के युग में धर्म नहीं टिकेगा परंतु आध्यात्मिकता जरूर टिकेगी"। उन्होंने अध्यात्मिकता को मानवता से जोड़ा। विनोबा भावे का सर्वोदय दर्शन गांधी के सिद्धांतों पर आधारित था। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ - सबका उदय सभी व्यक्तियों का विकास है।

रस्किन की पुस्तक "अन्टू दी लास्ट" का गुजराती में अनुवाद करते हुए उन्होंने उसमें सर्वोदय दर्शन को सभी प्राणियों की भलाई के लिए परिभाषित किया है। आर्थिक समानता हेतु उन्होंने कुटीर उद्योग धंधों के साथ-साथ प्रत्येक गांव को आत्मनिर्भर बनाने पर जोर दिया। सैकड़ों हजारों बीघे जमीन के मालिक भूमिहीनों को कुछ जमीन दान में दे तो सर्वोदय आंदोलन से मनुष्य का उत्थान होगा।

उनका सत्याग्रह गांधी के सत्याग्रह के ही तरह था अहिंसा को भी महत्व देते थे। मन में हिंसक और अहिंसक दोनों प्रवृतियां होती हैं इसलिए मनुष्य को अहिंसा का पालन करना चाहिए। लोकतंत्र शासन प्रणाली को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए वे भ्रष्टाचार, जातिवाद, संप्रदायवाद से दूर ही रहना चाहते थे। वे स्वतंत्रता, समानता तथा लोक कल्याणकारी निष्पक्ष लोकतंत्र को मानते थे। शासक को जनता का सेवक व लोकतंत्र का संतरी होना चाहिए।[3]

विनोबा भावे का शिक्षा दर्शन:

विनोवा जी के शिक्षा दर्शन का आधार साम्ययोग हैं। इसी के द्वारा वह गांधी जी के सपनों का रामराज्य या सर्वोदय समाज स्थापित करना चाहते थे इसलिए वह शिक्षा के ध्येय के बारे में अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहते हैं- "शिक्षण का कार्य कोई स्वतंत्र तत्व उत्पन्न करना नहीं सुप्त तत्वों को जागृत करना है।" वह शिक्षा की ओर दो दृष्टि से देखते थे : आध्यात्मिक जीवन दृष्टि से और इर्द-गिर्द की परिस्थिति की दृष्टि से। इन्हें वह शिक्षण की दो कसौटियां मानते थे। शिक्षण से आत्म विकास भी सधना चाहिए और वह परिस्थिति के अनुरूप होना चाहिए। विनोबा जी ने शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से गुण-विकास और सामाजिक रुप से मूल विकास माना है। गुण विकास में संयम पद्धति पर बल देते रहे। बचपन से ही बालक इंद्रियों को, अपने मन को, अपनी बुद्धि को संयम में रखना सीखे, यही मुख्य दृष्टि होनी चाहिए।

उनका मानना था कि छोटे बच्चों पर अनेक विषयों का बोझ लादना व्यर्थ है। बच्चों के विकास के लिए विषय हो, "जीवन विकास"। जिसके तीन अंग हैँ – वाणी, शरीर और मन।

1 वाणी के लिए कविता, भजन आदि मधुर कंठ और स्वच्छ उच्चारण से पढ़ना तथा अर्थ का सामान्य ज्ञान, वाचन, वाक प्रकाशन एवं सत्य प्रिय, संगत वाणी का अभ्यास कराना।

2 शरीर के लिए खुले वातावरण की हवा में उद्योग, अदल बदल कर दिन भर कुछ न कुछ काम, खेल, हितकर एवं मित्त युक्त आहार, ऋतुचर्या, दिनचर्या तथा तदनुसार उचित आचरण करना।

3 मन के लिए, सभी के लिए उपयोगी कैसे बने, व्यवहार- बर्ताव कैसा हो, देह इन्द्रियों पर अंकुश कैसे रखें, हम देह से भिन्न हैं। इन वस्तुओं का ज्ञान, सृष्टि और समाज की जरूरी जानकारी करना।

इस प्रकार बहुत थोड़े में इस शिक्षण का स्वरूप बच्चे और शिक्षक दोनों का सम्मिलित जीवन होना चाहिए साथ ही किसी भी एक भाषा का ज्ञान, काम चलाओ गणित का ज्ञान और किसी एक उद्योग में मग्नता, ये तीनों बातें होनी चाहिए।

विनोबा भावे के अनुसार शिक्षक एवं उनके उत्तरदायित्व

आधुनिक शिक्षकों को विनोबा भावे जी बुद्धिजीवी नहीं बल्कि केवल शिक्षण पर जीने वाले जीव मानते थे। उनका मानना था कि शिक्षकों को पहले के आचार्यों की भाँति होना चाहिए। आचार्य अर्थात आचारवान:- जो स्वयं आदर्श जीवन का आचरण करते हुए विद्यार्थीयों से संत आचरण करा लेने वाला हो वही आचार्य होता है।

विनोबा भावे जी का मानना है कि शिक्षकों को मात्र शिक्षण की भ्रामक कल्पना को छोड़कर स्वतंत्र जीवन की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी चाहिए जैसा कि किसानों पर होता है और विद्यार्थियों को भी उसी में पूर्ण उत्तरदायित्व भाग देकर उनके चारों ओर शिक्षण की रचना करनी चाहिए या अपने आप होने देनी चाहिए।

शिक्षकों को थोड़ा समय प्रार्थना स्वरूप वेद अभ्यास और सुबह शाम का थोड़ा समय ईश्वर की उपासना के लिए भी देना चाहिए। राष्ट्रीय जीवन रूपी आदर्श अपने जीवन में उतारना राष्ट्रीय शिक्षक का कर्तव्य होना चाहिए। ऐसा करने से उनके जीवन में स्वयं तथा उनके आस-पास शिक्षा की किरणें फैलेंगी और उन किरणों के प्रकाश से आस-पास का वातावरण अपने आप ही शैक्षिक हो जाएगा। इस प्रकार का शिक्षक स्वतः सिद्ध शिक्षण केंद्र होता है और उसके समीप रहना ही शिक्षा पाना होता है, अर्थात आदर्श शिक्षक के पास रहना ही शिक्षण है। राष्ट्र के सुशिक्षित वर्ग को निरग्नि और निष्क्रिय होते हुए देखकर उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षण की आग सुलगाने का बार-बार आग्रह किया। उन्होंने शिक्षकों में इस अग्नि शक्ति को प्रचलित करने के लिए एक संगठन आचार्य कुल की स्थापना 8 मार्च 1968 को भागलपुर में की। आचार्य कुल की व्यवस्था करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया "कुल" शब्द परिवार वाचक है और हम अपनी सभी आचार्यों का एक ही परिवार है। ज्ञान की उपासना, चित्त शुद्धि के लिए प्रयत्न करना, विद्यार्थियों के लिए वात्सल्य भावना रखकर, उनके विकास के लिए सतत प्रयत्न करते रहना, सारे समाज के सामने जो समस्याएं आती हैं उन पर तटस्थ भाव से चिंतन करके और सर्वसम्मति का निर्णय समाज के सामने रखना और समाज को इस

प्रकार से मार्गदर्शन देते रहना इत्यादि क्रम जो हम सब करने जा रहे हैं वह एक परिवार स्थापना का ही काम है इसलिए मैंने इसका नाम आचार्य कुल रखा।

विनोबा भावे के अनुसार शिक्षण-

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के बारे में निराशा प्रकट करते हुए उन्होंने एक बार कहा था- "आज की विचित्र शिक्षण पद्धति के कारण जीवन के दो टुकड़े हो जाते हैं। आयु के पहले 15-20 वर्षों में आदमी जीने के झंझट में ना पड़कर केवल शिक्षा को प्राप्त करें और बाद को शिक्षण को बस्ते में लपेट कर मरने तक जिएँ"। आज के शिक्षण का तो यह ढ़ंग है कि अमुक वर्ष के बिल्कुल आखरी दिन तक मनुष्य जीवन के विषय में पूर्ण रुप से गैर जिम्मेदार रहे, तो भी कोई हर्ज नहीं। शिक्षण कर्तव्य का आनुषंगिक फल है। प्राथमिक महत्व के जीवन उपयोगी परिश्रम को शिक्षण में स्थान मिलना चाहिए कुछ शिक्षण शास्त्रों का इस पर यह कहना है कि यह परिश्रम शिक्षण की दृष्टि से दाखिल किए जाये, पेट भरने की दृष्टि से नहीं। ईमानदारी से पेट भरना, अगर मनुष्य साध ले तो समाज के अधिक दुख और पातक नष्ट हो जाए, जो आर्थिक दृष्टि से पवित्र है, वही पवित्र हैं।[4]

विनोबा भावे के अनुसार समाज और पाठशाला-

विनोबा जी समाज और पाठशाला का गहरा संबंध स्पष्ट करते हुए कहते हैं "विचारों का प्रत्यक्ष जीवन से नाता टूट जाने से विचार निर्जीव हो जाते हैं और जीवन विचार शून्य बन जाता है। मनुष्य घर में जीता है और मदरसे में विचार सीखता है इसीलिए जीवन और विचार का मेल नहीं बैठता। इसका उपाय यह है कि एक ओर घर में मदरसे का प्रवेश होना चाहिए और दूसरी ओर से मदरसे में घर घुसना चाहिए। समाजशास्त्र को चाहिए कि शालीन कुटुंब निर्माण करें और शिक्षाशास्त्र को चाहिए कि कौटुंबिक पाठशाला स्थापित करें।[5]

विनोबा भावे के अनुसार बालक-

विनोबा जी बालक को विचार शक्ति में भी स्वावलंबी बनाने के पक्ष में थे। स्वावलंबन की व्याख्या करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है, कि स्वावलंबन का अर्थ है- उदर-निर्वाह के लिए दूसरों पर निर्भर न होना पड़े, ज्ञान प्राप्त करने की स्वतंत्र शक्ति का निर्माण हो और अपने आप पर नियंत्रण की सकती हो। सामाजिक दृष्टि से भी शिक्षा का उद्देश्य नए मूल्यों का विकास कर एक नए समाज का निर्माण मानते थे।[6]

विनोबा भावे के अनुसार नई तालीम-

गांधी जी द्वारा प्रारंभ की गई नई तालीम को विनोबा जी सामाजिक मूल्यों की क्रांति मानते थे| उनका लक्ष्य एक नए समाज का निर्माण करना है जो वर्ग हीन और शोषण मुक्त हो। यह उनका साम्ययोग और सर्वोदय भी हैं। विनोबा जी ने शिक्षा के तीन उद्देश्य बताये- योग, उद्योग तथा सहयोग। इन तीनों उद्देश्यों की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की थी- योग, यानी चित्त पर कैसे अंकुश रखना, इंद्रियों पर कैसे नियंत्रण रखना, मन पर कैसे काबू पाना, जुबान पर कैसे अपनी सत्ता पाना, यही योग का सच्चा अर्थ है। उद्योग के बारे में उनका विचार है कि उद्योग में कुछ भी हो किंतु खेती के साथ- साथ प्रकृति के साथ भी संबंध होना अत्यंत आवश्यक है। सहयोग अर्थात हम सबको

इकट्ठा जीना है। सहजीवन को जीना है। हमें विश्व मानव बनना चाहिए। विनोबा जी की धारणा है कि बुनियादी शिक्षा के ज्ञान और कर्म का संयोग बालक के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। इस पद्धति में दोनों एक हो जाते हैं। कर्म से ज्ञान मिलता है ज्ञान से कर्म संपन्न होता है और ज्ञान तथा कर्म दोनों के मिलने से चित्त का विकास होता है।

शिक्षा के उद्देश्य-

शिक्षा का एक उद्देश्य विनोबा जी यह मानते थे कि विद्यार्थी को संत बनना है पंथ नहीं बनना| संत वह है जो सत्य का उपासक है और पंथ वह है जो किसी बने बनाए पंथ पर जड़वत चलता है। स्वराज्य से वह एक ऐसे नए समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें शोषण न हो, जिसमें केंद्र का शासन कम से कम हो, जिसमें हर एक विकास के लिए पूरी सुविधा हो, ऐसी समाज व्यवस्था को वे स्वराज कहते थे। शिक्षकों में आत्मिक शक्ति जागृत करने के लिए विनोबा जी ने 1967 में बिहार में आयोजित शिक्षा विद्वत परिषद के समक्ष आचार्यों की स्वतंत्र शक्ति खड़ी करने का विचार रखकर शिक्षा में क्रांति का अगला कदम उठाया। परिषद को उद्बबोधित करते हुए विनोबा जी ने कहा- "यह शिक्षा जगत का दुर्भाग्य है कि जो स्वायत्तता इस देश में न्याय विभाग को है उतनी स्वायत्तता शिक्षा विभाग को नहीं प्राप्त है। शिक्षक की भी स्वतंत्र हस्ती होनी चाहिए वह क्या पढ़ाए, कैसे पढ़ाए, परीक्षा की पद्धति क्या हो, यह निर्णय आचार्य का होना चाहिए, न कि सरकार का। इस स्वायत्तता को प्राप्त करने के लिए और उसे ठीक ढंग से कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षक सत्ता के पीछे न भागकर स्वयं अपनी स्वतंत्र शक्ति का विकास करें।"[7]

समाज को अगर कोई सुधारेगा तो वह पुलिस या सेना नहीं बल्कि शिक्षक ही सुधारेगा। 'गुरो : कर्मतिशोषेण' इस वाक्य का अर्थ 'गुरु के काम पूरे करके वेदाभ्यास करना, यही ठीक है नहीं तो गुरु की व्यक्तिगत सेवा इतना ही अगर गुरु कर्म का अर्थ ले ले तो गुरु की सेवा आखिर कितनी होगी और उसके लिए कितने लड़कों को कितना काम करने को रहेगा इसलिए गुरो कर्म से तात्पर्य है गुरु के जीवन में जिम्मेदारी से हिस्सा लेना। वैसा दायित्वपूर्ण भाग देकर उसमें जो संकाएँ वगैरह पैदा हो उन्हें गुरु से पूछे और गुरु को भी चाहिए कि अपने जीवन की जिम्मेदारी निभाते हुए और उसी का एक अंग समझ कर उसका यथाशक्ति उत्तर दिया जाए यही शिक्षण का स्वरूप है। आज के शिक्षक संघ केवल अधिकार प्राप्ति के साधन बनकर रह गए हैं। अतः विनोबा जी ने आचार्य कुल की स्थापना के पहले ही इसके उद्देश्य की घोषणा की- अभी जिस आचार्य कुल की स्थापना होने जा रही है, वह अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए नहीं होते है। अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए दूसरी संस्थाएँ हैं। यह तो अपने कर्तव्य के प्रति जागृति और प्रयत्न करने के लिए है, इससे सारे शिक्षक अपनी वास्तविक हैसियत पाएँगे, जिसे आज वे खोए हुए हैं। आचार्य कुल का सदस्य बनने के लिए शिक्षकों को जिस प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करने हैं उन्हें प्रतिज्ञा भी है कि राजनीतिक दल बंदी से, सत्ता की राजनीति से, स्थानीय राजनीति से , हम अलग रहेंगे। हम अपने को भारत का शांति सैनिक समझते हैं और शांति स्थापित करने का सर्वोत्तम शास्त्र हमारे पास है शिक्षाशास्त्र पुरानी और नई शिक्षा का अंतर स्पष्ट करते हुए विनोबा जी ने कहा था- नयी तालीम अर्थात नए मूल्यों की स्थापना, पुरानी तालीम चोरी को पाप समझती थी। नयी तालीम न सिर्फ चोरी को बल्कि अधिक संग्रह को भी पाप समझती है।"[8]

विनोबा भावे के अनुसार नयी तालीम के अनुरूप ही विद्यालय शिक्षा योजना का निर्माण करना होगा। विनोबा जी चाहते थे कि शिक्षक विद्यार्थी–परायण, विद्यार्थी शिक्षक–परायण, दोनों ज्ञान–परायण और ज्ञान सेवा–परायण हो पाठशाला की यहीं योजना होनी चाहिए। हम नये समाज की निर्माण की शिक्षा दे, विनोबा जी ने ग्रामीण क्षेत्रों में एक घंटे की पढाई का सुझाव भी प्रस्तुत किया। उनका अभिप्राय यहीं था कि ग्राम की समग्र जीवन से समवायित कर विद्यालय को ग्राम की सेवा का केंद्र बनाया जा सके वे ग्रामीण जीवन को सर्वांग पूर्ण मानते थे प्रत्येक गाँव में सम्पूर्ण शिक्षा का प्रबंध कर ग्राम गुरुकुल की स्थापना करना चाहते थे। ऐसा प्रयोग निष्ठावान और उत्साही शिक्षकों द्वारा ही संभव है। नई तालीम के पाठ्क्रम के विषय में इनके स्पष्ट सुझाव थे। नई तालीम में जीवन के सब बुनियादी वस्तुओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए। तत्व ज्ञान, धर्म विचार, नीति विचार, इन सब की जानकारी जरुरी है। समाजशास्त्र, मानव समाज का पूरा इतिहास आदि की भी जानकारी आवश्यक है। हमारे और दूसरे समाज की विशेषताएँ क्या हैं, इसका ज्ञान होना चाहिए, विज्ञान के मूलभूत विचार मालूम होने चाहिए। अपने विचार ठीक ढंग से प्रकाशित करने की कला मालूम होनी चाहिए।[9]

विनोबा जी अप्रासंगिक ज्ञान देने के पक्ष में नहीं है। विषय के शिक्षण के विषय में उनका विचार था की हर एक विषय को हम अलग-अलग न सोचे। बच्चों को पढ़ाते समय उन्हें पता नहीं लगना चाहिए कि उन्हें गणित पढ़ाया जा रहा है, इतिहास पढाया जा रहा है या साहित्य पढ़ाया जा रहा है। ज्ञान पुर्ण वास्तु है उसका विभाजन नहीं किया जा सकता। विद्यार्थियों के लिए तीन बातों को आवश्यक समझते थे- विचार, स्वातंत्र्य शील का विकास और वृद्ध - सेवा। वह राजनीति को अनेक पक्षों का दलदल समझते थे। ऐसी राजनीति से वह विद्यार्थियों को इस पचड़े में बिल्कुल नहीं पड़ने देना चाहते थे। विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था- आप लोग अलग-अलग यूनियन बनाते हैं। इन यूनियनों में रहने के लिए एक खास विचार प्रणाली का अनुसरण जरूरी होता है। मैं आपसे पूछता हूं शेरों का भी कोई यूनियन बनता है क्या? यूनियन तो भेड़ों का बनता है, मेरा मतलब यह नहीं है कि दूसरों के साथ आपको सहकार ही नहीं करना है अच्छी बातों में सहकार जरूर करना है लेकिन विचारों को स्वतंत्र रखना है और सत्य दर्शन के लिए उसमें आवश्यक परिवर्तन करने को सदा तैयार रहना है। इसे ही सत्य निष्ठा कहते हैं और बलवान बनने का यही मार्ग है

संदर्भ सूची

1. कर्निका (2021, सितम्बर 11). आचार्य विनोबा भावे का जीवन परिचय. https://www.deepawali.com
2. विनोबा भावे का जीवन परिचय, विचार, भूदान आन्दोलन, शिक्षा में योगदान. https://www.lhpurnationaluniversity.com
3. हर्षवर्धन (2015, सितम्बर 11). जीवन और शिक्षण – विनोबा भावे. https://www.hindichitta.com/2015/09/jivan-aur-shikshan-nivandh-in-hindi-vinoba-bhave-html

4. बायोग्राफी ऑफ़ विनोबा भावे. https://www.jivani-org.
5. कुमार, एस. (2001). विनोबा भावे. नई दिल्ली, विद्या विहार, 38.
6. शर्मा, आर. (2001). आचार्य विनोबा भावे. नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन, 82.
7. कुमार, एस. (2008). विनोबा भावे. नई दिल्ली, विद्या विहार, 40.
8. विनोबा. (1955). शिक्षण विचार. राजघाट काशी, अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 78.
9. देसाई, आर. (2000). विनोबा साहित्य शेषातम. पावनार, परमधाम प्रकाशन, ग्राम सेवा मंडल, 81.

अध्याय-21

उपनिवेशवाद, संस्कृति और भाषा: एक विमर्श

पतंजलि मिश्र
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, शिक्षा-शास्त्र विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
उत्तरप्रदेश, भारत

भाषा की प्रकृति बहुआयामी होती है जिसमें संचार, संस्कृति, पहचान और अनुभूति शामिल है। भाषा संचार की एक ऐसी जटिल प्रणाली है जिसमें मनुष्य द्वारा अर्थ व्यक्त करने, विचारों और भावनाओं को व्यक्त करने और दूसरों के साथ बातचीत करने के लिए उपयोग किए जाने वाले मौखिक, लिखित और इशारों के प्रतीक सम्मिलित होते हैं। यह सामाजिक संपर्क, संज्ञानात्मक विकास और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के लिए एक मौलिक उपकरण के रूप में कार्य करता है। इसके मूल में, भाषा में नियमों और परंपराओं का एक समूह होता है जो सार्थक उच्चारण बनाने के लिए उपयोग की जाने वाली संरचना, व्याकरण और शब्दावली को नियंत्रित करता है। ये नियम अलग-अलग भाषाओं और बोलियों में भिन्न-भिन्न होते हैं, जो उन अद्वितीय सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों को दर्शाते हैं जिनमें वे विकसित हुए। भाषा सूचना प्रसारित करने का साधन के अलावा विचार, धारणा और पहचान को आकार देने का माध्यम भी है। भाषा के माध्यम से, व्यक्ति दुनिया के बारे में अपनी समझ बनाते और साझा करते हैं, सामाजिक रिश्तों पर बातचीत करते हैं और अपनी सांस्कृतिक विरासत को व्यक्त करते हैं। व्हॉर्फ का भाषाई सापेक्षता का सिद्धांत बताता है कि भाषा वास्तविकता की हमारी धारणा को आकार देती है। भाषा संचार की एक जटिल प्रणाली है जिसमें एक समुदाय के भीतर अर्थ व्यक्त करने के लिए प्रतीकों, ध्वनियों और इशारों का उपयोग किया जाता है (ग्लीसन और रैटनर, 1997)। भाषाविद् एडवर्ड सैपिर (1921) के अनुसार, भाषा "स्वेच्छा से निर्मित प्रतीकों की एक प्रणाली के माध्यम से विचारों, भावनाओं और इच्छाओं को संप्रेषित करने की एक विशुद्ध मानवीय और गैर-सहज पद्धति है" (पृष्ठ 8)। सैपिर भाषा की स्वैच्छिक और प्रतीकात्मक प्रकृति पर जोर देता है, अभिव्यक्ति के विशिष्ट मानवीय रूप के रूप में इसकी भूमिका पर प्रकाश डालता है। इसके अलावा, भाषाविद् नोम चॉम्स्की (1965) ने भाषा को "उत्पादक व्याकरण की एक प्रणाली" (पृष्ठ 3) के रूप में वर्णित किया है, इसकी अंतर्निहित संरचना और नियमों पर जोर दिया है जो वक्ताओं को अनंत संख्या में सार्थक वाक्य बनाने में सक्षम बनाता है। चॉम्स्की का काम भाषा संरचना और अधिग्रहण के आधुनिक सिद्धांतों को आकार देने में प्रभावशाली रहा वस्तुतःभाषा पहचान, इतिहास और विश्वदृष्टि से जुड़ा हुआ है। जब एक प्रमुख भाषा स्वदेशी भाषाओं की जगह ले लेती है, तो यह उन भाषाओं में अंतर्निहित सांस्कृतिक बारीकियों, ज्ञान प्रणालियों और दुनिया को समझने के तरीकों को मिटा देती है। इससे सांस्कृतिक विविधता का नुकसान होता है, साथ ही सांस्कृतिक विरासत और परंपराएं भी कमजोर होती हैं।

उपनिवेशवाद एवं भाषा की राजनीति :

उपनिवेशवाद का भाषा पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है, क्योंकि औपनिवेशिक शक्तियां अक्सर अपनी भाषाओं को उपनिवेशित आबादी पर आरोपित कर देती हैं, जिससे स्वदेशी भाषाओं का ह्रास होता हैऔर कई बार वे विलुप्त हो भी हो जाती हैं। उपनिवेशवाद सीधे तौर पर भाषा की राजनीति के साथ जुड़ा हुआ है, जिसमें औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा भाषाओं को थोपना और दबाना शामिल है। यह गतिशीलता औपनिवेशिक संबंधों में निहित व्यापक शक्ति संघर्ष और सांस्कृतिक आधिपत्य को दर्शाती है (फ्रेरे, 1970)। भाषाई साम्राज्यवाद (Linguistic Imperialism) के रूप में जानी जाने वाली इस प्रक्रिया का भाषाई विविधता (Linguistic diversity) और सांस्कृतिक पहचान (Cultural identification) पर लंबे समय तक प्रभाव रहा है। भाषा, उपनिवेशवाद और संस्कृति एक त्रिपक्षीय संबंध बनाते हैं जिसने इतिहास की दिशा को भी सुनिश्चित किया है और समकालीन वैश्विक गतिशीलता को प्रभावित करना जारी रखा है। विभिन्न विद्वानों ने इस जटिल संबंध का व्यापक रूप से पता लगाया है, जिससे इसकी बहुमुखी प्रकृति के बारे में अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई है। फ्रांट्ज़ फ़ैनोन ने अपने मौलिक कार्य "द रेचड ऑफ़ द अर्थ" में भाषा और संस्कृति पर उपनिवेशवाद के गहरे प्रभाव पर प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं, "उपनिवेशवाद केवल लोगों को अपनी पकड़ में रखने और मूल निवासियों के मस्तिष्क को सभी प्रकार और सामग्री से खाली करने से संतुष्ट नहीं है। एक प्रकार के विकृत तर्क से, यह उत्पीड़ित लोगों के अतीत की ओर मुड़ता है, और विकृत, विरूपित और विकृत करता है। इसे नष्ट कर देता है।" इस अधिरोपण ने शासन, व्यापार और सांस्कृतिक समावेश पर नियंत्रण स्थापित करने और सुविधा प्रदान करने का काम किया (एंडरसन, 1983)| फैनन इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि कैसे औपनिवेशिक शक्तियां न केवल अपनी भाषा थोपती हैं बल्कि इस प्रक्रिया में इतिहास और पहचान को मिटाते हुए स्वदेशी संस्कृतियों को भी कमजोर करती हैं। रॉबर्ट फिलिप्सन और डेविड क्रिस्टल जैसे विद्वानों द्वारा विकसित भाषाई साम्राज्यवाद सिद्धांत भाषा के प्रसार और प्रभुत्व में निहित शक्ति की गतिशीलता को और अधिक स्पष्ट करता है। फिलिप्सन का तर्क है कि भाषा संचार का एक तटस्थ माध्यम नहीं है बल्कि प्रमुख संस्कृतियों द्वारा संचालित आधिपत्य का एक उपकरण है। उनका कहना है, "अंग्रेजी की श्रेष्ठता और अन्य भाषाओं और संस्कृतियों की हीनता के बारे में ज्ञान, मूल्यों और विश्वासों के निरंतर प्रसारण से अंग्रेजी का प्रभुत्व कायम है।" इसी प्रकार, एडवर्ड सईद की प्राच्यवाद की अवधारणा औपनिवेशिक रूढ़ियों और पदानुक्रमों के निर्माण और उन्हें कायम रखने में भाषा की भूमिका पर प्रकाश डालती है। उनका तर्क है कि औपनिवेशिक हितों से प्रेरित, ओरिएंट पर पश्चिमी प्रवचन, गैर-पश्चिमी संस्कृतियों की एक विकृत छवि बनाता है, जो उपनिवेशवादी की श्रेष्ठता को मजबूत करता है। भाषा एक तंत्र बन जाती है जिसके माध्यम से औपनिवेशिक शक्तियाँ अपना नियंत्रण स्थापित करती हैं और अपने कार्यों को उचित ठहराती हैं। इस घटना का एक पहलू औपनिवेशिक शासकों द्वारा प्रमुख भाषाओं को थोपना है। इसके साथ ही, औपनिवेशिक शक्तियां अक्सर अपनी आत्मसातीकरणवादी नीतियों के तहत स्वदेशी भाषाओं को दबाने की कोशिश करती थीं। जैसा कि ग्राम्शी (1971) ने कहा, "भाषा पर विजय पाना राजनीतिक और सांस्कृतिक आधिपत्य के मूलभूत उद्देश्यों में से एक है" (पृष्ठ 54)। स्कूलों और सरकारी संस्थानों में देशी भाषाओं पर प्रतिबंध लगाने जैसी नीतियों का उद्देश्य स्वदेशी संस्कृतियों और पहचानों को नष्ट करना है (मैकलारेन और फराहमंदपुर, 2005)।

हालाँकि, भाषा अक्सर उपनिवेशित लोगों के लिए प्रतिरोध का स्थल बन गई। न्गुगी वा थ्योंगो (Ngũgĩ wa Theong'o की रचना "डिकोलोनाइज़िंग द माइंड: द पॉलिटिक्स ऑफ़ लैंग्वेज इन अफ्रीकन लिटरेचर" एक ऐसी रचना के रूप में हमारे सामने आती है जहाँ उन्होंने भाषा, उपनिवेशवाद और संस्कृति के बीच परस्पर क्रिया पर व्यापक रूप से चर्चा की है। इस पुस्तक में, न्गुगी वा थ्योंगो का तर्क है कि भाषा न केवल संचार का साधन है बल्कि संस्कृति और पहचान का वाहक भी है। उनका तर्क है कि औपनिवेशिक शक्तियों ने वर्चस्व की रणनीति के रूप में यूरोपीय भाषाओं को अफ्रीकी समाजों पर थोप दिया, जिससे स्वदेशी भाषाओं और संस्कृतियों का क्षरण हुआ। न्गुगी चेतना और वास्तविकता की धारणाओं को आकार देने में भाषा की भूमिका पर जोर देता है। उनका दावा है कि भाषाई साम्राज्यवाद उपनिवेशित लोगों के बीच औपनिवेशिक मानसिकता को कायम रखता है, शक्ति असंतुलन को बढ़ाता है और स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों को हाशिये पर धकेलता है। न्गुगी के अनुसार, मानस को उपनिवेश से मुक्त करने और सांस्कृतिक स्वायत्तता पर जोर देने के लिए स्वदेशी भाषाओं को पुनः प्राप्त करना आवश्यक है।

अपने निबंध "ऑन द एबोलिशन ऑफ द इंग्लिश डिपार्टमेंट" (1986) में, न्गुगी ने शिक्षा और साहित्य में अफ्रीकी भाषाओं को प्राथमिकता देने की वकालत की है। उनका तर्क है कि अफ्रीकी विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी विभाग औपनिवेशिक बौद्धिक आधिपत्य की निरंतरता का प्रतीक हैं और भाषाई और सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा देने के लिए अफ्रीकी भाषाओं और साहित्य के विभागों की स्थापना का आह्वान करते हैं। इसके अलावा, न्गुगी की आत्मकथात्मक कृति "ड्रीम्स इन ए टाइम ऑफ वॉर" (2010) औपनिवेशिक केन्या में बड़े होने के उनके व्यक्तिगत अनुभवों और उनकी पहचान के निर्माण पर भाषा के गहरे प्रभाव के बारे में जानकारी प्रदान करती है। अपनी यात्रा के माध्यम से, न्गुगी उन तरीकों को दर्शाता है जिनमें भाषा व्यापक शक्ति गतिशीलता और मुक्ति के लिए संघर्ष को दर्शाती है। जैसा कि न्गुगी वा थियोंगो (1986) ने दावा किया, "गोली शारीरिक अधीनता का साधन थी। भाषा आध्यात्मिक अधीनता का साधन थी" (पृष्ठ 27)। भाषा पुनरुद्धार आंदोलन स्वायत्तता और सांस्कृतिक संप्रभुता के लिए व्यापक संघर्षों के हिस्से के रूप में उभरा (मई, 2001)। न्गुगी वा थियोंगो (1986) का तर्क है कि "भाषाओं का औपनिवेशिक थोपना भाषाई और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की एक प्रक्रिया है।" (पृ. 24) यह परिप्रेक्ष्य औपनिवेशिक प्रभुत्व को कायम रखने और स्वदेशी संस्कृतियों को नष्ट करने में भाषा की भूमिका पर जोर देता है।उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भों में, औपनिवेशिक भाषा नीतियों की विरासत भाषा अधिकारों और राष्ट्रीय पहचान के आसपास बहस को आकार देती रहती है। जैसा कि भाभा (1994) ने तर्क दिया, "उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में राष्ट्रीय पहचान के निर्माण के लिए भाषाई पहचान पर बातचीत केंद्रीय है" (पृष्ठ 122)। उत्तर-औपनिवेशिक राष्ट्र भाषाई विविधता को संरक्षित करने और एक सामान्य राष्ट्रीय भाषा को बढ़ावा देने के बीच तनाव से जूझ रहे हैं (स्कुटनाब-कांगस, 2000)। औपनिवेशिक संदर्भों में भाषा की राजनीति जटिल शक्ति गतिशीलता और सांस्कृतिक स्वायत्तता के लिए संघर्ष को दर्शाती है। ऐतिहासिक अन्याय को दूर करने और उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में भाषाई विविधता को बढ़ावा देने के लिए इन गतिशीलता को समझना आवश्यक है।

डिकोलोनियल अध्ययन के एक प्रमुख विद्वान वाल्टर मिग्नोलो ने भाषा, संस्कृति और डिकोलोनाइजेशन के अंतर्संबंध को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। "सीमावर्ती सोच (Border thinking) " और

"विऔपनिवेशिक सौंदर्यशास्त्र (decolonial aesthetics) " की उनकी अवधारणाएँ इस बात की अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं कि उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भों में भाषा और संस्कृति को कैसे पुनः प्राप्त और पुनर्कल्पित किया जा सकता है। मिग्नोलो की "बॉर्डर थिंकिंग" की अवधारणा यूरोसेंट्रिक दृष्टिकोण को चुनौती देती है और हाशिए पर रहने वाले समूहों के अनुभवों में निहित एक वैकल्पिक ज्ञानमीमांसीय रूपरेखा प्रदान करती है। उनका तर्क है कि पारंपरिक पश्चिमी ज्ञान प्रणालियाँ बाइनरी सोच और पदानुक्रमित संरचनाओं पर निर्भरता पर आधारित हैं, जो औपनिवेशिक शक्ति गतिशीलता को कायम रखती हैं। इसके बजाय, सीमा संबंधी सोच एक बहुलवादी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करती है जो जानने और होने के विविध तरीकों को अपनाती है (मिग्नोलो, 2000)। मिग्नोलो (2011) बताते हैं कि सीमा सोच में "सीमा से सोचना" शामिल है, जिसका अर्थ है "उन लोगों के परिप्रेक्ष्य से सोचना जिन्हें चुप करा दिया गया है, हाशिए पर रखा गया है और मुख्यधारा की कहानियों से बाहर रखा गया है" (पृष्ठ 3)। यह दृष्टिकोण पश्चिमी आधिपत्य के बाहर मौजूद दृष्टिकोणों और ज्ञान प्रणालियों की बहुलता को स्वीकार करता है, जो हाशिए पर रहने वाले समुदायों को अपनी आवाज़ और पहचान को पुनः प्राप्त करने के लिए सशक्त बनाता है। मिग्नोलो डिकोलोनियल परियोजना में सौंदर्यशास्त्र की भूमिका की भी पड़ताल करता है, यह तर्क देते हुए कि कलात्मक अभिव्यक्ति औपनिवेशिक विरासत को चुनौती देने और वैकल्पिक भविष्य की कल्पना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। डिकोलोनियल सौंदर्यशास्त्र में साहित्य, दृश्य कला, संगीत और प्रदर्शन सहित रचनात्मक अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप शामिल हैं, जो प्रमुख कथाओं को बाधित करते हैं और सांस्कृतिक विविधता का जश्न मनाते हैं (मिग्नोलो, 2009)। मिग्नोलो (2011) के अनुसार, डिकोलोनियल सौंदर्यशास्त्र में "औपनिवेशिक ज्ञानमीमांसा की सीमाओं से परे देखने, सुनने और महसूस करने के तरीके को अनसीखा करने और पुनः सीखने की एक प्रक्रिया" शामिल है (पृष्ठ 87)। स्वदेशी और निम्नवर्गीय आवाज़ों को केन्द्रित करके, उपनिवेशवाद-विरोधी सौंदर्यशास्त्र औपनिवेशिक पदानुक्रमों को चुनौती देता है और सांस्कृतिक सुधार और प्रतिरोध के लिए नई संभावनाएँ प्रदान करता है। मिग्नोलो का काम उपनिवेशवाद से मुक्ति के प्रयासों में भाषाई और सांस्कृतिक विविधता के महत्व पर जोर देता है। सीमा संबंधी सोच और औपनिवेशिक सौंदर्यशास्त्र को अपनाकर, औपनिवेशिक विरासतों को चुनौती देते हुए और अधिक न्यायसंगत और समावेशी भविष्य की कल्पना करते हुए, समुदाय अपनी भाषाओं, संस्कृतियों और पहचान को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। औपनिवेशिक शक्तियाँ अक्सर प्रशासनिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों के लिए उपनिवेशित क्षेत्रों पर अपनी भाषाएँ थोपती हैं। इस अधिरोपण ने उपनिवेशित आबादी पर नियंत्रण स्थापित करने, शासन, व्यापार और सांस्कृतिक आत्मसात करने की सुविधा प्रदान की। उदाहरण के लिए, भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के कारण प्रशासन, शिक्षा और अभिजात वर्ग के प्रवचन की भाषा के रूप में अंग्रेजी का व्यापक उपयोग हुआ, जिससे हिंदी, बंगाली और तमिल जैसी स्वदेशी भाषाएँ हाशिए पर चली गई। उपनिवेशवाद के समर्थकों का तर्क है कि इसने सांस्कृतिक आदान-प्रदान और विकास को सुविधाजनक बनाया। चिम्मांडा न्गोज़ी अदिची (2009) का सुझाव है कि "उपनिवेशवाद हिंसा है, और हिंसक होने के कई तरीके हैं।" (पृ. 53) एडिची का बयान उत्पीड़न के सामने स्वदेशी संस्कृतियों के लचीलेपन को रेखांकित करते हुए उपनिवेशवाद की जटिलताओं को स्वीकार करता है। रीटा मॅई ब्राउन (1988) ने ठीक ही कहा है, "भाषा किसी संस्कृति का रोड मैप है। यह आपको बताती है कि इसके लोग कहां से आते हैं और कहां जा रहे हैं।" (पृ. 1) यह उद्धरण भाषाई विविधता के संरक्षण के महत्व पर जोर देते हुए भाषा और सांस्कृतिक पहचान के बीच आंतरिक संबंध पर प्रकाश डालता है।

स्वदेशी भाषाओं और संस्कृतियों को पुनः प्राप्त करने और पुनर्जीवित करने के प्रयासों को अक्सर उपनिवेशवाद से मुक्ति के संदर्भ में तैयार किया जाता है। अमा अता ऐडू (1991) उपनिवेशवाद के प्रभाव को दर्शाता है, जिसमें कहा गया है कि "उपनिवेशवाद आपको अपने आत्मसम्मान से वंचित करता है और इसे वापस पाने के लिए आपको संतुलन बनाए रखने के लिए संघर्ष करना होगा।" (पृ. 82) ऐडू का उद्धरण औपनिवेशिक विरासतों को चुनौती देने और सांस्कृतिक स्वायत्तता को पुनः प्राप्त करने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

भारतीय सन्दर्भ में उपनिवेशवाद, संस्कृति और भाषा पर बहस की पड़ताल :

शुरुआत से ही भाषा और शिक्षा के सन्दर्भ में भारत में दो विचार प्रमुख रहे हैं। एक विचार अंग्रेज़ी शिक्षा के पक्ष में रहा है और दूसरा विचार अंग्रेज़ी कक्षा के विपक्ष में रहा है। स्वतंत्र-पूर्व भारत में, उपनिवेशवाद ने अंग्रेजी शिक्षा नीतियों को गहराई से प्रभावित किया, जैसा कि मैकाले मिनट्स, वुड्स डिस्पैच और ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा शुरू किए गए अन्य शैक्षिक सुधारों जैसे मौलिक दस्तावेजों से प्रमाणित है। इन नीतियों ने औपनिवेशिक विचारधाराओं को प्रतिबिंबित किया, सत्ता के अंतर को कायम रखा और भारत में अंग्रेजी शिक्षा के पथ को आकार दिया। थॉमस बबिंगटन मैकाले द्वारा लिखित 1835 के मैकाले मिनट्स ने भारतीयों का एक ऐसा वर्ग तैयार करने के साधन के रूप में अंग्रेजी शिक्षा को बढ़ावा देने की वकालत की, जो खून और रंग में भारतीय हो, लेकिन स्वाद, राय, नैतिकता और बुद्धि में अंग्रेजी हो। " इस नीति का उद्देश्य अंग्रेज़ीकृत भारतीयों का एक ऐसा वर्ग तैयार करना था जो ब्रिटिश शासकों और स्वदेशी आबादी के बीच मध्यस्थ के रूप में काम करेगा। अंग्रेजी-माध्यम शिक्षा को प्राथमिकता देकर, मैकाले मिनट्स ने औपनिवेशिक पदानुक्रमों को मजबूत किया और स्वदेशी भाषाओं और संस्कृतियों को हाशिये पर धकेल दिया।

चार्ल्स वुड द्वारा तैयार 1854 के वुड्स डिस्पैच ने देश भर के स्कूलों और कॉलेजों तक पहुंच का विस्तार करके भारत में अंग्रेजी शिक्षा को और अधिक संस्थागत बना दिया। जबकि इस पॉलिसी ने प्राथमिक स्कूली शिक्षा के लिए स्थानीय भाषा शिक्षा के महत्व पर जोर दिया, इसने उच्च शिक्षा और सरकारी रोजगार के लिए शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को प्राथमिकता देना जारी रखा। इस दोहरी भाषा नीति ने भाषा दक्षता के आधार पर सामाजिक विभाजन को कायम रखा और भारतीय शिक्षा में अंग्रेजी के प्रभुत्व को मजबूत किया। बाद के शैक्षिक सुधारों, जैसे 1882 के हंटर कमीशन और 1904 के भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम, ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा की औपनिवेशिक विरासत को मजबूत किया। इन नीतियों का उद्देश्य विश्वविद्यालयों और माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के प्राथमिक माध्यम के रूप में अंग्रेजी के साथ शिक्षा प्रणाली को मानकीकृत और केंद्रीकृत करना था। अंग्रेजी शिक्षा पर जोर ने पश्चिमी विचारों और मूल्यों के प्रसार को सुविधाजनक बनाया, जिससे पश्चिमी-शिक्षित भारतीय बुद्धिजीवियों के एक नए वर्ग के उद्भव में योगदान हुआ जिन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्पष्ट तौर पर देखते हैं कि उन्नीसवीं और शुरुआती 20 वीं शताब्दी में शिक्षा के क्षेत्र में हुए अधिकतर प्रयासों में अंग्रेजी, भाषा, साहित्य व संस्कृति को ही प्रधानता प्रदान की गई थी। इसके साथ ही अंग्रेजी भाषा में पश्चिमी ज्ञान को ही प्रायः ज्ञान का पर्याय माना गया था। जब अंग्रेज भारत की शिक्षा के माध्यम को लेकर चिंता कर रहे थे , उस समय ऐसे भारतवासियों का सर्वथा आभाव था जो भारत की आधुनिक भाषाओं का पक्ष ले सकें। उतने बड़े दूरदर्शी

नेता राजा राम मोहन राय को भी यह नहीं सूझा कि एक बार वे बांग्ला और हिन्दी के बारे में सोच लें (दिनकर ,1956, पृ 371)। अंग्रेजी शिक्षा को भारतीय सुधारकों और राष्ट्रवादियों की आलोचना का भी सामना करना पड़ा, जिन्होंने इसे सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के एक उपकरण और स्वदेशी भाषाओं और ज्ञान प्रणालियों के संरक्षण में बाधा के रूप में देखा। रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसी शख्सियतों ने शिक्षा के प्रति अधिक समावेशी दृष्टिकोण की वकालत की जो भारत की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करती हो। टैगोर ने शिक्षा में स्थानीय भाषाओं के महत्व पर जोर दिया, उनका मानना था कि सांस्कृतिक विरासत और पहचान की गहरी समझ को बढ़ावा देने के लिए सीखने की जड़ें किसी की मातृभाषा में होनी चाहिए। उन्होंने साहित्य, विज्ञान और गणित जैसे विषयों के साथ-साथ बंगाली साहित्य, संगीत और कला के अध्ययन को बढ़ावा दिया। तत्कालीन बम्बई की शिक्षा नीति पर कैप्टन कैंडी की रिपोर्ट इस पर प्रकाश डालती है। इसमें कैंडी ने स्पष्ट लिखा है कि – भारत के नैतिक और बौद्धिक विकास के कार्य में अंग्रेज़ी को ज़रुरत से ज़्यादा महत्व देना व्यर्थ है। उसका ज़रुरत से ज़्यादा बह्योसा करना भी बेकार है। भारतीयों की शिक्षा के कर्म में अंग्रेज़ी केवल विषय और विचार दे सकती है, यह शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकती। जिस भाषा के द्वारा जनता शिक्षित की जायेगी, वह भाषा जनता की मातृभाषा ही हो सकती है, अंग्रेज़ी और संस्कृत नहीं। संस्कृत को मैं उस महान भण्डार के रूप में देखता हूँ जिससे आधुनिक भाषाएँ शक्ति एवं सौन्दर्य ग्रहण कर सकती हैं (दिनकर, 1956, पृष्ठ 370)

औपनिवेशिक अधिकारियों ने अंग्रेजी शिक्षा को औपनिवेशिक नियंत्रण को मजबूत करने और ब्रिटिश हितों को बढ़ावा देने के साधन के रूप में देखा। कुछ चुनिंदा भारतीयों को शिक्षित करने के लिए अंग्रेजी माध्यम के स्कूल स्थापित किए गए थे जो ब्रिटिश शासकों और स्थानीय आबादी के बीच मध्यस्थ के रूप में काम करेंगे। शिक्षा के प्रति इस चयनात्मक दृष्टिकोण ने एक पदानुक्रमित प्रणाली का निर्माण किया जो अंग्रेजी में पारंगत लोगों को विशेषाधिकार देता था, अक्सर स्वदेशी भाषाओं और संस्कृतियों की कीमत पर। औपनिवेशिक सरकार का अंग्रेजी शिक्षा पर जोर श्रेष्ठता और सांस्कृतिक आत्मसात की व्यापक विचारधाराओं को भी प्रतिबिंबित करता था। अंग्रेजी को आधुनिकता, प्रगति और सभ्यता के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया, जबकि स्वदेशी भाषाओं और ज्ञान प्रणालियों को पिछड़े और आदिम के रूप में बदनाम किया गया। इस सांस्कृतिक पदानुक्रम ने औपनिवेशिक शक्ति की गतिशीलता को मजबूत किया और स्वदेशी पहचान को हाशिये पर धकेल दिया। इसके अलावा, अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार ने भारतीय समाज के भीतर सामाजिक स्तरीकरण में योगदान दिया। अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा तक पहुंच काफी हद तक कुलीन वर्गों तक ही सीमित थी, जिससे जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर मौजूदा असमानताएं और बढ़ गईं परिणामस्वरूप, अंग्रेजी शिक्षा सामाजिक प्रतिष्ठा और ऊर्ध्वगामी गतिशीलता से जुड़ गई, जिससे औपनिवेशिक पदानुक्रम और भी मजबूत हो गए। इसलिए भारत में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न केवल भाषा दक्षता के बारे में नहीं है, बल्कि पहचान, समानता और उपनिवेशवाद से मुक्ति के मुद्दों के बारे में भी है। शिक्षा में अंग्रेजी बनाम क्षेत्रीय भाषाओं की भूमिका के बारे में बहस चल रही है, जिसमें समर्थक भाषाई विविधता और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और प्रचार के लिए बहस कर रहे हैं। अपनी औपनिवेशिक उत्पत्ति और अभिजात्यवादी प्रवृत्तियों के बावजूद, अंग्रेजी शिक्षा ने भारत की आधुनिक पहचान को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने भारतीय बुद्धिजीवियों के एक नए वर्ग के उद्भव में मदद की, जो पश्चिमी विचारों और मूल्यों से अवगत हुए, जिन्होंने राष्ट्रवादी

चेतना और उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलन के उदय में योगदान दिया। अंग्रेजी भारतीय सुधारकों और बुद्धिजीवियों के लिए अपनी शिकायतें व्यक्त करने और स्वतंत्रता के लिए समर्थन जुटाने का एक उपकरण भी बन गई। कृष्ण कुमार ने अपनी पुस्तक " पोलिटिकल एजेंडा ऑफ़ एजुकेशन : ए स्टडी ऑफ़ कोलोनिअलिस्ट एंड नेशनलिस्ट आइडियाज़ " (1991), जहां उन्होंने पता लगाया कि कैसे औपनिवेशिक शिक्षा नीतियों का उद्देश्य उपनिवेशवादियों की विचारधाराओं का प्रचार करना और स्वदेशी संस्कृतियों और भाषाओं को कमजोर करना था। उनका तर्क है कि इस प्रक्रिया में भाषा एक महत्वपूर्ण उपकरण थी, क्योंकि औपनिवेशिक भाषाओं को थोपने से स्थानीय भाषाओं को हाशिए पर धकेल दिया गया और सांस्कृतिक पहचान नष्ट हो गई।

एमोरी विश्वविद्यालय में उत्तर-औपनिवेशिक अध्ययन की विद्वान जेनिफर मार्गुलिस (1996) बताती हैं, भाषाओं का मुद्दा साहित्यिक ग्रंथों के अध्ययन में विचार के लिए कई विवादास्पद प्रश्न उठाता है। वे कहतीं हैं कि क्या लेखक स्थानीय भाषा या प्रमुख यूरोपीय भाषा में काम करना चुनता है? यदि पूर्व - कार्य का अनुवाद कैसे और किसके द्वारा किया जाता है? अनुवाद की वजह से मूल अर्थ में क्या परिवर्तन आया होगा? कार्य में निरसन/विरूपण तथा विनियोजन/सुधार की किस प्रकार की अर्थ संबंधी प्रक्रियाएँ घटित होती हैं? जब कोई स्थानीय भाषा शब्द उधार देती है, तो वे किस संदर्भ में होते हैं? अंततः, प्रतिरोध के अंतर्निहित सिद्धांत के बारे में भाषा का उपयोग क्या दर्शाता है? इस सन्दर्भ में आनंद कुमार स्वामी का कथन भी अत्यंत महत्व का है। वो पश्चिम के ओरिएंटलिस्ट विद्वानों की व्याख्या और अनुवादधर्मी कर्म पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि – उन्होंने भारते के प्राचीन दर्शनों, धर्मशास्त्रों और तत्वज्ञान की पुस्तकों के बीच पदों एवं प्रत्ययों के जो अनुवाद किये हैं , वे सिर्फ भ्रमों की धुंध पैदा करते हैं। इसका सीधा कारण यह है कि वे इस प्रत्ययों के सांस्कृतिक सन्दर्भ को समझने में पूरी तरह विफल रहे हैं। सच तो यह है कि इन अनुवादों को अस्वीकार करके ही इन ग्रंथों के निहितार्थ को जाना जा सकता है (शर्मा , 2020 पृ 79)

भारत में शिक्षा के माध्यम का मुद्दा उपनिवेशवाद की विरासत और उपनिवेशवाद के चल रहे प्रभावों से गहराई से जुड़ा हुआ है। औपनिवेशिक काल के दौरान, ब्रिटिश शासकों द्वारा अंग्रेजी को प्रशासन, शिक्षा और शासन की भाषा के रूप में स्थापित किया गया था। इस नीति का भारत की शिक्षा प्रणाली पर स्थायी प्रभाव पड़ा, जिससे देश में ज्ञान प्रदान करने और उस तक पहुँचने के तरीके को आकार मिला। शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी की औपनिवेशिक विरासत स्वतंत्र भारत में शैक्षिक नीतियों को प्रभावित करती रही है। जबकि अंग्रेजी को प्रतिष्ठा और ऊर्ध्वगामी गतिशीलता का प्रतीक माना जाता है, यह कई विद्यार्थियों , विशेष रूप से गैर-अंग्रेजी भाषी पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों के लिए एक बाधा के रूप में भी काम करती है। यह भाषाई विभाजन गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और सामाजिक और आर्थिक उन्नति के अवसरों तक पहुंच में असमानताओं को कायम रखता है। इसके अलावा, शिक्षा में अंग्रेजी का प्रभुत्व उपनिवेशवाद के एक रूप को कायम रखता है, जिसमें औपनिवेशिक शासन के दौरान स्थापित संरचनाएं, विचारधाराएं और शक्ति की गतिशीलता उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में बनी रहती है। स्वदेशी भाषाओं पर अंग्रेजी का विशेषाधिकार ज्ञान के पदानुक्रम को मजबूत करता है और स्थानीय संस्कृतियों और भाषाओं को हाशिये पर धकेल देता है। इसलिए भारत में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न केवल भाषा दक्षता के बारे में नहीं है, बल्कि पहचान, समानता और उपनिवेशवाद से मुक्ति के मुद्दों के बारे में भी है। शिक्षा में अंग्रेजी बनाम क्षेत्रीय भाषाओं की भूमिका के बारे में बहस चल रही है, जिसमें समर्थक भाषाई विविधता और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और प्रचार के

लिए बहस कर रहे हैं। भारत में शिक्षा की औपनिवेशिकता को संबोधित करने के प्रयासों में द्विभाषी या बहुभाषी दृष्टिकोण की वकालत करना शामिल है जो अंग्रेजी और क्षेत्रीय दोनों भाषाओं के मूल्य को पहचानता है। इस तरह के दृष्टिकोण का उद्देश्य समावेशी और सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा प्रदान करना है, साथ ही छात्रों को वैश्विक दुनिया में सफलता के लिए आवश्यक भाषाई कौशल से लैस करना है। भारत में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न औपनिवेशिक अतीत से विरासत में मिली उपनिवेशवाद और शक्ति की गतिशीलता के व्यापक मुद्दों को दर्शाता है। इस प्रश्न को संबोधित करने के लिए भाषा, संस्कृति और शिक्षा से जुड़ी जटिलताओं की सूक्ष्म समझ के साथ-साथ शिक्षा प्रणाली में समानता, विविधता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने की प्रतिबद्धता की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. अदीची, सी एन (2009). द डेंजर ऑफ़ ए सिंगल स्टोरी। टेड। https://www.ted.com/talks/chimamanda_ngozi_adichie_the_danger_of_a_single_story
2. एडू , ए ए (1991). द आर्ट ऑफ़ एडू: एन एक्स्प्लोरेशन ऑफ़ एडूओ'ज़ आर्ट इन हिस टू नॉवेल्स, आवर सिस्टर किलजॉय एंड टू सिस्टर्स. हो, घाना: डिवाइन पब्लिकेशंस।
3. ब्राउन, आर एम (1988). रीटा मे ब्राउन'ज़ साउदर्न डिसकम्फर्ट. न्यूयॉर्क: बंटम बुक्स।
4. क्रिस्टल, डी. (1987). द कैम्ब्रिज एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ लैंग्वेज. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. चोमस्की, एन (1965). एस्पेक्ट्स ऑफ़ द थ्योरी ऑफ़ सिंटैक्स। एमआईटी प्रेस।
6. ग्लीसन जे बी , & रैत्नर, एम् बी (1997). साइकलोजी ऑफ़ लैंग्वेज. हार्कोर्ट ब्रेस कॉलेज पब्लिशर्स।
7. सैपीयर, ई (1921). लैंग्वेज: अन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ़ स्पीच। हार्कोर्ट, ब्रेस एंड कंपनी।
8. एन्डरसन, बी (1983). इमैज़्ड कम्यूनिटीज: रिफ्लेक्शंस ऑन द ओरिज़िन एंड स्प्रेड ऑफ़ नैशनलिज़्म। वर्सो।
9. भाभा, एच के (1994). द लोकेशन ऑफ़ कल्चर। राउटलेज़।
10. फैनन, ऍफ़ (1963). द रेचेड ऑफ़ द अर्थ। ग्रोव प्रेस।
11. फ्रेरे , पी (1970). पेडागोजी ऑफ़ द ओप्रेस्ड. हर्डर एंड हर्डर।
12. ग्राम्शी, अ (1971). सेलेक्शंस फ्रम द प्रिज़न नोटबुक्स। इंटरनेशनल पब्लिशर्स।
13. मे., एस. (2001). लैंग्वेज एंड माइनॉरिटी राइट्स: एथनिसिटी, नैशनलिज़्म, एंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ लैंग्वेज। राउटलेज़।
14. मैकलौरेन, पी & फैरामान्दपुर ,ए आर (2005). टीचिंग एगेंस्ट ग्लोबलाइज़ेशन एंड द न्यू इम्पीरियलिज़्म: टॉवर्ड अ रेवोल्यूशनरी पेडागोजी। रोमन & लिटिलफील्ड।
15. न्गुगी वा थ्योंगो (1986). डेकोलोनाइज़िंग द माइंड: द पॉलिटिक्स ऑफ़ लैंग्वेज इन अफ्रीकन लिट्रेचर। हीनेमैन।
16. स्कत्नाब- कंकगास, टी. (2000). लिंग्विस्टिक जेनोसाईड इन एजुकेशन ऑर वर्ल्डवाइड डिवर्सिटी एंड ह्यूमन राइट्स?. राउटलेज़।

17. मार्गुलिस, जेनिफर & नोवासकी पीटर. (1996). लैंग्वेज. http://www.english.emory.edu/Bahri/Language.html
18. शर्मा, अम्बिकादत्त (2020) भारतीय मानस का वि-औपनिवेशीकरण : प्रामाणिक संस्कृतात्मा के प्रत्याभिज्ञान की कार्ययोजना, नयी दिल्ली : सेतु प्रकाशन , पृ 79 ।
19. मिग्नोलो , डब्ल्यू. डी. (2000). लोकल हिस्ट्रीज/ग्लोबल डिज़ाइंस: कॉलोनियलिटी, सबाल्टर्न नॉलेजेस, और बॉर्डर थिंकिंग. प्रिंसटन , न्यू जर्सी : प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस। https://enriquedussel.com/txt/Textos_200_Obras/Giro_descolonizador/Local_histories-Walter_Mignolo.pdf
20. मिग्नोलो , डब्ल्यू. डी. (2009). द आइडिया ऑफ़ लैटिन अमेरिका। जॉन वाइली & संस।
21. मिग्नोलो , डब्ल्यू. डी. (2011). द डार्कर साइड ऑफ़ वेस्टर्न मॉडर्निटी: ग्लोबल फ्यूचर्स, डेकोलोनियल ऑप्शन्स। ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस।
22. दिनकर, रामधारी सिंह (1956) संस्कृति के चार अध्याय , इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, पृ-370
23. कुमार, कृष्ण. (1991). पोलिटिकल एजेंडा ऑफ़ एजुकेशन : ए स्टडी ऑफ़ कोलोनिअलिस्ट एंड नेशनलिस्ट आइडियाज़, नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स।

अध्याय-22

महिला आंदोलन का वैश्विक स्वरूप

राजेन्द्र कुमार पाण्डेय
प्राचार्य, देशबन्धु महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

विशिष्ट ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित क्षेत्रों में, विश्वव्यापी महिला आंदोलन ने एक गतिशील विकास का अनुभव किया है। प्रारंभिक नारीवादी आंदोलनों में उत्पन्न, जो प्रजनन अधिकारों, मताधिकार और कार्यस्थल समानता की वकालत करते थे, इसकी उत्पत्ति पश्चिमी दुनिया में हुई है। जैसे-जैसे समय बीतता गया है, इसका दायरा व्यापक हो गया है और इसमें और लिंग-आधारित हिंसा जैसी चिंताओं की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल हो गई है। तीसरे विश्व में भी महिलायें अपने अधिकारों के लिए सतत संघर्ष करती रही है। महिला आंदोलन की शुरुआत लैटिन अमेरिका में सत्तावादी शासन और दमनकारी सैन्य नीतियों की प्रतिक्रिया के रूप में हुई, इसके सदस्यों ने स्वदेशी अधिकारों, राजनीतिक जुड़ाव और मानवाधिकारों जैसी चिंताओं के आधार पर खुद को संगठित किया। महिलाओं ने राष्ट्रवादी और उपनिवेशवाद-विरोधी आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया, जिसमें उन्होंने अपने-अपने समुदायों के भीतर पितृसत्तात्मक संरचनाओं और औपनिवेशिक अधीनता का सामना किया। महिला आंदोलन ने व्यापक स्तर पर सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता की वकालत करते हुए पूरे अफ्रीका में उत्तर-औपनिवेशिक राष्ट्र-निर्माण और मुक्ति आंदोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राजनीतिक अस्थिरता और संघर्ष का सामना करने पर भी, स्वास्थ्य देखभाल की पहुंच, शैक्षिक अवसरों और आर्थिक सशक्तीकरण सहित चिंताओं से निपटने के लिए महिलाओं ने अक्सर जमीनी स्तर के आंदोलनों का नेतृत्व किया है। पश्चिमी एशिया में महिला आंदोलन को राजनीतिक अधिनायकवाद, धर्म और संस्कृति के बीच जटिल अंतर्क्रिया से जूझते देखा गया है। महिलाओं ने उन आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया है जो प्रकृति में धर्मनिरपेक्ष और धार्मिक हैं तथा सार्वजनिक भागीदारी में वृद्धि, कानूनी सुधार और सामाजिक परिवर्तन की वकालत करते हैं। क्षेत्रीय भिन्नताओ के बावजूद, दुनिया भर में महिला आंदोलन प्रणालीगत असमानताओं का सामना करने और लैंगिक समानता को आगे बढ़ाने के प्रति अपने समर्पण में एकजुट है। सीमा पार एकजुटता और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से, महिला कार्यकर्ता दुनिया भर में महिलाओं के अधिकारों और सम्मान को बढ़ावा देने के अपने प्रयासों में भौगोलिक सीमाओं को पार करते हुए, अधिक समावेशी और निष्पक्ष वैश्विक समाज के लिए लगातार प्रयास कर रही हैं।

महिला आंदोलन की समझ

विभिन्न परिपेक्ष और दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप महिला आंदोलनों और नारीवाद की धारणा की विभिन्न व्याख्याएं हो सकती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में, महिला आंदोलन कभी-कभी संगठित नारीवाद का पर्याय बन जाता है, हालाँकि, दुनिया के अन्य हिस्सों में, महिलाएँ विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं को लेकर संगठित होती हैं

जो लैंगिक संबंधों से परे हैं।[1] "महिला आंदोलन" शब्द महिलाओं की किसी भी लामबंदी को संदर्भित करता है जो विशेष रूप से सामाजिक परिवर्तन लाने पर केंद्रित है, उन विशेष उद्देश्यों से स्वतंत्र जो किसी भी समय अपनाए जा रहे हैं।[2] यह व्यापक परिभाषा महिलाओं की सक्रियता की गतिशील प्रकृति को दर्शाती है, जो उन आंदोलनों की विशेषता है जो पहले लिंग-संबंधित चिंताओं पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं लेकिन बाद में नारीवादी घटकों को एकीकृत करते हैं, या इसके विपरीत। महिलाओं को सांस्कृतिक सीमाओं का सामना करने और महिलाओं के बीच नेटवर्क बनाने में सक्षम बनाने के लिए, महिला आंदोलन उन तकनीकों का उपयोग करते हैं जो एक निर्वाचन क्षेत्र के रूप में महिलाओं को आकर्षित करती हैं। दूसरी ओर, नारीवाद को पुरुषों के प्रति महिलाओं की अधीनता का सामना करने और उसमें सुधार करने के उद्देश्य के रूप में वर्णित किया गया है तथा नारीवाद को अक्सर नारीवादी दर्शन और प्रथाओं द्वारा सूचित किया जाता है।[3] नारीवादी लामबंदी के लिए अन्य प्रकार के उत्पीड़न को भी चुनौती देना संभव है, खासकर जब वे लिंग, वर्ग, नस्लवाद और अन्य सामाजिक श्रेणियों के बीच अंतर्संबंधों को स्वीकार करते हैं। किंतु पश्चिम में महिला आंदोलन को समझने के लिए नारीवाद की उत्पत्ति और विकास को समझना अति महत्वपूर्ण है।

महिलाएं अपनी लिंग पहचान के आधार पर अपने अधिकारों और हितों के लिए अभियान चलाने के लिए एकजुट हो रही हैं, और यही महिला आंदोलन का सार है।[4] यह एक अनूठा विचार है जिसमें महिलाएं अपने लिए प्रासंगिक मुद्दों को हल करने के लिए खुद को विशेष रूप से महिला के रूप में संगठित करती हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यह आंदोलन उन गतिविधियों से अलग है जिनका नेतृत्व पुरुषों या महिलाओं द्वारा किया जाता है और जो लैंगिक पहचान के आसपास स्पष्ट रूप से संरचित नहीं हैं। महिलाओं द्वारा की गई सामूहिक गतिविधियाँ, महिलाओं के रूप में स्पष्ट रूप से संगठित होना और लैंगिक पहचान के दावों की प्रस्तुति महिला आंदोलन के दो सबसे महत्वपूर्ण पहलू हैं।[5] विशिष्ट रणनीतियाँ या राज्य के साथ आंदोलन का संबंध नहीं, बल्कि आंदोलन के आदर्श ही इसे अन्य आंदोलनों से अलग करते हैं। सफलता प्राप्त करने के उद्देश्य से, आंदोलन के नेताओं के लिए इन विचारों को तैयार करने और व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना आवश्यक है। यह सामूहिकता की पहचान और हितों को प्रतिबिंबित करने के बारे में है। यह आंदोलन राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन लाना चाहता है, और यह आलोचनात्मक चर्चा और सामूहिक कार्रवाई के गठजोड़ पर कार्य करता है।

विमर्श और अभिनेता दो महत्वपूर्ण गुण हैं जो महिला आंदोलनों में अंतर्निहित हैं तथा एक-दूसरे से घनिष्ठ संबंध के कारण, ये घटक मिलकर एक महिला आंदोलन का निर्माण करते हैं। महिलाओं की लैंगिक पहचान के संबंध में, विमर्श घटक में अवधारणाएं, तर्क, उद्देश्य और दावे शामिल होते हैं जो विषय के इर्द-गिर्द घूमते हैं। इस घटना की जड़ें लैंगिक चेतना में खोजी जा सकती हैं, जिसमें उन तरीकों को स्वीकार करना शामिल है जिनसे किसी की राजनीतिक भागीदारी लिंग से प्रभावित होती है और उनके साझा लिंग अनुभवों के आधार पर अन्य लोगों के साथ संबंध स्थापित करना शामिल है। अतिरिक्त स्पष्टीकरण के लिए, मैक्सिन मोलिनेक्स "महिलाओं के हितों" और "लिंग हितों" के बीच अंतर करती है, इसलिए उन तरीकों पर जोर देती है जिनसे लिंग स्थिति हितों को प्रभावित करती है।[6] विमर्श आयाम में, लैंगिक हित दो प्रकार के होते हैं: रणनीतिक लैंगिक हित, जो संरचनात्मक विश्लेषणों पर आधारित होते हैं, और व्यावहारिक लैंगिक हित, जो वास्तविक जीवन के अनुभवों से प्राप्त होते हैं।[7] इस तथ्य के

बावजूद कि विचार महिला आंदोलन की नींव हैं, सार्वजनिक जीवन में इन अवधारणाओं को संप्रेषित करने के लिए सामूहिक अभिनेता नितांत आवश्यक हैं। सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में, ये खिलाड़ी एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हैं और इन राज्यों के आधिकारिक ढांचे के बाहर काम करते हैं। दूसरी ओर, आंदोलन और राज्य के बीच की सीमा इस तथ्य के कारण धुंधली हो सकती है कि राज्य के अंदर कुछ समूह महिला आंदोलन के विमर्श को आगे बढ़ा रहे हैं। अनुभवजन्य मानक, जैसे लिंग आधारित शब्दावली, एक समूह के रूप में महिलाओं की स्पष्ट पहचान और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं का चित्रण, महिला आंदोलन के भाषण की पहचान करने में सहायक होते हैं।[8] चाहे वे पेशेवर पैरवी समूह हों या अनौपचारिक जमीनी स्तर के आंदोलन, संगठन महिला आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, दोनों प्रकार के संगठन महत्वपूर्ण हैं। राज्य संस्थानों के भीतर काम करने वाले व्यक्तियों के लिए महिलाओं की समस्याओं का समर्थन करना संभव है, भले ही वे महिला आंदोलन समूहों के स्थायी सदस्य न हों।

नारीवादी आंदोलन के चरण

पश्चिमी देशों में महिलाओं के संघर्षों को समझने के लिए नारीवादी आंदोलन के विभिन्न चरणों को समझना अतिव्यक्षक है। नारीवादी आंदोलन के विभिन्न चरणों का वर्णन करने के लिए संज्ञा क्रमिक लहरों की दी गई है जो उत्तरोत्तर उग्र होते जा रही हैं। 19वीं और 20वीं सदी की शुरुआत में, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका और यूनाइटेड किंगडम में, नारीवाद की पहली लहर महिलाओं के लिए समान अधिकार हासिल करने के उद्देश्य से विकसित हुई, जिसमें राजनीतिक शक्ति और मतदान अधिकार प्राप्त करने पर विशेष जोर दिया गया तथा नेशनल वुमन पार्टी और नेशनल अमेरिकन वुमन सफ़रेज एसोसिएशन ऐसे दो समूह थे जो इस समयावधि के दौरान उभरे।[9] अमेरिकी समान अधिकार एसोसिएशन उन संगठनों में से एक था जो इस समय अवधि के दौरान उत्पन्न हुए थे। 1920 में संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान में 19वें संशोधन का सफल अनुसमर्थन, जिसने महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिया, इस लहर का चरमोत्कर्ष था। आर्थिक, यौन और प्रजनन अधिकारों के साथ-साथ, सक्रियता की इस लहर ने महिलाओं के अधिकारों के विभिन्न क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित किया, जैसे सार्वजनिक स्थानों तक पहुंच, रोजगार के अवसर और शैक्षिक अवसर। दूसरी ओर, इसने ज्यादातर उन मुद्दों को संबोधित किया जो मध्यमवर्गीय घरों से आने वाली श्वेत महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण थे, और इसने अक्सर उन परिस्थितियों को नजरअंदाज कर दिया जिनका सामना अश्वेत महिलाओं को करना पड़ता था।[10] इसके अतिरिक्त, प्रतिबंध और संघर्ष भी थे, जैसे कुछ नारीवादी आंदोलनों से अश्वेत महिलाओं का बहिष्कार और नस्लीय पूर्वाग्रहों और अलगाववाद के बारे में बहस। इस तथ्य के बावजूद कि महान प्रगति हासिल की गई, कुछ सीमाएँ भी बनाई गई। कामुकता, प्रजनन अधिकार और स्थापित लिंग भूमिकाओं पर सवाल उठाने जैसे विषयों पर ध्यान देने के साथ, नारीवाद की दूसरी लहर 1960 के दशक में विकसित हुई और 1990 के दशक तक जारी रही।[11] मार्क्सवादी नारीवाद और समाजवादी नारीवाद के अलावा, इसमें अन्य राजनीतिक नारीवाद की एक विस्तृत श्रृंखला भी शामिल थी। कई प्रदर्शनों, जैसे कि मिस अमेरिका पेजेंट्स के ख़िलाफ़ प्रदर्शन, जिनके बारे में माना जाता था कि वे महिलाओं को वस्तु की तरह पेश कर रहे थे, ने आंदोलन की वृद्धि और गति में योगदान दिया। दूसरी लहर के दौरान, सबसे प्रमुख वाक्यांशों में से एक था "व्यक्तिगत राजनीतिक है", जिसने बड़े राजनीतिक और सामाजिक सरोकारों के साथ व्यक्तिगत अनुभवों की मिलाने पर जोर दिया, इसके अतिरिक्त, इस लहर का उद्देश्य महिलाओं के लिए प्रासंगिक विभिन्न प्रकार के मुद्दों को संबोधित

करना था, जैसे स्कूल और व्यसायो के अवसरों तक समान पहुंच, मातृत्व अवकाश, बच्चों की देखभाल, घरेलू हिंसा और यौन उत्पीड़न।[12] दूसरी ओर, दूसरी लहर भी विविधता की कमी के लिए आलोचना का विषय थी, खासकर अश्वेत महिलाओं की आवाज़ और अनुभवों के संबंध में। इस स्थिति से निपटने के प्रयास में, विभिन्न पृष्ठभूमियों से आने वाली महिलाओं के बीच भाईचारे और एकजुटता को बढ़ावा देने के प्रयास किए गए। आंदोलन में जल्द ही नारीवादी यौन युद्ध, कामुकता और अश्लील साहित्य जैसे विषयों से संबंधित आंतरिक असहमतियां थीं, जो अंततः आंदोलन के अंतिम पतन का कारण बनीं। पीढ़ी X के विद्वान और कार्यकर्ता नारीवाद की तीसरी लहर में सबसे आगे थे, जो 1990 के दशक में शुरू हुई और 2000 के दशक तक जारी रही।[13] नारीवाद की यह लहर विचारधारा के प्रति विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों द्वारा प्रतिष्ठित थी। रेबेका वाकर वह थीं जो इस शब्द के साथ आईं, जिसने विषमलैंगिकता और शरीर सकारात्मकता जैसे विषयों पर जोर देकर पारंपरिक लिंग मानकों को चुनौती दी। पहले की लहरों के नारीवादियों की तुलना में, तीसरी लहर के लोग खुद को अधिक शक्तिशाली व्यक्तियों के रूप में देखते थे जिनके पास अधिक अवसरों तक पहुंच थी और कम लिंगवाद का अनुभव था। प्रजनन अधिकारों की वकालत करके, यौन उत्पीड़न और उत्पीड़न के खिलाफ लड़कर, और महिलाओं के अनुभवों में विविधता का जश्न मनाते हुए, नारीवाद की इस लहर को, जिसे "शक्ति नारीवाद" के रूप में भी जाना जाता है, इसने एक विशेष फोकस के साथ नारीवादी विचारों और दर्शन की एक विस्तृत श्रृंखला को अपनाया।[14] "सार्वभौमिक नारीत्व" और व्यक्तिगत अधिकारों की अवधारणा के विचारों के साथ, वर्ष 2012 के आसपास, नारीवाद की चौथी लहर शुरू हुई, जो मुख्य रूप से इंटरनेट प्रौद्योगिकी के प्रसार से प्रेरित थी और पीढ़ी Y और Z से संबंधित कार्यकर्ताओं द्वारा संचालित थी।[15] लिंगवाद और उत्पीड़न के खिलाफ जागरूकता बढ़ाने और अभियान चलाने के लिए, इसने काम किया। इसका विकास, तीसरी लहर और काफी हद तक फेसबुक, ट्विटर और टिकटॉक जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर निर्भर था। नारीवाद की इस लहर को "हैशटैग नारीवाद" के रूप में संदर्भित करना आम बात है और यह यौन हिंसा, शरीर की स्वीकृति और महिलाओं के अधिकारों जैसी समस्याओं पर केंद्रित है।[16] गतिविधि को सुविधाजनक बनाने और लैंगिक समानता पर बातचीत को प्रोत्साहित करने के लिए, सोशल नेटवर्किंग साइटों ने अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जबकि चीन में वीबो और दुनिया भर में टिकटॉक जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म ने नारीवादी बहस के अवसर प्रदान किए, उन्हें सरकार से प्रतिबंध के रूप में बाधाओं का भी सामना करना पड़ा।

नारीवाद का विस्तार

नारीवादी आंदोलन, जिसने 1960 के दशक में पर्याप्त जोर पकड़ना शुरू किया था, ने कई दशकों के दौरान महत्वपूर्ण विकास देखा है, जिससे पूरी दुनिया पर इसका प्रभाव क्षेत्र बढ़ गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनी उत्पत्ति के बाद, यह अंततः एशिया, लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और यूरोप सहित दुनिया के अन्य हिस्सों में फैल गया, जहां इसने कई प्रकार के रूप धारण किए। इस आंदोलन ने न केवल लोगों को लैंगिक मुद्दों के प्रति अधिक जागरूक होने में मदद की है, बल्कि इसका अंतरराष्ट्रीय संगठनों, शैक्षणिक क्षेत्रों और लोकप्रिय संस्कृति पर भी प्रभाव पड़ा है। दुनिया भर में महिला आंदोलनों से हुए वास्तविक लाभ और अब उन्हें जिन बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है, उनकी ठोस समझ होना महत्वपूर्ण है। संयुक्त राज्य अमेरिका में नारीवादी आंदोलन की जड़ें नागरिक अधिकार आंदोलन और नए वामपंथी आंदोलन में देखी जा सकती हैं, जिसके परिणामस्वरूप अंततः महिलाओं के लिए

राष्ट्रीय संगठन जैसे समूहों की स्थापना हुई।[17] अपने शोध में, जोहाना ब्रेनर सकारात्मक विकास और चल रही समस्याओं, जैसे गरीबी, हिंसा और रूढ़िवादियों के विरोध दोनों पर ध्यान आकर्षित करती हैं।[18] अप्रत्याशित घटनाओं का आंदोलन की दिशा पर प्रभाव पड़ता रहता है और आंदोलन का प्रभाव विचाराधीन महिलाओं के समूह के आधार पर भिन्न होता है। इसी प्रकार, 1968 में फ्रांस में नारीवाद का उद्भव छात्र और श्रमिक विद्रोहों में तीव्रता के साथ हुआ, हालाँकि, 1980 के दशक में सत्ता में रहे कम्युनिस्ट प्रशासन के तहत, आंदोलन कई संशोधनों से गुज़रा जिसके परिणामस्वरूप अंततः सरकार ने महिलाओं के अधिकारों को स्वीकार किया।[19] जेन जेन्सन नारीवादी आंदोलन के भीतर विचार के दो अलग-अलग स्कूलों के बीच अंतर करती हैं: एक सामाजिक परिवर्तन लाना चाहता है, जबकि दूसरा पहले से मौजूद प्रणालियों के ढांचे के भीतर महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देता है।[20] आयरलैंड में नारीवाद और कैथोलिक रूढ़िवाद के बीच टकराव हुआ, जिसने गर्भपात और तलाक जैसे सुधारों के कार्यान्वयन में बाधाएँ पैदा कीं।[21] चुनौतियों का सामना करने के बावजूद, आयरिश नारीवादियों ने मुख्यधारा की राजनीति में भाग लिया, जिससे उन्हें सार्वजनिक बहस और नीति निर्माण पर प्रभाव डालने का मौका मिला। रूढ़िवादी मानकों की चुनौती में योगदान देने वाले कारकों में से एक यूरोपीय संघ का आधुनिकीकरण प्रभाव था। 1975 में जनरल फ्रेंको के निधन के बाद, स्पेन में नारीवाद ने गति पकड़ी, जिसने उस पूरे समय में देश के उदारीकरण में योगदान दिया।[22] मोनिका थ्रेलफॉल, सांस्कृतिक परंपराओं पर सवाल उठाने और महिलाओं के अधिकारों को बढ़ाने के संदर्भ में आंदोलन की उपलब्धियों की जांच करती है, इस तथ्य के बावजूद कि रोजगार में अंतर मौजूद है।[23] कैथोलिक चर्च के अधिकार पर सवाल उठाते हुए, इटली में नारीवादी आंदोलन ने पूंजीवाद के आधुनिकीकरण के साथ बदलाव की वकालत की तथा सांस्कृतिक नारीवाद, जो लिंग भेद पर जोर देता है, उसने सामाजिक क्रांति की दिशा में बड़े आंदोलन को अस्पष्ट कर दिया। पूर्वी और मध्य यूरोप में, राज्य समाजवाद से पूंजीवाद की ओर बदलाव ने महिलाओं के अधिकारों की उन्नति के लिए संभावनाएं और समस्याएं दोनों ला दीं।[24] अपनी विमर्श में, पैगी वॉटसन और मैक्सिन मोलिनेक्स ने उन तरीकों को संबोधित किया, जिनसे आर्थिक बदलावों ने लैंगिक संबंधों को प्रभावित किया, साथ ही उन तरीकों को भी बताया, जिनसे विभिन्न राजनीतिक परिदृश्यों ने नारीवादी गतिविधि को प्रभावित किया।[25]

संयुक्त राज्य अमेरिका में आंदोलन, विश्वव्यापी छात्र आंदोलन और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन सभी का ब्रिटेन में महिला मुक्ति आंदोलन के विकास पर प्रभाव पड़ा, जो 1960 के दशक के अंत में शुरू हुआ था। इन समूहों का लक्ष्य महिलाओं के रूप में सामूहिक पहचान के माध्यम से व्यक्ति को फिर से परिभाषित करना था, लेकिन, संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में, उन्होंने हितों के प्रतिनिधित्व पर कम जोर दिया। समाजवादी नारीवाद की व्यापक उपस्थिति थी, जिसने भेदभाव-विरोधी कानूनों, समान वेतन और महिलाओं के लिए फायदेमंद अन्य सामाजिक सुधारों के लिए दबाव डालने के लिए श्रमिक संघों और 1970 के दशक की लेबर सरकार के साथ सहयोग किया।[26] औद्योगिक अशांति के समय में, संगठन श्रमिकों के अधिकारों का समर्थन करने और समान वेतन के लिए लड़ने में सक्रिय था, विशेष रूप से एशियाई महिलाओं और एफ्रो-कैरेबियाई महिलाओं जैसे कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों के बीच। 1970 के दशक के दौरान, सामुदायिक गतिविधियों में वृद्धि हुई, जिसका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की बाधाओं को चुनौती देना और गर्भपात से मुक्ति जैसी लोकतांत्रिक सार्वजनिक सेवाओं की वकालत करना था। हड़तालों और सामुदायिक अभियानों जैसे व्यावहारिक अनुभवों के उपयोग के माध्यम से, नारीवादियों ने राज्य के भीतर संबंधों को

लोकतांत्रिक बनाने और लैंगिक समानता के लिए संसाधनों को सुरक्षित करने के अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की मांग की। 1979 में थैचर प्रशासन की शुरूआत के साथ, यह आंदोलन फ्रांस या स्पेन की तरह संस्थागत नहीं हो सका, हालाँकि, 1978 में, पुरुष आक्रामकता पर बहस के परिणामस्वरूप आंदोलन को विभाजन का सामना करना पड़ा।[27] सामाजिक कानून में कटौती की स्थिति में सामुदायिक कार्यक्रमों की रक्षा करने के प्रयास में, नारीवादी थैचर प्रशासन के तहत स्थानीय सरकार में शामिल हो गये। कठिनाइयों का सामना करने के बावजूद, वे समान अवसर और भागीदारी योजना की वकालत करते रहे। परमाणु हथियारों के खिलाफ ग्रीनहैम प्रदर्शन जमीनी स्तर के नारीवादियों द्वारा शांति और पर्यावरण के संरक्षण में किए गए योगदान के सबसे उल्लेखनीय उदाहरणों में से एक था। यह 1980 के दशक के दौरान था जब नस्ल की समस्याओं और वैश्विक आर्थिक चिंताओं के ज्ञान के संबंध में नारीवाद में परिवर्तन आया। नौकरी के अधिकार और प्रौद्योगिकी से उत्पन्न खतरों जैसी चिंताओं को संबोधित करते हुए, पूरे ट्रेड यूनियन आंदोलन में समाजवादी और नारीवादी विचार प्रचलित रहे। रूढ़िवादी कानून द्वारा उत्पन्न बाधाओं के बावजूद, नारीवाद सांस्कृतिक और मीडिया प्रभाव डालने में सक्षम था, जबकि कामकाजी वर्ग की महिलाओं ने शिक्षा और सामुदायिक परियोजनाओं के माध्यम से आत्मविश्वास हासिल किया। 1990 के दशक के मध्य में, ब्रिटिश नारीवाद बाहरी दुनिया की परिभाषाओं और आलोचनाओं का विषय था, फिर भी, इसका प्रभाव महत्वपूर्ण था, क्योंकि इसने सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण, राजनीतिक दलों, संस्थानों और संस्कृति के कई क्षेत्रों को आकार दिया। फिर भी, एक आंदोलन के रूप में, नारीवाद तेजी से भ्रामक होता गया, जो इस तथ्य के बावजूद कि इसका विश्वव्यापी प्रभाव था, आंदोलन की खंडित स्थिति को दर्शाता है।

पश्चिम के बाहर महिला आंदोलन

लोकतंत्र में परिवर्तन की प्रक्रिया के दौरान, लोकतंत्रीकरण पर लैटिन अमेरिकी विमर्श उन तरीकों की जांच करता है जिनमें विभिन्न शासक वर्गों और सैन्य शासनों ने महिलाओं की लामबंदी को प्रभावित किया। सत्तावादी शासन को चुनौती देने के लिए, महिलाओं ने अक्सर खुद को मातृत्व की अवधारणा या नारीवादी विचारों के इर्द-गिर्द संगठित किया तथा नौकरशाही सत्तावादी सरकारों के समय में, महिलाओं की लामबंदी, विशेष रूप से अर्जेंटीना में मैड्रेस डे ला प्लाजा डे मेयो जैसे संगठनों द्वारा, मानवाधिकारों की वकालत करने वाली माताओं के रूप में उनकी पहचान पर आधारित थी।[28] इसी तरह, राज्य के रवैये और विरोधी समूहों के अंदर की जाने वाली लिंगवादी प्रथाओं द्वारा बनाई गई राजनीतिक जगह पूरे लैटिन अमेरिका में नारीवादी आंदोलनों के विकास के लिए प्रेरणा बन गई। सभी सामाजिक वर्गों की महिलाएं लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया के दौरान लाभदायक परिवर्तन के लिए राजनीतिक अवसरों को अपनाती हैं। दूसरी ओर, चूँकि लोकतंत्र की प्रक्रिया जारी है, महिलाओं द्वारा की गई कुछ माँगें कम महत्वपूर्ण हैं। इस तथ्य के बावजूद कि ब्राज़ील में महिलाओं को आधिकारिक राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ, उन्होंने आयोजन में अपनी स्वायत्तता बनाए रखी तथा पेरू में नारीवादियों की लामबंदी लोकप्रिय आंदोलनों और राज्य संस्थानों दोनों से अलग रही, जिसके परिणामस्वरूप संस्थानों पर सीमित मात्रा में अधिकार प्राप्त हुआ।[29] अर्जेंटीना, चिली और ब्राज़ील की तुलना करते समय, लंबी परिवर्तन अवधि परिवर्तनकारी नीतियों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी से जुड़ी थी। हालाँकि, इनमें से प्रत्येक देश में पारंपरिक रूप से पुरुष-प्रधान पार्टी संरचना के कारण यह लगातार संस्थागत प्रभाव में स्थानांतरित नहीं हो सकी। तीसरे विश्व में महिला आंदोलनों और राष्ट्रवादी संघर्षों के बीच संबंध शुरुआत

में जितना सोचा जा सकता है उससे कहीं अधिक जटिल और विविध है। पूरे इतिहास में, लिंग गतिशीलता ने यह निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है कि महिलाओं ने किस हद तक उपनिवेश विरोधी अभियानों में भाग लिया है। सत्य अधिक सूक्ष्म है, स्वतंत्रता के बाद भी लैंगिक असमानताएं जारी हैं, इस तथ्य के बावजूद कि राष्ट्रवादी आंदोलन कभी-कभी यह धारणा देते हैं कि वे महिलाओं को मुक्त कर देंगे। एक ओर, ऐसे विद्वान हैं जो कहते हैं कि राष्ट्रीय चिंताओं को हमेशा महिलाओं के हितों से ऊपर रखा गया है, जबकि अन्य लोग तर्क देते हैं कि महिलाओं की मुक्ति के लिए राष्ट्रवादी संघर्ष सीधे तौर पर जिम्मेदार रहे हैं।[30] यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि लिंग ने स्वतंत्रता की लड़ाई और अल्जीरिया और फिलिस्तीन में प्रतिरोध अभियानों दोनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अल्जीरियाई महिलाओं के लिए, राष्ट्रीय मुक्ति की चाहत उपनिवेश विरोधी लड़ाई में उनकी सक्रिय भागीदारी के पीछे प्रेरक शक्ति थी, हालाँकि, स्वतंत्रता के बाद की नीतियाँ अक्सर उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल रहीं, जिसके परिणामस्वरूप स्वायत्त महिला समूहों की स्थापना हुई।[31]

फिलिस्तीनी इंतिफादा जैसे हाल के मुक्ति आंदोलनों ने राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के अधिकारों और आत्मनिर्णय के अधिकार की अविभाज्यता पर प्रकाश डाला है। दूसरी ओर, अरब देशों में राष्ट्रवादी संवादों ने अक्सर महिला आंदोलनों की क्षमता को सीमित कर दिया है, जिसके कारण एक स्वायत्त नारीवादी आवाज की मांग उठी है। इन बाधाओं के बावजूद, विद्वानों का इस संभावना के बारे में सकारात्मक दृष्टिकोण जारी है कि राष्ट्रवादी गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी के परिणामस्वरूप अधिक प्रगतिशील और समावेशी परिणाम हो सकते हैं।[32] पश्चिमी एशिया में धार्मिक और कट्टरपंथी आंदोलनों के उद्भव और उस क्षेत्र में होने वाले पश्चिमी प्रभुत्व के प्रति राष्ट्रवाद संघर्ष और प्रतिक्रियाओं के बीच एक मजबूत संबंध रहा है तथा इन स्थानों पर राष्ट्रवादी प्रतिरोध के महत्वपूर्ण प्रतीक उभरे, और इनमें महिलाओं और परिवार पर नियंत्रण शामिल था।[33] औपनिवेशिक विरासतों के प्रति लोकलुभावन प्रतिक्रियाओं और राष्ट्रवादी उद्देश्यों की कथित विफलताओं के परिणामस्वरूप, इस्लामी कट्टरपंथी समूह अस्तित्व में आए। मिस्र में इस्लामवाद के विकास के परिणामस्वरूप एक नए प्रकार की लिंग सक्रियता का उदय हुआ है, जो कि कई नारीवादी धाराओं के सह-अस्तित्व की विशेषता है जो इस्लामी ढांचे के संदर्भ में समाज में महिलाओं की सार्वजनिक स्थिति की वकालत करती हैं।[34] सरकारी कानूनों और विचारों के प्रभाव के माध्यम से, महिला आंदोलनों पर इस्लाम का प्रभाव विभिन्न राज्यों में अलग-अलग है। महिलाओं के अधिकारों के पक्ष में आधिकारिक नीतियों के परिणामस्वरूप ट्यूनीशिया में इस्लामी समूहों का प्रभाव कम हो गया है। दूसरी ओर, अल्जीरिया में राज्य की विचारधारा समाजवादी होने के बावजूद, राज्य की विचारधारा में इस्लामी सिद्धांतों को शामिल किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं के अधिकारों को नुकसान हुआ है। आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों सहित विभिन्न कारक इस्लाम के प्रवाह पर प्रभाव डाल सकते हैं।

अफ्रीका में कई महिला अधिकारों की वकालत करने वाले खुद को नारीवादी नहीं मानते हैं, आंशिक रूप से इस ऐतिहासिक धारणा के कारण कि नारीवाद एक पश्चिमी विचार है।[35] हालाँकि, कुछ कार्यकर्ता ऐसे भी हैं जो खुद को नारीवादियों के रूप में पहचानते हैं। दूसरी ओर, यह दुनिया भर में और अफ्रीकी वार्तालापों के परिणामस्वरूप बदल रहा है जो नारीवाद को फिर से परिभाषित कर रहे हैं। कई उदाहरणों में, सरकारों ने नारीवाद के प्रति अपनी अस्वीकृति व्यक्त की है, यह देखते हुए कि यह उनके राष्ट्र की प्रगति के लिए एक संभावित खतरा है, उदाहरण के लिए,

मोज़ाम्बिक देश में, सत्तारूढ़ पार्टी, FRELIMO, नारीवाद का विरोध करने के साथ-साथ अन्य तरीकों से महिलाओं के विकास का समर्थन करने के लिए भी जानी जाती है।[36] वर्ष 2006 में, अफ्रीकी नारीवादी फ़ोरम ने एक नारीवादी पहचान स्थापित की जो पितृसत्ता से जुड़ी संस्थाओं और सम्मेलनों का सामना करती है।[37] नारीवाद को अपनाने की पिछली झिझक से यह विराम सार्वजनिक रूप से उन उद्देश्यों की वकालत करने की दिशा में बदलाव का संकेत है जो परिवर्तनकारी या क्रांतिकारी हैं। पिछले दस वर्षों के दौरान, अफ्रीका ने राजनीति में महिलाओं की भागीदारी में पर्याप्त वृद्धि का अनुभव किया है, जो अतीत में प्रचलित मानकों में बदलाव का प्रतिनिधित्व करता है। उल्लेखनीय उपलब्धियों में 2005 में लाइबेरिया की पहली महिला राष्ट्रपति के रूप में एलेन जॉनसन-सर्लिफ़ का चुनाव और 2003 में रवांडा की संसद का चुनाव शामिल है, जिसमें लगभग 49 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व का दावा किया गया था।[38] ये दोनों चुनाव अफ्रीकी देशों में हुए थे, मोजाम्बिक, दक्षिण अफ्रीका, तंजानिया, युगांडा और बुरुंडी सहित अन्य देशों में भी महिलाओं द्वारा तीस प्रतिशत से अधिक संसदीय सीटों पर दावा करने के उदाहरण हैं।[39] इसके अलावा, महिलाएँ पूरे महाद्वीप में महत्वपूर्ण पदों पर आसीन होने में सफल रही हैं, जिनमें प्रधान मंत्री और उपराष्ट्रपति जैसे पद भी शामिल हैं। महिला आंदोलन राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने वाली महिलाओं की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ संवैधानिक सुधारों, विधायी परिवर्तनों और शांति वार्ता में विस्तारित भागीदारी की पैरवी करने का प्रयास कर रहे हैं। साथ ही ये आंदोलन पारंपरिक तरीकों से हटकर विकास और अधिक राजनीतिक पैरवी की ओर विकसित हुए हैं तथा उन्होंने महिलाओं को बदलाव की वकालत करने के लिए आवश्यक उपकरण और स्थान भी प्रदान किए हैं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने विभिन्न प्रकार के समूहों और संघों को शामिल करने के लिए अपनी सदस्यता का विस्तार किया है जो महिलाओं के अधिकारों और प्रतिनिधित्व को आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। ऐसे कई कारक रहे हैं जिन्होंने इन अभियानों की सफलता में योगदान दिया है। इन तत्वों में सक्रिय महिला आंदोलनों की स्थापना, महिलाओं के अधिकारों को संबोधित करने वाले अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के लिए खुलापन, संसाधनों की उपलब्धता और देशों के बीच संघर्ष के समापन जैसे सामाजिक उथल-पुथल शामिल हैं।[40] जिन देशों में महिला आंदोलन मजबूत हैं, वहां ऐसी नीतियां लागू करने की प्रवृत्ति होती है जो अधिक महिला-अनुकूल होती हैं। ये नीतियां अक्सर अंतरराष्ट्रीय महिला आंदोलनों और अंतरराष्ट्रीय मानकों में बदलाव से प्रभावित होती हैं जिन्हें संयुक्त राष्ट्र और क्षेत्रीय निकायों जैसे संगठनों द्वारा समर्थित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, संघर्षों के परिणाम ने महिलाओं के लिए खुद को राजनीतिक रूप से अभिव्यक्त करने की संभावनाएं पैदा की हैं, जैसा कि संविधान के पुनर्लेखन और राजनीतिक शासन के पुनर्गठन से देखा गया है। यह उन संघर्षों का प्रत्यक्ष परिणाम है जो घटित हुए हैं। युद्धों से उभरे देशों ने अक्सर महिलाओं के अधिकारों और प्रतिनिधित्व में बड़े बदलावों का अनुभव किया है, जो सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में व्यवधानों के महत्व को उजागर करता है। अफ्रीका में हाल ही में लिंग कानून और नीतियों की एक नई पीढ़ी का उद्भव, विशेष रूप से 1990 के दशक के दौरान, एक महत्वपूर्ण विकास है। विधान, संवैधानिक संशोधन और अंतर्राष्ट्रीय संधियों ने इस अवधि के दौरान महिलाओं के अधिकारों से संबंधित चिंताओं को हल करने में काफी प्रगति की है उधारणतः महिलाओं के अधिकारों पर अफ्रीकी चार्टर का प्रोटोकॉल, जिसे 2003 में अपनाया गया था, एक महत्वपूर्ण उदाहरण है क्योंकि इसमें गर्भपात के अधिकार के साथ-साथ यौन संचारित बीमारियों से सुरक्षा के प्रावधान भी शामिल हैं।[41] इसके अलावा, दक्षिण अफ्रीका इस तथ्य के कारण प्रमुख है कि इसका संविधान यौन अभिविन्यास के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है और एक ही लिंग के लोगों के बीच विवाह को मान्यता देता है। उप-सहारा अफ्रीका में बड़ी संख्या में राष्ट्र महिलाओं के अधिकारों का समर्थन करने वाले अंतरराष्ट्रीय समझौतों पर हस्ताक्षरकर्ता बन गए हैं, जो सरकारी स्तर पर इन सिद्धांतों की व्यापक स्वीकृति का संकेत है। अधिकार-आधारित दृष्टिकोण की ओर रुझान परिवर्तित हो रहा है, जो राजनीति, पारिवारिक संबंधों और संसाधनों तक पहुंच सहित समाज के कई पहलुओं में लैंगिक समानता की मांग करता है। ये नीतियां अधिकार-

आधारित दृष्टिकोण की ओर बदलाव दर्शाती हैं, जबकि इन्हें क्रियान्वित करना कठिन है। यह तेजी से स्पष्ट होता जा रहा है कि इन नीतियों का जमीनी स्तर पर असर हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं के लिए शिक्षा और ऋण तक पहुंच का विस्तार हो रहा है, साथ ही प्राधिकारी पदों पर प्रतिनिधित्व भी बढ़ रहा है।[42] ये सुधार लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ हुए हैं, जिससे महिला समूहों का विस्तार करना और महिलाओं के लिए राजनीतिक प्रक्रियाओं में भाग लेना आसान हो गया है। इसके बावजूद, लोकतंत्र और विधायी पदों पर आसीन महिलाओं की संख्या के बीच संबंध स्पष्ट नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कुछ अधिनायकवादी देशों ने भी ऐसे उपाय अपनाए हैं जो महिलाओं के लिए अनुकूल हैं। ऐसे कई कारक हैं जो महिलाओं के अनुकूल नीतियों को अपनाने पर प्रभाव डाल सकते हैं। इन तत्वों में सामाजिक उथल-पुथल, अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव और दाता उद्देश्यों के आधुनिकीकरण या अनुपालन की इच्छा शामिल है। ऐसे उदाहरण हैं जिनमें ऐसे कानूनों के क्रियान्वयन के अप्रत्याशित परिणाम हो सकते हैं और महिलाओं के हितों को नुक़सान फ़ाउच सकता है।

निष्कर्ष

हालाँकि क्षेत्रीय विमर्श दुनिया भर में महिला आंदोलनों की दिशा को प्रभावित कर रहे हैं, वैश्वीकरण के प्रभाव निर्विवाद रूप से आंदोलनों की सक्रियता की बहुमुखी प्रकृति को मिटा रहा है। राजनीति, इतिहास और संस्कृति के जटिल अंतर्संबंध के परिणामस्वरूप महिलाओं के संघर्षों की एक विविध श्रृंखला सामने आई है, जो पश्चिमी एशिया, लैटिन अमेरिका और अफ्रीका सहित दुनिया भर में फैली हुई है। इसके विपरीत, जैसे-जैसे वैश्वीकरण की प्रक्रिया अवधारणाओं, प्रौद्योगिकियों और विचारधाराओं के आदान-प्रदान को तेज कर रही है, महिला आंदोलनों के उद्देश्यों, रणनीति और संवाद के एकाकार होने की एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति उभर रही है। यह वैश्वीकरण-प्रेरित समरूपीकरण वैश्विक महिला आंदोलन को अवसरों और चुनौतियों दोनों प्रस्तुत करता है। यह सर्वोत्तम प्रथाओं और नवीन दृष्टिकोणों के प्रसार की सुविधा प्रदान करता है, अंतर-सांस्कृतिक एकजुटता को बढ़ावा देता है, और हाशिए पर रहने वाले समूहों की आवाज़ को बढ़ाता है। इसके विपरीत, इस क्षेत्र के लिए विशिष्ट सूक्ष्मताओं को अस्पष्ट करने, स्वदेशी ज्ञान को खत्म करने और पश्चिम पर केंद्रित दृष्टिकोण को प्राथमिकता देने वाले प्रमुख आख्यानों को बनाए रखने जैसी सम्भावनाएँ भी यह पैदा करता है।

संदर्भ

1. Snow, David A., Sarah A. Soule, and Hanspeter Kriesi, eds. *The Blackwell companion to social movements*. John Wiley & Sons, 2008.
2. Ibid.
3. Ibid.
4. Goertz, Gary, and Amy Mazur. *Politics, gender and concepts*. Cambridge: Cambridge University Press, 2008.
5. Ibid.

6. Ibid.
7. Ibid.
8. Ibid.
9. Mohajan, Haradhan. "Four waves of feminism: A blessing for global humanity." (2022): 1-8.
10. Ibid.
11. Ibid.
12. Ibid.
13. Ibid.
14. Ibid.
15. Ibid.
16. Ibid.
17. Threlfall, Monica, ed. *Mapping the women's movement: Feminist politics and social transformation in the north*. Verso, 1996.
18. Ibid.
19. Ibid.
20. Ibid.
21. Ibid.
22. Ibid.
23. Ibid.
24. Ibid.
25. Ibid.
26. Ibid.
27. Ibid.
28. Ray, Raka, and Anna C. Korteweg. "Women's movements in the third world: Identity, mobilization, and autonomy." *Annual Review of Sociology* 25, no. 1 (1999): 47-71.
29. Ibid.
30. Ibid.
31. Ibid.
32. Ibid.
33. Ibid.
34. Ibid.
35. Tripp, Aili Mari, Isabel Casimiro, Joy Kwesiga, and Alice Mungwa. *African Women's Movements*. Cambridge University Press, 2008.
36. Ibid.
37. Ibid.

38. Ibid.
39. Ibid.
40. Ibid.
41. Ibid.
42. Ibid.

अध्याय-23

जलवायु न्याय और पर्यावरणीय राजनीति

कल्पना अग्रहरि
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल, उत्तराखण्ड

'न्याय' का प्रश्न हमेशा से दार्शनिक चिंतन के केन्द्र में रहा है, बल्कि यह वो कसौटी रही है जिससे समाजों की श्रेष्ठता के पैमाने तय किए जाते हैं। जॉन राल्स भी मानते हैं कि श्रेष्ठ समाजों के लिए कई मूल्य अपेक्षित होते हैं और न्याय का प्रश्न उनमें सर्वप्रथम[1] है। 'न्याय' का अर्थ और परिभाषा समय के साथ बदलते रहे हैं। उन्नीसवी सदी तक आते आते 'न्याय को एक नए नजरिए से देखा जाने लगा जहाँ न्याय की पारम्परिक अवधारणा एक न्यायपूर्ण व्यक्ति की तलाश के इर्द-गिर्द घूमती थी और येन केन प्रकारेण प्रचलित व्यवस्था को बनाए रखने की पक्षधर[2]थी, आधुनिक न्याय की मुख्य समस्या यह है कि समाज में संसाधनों (शक्ति, अवसर, लाभ) के बँटवारे की न्यायसंगत कसौटी क्या है? तथा इन संसाधनों के अन्यायपूर्ण उपयोग से उपजी असंतुलन की स्थितियों का प्रतिकार कैसे किया जा सकताहै?'जलवायु न्याय' की संकल्पना न्याय के इसी अर्थ का विस्तार है।

जलवायु- न्याय शब्दावली आज दुनिया के सबसे चर्चित शब्दों में से एक बन गई है। ये वो शब्दावली है जो न केवल इक्कीसवीं सदी को परिभाषित कर रही है बल्कि इस दुनिया और इसके बाशिंदों के भविष्य का दारोमदार भी इसके क्रियान्वयन पर निर्भर है। जलवायु न्याय के पैरोकार ये तर्क देते हैं कि जलवायु-न्याय सामाजिक न्याय, नस्लीय न्याय, लैंगिक न्याय, अंतर्विभागीय न्याय, स्थानिक न्याय और अंतर्पीढ़ीय न्याय से जुड़ा हुआ ऐसा सार्वभौमिक मसला है जिसके प्रभाव से न सिर्फ वैश्विक बल्कि स्थानीय राजनीति और समाज का कोई भी पहलू अछूता नहीं रह गया है। यूनिवर्सिटी ऑफ सैनफ्रांसिस्को के 'एलिस कासवान'[3] ने जलवायु न्याय को सीधे-सीधे जलवायु क्षतिपूर्ति से जोड़ते हुए इसे वितरणात्मक और सहभागी न्याय बनाए जाने की वकालत की है।

जलवायु न्याय के सैद्धांतिक पक्ष के विकास में समकालीन राजनीतिक दार्शनिक ऑरिस मारियन[4] की कृति 'रेस्पोंसिबिलिटी फॉर जस्टिस' (2011) की भूमिका एक उत्प्रेरक के तौर पर देखी जा सकती है, जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि संरचनागत अन्यायों की क्षतिपूर्ति के लिए एक नए 'सोशल कनेक्शन' (सामाजिक सम्पर्क) मॉडल की आवश्यकता है। यंग ने पर्यावरणीय न्याय के लिए 'उत्तर दायित्व और 'सहभागी न्याय' को अनिवार्य मानते हुए ये तर्क दिया कि पर्यावरणीय क्षति के सबसे ज्यादा शिकार होने वाले समाज के हाशिए के लोगों को 'जलवायु न्यूनता' व 'जलवायु अनुकूलनता' के लिए बनने वाली किसी भी नीति प्रक्रिया का जरूरी हिस्सा होना चाहिए। जलवायु परिवर्तन और जलवायु न्याय का सम्बन्ध बहुत गहरा है बल्कि जलवायु न्याय की संकल्पना जलवायु परिवर्तन की ही उपज मानी जा सकती है। मूलतः जलवायु न्याय एक संकल्पना से ज्यादा एक आंदोलन रहा है जिसकी जड़ें 1960 के दशक में विकसित देशों में अपने पर्यावरणीय आंदोलनों में खोजी जा सकती है।

स्वस्थ परिवेश का प्रश्न भी न्याय के दायरे में आ गया। बाद में कई समकालीन पर्यावरणीय आंदोलनों जैसे' फ्राइडेज फॉर फ्यूचर' और 'एक्स्टेंशन रिबेलियन' ने जलवायु न्याय के प्रश्न को दुनिया भर की 'संसदों से सड़कों तक उतारने में आग्रणी भूमिका निभाई। 'ग्रीन पीस', 'फ्रेंडस आफ अर्थ' 'इको वारियर ग्रुप' तथा 'वर्ल्ड वाइड फण्ड फॉर नेचर' जैसे गैर सरकारी पर्यावरणीय समूहों[5] ने पर्यावरणीय क्षति को एक राजनीतिक और सामाजिक एजेण्डे के तौर पर उभरने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

जलवायु परिवर्तन और जलवायु न्याय

पृथ्वी आज अपने अस्तित्व के सबसे बड़े खतरे से जूझ रही है और इस खतरे की जद में मानवीय सभ्यता के सभी पहलू समाहित हैं, फिर चाहे बात भोजन की हो, पानी की हो मानवीय स्वास्थ्य की या सुरक्षा की हो। 27 जुलाई 2023 को 'जलवायु महत्वाकांक्षा समिति की बैठक को सम्बोधित करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव अंतनियो गुटारेस ने आधिकारिक रूप से ये ऐलान कर दिया कि "वैश्विक उष्णता' (ग्लोबल वार्मिंग) का दौर अब बीत चुका है और दुनिया अब वैश्विक उबाल' (ग्लोबल बॉयलिंग) के दौर में प्रविष्ट हो चुकी है।"[6] विश्व मौसम विज्ञान संगठन के हालिया रिपोर्ट से भी इस बात की आधिकारिक पुष्टि हो चुकी है कि साल *2023* ने वैश्विक तापमान वृद्धि के सारे रिकॉर्ड ध्वस्त कर दिये। ये अब तक का सबसे गर्म साल[7] था तथा पूर्व औद्योगिक काल के औसत वैश्विक तापमान की तुलना में धरती के तापमान में 1.4.c की बढ़ोत्तरी दर्ज हो चुकी है। ये औसत तापमान वृद्धि इसलिए विनाशकारी है क्योंकि यही वो मूल कारण है जिसके कारण धरती मानव जनित जलवायु परिवर्तन के खतरे से दो चार हो रही है। 1980 के दशक के कई वैज्ञानिक शोधों ने इस तथ्य पर मुहर लगा दी है कि धरती के तापमान वृद्धि में औद्योगिक क्रांति के दौरान तथा उसके बाद पर्यावरण में छोड़े गए ग्रीन हाउस गैसों का सबसे बड़ा योगदान है। यह बात महत्वपूर्ण है कि पृथ्वी पर जीवन के लिए ग्रीन हाउस गैसें बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये सौर विकिरण की गर्मी को धरती से बाहर जाने से रोकती हैं। परंतु समस्या की जड़ यही है कि एक सीमा के बाद इन गैसों की बढ़ती हुई मात्रा पृथ्वी के तापमान को खतरनाक तरीके से बढा रही है। औद्योगिक क्रांति के पूर्व पर्यावरण में कार्बन डाई आक्साइड का स्तर प्रति मिलियन 280 पार्ट्स(पी पी एम), था जो 2011 तक आते आते 391 (पी पी एम) तक पहुँच[8] गया। संयुक्त राष्ट्र संघ के जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल के एक रिपोर्ट के अनुसार यदि मौजूदा कार्बन उत्सर्जन के दर को रोकने के लिए प्रयास नहीं लिए गए तो 2099 तक धरती के औसत तापमान में 2.4 डिग्री सेंटीग्रेट से लेकर 6.4 डिग्री सेंटीग्रेट तक की औसत वृद्धि हो जाएगी। पिछले आधी सदी से पर्यावरणवादी आंदोलनों और जागरूक नागरिकों के अथक प्रयासों के बाद दुनिया भर की सरकारें कम से कम इस बात पर तो सहमत हो चुकी हैं कि 'सबकी समान भलाई' इसी में है कि धरती के औसत तापमान को पूर्व औद्योगिक काल के स्तर से 2 डिग्री सेंटीग्रेट से ज्यादा (कार्बन डाई आक्साइड उत्सर्जन, 550 PPM के ऊपर) किसी भी कीमत पर होने न दिया जाए क्योंकि आज हम जिन विनाशकारी जलवायुवीय परिस्थितियों जैसे अतिवृष्टि, सूखा, गर्म हवाओं, अंटार्कटिका के पिघलते बर्फ, बढ़ते समुद्री जल स्तर पारिस्थितिकी तंत्र का विनाश, मूंगे की चट्टानों का क्षरण, फसलों का विनाश, जलवायुवीय शरणार्थी समस्याओं का सामना कर रहे हैं, उसकी जिम्मेदारी औधोगिक क्रांति जनित कार्बन उत्सर्जन की प्रक्रिया पर ही है।

जलवायु न्याय के नजरिए से देखें तो पहले इस बात की पड़ताल की जानी जरूरी है कि आखिर जलवायु में बदलाव लाने का जिम्मेदार कौन है? और उससे प्रभावित[9] कौन हो रहा है? इस संदर्भ में 'ग्रीन हाउस गैसों' के ऐतिहासिक उत्सर्जन की संकल्पना 'जलवायु न्याय' की आधार भूमि मानी जा सकती है जिसे प्रायः 'विरासत उत्सर्जन' की संज्ञा भी दी जाती है। यहाँ यह याद रखना जल्दी है कि दुनिया का हर देश अपने विकास के स्तर के अनुसार कॉर्बन उत्सर्जन में योगदान कर रहा है इसीलिए जहाँ नाइजीरिया जैसा देश प्रतिवर्ष एक टन से कम कॉर्बन उत्सर्जन करता है तो अमेरिका जैसा विकसित देश इसका 20 गुना ज्यादा पर्यावरण प्रदूषित कर रहा है। उत्तरी गोलार्ध के अमीर देशों, अमेरिका, समूचे यूरोप और एशिया के कुछ हिस्सों में औद्योगीकरण की शुरुआत के साथ ही जीवाश्म ईंधन की अंधाधुंध खपत ने कॉर्बन उत्सर्जन की जिस प्रक्रिया की शुरुआत की, आज वही वैश्विक तापमान वृद्धि का मुख्य कारण है क्योंकि कॉर्बन उत्सर्जन की समस्या की मूल जड़ यह है कि ये ग्रीन हाउस गैसें पर्यावरण में सदियों तक बनी रहती है, इसीलिए समय के साथ वातावरण में इन गैसों की ढेरी लग गई है। इसीलिए आज के परिप्रेक्ष में ऐतिहासिक कार्बन उत्सर्जन की संकल्पना जलवायु न्याय का मूल है क्योंकि समकालीन पर्यावरण विमर्श में बहस का मुख्य मुद्दा ही यही है कि कार्बन उत्सर्जन का स्तर शून्य करने के लिए किस देश को कितनी कार्बन कटौती करने की जरूरत है? इस पैमाने से देखें तो वैज्ञानिक शोध ये तथ्य प्रमाणित कर चुके हैं कि धरती के 92% कार्बन उत्सर्जन का जिम्मेदार उत्तर के अमीर देश रहे हैं जबकि एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देशों का कार्बन उत्सर्जन में ऐतिहासिक योगदान 8% से भी कम रहा है इसीलिए 'कार्बन बजट' में जहाँ दक्षिणी गोलार्द्ध के देशों को उनके विकास की जरूरतों को देखते हुए कार्बन उत्सर्जन में कटौती के मानको में छूट होनी चाहिए वहीं उत्तरी गोलार्ध के देशो को जो कि अपने हिस्से से कई गुना ज्यादा उत्सर्जन पहले ही कर चुके हैं कॉर्बन नियंत्रण की अधिकतम जिम्मेदारी का वहन[10] करना चाहिए।

स्टेटिस्टा डाटा' के अनुसार 2022 में दुनिया के सबसे बड़े कार्बन उत्सर्जन देश क्रमशः चीन, अमेरिका, भारत, यूरोपियन यूनियन, रूस तथा ब्राजील रहे। ये देश संयुक्त रूप से दुनिया की कुल आबादी का 50.1 प्रतिशत निर्मित करते हैं, इनका सकल घरेलू उत्पाद 61.2% है, ये दुनिया की 61.2% जीवाश्म ईंधन की खपत करते हैं और वैश्विक कार्बन उत्सर्जन में इनकी हिस्सेदारी 61.6 प्रतिशत[11] है। साल 2022 में वैश्विक कार्बन उत्सर्जन 53.8 बिलियन मीट्रिक टन रिकार्ड किया गया जो इस बात का गवाह है कि कार्बन उत्सर्जन नियंत्रण करने के वैश्विक समझौते, प्रतिबद्धताएँ और प्रतिज्ञाएं कितनी बुरी तरीके से विफल रही है और लम्बे चौड़े भव्य पर्यावरणीय सम्मेलन न तो जीवाश्म ईंधन की खपत रोकने और न ही कार्बन सिंक (कार्बन सोखता) का काम करने वाले जंगलों की कटाई रोकने के लिए कुछ कर पाने में सफल रहे हैं।

वैश्विक दक्षिण के देशों का तर्क है कि पृथ्वी की 'सहनीय कॉर्बन क्षमता' का भरपूर शोषण पहले ही वैश्विक उत्तर के औद्योगिक देशो द्वारा किया जा चुका है इसीलिए वर्तमान में कॉर्बन उत्सर्जन स्तर में कटौती करना उन्हीं की जिम्मेदारी है। चूँकि ग्रीन हाउस गैसें पर्यावरण में दशकों बल्कि कम से कम एक सदी तक तो बनी ही रहती है इसीलिए किसी भी समझौते या विमर्श की पूर्व शर्त के रूप में हमें ऐतिहासिक उत्सर्जन को एक जरूरी कारक के तौर पर स्वीकार करना ही पड़ेगा। वैश्विक दक्षिण के देश यह भी मानते हैं कि कार्बन उत्सर्जन की दर का माप करने वाला वर्तमान पैमाना भी दोषपूर्ण तथा अन्याय परक है[12] क्योंकि आज भी प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जन की दर में उत्तर और दक्षिण

के देशों में जमीन आसमान का अंतर है। उदाहरण के लिए भारत जैसे देश को जब दुनिया के तीसरे सबसे बड़े कॉर्बन प्रदूषक के तौर पर प्रचारित किया जाता है तो इस तथ्य की जान बूझ कर अनदेखी कर दी जाती है कि भारत दुनिया की सबसे बड़ी आबादी वाला देश है जो प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन की दृष्टि से महज 2.4 टन कार्बन उत्सर्जन के साथ सबसे निचले पायदानों पर होता है। जबकि वैश्विक प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन की दर 6.9 टन प्रतिव्यक्ति है। इस परिप्रेक्ष्य से वर्तमान पर्यावरणीय स्थिति का आंकलन करे तो आज के सबसे बड़े प्रदूषक, दक्षिण के देश जैसे चीन, भारत और ब्राजील कॉर्बन अपराधी नहीं प्रतीत होते क्योंकि ये देश समस्या का हिस्सा वर्तमान सदी मे बने हैं और वैश्विक कार्बन बजट के अपने हिस्से का ही उपभोग कर रहे हैं।

जलवायु न्याय संकल्पना का दूसरा पहलू 'जलवायु अन्याय' से जुड़ा हुआ है। जलवायु परिवर्तन सच्चे अर्थों में एक वैश्वीकृत संकल्पना है जो देशों की सीमाओं को नहीं मानती शायद इसीलिए धरती के उत्तरी कोने में की गई और की जाने वाली पर्यावरणीय ज्यादतियों का खामियाजा दुनिया के दक्षिणी कोने में रहने वाले लोग भुगतने के लिए विवश हैं। वैश्विक दक्षिण के गरीब देश जिनका कार्बन उत्सर्जन में योगदान सबसे कम रहा है जलवायु परिवर्तन के सबसे बड़े भुक्तभोगी है व लम्बे औपनिवेशिक शोषण के कारण जो पर्यावरणीय अनुकूलन और पर्यावरणीय न्यूनता की क्षमता भी विकसित नहीं कर पाए हैं। उदाहरण के लिए मौसमी मार से बचाव के लिहाज से 'पूर्वचेतावनी प्रणाली'[13] न केवल काफी महत्वपूर्ण है बल्कि बेशकीमती जिंदगियां और जीवन यापन के साधन बचाने की दृष्टि से काफी किफायती भी है फिर भी दुनिया के आधे से अधिक देशों की पहुँच इस तक नहीं है। यही तथ्य अपने आप में यह बताने के लिए काफी है कि जलवायु परिवर्तन कितनी बड़ी विभाजक रेखा है और दुनिया कितनी असमान है।

जलवायु न्याय के पैमाने से देखें तो पर्यावरणीय असमानता की स्थिति केवल अन्तर्देशीय नहीं है बल्कि ये अंतरादेशीय[14] भी है, असमानता की और असमान समाज की ये स्थिति अमीर देशों में और भी मुखर हो जाती है और वहाँ भी इसकी मार गैर श्वेत और समाज के सबसे वंचित तबकों पर ही सबसे ज्यादा पड़ती है क्योंकि आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की पहुँच जलवायु अनुकूलन के संसाधनों तक नहीं है। इसी संदर्भ में जलवायु न्याय के साथ नस्लीय न्याय और सामाजिक न्याय की संकल्पना गहराई से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। नस्लीय न्याय के पैरोकार मानते हैं कि जलवायु न्याय नस्लीय न्याय के बिना संभव नहीं है। उनकी शिकायत है कि अमेरिका जैसे दुनिया के तथाकथित रूप से सबसे सभ्य माने जाने वाले देश में, जहाँ लोगों को इक्कीसवीं सदी में भी समान बर्ताव पाने के लिए 'ब्लैक लाईव्स मैटर' जैसे आंदोलन करने पड़ रहे हैं, पर्यावरण न्याय का मुद्दा एक 'अभिजन चिंतन' ही माना जाता रहा है। पर्यावरणीय न्याय के साथ नस्लीय न्याय को आबद्ध करने वाले कार्यकर्त्ताओं और विश्लेषको का तर्क है कि अमेरिका जैसे देश में भी अश्वेत लोग, श्वेत लोगों की तुलना में पर्यावरण प्रदूषणऔर जहरीली हवाओं के ज्यादा करीब होते हैं। गैर श्वेत अमेरिकी उससे 56 गुना ज्यादा खतरनाक व प्रदूषित क्षेत्रों में रहने को विवश हैं,[15] जितना प्रदूषण वे उत्सर्जित करते हैं, जबकि एक श्वेत अमेरिकी नागरिक जितनी जहरीली कॉर्बन का उत्सर्जन करता है उससे 70% तक स्वयं को बचा पाने में सक्षम होता है। वे आहवान करते हैं कि आज वैश्विक दक्षिण के गैर श्वेत समुदाय के लिए 'सेविंग ब्लैक लाईव्स फ्रॉम क्लाइमेट चेंज' जैसे एक नए आंदोलन की जरूरत है जिसका नारा होना चाहिए, "वी कांट ब्रीद"। इन विश्लेषकों की मुख्य निराशा इस बात को लेकर है कि पर्यावरणीय आंदोलन की अग्रणी पक्ति में गैर श्वेत समुदाय की उपस्थिति नगण्य है, मिशीगन वि०वि० की एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका की 40% आबादी

अश्वेत है[16] परंतु पर्यावरणीय नेतृत्व में उनकी भूमिका महज 12% है। इन विश्लेषकों की राय में जलवायु न्याय की दृष्टि से 'प्रतिनिधित्व' मायने रखता है क्योंकि केवल तभी हम इस तथ्य को वैश्विक मान्यता दिला सकते हैं कि जलवायु न्याय केवल पृथ्वी की सुरक्षा के लिए नहीं है, बल्कि उस पर रहने वाले उन लोगों की सुरक्षा के लिए है, जो अश्वेत हैं और जो हाशिए पर हैं। आज न केवल वैश्विक बल्कि स्थानीय स्तरों पर भी हमें इन असमानताओं और इनसे उपजे असंतुलन को पहचानना होगा, जलवायु न्याय हम तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक नस्लीय अन्याय को दूर करने के लिए हम अपनी आर्थिक और सामाजिक संरचना को पुनर्संरचित नहीं करते।

जलवायु न्याय का एक अन्य पहलू 'अंतर्पीढ़ीय न्याय' से जुड़ा हुआ है[17] जिसकी केन्द्रीय संकल्पना यह है कि हमारे विकास के लक्ष्यों और पर्यावरण में सामंजस्य बिठाने वाली नीतियों के निर्धारण के दौरान हमें भावी पीढ़ीयों की जरूरतों और हितों के प्रति भी संवेदनशील होने की जरूरत है,खास तौर पर उनकी जो अभी जन्मी भी नहीं है क्योंकि हमारी आज की गतिविधियों का खामियाजा दशकों बाद या सदियों बाद इसी पीढ़ी को चुकाना है। जलवायु न्याय का अंतर्पीढ़ीय पहलू 'प्राकृतिक दायित्व' की संकल्पना पर टिका हुआ है तथा ये मांग करता है कि जैसे व्यक्ति अपने बच्चों की परवाह करते है वैसे ही उन्हें उनके बच्चों और उनके बाद आने वाली अजन्मीं पीढीयों के भविष्य की चिंता भी करनी होगी। ये संकल्पना गाँधी जी के 'न्यास सिद्धांत' के बहुत करीब है, जो मानती है कि वर्तमान पीढ़ी उस प्राकृतिक सम्पदा की मालिक नहीं है, बल्कि न्यासी भर है, जो उसे उसकी पिछली पीढ़ी सौंप गई है और यह उसका नैतिक दायित्व है कि ये विरासत सही सलामत भावी पीढ़ी तक पहुंचाई जाए। व्यवहारिक स्तर पर देखें तो 1987 की ब्रंटलैण्ड रिपोर्ट, जिसने सतत विकास की बात की, व जिसमें वर्तमान उपभोग के स्तर को भावी पीढ़ी की जरूरतों के हिसाब से नियंत्रित व न्यायसंगत बनाने का आहवान किया गया, अंतर्पीढ़ीय न्याय की मांग का बीजक[18] बन गया|

समकालीन परिवेश में देखें तो अंतर्पीढ़ीय न्याय की झलक 'फ्रॉइड्रेज कॉर फ्यूचर' जैसे पर्यावरणीय आंदोलनों में देखी जा सकती है जिसके वाहक 'जेनेरेशन जी' तथा 'जेनेरेशन मिलेनियम' वाले युवा और किशोर हैं।[19] ये किशोर नेतृत्व इस सच्चाई पर हैरान है कि जब जलवायु परिवर्तन और कारणों के वैज्ञानिक साक्ष्य प्रस्तुत किए जा चुके हैं, क्षतिपूर्ति के उपाय बता दिए गए हैं, उनकी कीमत भी बता दी गई है, तो फिर कुछ ठोस करने का दायित्व भी सारे देशों की सरकारों पर है लेकिन उनके स्तर पर अभी भी एक संशयवाद दिख रहा है क्योंकि इस समस्या की गंभीरता समझ पाने और प्राथमिकताएं तय कर पाने में ये सरकार न सिर्फ विकल रही है बल्कि उन्होंने एक पूरी पीढ़ी को भी विफल कर दिया है।

अंतर्पीढ़ीय न्याय की मांग करने वाले थे किशोर पर्यावरणीय आंदोलन कभी इतने आक्रोशित प्रतीत होते हैं कि ये अपने संरक्षक पीढ़ी को सीधे-सीधे 'बिहैव योर सेल्फ' (तमीज सीखो) की चेतावनी देते हैं और कभी इतने निराशावादी कि "हमारा कोई भविष्य नहीं है" सरीखे नारे अपना पोस्टर बना डालते हैं। इस निराशावाद के अंधेरे में आशा की एक किरण के तौर पर इनके एक वर्ग ने एक ठोस रणनीति अपनाते हुए ये तय किया है कि वे खुद निर्णयन प्रक्रिया और राजनीति का हिस्सा बनेंगे क्योंकि पुरानी पीढ़ी के सक्रिय होने की अब और प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। इसी सोच का नतीजा इस रूप में देखा जा सकता है कि जर्मनी के ग्रीन पार्टी के चुने हुए प्रतिनिधियो की संख्या, 118

से बढ़ कर 2021 में दोगुनी हो गई और 12 सालों से पर्यावरण कार्यकर्ता रूप में सक्रिय रहीं सत्ताईस साल की 'नाइके स्लाविक' जर्मन संसद बुंडेस्टाग[20] की सदस्य चुनी गई। नाइके ने अपनी पहली प्राथमिकता राजनीतिक शक्ति के माध्यम से फर्क लाना बताया है और ये भी कि "छोटे-मोटे समझौतों का दौर बीत चुका है, अब समय निर्णायक फैसले लेने का है।"

इसी तरह 'जेंडर न्याय' भी जलवायु न्याय से गुंथा हुआ प्रमुख विमर्श है जिसका मूल पहलू यह है कि जलवायु अन्याय की भुक्त भोगी पुरुषों की तुलना में महिलाएं ज्यादा होती हैं। यहाँ यह तथ्य रेखांकित किया जाना जरूरी है कि वैश्विक स्तर के कई अध्ययनों में इस तथ्य की पुष्टि की जा चुकी है कि वैश्विक दक्षिण और खास तौर पर वैश्विक दक्षिण में भी वंचित और हाशिए की महिलाओं का जीवन जलवायु परिवर्तन ने और भी चुनौतीपूर्ण बना दिया है। विश्व के 45 विकासशील देशों की महिलाओं को लक्षित कर किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार पानी भरने की जिम्मेदारी 76% घरो में महिलाओं और बच्चो पर थी। अफ्रीका के सहारा क्षेत्र में महिलाओं को प्रतिदिन पानी भरने के लिए 37 मील की दूरी तय[21] करनी पड़ती है। न केवल पानी बल्कि ईंधन, जानवरों के लिए चारा और परिवार का भरण पोषण,, घरेलू श्रम विभाजन के अंतर्गत महिलाओं की जिम्मेदारी में शामिल है। ये विभाजन केवल शारीरिक नहीं बल्कि भावनात्मक श्रम का भी है इसीलिए जलवायु परिवर्तन से उपजने वाली असुरक्षा का सीधा असर न सिर्फ घरों पर पड़ता है बल्कि घरेलू व्यवस्था की धुरी के रूप में महिलाओं को बहुत ज्यादा असुरक्षित बनाता है। एक अध्ययन के अनुसार छोटे स्तर की कृषि में महिलाओं की संलग्नता और निर्भरता एशिया और अफ्रीका में 60 से 80 प्रतिशत के बीच है और ये छोटे स्तर की कृषि[22] दुनिया की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए खासी महत्त्वपूर्ण है जिसका दारोमदार महिलाओं के कंधों पर है, यद्यपि यह कृषि पारिवारिक उपभोग के लिए की जाती है परंतु अतिरिक्त उपज को स्थानीय बाजारों में बेचकर महिलाएं इनसे अपनी आजीविका भी चलाती हैं। ऐसे में, जलवायु परिवर्तन का कृषि पर पड़ने वाला विनाशकारी प्रभाव लैंगिक अन्याय को और भी घनीभूत कर रहा है। यहाँ यह तथ्य रेखांकित करना भी महत्वपूर्ण है कि वैश्विक खाद्य उत्पादन में महिलाओं की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी के बावजूद उनके पुरुष समकक्षों की तुलना में उन्हें कम पोषण पर गुजारा करना पड़ता है। महामारी के दौर में पोषण असमानता और भी विकराल हो गई जो यह बताने के लिए काफी है कि संकट की परिस्थितियों में महिलाओं को पोषण से और ज्यादा समझौता करना पड़ता है।

लैंगिक न्याय के पैरोकार मानते हैं कि यह स्थिति सीधे सीधे लैंगिक असमानता से जुड़ी है, शक्ति संरचना से जुड़ी है व शक्ति सम्बंधों से जुड़ी है जो यह तय करती है कि घर के भीतर भी संसाधनों पर पहला हक किसका है? ऐसे में जलवायु संकट के कारण घटती कृषि उत्पादकता और आय महिलाओं में कुपोषण की स्थिति और भी बुरी बना सकती है, जिसका सीधा असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ना तय है। यहाँ यह बात भी दीगर है कि दक्षिण के देशों की अधिकांश महिलाओं की स्वास्थ्य सुविधाओं तक सीधी पहुँच नहीं है, इस तथ्य के बावजूद कि स्वास्थ्य और सफाई के क्षेत्रों में वे फ्रंटलाईन कार्यकर्ता की भूमिका में है।

जलवायु परिवर्तन से होने वाली अतिवर्षण,बाढ़ या चक्रवात जैसी स्थितियों का सीधा शिकार महिलाएं इस रूप में भी होती हैं कि जेण्डर्ड नॉर्म (लैंगिक परम्परा) के कारण पुरूषों की तुलना में तैराकी जानने वाली महिलाओं की

संख्या नगण्य होती है और अकेले घर से बाहर निकलना भी कईयों के लिए दुसाध्य है। जलवायु परिवर्तन के कारण निर्वासन के लिए मजबूर महिलाएं असुरक्षित आश्रय स्थलों में रहने के के लिए विवश होती है, जहाँ उनकी निजता खतरे में होती है तथा उत्पीडन व हिंसा का वे सहज शिकार हो सकती हैं।

इसी परिप्रेक्ष्य में कुछ अध्ययनों से ये चौंकाने वाले तथ्य सामने आए हैं कि किस तरह जलवायु परिवर्तन घरेलू हिंसा को बढ़ावा देने वाला सिद्ध हुआ। ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड के कई केस स्टडीज से ये सिद्ध हुआ है कि सूखे और जंगलों की आग की वजह से आजीविका पर पड़ने वाली मार के कारण उपजी पुरुषों की कुंठा घरेलू हिंसा के रूप में निर्गत[23] हुई है।

जलवायु न्याय का दूसरा पहलू इसके व्यावहारिक प्रयोग से जुड़ा हुआ है और बहुत हद तक इसके शाब्दिक रूप के समरूप है जो पर्यावरणीय हिंसा को सीधे-सीधे अपराध की श्रेणी में रखते हुए अपराधियों को सजा और उनसे हर्जाने की मांग करता है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) और 'साबिन सेंटर फॉर क्लाइमेट चेंज लॉ' के अनुसार कार्बन उत्सर्जन का स्तर घटाने के लिए हालिया समय में देशों, निगमों और कम्पनियों को कोर्ट में घसीटने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस रिपोर्ट के अनुसार पिछले पाँच वर्षों में जलवायुवीय मुकदमेबाजी दोगुने से अधिक हो गई है तथा दुनिया भर में ऐसे 2,180 मामले दर्ज किए गए जिनमें से 1522 तो अकेले अमेरिका में ही विचाराधीन हैं। कुल पचपन देश, जहाँ यह मामले शुरू किए गए, उनमें ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया सहित यूरोप के विकसित देशों के साथ वैश्विक दक्षिण के कई एशियाई और अफ्रीकी देश भी शामिल हैं। महत्वपूर्ण बात यह है जैसा कि नीदरलैण्ड में 'फाउंडेशन फार इंटरनेशनल लॉ फॉर द एनवायरमेंट' के निदेशक कहते हैं कि "इन मामलो में से 50% जीते भी जा रहे हैं[24]" पर्यावरणीय मुकदमेबाजी का भविष्य उन देशों में बहुत अच्छा रहा है जहाँ पर्यावरणीय अधिकार संवैधानिक अधिकार हैं, तथा मानवाधिकार के लिए प्रतिबद्धताएं विधिक रूप से बाध्यकारी रही हैं।

साल 2023 में प्रशांत महासागर के एक छोटे से द्वीपीय देश वनातू के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र संघ के 105 देशों ने अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय में एक अपील दायर कर न्यायालय से उन दिशा-निर्देशों की मांग की है जिनके आधार पर जलवायु कार्यवाही में राज्यों की जवाबदेही तय की जा सके। यहाँ यह ध्यातव्य है कि वनातू वैश्विक तापमान वृद्धि के कारण समुद्र में समा जाने के खतरे से जूझ रहा है,ऐसे में इन द्वीपीय देशों की निरीह जनता की सुरक्षा की दृष्टि से अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का फैसला और जलवायु कार्यवाही के लिए दिशा निर्देश एक जल विभाजक की भूमिका निभा सकते हैं। ये निर्णय भले ही बाध्यकारी न हो, परंतु त्वरित जलवायुवीय कार्यवाही की दिशा में एक नैतिक दायित्व तय करने में निःसंदेह मददगार हो सकता है।

आज दुनिया भर में युवा लोगों में जलवायु न्याय के लिए न्यायालय का रुख करने की प्रवृत्ति में खासा इजाफा हुआ है। इस आधार पर सहज ही ये अनुमान लगाया जा सकता है कि निकट भविष्य में जलवायु परिवर्तन के कारण विस्थापित हुए तथा शरणार्थी की आकांक्षा वाले लोगों व जंगलो पर निर्भर देशज समुदायों[25] द्वारा भी विधिक रूप से जलवायु क्षतिपूर्ति की मांग की जा सकती है,क्योंकि यह एक आम प्रवृत्ति है कि दुनिया भर में लोग न्यायालय का रुख तभी करते हैं जब उनके सारे विकल्प ख़त्म हो जाते हैं।

पर्यावरणीय राजनीति

इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में मानवीय सभ्यता जिन अप्रत्याशित खतरों से जूझ रही है, पर्यावरणीय असुरक्षा ने उसे अभूतपूर्व रूप से और भी जटिल बना दिया है। वर्तमान जलवायु का संकट उपनिवेशवाद की विरासत और उपभोक्तावाद की तार्किक परिणीति है जो 'हम बनाम वे' की जलवायु राजनीति में स्पष्ट रूप से विभाजित हो चुका है। जलवायु न्याय एक सोच के रूप में वैश्विक उत्तर और वैश्विक दक्षिण के बीच इसी खाई को पाटने का प्रयास है। दुर्भाग्य से भुक्त भोगी दक्षिण के देशों और कुछ उदार उत्तर के सक्रिय कार्यकत्ताओं और सजग होते अंतर्राष्ट्रीय जनमत के बावजूद जलवायु न्याय का प्रश्न पर्यावरणीय राजनीति के मकड़जाल में उलझ कर रह गया है। जलवायु अन्याय के लिए सीधे तौर पर जिम्मेदार वैश्विक उत्तर के देशों की जिम्मेदारी स्वीकार करने में आनाकानी, उनके पर्यावरणीय पाखंड को अनावृत्त करने के लिए पर्याप्त है।

जलवायु के मुद्दे पर 'हम बनाम वे' की राजनीति की पहली झलक 1972 के संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन (UNCHE), स्टॉकहोम में देखी जा सकती है, जब पहली बार वैश्विक दक्षिण के देशों की एकजुटता पर्यावरण के मुद्दे पर प्रस्फुटित हुई और पूरे साहस के साथ इन देशों ने वर्तमान पर्यावरणीय संकट और वैश्विक दक्षिण के देशों की दारुण दशा का जिम्मेदार वैश्विक उत्तर के निर्दय शोषण को ठहराते हुए ये मांग की कि पर्यावरण की चिंताओं को विकास की चिंताओं से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसीलिए पर्यावरणीय चिंताएं तब तक नहीं सुलझाई जा सकती जब तक तकनीकी व वित्तीय संसाधनो की मदद से संरचनागत अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में तब्दीली लाने के लिए कोई ठोस पहल वैश्विक उत्तर के देशों द्वारा[26] नहीं की जाती।दक्षिण के देशों ने इस मुद्दे पर और भी मुखर होते हुए उत्तर के देशों से स्वनिर्भरता के साथ सतत विकास और मशीन के ऊपर मानतीय संसाधनों को प्रश्रय देने की मांग की। पर्यावरण की चिंताओं पर प्रवचन दे रहे वैश्विक उत्तर के देश इस अप्रत्याशित स्थिति पर पहले तो अवाक रहे और फिर अपने निहित स्वार्थ वश ठिठाई की राजनीति पर उतर आए तथा ये दलील देने में जुट गए कि दक्षिण के देशों की बढ़ती जनसंख्या और परम्परागत ईंधन का उपभोग ही धरती के बढ़ते कॉर्बन उत्सर्जन की मुख्य वजह है। जलवायु न्याय पर राजनीति के लिहाज से इस पहले अंतर्राष्ट्रीय मंच पर विकसित और विकासशील देशों के बीच पर्यावरण समस्या के कारणों, उनकी पहचान और निदान करने वाले उपायों पर मतभेद खुलकर न सिर्फ सामने आया बल्कि इसने उत्तर और दक्षिण के बीच गहरे विभाजन को भी दर्शा दिया।

विकसित और विकासशील देशों के मध्य जारी इस पर्यावरणीय रस्साकशी के बीच 1988 में गठित 'जलवायु परिवर्तन पर अंतर्सरकारी पैनल' (IPCC) के मंच से "सामान्य परंतु विभेदित जिम्मेदारियो और सम्बंधित क्षमताओं" की संकल्पना को जलवायु न्याय के पूर्व गामी कदम के रूप में देखा गया है जिसमें पहली बार विकासशील देशों की इस मांग को अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति मिली कि विकसित और विकासशील देशों की विकास की जरूरतें अलग-अलग है,,असमान स्थितियों में समान नियमों की जिद अन्याय के बराबर है इसीलिए जलवायु न्याय की दृष्टि से पर्यावरणीय जिम्मेदारी के नियम उत्तर और दक्षिण के देशों के लिए एक बराबर नहीं हो सकते।

1992 के पृथ्वी सम्मेलन में उत्तर के देशों में वैश्विक दक्षिण की मांगो के प्रति थोड़ी संवेदनशीलता देखने को मिली, जब जलवायु परिवर्तन पर 'संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कंवेशन' पर हस्ताक्षर करते हुए विकसित देश कम से कम सैधांतिक

रूप से 2020 तक उनके कार्बन उत्सर्जन का स्तर 1990 के स्तर पर बनाए रखने पर सहमत हो गए। तथापि विकसित दुनिया की ये सदाशयता ज्यादा देर तक कायम न रह सकी और क्योटो प्रोटोकॉल के दौरान ये नकाब भी जल्दी ही उतर गया। क्योटो प्रोटोकॉल में औद्योगिक देशों ने कार्बन उत्सर्जन की दर 1990 के स्तर से 5.2. घटाने पर सहमति व्यक्त की थी, परंतु अमेरिका इस संधि से मुकर गया, उल्टा उसने वैश्विक दक्षिण के देशों को भी कॉर्बन उत्सर्जन न्यूनीकरण के दायरे में लाने का राग छेड़ दिया।

जलवायु न्याय का एक और पहलू 'हरित जलवायु कोष' उत्तर बनाम दक्षिण की रस्साकशी[27] का एक और प्रमुख उदाहरण है। 2010 में जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNFCC) के अंतर्गत स्थापित इस कोष का मुख्य उद्देश्य विकासशील देशों में पर्यावरण अनुकूलन तथा पर्यावरणीय क्षति की भरपाई करने में मदद करना था। इस कोष में वर्ष 2020 तक विकसित देशों द्वारा प्रति वर्ष 100 बिलियन डॉलर की मदद देने का प्रस्ताव था परंतु आक्सफैम संस्था की रिपोर्ट के अनुसार वास्तविक मदद की राशि 20 बिलियन से भी कम रही तथा ज्यादातर मदद ऋण के रूप में दी गई न कि सहायता राशि के रूप में प्रदूषक देशों द्वारा पर्यावरणीय क्षति पूर्ति का मामला भी महत्वपूर्ण है। कुछ देश और कम्पनियां 'कार्बन बहाव' पर रोक लगाने के लिए, गरीब देशों को जंगलो की कटाई से रोकने के लिए न सिर्फ भुगतान कर रहे हैं, बल्कि नए सिरे से जंगल बसाने के लिए निवेश भी कर रहे हैं, परंतु विडम्बना यह है कि उनका ये सद्‌भावना प्रयास इसलिए नहीं है कि वे अतीत के कॉर्बन ऋण को चुकता करने की कोशिश कर रहे हैं बल्कि आलोचकों की नजर में ये गतिविधियाँ 'ग्रीन वॉश'' (हरित धोखा) अधिक है क्योंकि इनकी आड़ में वे अपने वर्तमान प्रदूषण स्तर को कायम रखना चाहते हैं।

उपसंहार

जलवायु परिवर्तन के लिहाज से देखें तो दुनिया आज एक दोराहे पर खड़ी नजर आती है जहाँ से एक रास्ता विकास की ओर तो दूसरा पर्यावरण संरक्षण की ओर जाता नजर आता है। दरअसल पर्यावरण की वर्तमान विनाशकारी स्थितियों का जिम्मेदार मानवीय सभ्यता या यही द्वैत भाव है जहाँ विकास और पर्यावरण को परस्पर विपरीत ध्रुव (बाइनरी) ही समझा गया है। यह द्वैत भाव समूची दुनिया में कई स्तरों पर कायम है जिसके तहत एक तरफ मानव जगत को प्राकृतिक जगत से मूल्यवान समझा जाता है तो मानव जगत में भी विकसित देशों ने स्वयं को विकासशील देश से ज्यादा महत्वपूर्ण समझा है। इन विकसित देशों में भी नस्लीय और लैंगिक आधार पर 'हम बनाम वे'' का फर्क देखा जा सकता है। जलवायु न्याय की संकल्पना इसी वैश्विक अन्याय की तरफ पूरी दुनिया का ध्यान आकृष्ट करने का एक व्यावहारिक आंदोलन है जिसकी सीधी सी मांग है कि चूंकि वर्तमान जलवायुवीय विनाश की जिम्मेदार पश्चिमी देशों की अंधाधुंध औद्योगीकरण की प्रक्रिया रही है तो इसे दुरुस्त करने में पहली जिम्मेदारी भी इन्हीं देशों की होनी चाहिए। इसीलिए जलवायु परिवर्तन से उपजने वाले विनाश के भुक्तभोगी दक्षिण के देशों को पर्यावरणीय अनुकूलन में मदद के लिए तथा इन देशों को सतत विकास के साधन अपनाने के लिए प्रेरित करने के लिए उत्तरी गोलार्द्ध के देशों को वित्तीय व तकनीकी सहायता देने में कोई कोताही नहीं करनी चाहिए। जलवायु न्याय को सुनिश्चित करने की दिशा में इन अल्पकालिक उपायों से इतर एक दीर्घकालिक नजरिया भी अपनाए जाने की जरूरत है जिसमें सतत विकास के लक्ष्य के साथ वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन की जरूरत है ताकि

उपभोग और असंतुलन पर आधारित वैश्विक जगत को संयम और संतुलन आधारित हरित व्यवस्था में परिवर्तित किया जा सके। दुर्भाग्य से वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय परिवेश को देखते हुए जलवायु न्याय की मांग जलवायु राजनीति में इस कदर उलझी हुई है कि निकट भविष्य में इनका पूरा हो पाना दूर की कौड़ी सरीखा प्रतीत होता है।

संदर्भ सूची

1. John Rawls's *A Theory of Justice*, 1971. pp.4-5.
2. OP Gauba, Rajnitik Vichar Vishvakosh. P. 325
3. Kaswan, Alice, Climate Justice (March 1, 2022). Climate Justice, in Global Climate Change and U.S. Law, 3d ed. (Michael B. Gerrard, Jody Freeman, and Michael Burger, eds) (2022, Forthcoming), Univ. of San Francisco Law Research Paper , Available at SSRN: https://ssrn.com/abstract=4168262
4. McKinnon, Catriona. (2008). Issues in Political Theory, Oxford University Press pp-313-335
5. Andrew, Heywood, Political Ideologies,2022, p. 343.
6. UN News,(July 27, 2023),Hottest July ever signals 'era of global boiling has arrived' says UN chief | UN News.
7. Press Release,World Meteorological Organization (WMO) November 30, 2023 shatters climate records, with major impacts (wmo.int).
8. John Vogler, 'Environmental Issues', in John Baylis, Steve Smith and Patricia Owens, (eds.), *The Globalization of World Politics*, 4th edition, Oxford University Press, Oxford, 2008, p. 363.
9. Caney, Simon.(2014). Two Kinds of Climate Justice: Avoiding Harm and Sharing Burdens. The Journal of Political Philosophy: Volume 22, Number 2, 2014, pp. 125–149. https://doi.org/10.1111/jopp.12030.
10. Op. Cit. No. 8.

11. Global Historical Emissions,(ND) Climate Watch, https://www.climatewatchdata.org/ghg-emissions.
12. Carbon Brief,(October 5,2023),Analysis: Which countries are historically responsible for climate change? - Carbon Brief
13. Early Warning Systems: Saving lives and building disaster resilience - Practical Action
14. Caney, Simon, "Climate Justice", *The Stanford Encyclopedia of Philosophy* (Winter 2021 Edition), Edward N. Zalta (ed.), URL = <https://plato.stanford.edu/archives/win2021/entries/justice-climate/>.
15. History of Environmental Justice | University of Michigan School for Environment and Sustainability (umich.edu)
16. Ibid.
17. Op. Cit.No.5. p.343.
18. Ibid.
19. Fridays For Future is an international climate movement active in most countries and our website offers information on who we are and what you can do.
20. List of members of the 20th Bundestag - Wikipedia
21. New Report: Why Climate Change Impacts Women Differently Than Men | UNFCCC
22. Alex Awiti, Climate Change and Gender in Africa: A Review of Impact and Gender-Responsive Solutions. Climate Change and Gender in Africa: A Review of Impact and Gender-Responsive Solutions (aku.edu).
23. Opinion | As Australia's temperature rises, so do rates of domestic violence | South China Morning Post (scmp.com)

24. Sabin Center & UNEP Release Global Climate Litigation Report: 2023 Status Review | Sabin Center for Climate Change Law (columbia.edu)
25. Renee, Cho, August, 9, 2023, Climate Lawsuits Are On The Rise. This Is What They're Based On. (columbia.edu), retrieved on 5-1-2023.
26. Rajendra Kumar, Pandey, "India and Global Environmental Challenges" in M. B. Alam (ed.), *Contours of India's Foreign Policy,* Reference Books, New Delhi, 2014, pp. 19-36. (ISBN- 9788184050820).
27. Ibid.
28. GCF-2 | Green Climate Fund.

अध्याय-24

भारत में गैर सरकारी संगठन: उद्भव और विकास

नीतीश कुमार
पीएचडी शोध छात्र,
राजनीति विज्ञान विभाग,
जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली

आबिदा बानो
स्वतंत्र शोधार्थी, नई दिल्ली

भारत के विकास के परिपेक्ष्य में गैर सरकारी संगठन (एनजीओ) का स्वरूप व्यापक रूप में उभर कर आया है। जिसने समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारत के समक्ष अनन्य प्रकार की चुनौतियाँ औपनिवेशिक विरासत के रूप में मिली। जिसमें विभाजन की त्रासदी, गरीबी, भुखमरी, स्वास्थ सेवाओं का निम्न स्तर, उच्च स्तर पर जन्म मृत्यु दर, निम्न आय, आधारभूत संरचनाओं का अभाव, अशिक्षा का उच्च स्तर इत्यादि प्रमुख है। एक नव स्वतंत्र राष्ट्र के लिए इस चुनौतियों का निराकरण करना सबसे प्राथमिक कार्य के रूप में उभर कर आया। जिसमें राज्य की भूमिकाओं के साथ-साथ समाज का एक स्वैच्छिक योगदान की आवश्यकता सबसे प्राथमिकता के साथ थी। अकेले सिर्फ़ राज्य एवं सरकार के लिए इस चुनौतियों से निपटना एक कठिन मार्ग के रूप में था। जिसमें प्रशासनिक इकाईयों की सीमाएं एवं संसाधनों की अनुपलब्धता सबसे गंभीर चिंता थी। अतः इसमें जनता की स्वैच्छिक भागीदारी की प्रासंगिकता सबसे प्रमुखता के साथ उभर आई। जिसके सामूहिक सहयोग से इन समस्याओं का स्थाई समाधान निकाला जा सकता था। जनता के स्वैच्छिक योगदानों के रूप में "गैर सरकारी संगठनों" के महत्व को सबसे प्राथमिकता के साथ स्थान दिया गया। अतः राज्य एवं सरकार के विकास की नीतियों के निर्माण से लेकर इसके कार्यान्वयन तक एनजीओ की भूमिका अनिवार्य रूप से उभर कर आई।

एक विकल्प के रूप में गैर सरकारी संगठनों की प्राथमिकताओं को स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात से सिर्फ़ भारत ही नहीं बल्कि वैश्विक चुनौतियों से भी निपटने में विश्व के अन्य देशों के साथ साथ संयुक्त राष्ट्र ने भी इसको अपनी भूमिकाओं में भागीदार बनाया। जिसमें संयुक राष्ट्र संघ ने अपने सिद्धांतों से लेकर कार्य-नीतियों में हमेशा ही गैर सरकारी संगठनों के महत्व को प्राथमिकता दी है। संयुक्त राष्ट्र ने एनजीओ के महत्व को अपना एक सहभागी अंग माना है। जिसके माध्यम से वह अपनी नीतियों को वैश्विक स्तर पर लागू कर सकता है। इससे जनता के बीच में संगठन के प्रति एक विश्वास भी मजबूत होता है और इसके माध्यम से संगठन के नीतियों और निर्णयों को अधिक लोकतांत्रिक भी बनाया जा सकता है। अतः 1945 से ही संयुक्त राष्ट्र के मानव अधिकार संबंधी घोषणा पत्रों पर निगरानी रखने की जिम्मेदारी एनजीओ को ही दी है। अतः एनजीओ का स्वरूप भारत के साथ साथ वैश्विक परिपेक्ष्य में भी महत्ता के साथ उभर कर आता है।

गैर सरकारी संगठनों के उद्भव और विकास

भारत में गैर सरकारी संगठनों का दार्शनिक स्वरूप मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ विकसित हुआ है। भले ही आज आधुनिक शब्दावलियों में जनता के सामूहिक स्वैच्छिक भागीदारी को हम "गैर सरकारी संगठन" के रूप में परिभाषित करते है। इसके प्रकृति का विकास मानव के स्वैच्छिक भूमिकाओं के रूप में प्राचीन समय से ही होता रहा है। तथ्यात्मक रूप से जब इसका मूल्यांकन करते है तो इसका वास्तविक स्वरूप 1860 ई में भारत में लागू की गई "सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट" के रूप में दिखाई देता है।[1] जबकि भारत में स्वैच्छिक मूल्यों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यताओं का इतिहास। जिसमें मानव जीवन को उन्नत बनाने में राज्य और समाज दोनों की भागीदारी निरंतर रूप से चलती हुई आ रही है। भारत में प्रारंभ से ही धार्मिक समूह लोगों के कल्याण के लिए शिक्षा, स्वास्थ एवं मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में अपनी स्वैच्छिक भूमिकाओं का निर्वहन कर रहे है।

प्रारम्भिक भारत में स्वैच्छिक क्रियाओं (voluntary action) की जड़ें :

आधुनिक भारत में "गैर सरकारी संगठनों" के जिस व्यापक स्वरूप को देख रहे है उसकी जड़ें भारतीय समाज में प्राचीन समय से ही विद्यमान है। हिन्दू धर्म का भारत से सबसे पुराना संबंध है जिसमें यहाँ बहुमत की आबादी इसके मान्यताओं में विश्वास करती है। हिन्दू धर्म के मूल सिद्धांतों में "धर्म" (Dharma) का सबसे प्रमुख स्थान है जिसका प्रभाव मानव के नैतिक और सामाजिक व्यवहार पर गहराई से उभर कर आता है।[2] इसके पश्चात विकसित अन्य धर्मों जैसे बौद्ध एवं जैन धर्म की मान्यताओं में भी मानव कल्याण के लिए स्वैच्छिक कार्य व दान की परंपरा को सबसे प्रमुख स्थान दिया गया है। भारत में विकसित धर्मों में स्वैच्छिक कार्यों की मान्यताओं को देखा जाए तो सेवा और मानव कल्याण के हित में किए कार्यों को ईश्वर की सेवा के साथ जोड़ कर देखा जाता है। जिसमें लोग निजी स्वार्थ से ऊपर उठ कर अपनी संपत्ति के बड़े हिस्से को जनता की भलाई के कार्य में समर्पित करते रहे है। स्वैच्छिक क्रियाओं का एक सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण हिन्दू धर्म में संपत्ति के दान को जनहित में माना गया है। यहां हिन्दू धर्म के भीतर एक मान्यता है कि संपत्ति के तीन प्रमुख उदेश्य है: संग्रह, उपभोग और दान। जिसमें दान को सबसे सर्वोच्च स्थान दिया गया है। बौद्ध, जैन और सिख धर्मों में भी गरीबों के कल्याण के लिए स्वैच्छिक भूमिकाओं को सबसे प्राथमिकता दी गई है। जिसमें इनके धार्मिक संस्थाओं जैसे मठ, मंदिर, गुरुद्वारा, चर्च, मस्जिद आदि का महत्वपूर्ण भूमिका है। जहां यह गरीब, बच्चे, महिलाएं, विकलांग, कुष्ठ रोगियों आदि समाज के सबसे कमजोर वर्गों के लिए अपने स्वैच्छिक गतिविधियों का संचालन करते रहे हैं।

भारत में इस्लाम और क्रिश्चियन धर्म के आगमन ने भी समाज के कमजोर वर्गों के हितों के लिए स्वैच्छिक भूमिकाओं को सबसे प्रमुख स्थान दिया है। इस्लाम धर्म के अंतर्गत स्वैच्छिक क्रियाओं का मूल्यांकन किया जाए तो हम पाएंगे कि इसमें 'जकात' की जिम्मेदारी को सबसे पवित्र माना गया है। जिसमें सभी मुसलमानों की यह जिम्मेदारी होती है कि स्वैच्छिक रूप से अपने आमदनी का एक निश्चित हिस्सा गरीबों और जरूरतमंदों में दान करें।[3] इसके साथ समाज में 'जाजिया प्रथा' को भी सबसे ऊंचा स्थान दिया गया है। यह एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसमें उच्च वर्ग के लोग अपने से निम्न वर्ग के लोगों के हितों का ध्यान रखते है। इस प्रथा के अंतर्गत संस्थानों के अलावा राजा-महाराजा जरूरतमंदों को धार्मिक एवं सामाजिक कर्तव्यों को अपनी जिम्मेदारी मान कर मदद करते थे।[4] भारत में क्रिश्चियन धर्म के आगमन से समाज में स्वैच्छिक क्रियाओं को और भी ज्यादा मजबूती मिली। जिसमें शहरी क्षेत्र के

साथ-साथ ग्रामीण व आदिवासी क्षेत्रों में समाज के विभिन्न मुद्दों पर काफी गहराई से काम किया जिसमें शिक्षा,स्वास्थ्य, रोजगार, महिलाओं आदि के उत्थान में महत्वपूर्ण काम किया गया। भारत के आदिवासी क्षेत्रों में ईसाई मिशनरियों के स्वैच्छिक योगदानों के प्रभावों को देख सकते हैं। मिशनरी योगदानों में डिस्पेंसरी, अस्पताल निर्माण, कल्याण केद्रों का निर्माण, पुनर्वास संस्थान की स्थापना, सड़क निर्माण, महिलाओं और बच्चों की मदद, छुआछूत जैसी सामाजिक कुरीतियों की समाप्ति आदि उनके प्रमुख केंद्र में रहे हैं।[5]

भारत में धर्म और समाज सुधार आंदोलन के दौर में स्वैच्छिक क्रियाएं

भारत में औपनिवेशिक शासन के दौरान स्वैच्छिक क्रियाओं की प्रकृति में व्यापक बदलाव उभर कर आए। इसमें सामाजिक कार्यों की जिम्मेदारी के अंतर्गत ईसाई मिशनरियों की भागीदारी पर व्यापक जोर दिया जाने लगा। स्वैच्छिक कार्यों का स्वरूप एक संगठनात्मक कार्यों के स्वरूप में परिवर्तित होने लगा। एक तरह से कहें तो वर्तमान गैर सरकारी संगठनों की नीव इसी दौर में स्थापित होनी प्रारंभ हुई। 18 वी सदी में लाए गए औपनिवेशिक प्रयासों जैसे संचार के साधन का विकास, यातायात के साधनों का विकास, छापखाना का विकास, आर्थिक बदलाव इत्यादि ने इसको एक संगठन के रूप में स्थापित करने में काफी मदद की। इन आधुनिक बदलावों और पश्चिम के उदार विचारों के प्रभावों ने भारत में सामाजिक और धार्मिक मुद्दों पर काम करने वाले वर्गों को गंभीरता से प्रभावित किया। जिसके प्रभाव को इस दौर में सामाजिक और धार्मिक मुद्दों पर विकसित हुए संगठनों के माध्यम से देखा जा सकता है।[6] जिसमें इस दौरान ब्रिटिश प्रभाव के साथ-साथ भारत के समाज सुधारकों ने सामाजिक मुद्दों के ऊपर गंभीरता से काम करना प्रारंभ किया। भारत में व्यापक रूप से संगठनात्मक संरचनाओं का निर्माण भी किया जिसका स्वरूप एक औपचारिक संगठन के रूप में उभर कर आया। इस दौरान के कुछ प्रमुख सामाजिक मुद्दों पर प्रकाश डालें तो जिसमें बाल विवाह, जाति प्रथा का अंत, बहु विवाह, कन्या भ्रूण हत्या तथा सती प्रथा जैसी कई कुरीतियों को संगठनात्मक तरीके से समाप्त करने पर जोर दिया गया।[7]

इसके साथ ही महिला शिक्षा, बच्चों के विकास, गरीबी व पिछड़ेपन को दूर करना, रोजगार के अवसर जैसे व्यापक सकारात्मक मुद्दों को भी संगठनात्मक बदलाव के दौरान प्राथमिकता दी गई।[8] ब्रिटिश प्रभाव के साथ-साथ समाज सुधार के मुद्दों पर पूरे भारत में स्वैच्छिक संगठनों का अस्तित्व उभर कर आया, जिसमें राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, महादेव गोविंद रानाडे, केशव चंद्र सेन, सर सैयद अहमद खान, ज्योतिबा फुले, दयानंद सरस्वती आदि का प्रमुख योगदान है। इनके योगदानों से पूरे भारत में व्यापक स्तर पर सामाजिक और आर्थिक मुद्दों पर आधारित संगठनों का निर्माण भी किया गया। जिन संगठनों की प्रकृति एक स्वैच्छिक संगठन के रूप में उभर कर आई। इन संगठनों के दबाव और प्रयासों से ब्रिटिश शासन के दौरान व्यापक स्तर पर कई नीतिगत बदलाव लाने पर भी मजबूर किया गया। अतः इन संगठनों में ब्रह्म समाज (1828), परमहंस सभा (1849), सार्वजनिक सभा (1871), प्रार्थना सभा (1872), आर्य समाज (1875), विधवा विवाह संस्था (1850), आर्य महिला समाज (1868), रामकृष्ण मिशन (1897), थियोसोफिकल सोसायटी, इंडियन नेशनल कांग्रेस (1885) इत्यादि प्रमुख है।[9] इन संगठनों के विकास ने पूरे भारत में विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर संगठनात्मक प्रयास की एक नीव स्थापित कर दी।

स्वैच्छिक क्रियाओं में महात्मा गांधी का योगदान

1900 ई के बाद भारत में स्वैच्छिक क्रियाओं के स्वरूप में व्यापक प्रभाव उभर कर आए। एक संस्था के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885) का महत्व काफी तेजी से विकसित हुआ। भारत में स्थापित औपनिवेशिक शासन की आलोचना पर राष्ट्रवादी नेताओं ने अपने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिसमें दादा भाई नौरोजी, सर फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, आरसी दत्त आदि नेताओं का प्रमुख स्थान है।[10] इसके साथ ही बंगाल विभाजन (1905) के बाद ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ भारत में स्वैच्छिक रूप से जन आंदोलन की भी शुरुआत होती है इसमें स्वदेशी आंदोलन का उभार भारत में स्वैच्छिक भागीदारी का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है।[11]

भारतीय राजनीति में गांधी के आगमन ने स्वैच्छिक क्रियाओं की प्रकृति में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लेकर आया। जिसमें प्रारंभ में चंपारण, अहमदाबाद एवं खेड़ा के आंदोलनों ने आम जनता को काफी प्रभावित किया जिससे वे स्वैच्छिक रूप में इनकी भागीदारी देशव्यापी के रूप में उभरकर आई।[12] गांधी द्वारा स्थापित विभिन्न आश्रमों की प्रकृति भी स्वैच्छिक क्रियाओं के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान निभाती है। भारत में गांधी का योगदान सिर्फ स्वतंत्रता आंदोलन तक ही सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक सभी पहलुओं पर इनका गहरा प्रभाव रहा है। जिसका परिणाम आम जनता के आत्मविश्वास को मजबूत करने में अपनी सबसे बड़ी भूमिका निभाती है। इसमें गांधी के “रचनात्मक कार्यों” का सबसे प्रमुख योगदान है। गांधी ने अपने सामाजिक रचनात्मक कार्यों में शिक्षा, सफाई, खादी के संरक्षण और प्रसार, ग्राम उद्योग को मजबूत करने पर सबसे ज्यादा बल दिया।[13] इसके साथ ही अस्पृश्यता के खिलाफ लड़ाई, अशिक्षा को दूर करना, नशाखोरी के समाप्ति पर भी जोर दिया। इसमें आम जनता की स्वैच्छिक भागीदारी के ऊपर सबसे ज्यादा बल दिया गया जिसमें महिलाओं को बहुत बड़ी संख्या में शामिल करना इसकी एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।[14]

अतः भारत में गांधी के योगदानों को गैर सरकारी संगठनों की उत्पत्ति एवं विकास की नीव के रूप में स्थापित करता है। जिसमें गांधी की भूमिका और उनके रचनात्मक कार्यो ने भारत के आम जन के भीतर एक स्वैच्छिक भागीदारी को मजबूत करने में सबसे महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिसका सबसे गहरा प्रभाव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में गैर सरकारी संगठनों के विकास के ऊपर दिखाई देता है।

भारत में गैर सरकारी संगठन का संगठनात्मक विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में गैर सरकारी संगठनों के अर्थ एवं स्वरूप में व्यापक बदलाव उभर कर आए। राज्य एवं सरकार ने भी विकास की नीतियों के कार्यान्वयन में इसको महत्वपूर्ण स्थान दिया। 1953 में केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना की गई जिसमें बोर्ड की घोषणा करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. जवाहरलाल नेहरू ने यह अपेक्षा व्यक्त की थी कि - “यह संस्था कल्याणकारी सरकार की तीसरी आँख होगी।”[15] इसका प्रमुख उद्देश्य यह उभर कर आया कि गैर सरकारी संस्थाओं के माध्यम से सरकार की कल्याणकारी नीतियों को काफी प्रभावशाली तरीके से लक्षित समूह तक ले जाया जा सके। क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही अनेक चुनौतियां भारत के समक्ष आकर खड़ी थी। इन चुनौतियों से निपटने के लिए भारत सरकार ने 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की

शुरुआत की। इसमें सरकार की भूमिका पर व्यापक जोर दिया गया था और यह विश्वास व्यक्त किया गया कि इन सभी चुनौतियों से सरकार एवं इसके प्रशासनिक तंत्र एक स्थाई समाधान निकाल लेंगे। इसकी समीक्षा के लिए गठित बलवंत राय मेहता की समिति ने विकास कार्यों में जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी एवं पंचायती राज संस्थाओं के मजबूतीकरण पर व्यापक जोर दिया। इसका प्रमुख उद्देश्य यह था कि विकास के कार्यों में विकेंद्रीकरण को मजबूत किया जाए तथा जनता की शैक्षिक भागीदारी को बढ़ाया जाए। अतः इस निर्णय ने स्वैच्छिक क्रियाओं के स्वरूप में व्यापक बदलाव लेकर आए। 1960 और 1970 ई के दशक में एनजीओ के विकास का मूल्यांकन करें तो हम पाएंगे की सेवा और परामर्श एजेंसी का काफी तेजी से विकास हुआ, जिसमें गौ सेवा संघ, ऑल इंडिया विलेज इंडस्ट्रीज एसोसिएशन, आदिम जाति सेवक संघ आदि प्रमुख है।

अतः 1980 के दशक तक आते-आते विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका में तेजी से विकास हुआ। जिसमें अनेक सामाजिक मुद्दों जैसे जल विकास, सामाजिक वानिकी, कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास, स्वास्थ्य एवं शिक्षा के मुद्दों पर स्वैच्छिक संगठनों के रूप में विकास हुआ। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय फंडिंग एजेंसियों द्वारा विकसित स्वैच्छिक संगठनों का अस्तित्व व्यापक रूप से उभर कर आया। जिसमें एक्शन फॉर फूड प्रोडक्शन, नई दिल्ली, इंडो जर्मन सोशल सिविल सोसाइटी, गांधी पीस सेंटर, वॉलंटरी हेल्थ एसोसिएशन ऑफ इंडिया आदि प्रमुख है।

हालांकि भारत में आपातकाल के दौरान सरकार और स्वैच्छिक संगठनों के बीच में एक अविश्वास की स्थिति उभर कर आई। राज्य ने गैर सरकारी संगठनों को एक संदेह की दृष्टि से देखना प्रारंभ कर दिया। बहुत सारे गैर सरकारी संगठनों को सरकार द्वारा नियंत्रण और जांच के दायरे से भी गुजरना पड़ा। इस पर नियंत्रण एवं विदेशी फंड के दुरुपयोग के लिए सरकार ने 1976 ई में 'विदेशी योगदान नियमन कानून' को भी पारित किया। जिसके माध्यम से विदेशी सहायता प्राप्त करने वाले एनजीओ की गतिविधियों पर नजर रखी जा सके।[16] बाद के समय में पुनः गैर सरकारी संगठनों की भूमिका पर बल दिया जाना अनिवार्य हो गया। जिसमें इसके विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना गया।

1980 के दशक में सरकार द्वारा जारी स्वैच्छिक संगठनों के लिए फंड की देखरेख के लिए नए संस्थानों को स्थापित किया गया। जिसमें 1986 ई में काउंसिल फॉर एडवांसमेंट आफ पीपल्स एक्शन एंड रूरल टेक्नोलॉजी (कपार्ट) की स्थापना की गई।[17] कपार्ट एक स्वायत्त शासी निकाय है, जिनका पंजीकरण भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत किया गया है। इसका उद्देश्य देश में स्वैच्छिक आंदोलन को स्वीकृत बनाने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाने और नवीन ग्रामीण प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहित करने में सहायता करना है।[18] ग्रामीण विकास के लिए सरकार ने गैर सरकारी संस्थाओं को बड़ी मात्रा में फंड की सहायता देनी प्रारंभ की। जिसके माध्यम से महिलाओं और बच्चों के विकास, पेयजल की आपूर्ति, वयस्क साक्षरता दर को बढ़ाना, पर्यावरण के मुद्दों पर विकास किया जा सके।[19] विकास कार्यों में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका में तब जाकर और ज्यादा प्रभाव उभर कर आया जब भारत सरकार ने अपनी छठवीं पंचवर्षीय योजना (1980-1985) में इसको प्राथमिकता से स्थान दिया। 1994 ई में स्वैच्छिक संगठनों की विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया। जिसमें योजना आयोग के नेतृत्व में एक राष्ट्रीय सम्मेलन का

आयोजन किया गया जिसका उद्देश्य स्वैच्छिक क्षेत्र और सरकार के बीच सकारात्मक सहयोग बनाने के ऊपर था। 2005 में लागू 'सूचना के अधिकार अधिनियम' ने स्वैच्छिक संस्थाओं के महत्व को और भी ज्यादा प्रासंगिक बना दिया। जिसमें जनता की स्वैच्छिक भागीदारी को एक संवैधानिक आधार मिला। इसके साथ ही 17 मई 2007 को भारत सरकार ने स्वैच्छिक क्षेत्र के संबंध में एक राष्ट्रीय नीति का अनुमोदन किया जिसमें सरकार ने स्वैच्छिक संगठनों को अपना भागीदार मनाना शुरू किया।[20] स्वैच्छिक संगठनों संबंधित इस नीति के चार प्रमुख उद्देश्य हैं[21]-

1. स्वैच्छिक क्षेत्र के लिए सक्षम वातावरण का निर्माण करना जो उन्हें अधिक प्रभावशाली सुरक्षा और स्वायत्तता प्रदान करें।

2. स्वैच्छिक क्षेत्र को देश-विदेश से वित्तीय संसाधन जुटाना के लिए सक्षम बनाना।

3. ऐसे संचालन तंत्र को चिन्हित करना जिसके माध्यम से सरकार स्वैच्छिक संगठनों के साथ परस्पर विश्वास और सम्मान के आधार पर उतरदायित्व साझा कर सके।

4. स्वैच्छिक संगठनों को ऐसा पारदर्शी तंत्र अपने के लिए प्रोत्साहित करना जो सुशासन और प्रबंधन के लिए जवाब दे है।

अतः इसके साथ ही 2010 में विदेशी अभिदान (विनियम) कानून को और भी ज्यादा कठोर बनाया गया।[22]

1980 से 2000 के दौर को गैर सरकारी संस्थाओं के विकास में एक नई व्यवस्था को स्थापित करने का दौर माना गया। जिसमें इन संस्थाओं के ऊपर राज्य के नियंत्रण को सबसे ज्यादा प्राथमिकता दी गई।[23] हालांकि सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) तथा आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में सरकार ने खुले रूप से विकास क्षेत्र में एनजीओ की भूमिका को स्वागत किया।[24] इसके अंतर्गत सरकार ने 150-200 करोड़ रुपए का अनुदान भी जारी किया।[25]

1990-91 में भारत में लागू आर्थिक उदारीकरण की नीति ने गैर सरकारी संस्थाओं की महत्व को और भी ज्यादा प्रासंगिक बना दिया। इसमें सरकार ने विश्व बैंक और आईएमएफ की आर्थिक नीतियों की शर्तों पर अपनी सहमति जताई जिसमें संरचनात्मक समायोजन की नीति को लागू किया गया। इसका सबसे गहरा प्रभाव राज्य के कल्याणकारी नीतियों के ऊपर पड़ा। इस निर्णय के परिणाम स्वरुप गरीबी और बेरोजगारी काफी तेजी से उभर कर आयी क्योंकि सरकार ने अपने कल्याणकारी गतिविधियों जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, रोजगार व सामाजिक सुरक्षा से संबंधित खर्चों में कटौती करना शुरू कर दिया।[26] अतः इन क्षेत्रों में राज्य की भूमिकाओं की कमी को दूर करने में स्वैच्छिक संस्थाओं ने एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।[27] जिसने समाज की इन चुनौतियों को दूर करने में एनजीओ की व्यापक प्रासंगिकता उभर कर आई। अगर आज भारत के कुछ प्रमुख राज्यों में गैर सरकारी संस्थाओं की स्थिति का मूल्यांकन करें तो काफी सकारात्मक स्थिति उभर कर आती है। भारत में राज्यवार स्वैच्छिक संगठनों की संख्या निम्न अनुसार है[28]-

- महाराष्ट्र 4.8 लाख
- आंध्र प्रदेश 4.6 लाख
- उत्तर प्रदेश 4.3 लाख
- केरल 3.3 लाख
- कर्नाटक 1.9 लाख
- गुजरात 1.7 लाख
- तमिलनाडु 1.4 लाख
- उड़ीसा 1.3 लाख
- राजस्थान 1 लाख

अतः यह आंकड़े यह प्रतिबिंबित करते हैं कि भारत के मात्र 10 राज्यों में ही 80% से अधिक गैर सरकारी संस्थाओं का पंजीकरण हुआ है। इसके साथ ही साथ वर्ष 1991 में गठित वेंकट रमैया फाउंडेशन वर्तमान में महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में सक्रिय है और भारत से बाल श्रम उन्मूलन के लिए प्रसिद्ध है।[29] आज पर्यावरण शिक्षा और संरक्षण में योगदान कर रहे प्रमुख स्वैच्छिक संगठनों में सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट, गांधी शांति प्रतिष्ठान, मुंबई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी आदि प्रमुख है।[30]

सारांश

भारत में गैर सरकारी संस्थाओं की जड़े काफी पुरानी है। जिसके माध्यम से यह संस्थाएं पर्यावरण, स्वास्थ्य, शिक्षा, शांति, मानव अधिकार, उपभोक्ता अधिकार, महिलाओं के अधिकार संबंधित क्षेत्र में काफी गंभीरता से अपनी भूमिकाओं का निर्वहन कर रही है। इसके साथ ही यह सभी संस्थाएं भारत में लोगों के जीवन स्तर में सुधार हेतु विभिन्न परियोजनाओं पर कार्य कर रहे हैं। आज भारत विश्व के सबसे बड़ी आबादी वाली देश की श्रेणी में शामिल है। इतनी बड़ी आबादी की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना यहां की सरकार के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है। ऐसे में गैर सरकारी संस्थाओं का महत्व अनिवार्य रूप से उभर कर आता है, जिसमें यह सरकार के साथ-साथ परस्पर सहयोग के माध्यम से राज्य की विकास संबंधी नीतियों को आम जनता तक पहुंचने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

अतः भारत में स्वैच्छिक सहचार्यों का काफी पुराना इतिहास है जिसका विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ ही होता हुआ आ रहा है। यहां स्वैच्छिक क्रियाओं की नीव सभी धर्म के मूल्य, सिद्धांतों और मान्यताओं के साथ ही विकसित हुई है। जिसका भारतीय समाज में काफी गहरा प्रभाव है। ब्रिटिश भारत के दौरान उभर कर आए सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों ने स्वैच्छिक क्रियाओं को काफी गहराई से मजबूत किया। जिसके साथ ही ब्रिटिश शासन के दौरान बने कुछ कानूनों ने इसको संस्थात्मक स्वरूप देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के संविधान के मौलिक अधिकार में स्वैच्छिक क्रियाओं को प्राथमिकता के साथ स्थान दिया गया है। सरकारों ने भी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु गैर सरकारी संस्थाओं के महत्व को एक कानूनी स्वरूप

देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रारंभ से ही सरकारें गैर सरकारी संस्थाओं को विकास का एक अभिन्न हिस्सा मान कर आ रही है।

गैर सरकारी संस्थाओं के प्रासंगिकता इसलिए और भी बढ़ जाती है क्योंकि यह अपने कार्यक्रमों में जनता को प्रत्यक्ष रूप से सहभागी बनते हैं। भारत एक लोकतांत्रिक देश है और लोकतंत्र में जनता की जितनी ज्यादा भागीदारी होती है उतना ही सार्थक है। इसके साथ ही विकास के सभी पहलुओं पर जनता की भागीदारी का होना राज्य एवं समाज दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। अतः जनता की भागीदारी के संबंध में गैर सरकारी संस्थाओं का महत्व सबसे प्रासंगिक है। आज हम किसी भी क्षेत्र का मूल्यांकन करें चाहे वह ग्रामीण विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण, रोजगार, आपदा नियंत्रण इत्यादि सभी क्षेत्रों में गैर सरकारी संस्थाओं की अनिवार्य प्रासंगिकता उभर कर आती है। अतः 21वीं सदी में गैर सरकारी संस्थाएं लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में अपने आप को स्थापित किए हैं।

संदर्भ सूची

1. जैतु, हर्ष, भारत में स्वैच्छिक संगठनों का भविष्य, योजना, नवंबर 2011, पृष्ट 09
2. Tandon, Rajesh, Voluntary Action, Civil Society and the State, Mosaic Books, New Delhi, page 01
3. Ibid 02
4. Mukhopadhyay K.K, Voluntarism and Volunteers in welfare and Development, the Indian Journal of Social Work, Vol-56, No-01.
5. Sundaram I. S, Voluntary agencies and rural development, New Delhi, B.R. Publishing Corporation, 1996. Page 254.
6. बंधोपाध्याय, शेखर, पलासी से विभाजन तक, आधुनिक भारत का इतिहास, (अनु नरेश नदीम), ऑरियंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली, 2006, पृ 140
7. वही, पृ 142
8. वही, पृ 142
9. वही, पृ 152
10. वही, पृ 254
11. वही, पृ 246
12. वही, पृ 290
13. कश्यप, डॉ सुभाष, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1996 पृ 47
14. वही, पृ 47
15. सिन्हा, मृदुला, लोकतंत्र का पाँचवा स्तम्भ: स्वैच्छिक क्षेत्र, योजना, नवंबर 2011, पृ 17
16. पंत, कविता, क्या एनजीओ अपना दायित्व निभा रही है, योजना, नवंबर 2011, पृ19

17. Tandon, Rajesh, Voluntary Action, Civil Society and the State, Mosaic Books, New Delhi, page 11
18. एन चटर्जी मो असरफ डार, कपार्ट, गैर सरकारी संगठन और ग्राम विकास, योजना नवंबर 2011, पृ 21
19. Tandon, Rajesh, Voluntary Action, Civil Society and the State, Mosaic Books, New Delhi, page 11
20. हर्ष जैतू, भारत में स्वैच्छिक संगठनों का भविष्य, योजना नवंबर 2011, पृ 10
21. वही पृ 10
22. वही पृ 11
23. Kilby, Patrick, NGOs in India, the challenges of women's empowerment and accountability, Routledge, New Delhi, 2011 page 15.
24. B.S. Baviskar, Ngos and Civil Society in India, Sociological Bulletin, March, 2001 Vol-50 page 08.
25. Ibid page 08
26. R. Srinivasan, Emerging trends in NGOs sector- A study of Tamil Nadu, IJPS, April- June, 2005, Vol-66, page 278
27. Ibid 272
28. जोमोन, मैथ्यू व जोंबी वरगीज, भारत में गैर सरकारी संगठनों पर विहंगम दृष्टि, योजना नवंबर 2011, पृ 32
29. वही पृ 33
30. वही, पृ 33

अध्याय-25

विश्वव्यापी मंच पर भारत की उभरती हुई विदेश नीति: जी-20 की अध्यक्षता के संदर्भ में

नावेद जमाल
आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,
जामिया मिलिया इस्लामिया,
नई दिल्ली

विदेश नीति निरंतरता और परिवर्तन का विषय है। समय के साथ जैसे-जैसे भू-राजनीतिक, अर्थव्यवस्था की स्थिति और अन्य परिवर्तन होते हैं, विदेश नीति भी बदल जाती है। लेकिन एक राष्ट्र को अपनी विदेश नीतियों में भी निरंतरता रखनी होती है।

भारतीय विदेश नीति में निरंतरता और परिवर्तन के बीच, हम पिछले कुछ वर्षों में भारत की विदेश नीति की उभरती गतिशीलता को देख सकते हैं। वैश्विक मामलों में सक्रिय जुड़ाव और फास्ट ट्रैक कूटनीति के साथ विभिन्न नए और साहसिक फैसले देख सकते हैं।[31] शीत युद्ध के बाद के कुशल जुड़ाव जिसमें पी.वी. नरसिम्हा राव, अटल बिहारी वाजपेयी और मनमोहन सिंह के दौरान कि विदेश नीति में सक्रियता साथ ही 2014-2019 जिसमें प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने बहुत ही गतिशील, सक्रिय और फास्ट ट्रैक कूटनीति परिचय दिया है।[32] जिसके फलस्वरुप 2022 से भारत जी-20 की अध्यक्षता करेगा l प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा है कि “भारत की जी-20 प्रेसीडेंसी एकता की इस सार्वभौमिक भावना को बढ़ावा देने के लिए काम करेगी। इसलिए विषय है - 'एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य”[33] है।

भारत के लिए जी-20 की अध्यक्षता "अमृतकाल" यानि 15 अगस्त, 2022 को देश की स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ से शुरू होने वाली 25 साल की अवधि की शुरुआत का भी प्रतीक है जो कि देश की स्वतंत्रता की शताब्दी की ओर अग्रेसित है जहां एक भविष्य के लिए तैयार समृद्ध, समावेशी और विकसित समाज होगा जिसकी विशेषता उसके मूल में मानव-केंद्रित दृष्टिकोण का होना है। भारत के जी-20 अध्यक्षता का विषय - "वसुधैव कुटुम्बकम" यानि "एक पृथ्वी, एक परिवार, एक भविष्य" - महा उपनिषद के प्राचीन संस्कृत पाठ से लिया गया है। वास्तव में यह विषय सभी तरह के जीवन - मानव, पशु, पौधे और सूक्ष्मजीव के मूल्य को व पृथ्वी और व्यापक ब्रह्मांड में उनकी परस्पर संबद्धता को स्वीकार करता है। यह विषय व्यक्तिगत जीवन शैली के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास दोनों के स्तर पर जीवन (पर्यावरण के लिए जीवन शैली) के लिए सहयोगी, पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ और जिम्मेदार विकल्पों को

---

[31] कथुरिया, आर. एण्ड कुकरेजा, पी. (2019) “इन्ट्रोडक्शन”, इन रजत कथुरिया एण्ड प्रतीक

[32] इंडिया जी-20 प्रेज़िडन्सी एण्ड ईमर्जन्स ऑफ न्यू वर्ल्ड ऑर्डर, 10 मार्च 2023, Read more at:https://economictimes.indiatimes.com/news/india/indias-G 20-presidency-and-emerg ence-of-new-world-order/articleshow/98408183.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaig n=cppst

[33] जी-20 का अवलोकन, https://moes.g ov.in/g 20-india-2023/moes-g 20?lang uag e_content_entity=en

 ISSN: 2321-0443

भी सामने रखता है। जिससे विश्व स्तर पर बदलाव लाने वाले कार्य संपन्न होते हैं जिसके परिणामस्वरूप एक स्वच्छ और पर्यावरण अनुकूल प्राप्त होने कि आशा की जा सकती है।[34]

जी-20 समहू एंव इसका इतिहास

"इक्कीसवीं सदी में विश्व आर्थिक सहयोग के प्राथमिक मंच के रूप में जी-20 का उद्भव वैश्विक शासन में सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। यह विश्व व्यवस्था में चल रहे परिवर्तन के साथ-साथ वैश्विक समस्याओं के वैश्विक समाधान खोजने की मान्यता से जुड़ा है।"[35] जी-20 एक अंतर सरकारी मंच है जिसमें 19 देश और यूरोपीय संघ (ईयू) शामिल हैं। यह वैश्विक अर्थव्यवस्था से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा करता है: विकास, व्यापर, वित्त, विकास, सुरक्षा और प्रवासन आदि।[36] इसके अतिरिक्त जी-20 समकालीन मुद्दों को भी संबोधित करता है जैसे: ऊर्जा, रोजगार और मानव संसाधन विकास, स्वास्थ्य देखभाल, विकास सहायता डिजिटलीकरण, महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण, खाद्य सुरक्षा, भ्रष्टाचार विरोधी उपाय आदि।

जी-20 समूह (आम बोलचाल में जी-20) का गठन 1999 में एशियाई वित्तीय संकट के बाद वित्त मंत्रियों और 19 देशों के केंद्रीय बैंक के गवर्नरों और यूरोपीय संघ के बीच बातचीत के लिए एक मंच के रूप में किया गया था। हालांकि विभिन्न देशों नेताओं के स्तर पर ऐसी बैठकें 1970 के दशक में प्रारंभ हुई। शुरुआत में, पाँच औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं- फ्रांस, जर्मनी, जापान, यूनाइटेड किंगडम (यूके) और संयुक्त राज्य अमेरिका (यूएस) के एक छोटे समूह तक सीमित थीं और उन विषयों पर जो उनके लिए तत्काल प्रासंगिक थे। इस प्रकार 1973 और 1979 के तेल की कीमतों में झटके और निश्चित विनिमय दरों की ब्रेटन वुड्स प्रणाली का पतन शुरुआती मुद्दे थे।[37] 1980 के दशक के मध्य में कनाडा और इटली को शामिल करने के लिए यह समूह, जिसे ग्रुप ऑफ़ फाइव या जी-5 कहा जाता है वह जी-7 में बदल गया। 1998 में रूस भी इसमें शामिल हो गया जिसने जी-8 का निर्माण किया। जी-7 व्यापक आर्थिक नीतियों की समीक्षा में विनिमय दर, भुगतान संतुलन, वैश्वीकरण, व्यापार और विकासशील देशों के साथ आर्थिक संबंध शामिल हैं। समय के साथ व्यापक आर्थिक नीति समन्वय पर जी-7 और बाद में जी-8 का ध्यान पर्यावरण, अपराध, ड्रग्स, एड्स और आतंकवाद जैसे अन्य वैश्विक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को शामिल करने के लिए विस्तारित हुआ।[38] जैसे-जैसे विकास की गति एशिया और उभरते बाजारों की ओर बढ़ी, आर्थिक और राजनीतिक शक्ति में वैश्विक बदलाव को दर्शाने के लिए एक नये समावेशी मंच तैयार करना आवश्यक हो गया। जी-20 में स्वाभाविक रूप से देशों का एक बड़ा समूह शामिल है जो जी 7 या जी 8 की तुलना में वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद

[34] जी-20 और भारत की अध्यक्षता, विदेश मंत्रालय, प्रेस इंफरोंमेशन ब्युरो, https://pib.g ov.in/PressReleaseIframePaजी e.aspx?PRID=1882356

[35] जॉकेल, जुहा. (2011) "द हिस्ट्री ऑफ द जी-20" अ पथवाय टू ईफेक्टिव मल्टी लटेरलिस्म, यूरोपियन यूनियन इंस्टिट्यूट फॉर सिक्युरिटी स्टडीस, http://www.jstor.com/stable/resrep07003.5

[36] तुर्की जी-20 2015, http://g 20.org .tr/resources/जी lossary/index.html

[37] कुमार, योगेंदर. (अक्टूबर-दिसम्बर, 2012). इंडिया एण्ड जी-20. इंडियन फॉरेन अफेयर्स जर्नल. 406-422.https://www.jstor.orजी /stable/45341848

[38] नेल्सन, आर. एम. "द जी-20 एण्ड इंटरनेशनल इकनॉमिक क्वॉपरैशन: बैकग्राउंड एण्ड इम्प्लीकैशन". वाशिंगटन, डीसी: कन्ग्रेशनल रिसर्च सर्विस; https://fas.orजी /sजी p/crs/row/R40977.pdf

और वैश्विक जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा है। समय के साथ जी-20 मानव समृद्धि और भलाई का समर्थन करने के लिए अल्पकालिक और साथ ही दीर्घकालिक समाधानों को बढ़ावा देकर वैश्विक अर्थव्यवस्था के सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान करने के लिए एक प्रमुख नेताओं के नेतृत्व वाले मंच के रूप में उभरा है। भारत जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए जी-20 ने एक वैश्विक आर्थिक संरचना का समर्थन करने वाली एक अद्वितीय वैश्विक संस्था के रूप में कार्य किया है जो समान परिणाम प्राप्त करना चाहता है। विकसित और विकासशील दोनों समूहों का प्रतिनिधित्व यह सुनिश्चित करता है कि जी-20 उत्तरार्द्ध के लिए अपने आर्थिक, राजनीतिक और वैश्विक नेतृत्व को पूर्व के समान प्रदर्शित करने के लिए एक उचित मंच प्रदान करता है। जी-20 सदस्यों में दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ शामिल हैं – **विकसित देश :- जी-7:** कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, यूनाइटेड किंगडम, संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय संघ।

विकासशील देश: लैटिन अमेरिका:- अर्जेंटीना, ब्राजील, मैक्सिको। **अफ्रीका:**- दक्षिण अफ्रीका, **पश्चिम एशिया:** सऊदी अरब, तुर्की, एशिया: चीन, भारत, इंडोनेशिया, दक्षिण कोरिया, ऑस्ट्रेलिया।

जी-20 सदस्यों को पांच समूहों में बांटा गया है। जी-20 के सभी देश अपनी बारी आने पर अध्यक्षीय पद संभालने के योग्य होते हैं। जब अध्यक्ष का पद संभालने के लिए उनकी की बारी आती है, तो समूह के भीतर के देश अध्यक्ष का चयन करने के लिए आपस में बातचीत करते हैं: निरंतरता बनाए रखने के लिए, प्रत्येक अध्यक्ष को एक "ट्रोइका"- वर्तमान अध्यक्ष, पूर्व अध्यक्ष और अगले अध्यक्ष द्वारा समर्थित किया जाता है। जी-20 की तैयारी मेजबान देश के 'अधिकारियों की अध्यक्षता'[39] में विषय विशेषज्ञों से बने "कार्य समूहों" द्वारा की जाती है जिसमें व्यापार और निवेश, स्वास्थ्य, विकास, कृषि, ऊर्जा, डिजिटल अर्थव्यवस्था, भ्रष्टाचार-विरोधी, संस्कृति आदि मुद्दों को प्राथमिकता दी गई है। अधिकांश देश विविध हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले एक समूह हैं।[40]

जी-20 शिखर सम्मेलन

2007-08 के वैश्विक वित्तीय संकट ने जी-20 बैठकों को शिखर स्तर तक बढ़ा दिया। पहला शिखर सम्मेलन 2008 में वाशिंगटन डीसी में हुआ, इसके बाद 2009 में दो शिखर सम्मेलन (लंदन और पिट्सबर्ग) और 2010 में दो शिखर सम्मेलन (टोरंटो और सियोल) हुए। 2011 के बाद से, शिखर सम्मेलन सालाना आयोजित किए जाने लगे हैं।

शिखर सम्मेलनों के अलावा, जी-20 सदस्यों के अन्य मंत्रियों की बैठकें समय-समय पर होती हैं: कृषि मंत्री (2011 और 2012); विदेश मंत्री (2012 और 2013); व्यापार मंत्री 2012 और 2014, साथ ही 2010 से रोजगार मंत्रियों की वार्षिक बैठकें; पर्यटन मंत्रियों की बैठक 2012 में हुई थी।

आमंत्रित सदस्य: उपरोक्त सदस्यों के अलावा, जी-20 शिखर सम्मेलन में कुछ स्थायी आमंत्रित सदस्य शामिल हैं- स्पेन, आसियान के अध्यक्ष, दो अफ्रीकी देश (एयू के अध्यक्ष और एनईपीएडी के प्रतिनिधि), संयुक्त राष्ट्र,

---

[39] राजनीतिक विज्ञान की मूलभूत शब्दावल(2015), वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा मिंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार

[40] जी-20 लीडरस स्टैट्मन्ट: द पिट्सबर्ग समिट, http://www.जी 20.utoronto.ca/2009/2009communique0925.html

आईएमएफ, WHO (विश्व व्यापार संगठन), ओईसीडी। राष्ट्रपति अन्य देशों और संस्थानों को उनके द्वारा आयोजित जी-20 शिखर सम्मेलन में भी आमंत्रित करते हैं।[41]

पिछले शिखर सम्मेलनों द्वारा संबोधित मुद्दे

2016: चीन: सतत विकास लक्ष्य (एसडीजी) एजेंडा, 2030 के प्रति प्रतिबद्धता की पुष्टि की, इस पर ध्यान केंद्रित करते हुए: मजबूत, टिकाऊ और संतुलित विकास, पृथ्वी को बचाना, कम आय वाले और विकासशील देशों के साथ सहयोग को बढ़ावा देना।

2017: जर्मनी: प्रवासन, डिजिटलीकरण, महिला सशक्तिकरण।

2018: अर्जेंटीना: सेवायें, बुनियादी ढांचा, खाद्य सुरक्षा।

2019: जापान: इनोवेशन, ब्लू इकोनॉमी, डिजिटलीकरण।

2020: सऊदी अरब: लोगों को सशक्त बनाना।

2021: इटली: आर्थिक सुधार, ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु, वित्त, टीकों तक पहुंच।

2022: इंडोनेशिया: वैश्विक स्वास्थ्य वास्तुकला, डिजिटल परिवर्तन और टिकाऊ विकास पर ध्यान केंद्रित।

भारत 1 दिसंबर, 2022 से 30 नवंबर 2023 तक जी-20 की अध्यक्षता कर रहा है। इस साल नई दिल्ली में होने वाले आखिरी शिखर सम्मेलन में प्रतिनिधिमंडलों के 43 प्रमुखों ने सहभागिता की, जो कि जी-20 में अब तक की सबसे ज्यादा संख्या है। भारत की अध्यक्षता इंडोनेशिया और ब्राजील, ट्रोइका में है, जो वैश्विक दक्षिण के अन्य दो देश हैं। वैश्विक दक्षिण से लगातार तीन प्रेसीडेंसी के साथ भारत के पास वैश्विक दक्षिण के विकास को बाधित करने वाली चिंताओं को दूर करने का एक अनूठा मौका है। जैसा कि विदेश मंत्री एस जयशंकर ने कहा, "भारत के राजनयिक इतिहास में हमारे पास इतने शक्तिशाली राष्ट्र कभी नहीं रहे, दुनिया की शीर्ष 20 अर्थव्यवस्थाएं और उनके नेता भारत आए।[42] अतः भारत ने बदलते परिदृश्य में जी-20 की अपनी प्राथमिकताओं को काफी गंभीरता से परिभाषित किया है जिसको हम निम्न पहलुओं पर मूल्यांकन कर सकते हैं। जिसमें हरित विकास, जलवायु परिवर्तन एवं जलवायु वित्त का मुद्दा जो मानव जीवन के साथ जुड़ा है, प्रमुख है। इसके साथ ही साथ समावेशी और त्वरित व लचीला विकास, स्थाई विकास लक्ष्य, तकनीकी बदलाव और डिजिटल सार्वजनिक आधारभूत संरचना, बहुपक्षीय

[41] मिनिस्ट्री ऑफ एक्स्टर्नल अफेयर्स, गर्वमेंट ऑफ इंडिया , https://www.g 20.or g /en/g 20-india-2023/log o-theme/

[42] कथुरिया एण्ड प्रतीक कुकरेजा(ईडीएस) 20 एयर्स ऑफ जी-20: फर्म ग्लोबल क्वॉपरैशन टू बिल्डिंग कन्सेन्सस. :https://economictimes.indiatimes.com/news/india/indias-g 20-presidency-and-emerजी ence-of-new-world-order/articleshow/98408183.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaiजी n=cppst

संस्थानों व महिलाओं के नेतृत्व के विकास को अपनी प्राथमिकताओं के केंद्र में रखा है। इन सभी लक्ष्यों को जी-20 के संदर्भ में गंभीरता से मूल्यांकन कर सकते हैं।

एक वैश्विक महामारी के रूप में उभरकर आई कोविड-19 ने मानव जीवन की सुरक्षा को लेकर सबसे ज्यादा चिंतित किया है। जिसने सभी देशों के तंत्रों को सुधार करने के लिए पुनः सोचने पर मजबूर किया है। भारत को भी कोविड-19 की चुनौतियों ने काफी प्रभावित किया। वैश्विक पटल पर जी-20 की अध्यक्षता का नेतृत्व भारत के लिए एक अवसर लेकर आया है। जिसके माध्यम से वह मानव जीवन के समक्ष आने वाली चुनौतियों से निपटने में तथा अपनी कमजोरियों को दूर करने में सभी सदस्य मिलकर एक स्थाई हल निकालने का प्रयास कर सके। इस अधिवेशन के माध्यम से वैश्विक मंच पर जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियों का हल निकाला जा सकता है।

आज जलवायु परिवर्तन और विकास, सभी देशों के लिए एक प्रमुख विमर्श का विषय बना हुआ है जिसका स्थाई समाधान निकालना एक प्रमुख चुनौती है। अतः जी-20 का यह मंच भारत के लिए एक अवसर लेकर आया है जहां वह अपने समृद्ध प्राचीन विरासत और इसके ज्ञान को इस चुनौती का हल निकालने में दुनिया के समक्ष मजबूती के साथ रख सकता है। जिसमें भारत दुनिया के सामने "लाइफ" (लाइफ स्टाइल फॉर एनवायरमेंट) को एक जन आंदोलन के माध्यम से एक विकल्प के रूप में इसकी शुरुआत कर सकता है। जिसमें भारत का प्राचीन ज्ञान परंपरा एवं रहन-सहन, जोकि वर्षों से पर्यावरण के अनुकूल रही है इसको वैश्विक मंच पर एक विकल्प के रूप में मजबूती से रख सकता है। साथ ही साथ बाजार को पर्यावरण के प्रति जागरूक करने में प्रेरित कर सकता है।[43] जी-20 के सम्मेलन में भारत की प्रमुख प्राथमिकताओं में सतत विकास के लिए एक लचीला और समावेशी विकास प्रमुख है। वैश्विक व्यापार में सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम को शामिल करने पर भारत सबसे ज्यादा जोर दे रहा है। जिसके माध्यम से व्यापार की भावना में बदलाव, श्रम अधिकारों को बढ़ावा देना तथा श्रम कल्याण को सुरक्षित कर वैश्विक स्तर पर समावेशी कृषि को मजबूत किया जा सके। इसके साथ ही जी-20 की अध्यक्षता भारत के लिए कई नए अवसरों को भी लेकर सामने आया है जिसमें 2030 एजेंडा प्रमुख है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सतत विकास के लिए 2030 एजेंडा में निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करना भारत की प्राथमिकता है। जिसमें इस अवसर के माध्यम से भारत तकनीकी बदलाव और डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर की दिशा में अपने प्रद्योगिकी को मजबूत करने पर भी बल देगा। जिसके माध्यम से कृषि, स्वास्थ्य, रोजगार व शिक्षा से लेकर प्रत्येक क्षेत्रों में इस को मजबूत कर सके।

[43] इंडिया जी-20 प्रेज़िडन्सी एण्ड ईमर्जन्स ऑफ न्यू वर्ल्ड ऑर्डर, 10 मार्च 2023, Read more at:https://economictimes.indiatimes.com/news/india/indias-g 20-presidency-and-emerजी ence-of-new-world-order/articleshow/98408183.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaiजी n=cppst

अंततः भारत इस सम्मेलन के माध्यम से 21वीं सदी में आने वाली नई-नई चुनौतियों का समाधान करने हेतु एक समावेशी और न्याय संगत प्रणाली को मजबूत करने पर भी जोर दे रहा है। जिसमें महिला सशक्तिकरण और उनके प्रतिनिधित्व[44] को समावेशी विकास के साथ समायोजित किया जा सके।[45]

भारत ने सांस्कृतिक पहलों की एक श्रृंखला के साथ अपनी अध्यक्षता कार्यकाल के एजेंडे को शुरू किया, जिसमें जनभागीदारी की विभिन्न गतिविधियां, देश भर के 75 शैक्षणिक संस्थानों के साथ एक विशेष यूनिवर्सिटी कनेक्ट कार्यक्रम, जी-20 लोगो और रंगों के साथ एएसआई के 100 स्मारकों को रोशन करना और नागालैंड में हॉर्नबिल उत्सव में जी-20 का प्रदर्शन शामिल है। रेत पर कलाकृति बनाने वाले श्री सुदर्शन पटनायक ने ओडिशा के पुरी समुद्र तट पर रेत से भारत के जी-20 लोगो की कलाकृति भी बनाई। साल भर में कई अन्य कार्यक्रमों, युवाओं की गतिविधियों, सांस्कृतिक प्रदर्शनों और संबंधित शहर-आयोजन स्थलों की जगहों और परंपराओं को प्रदर्शित करने वाली सैर की भी योजना बनाई गई है।

जी-20 में भारत की अध्यक्षता निर्धारित लक्ष्यों के लिए अद्वितीय मौलिक संदर्भ है। बुनियादी तत्व अच्छे अर्थशास्त्र और दर्शन में निहित हैं जो भारत की जी-20 से जुड़ा है। आरबीआई गवर्नर ने कहा, "ऐसी राय व्यक्त की गई थी कि प्रतिबंध या निषेधाज्ञा के विकल्प पर भी विचार किया जाना चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जी-20 शिखर सम्मेलन 2023 भारत के नेतृत्व वाले छद्म नियमों के आसपास वैश्विक सहमति बनाने का एक बड़ा अवसर प्रदान करता है। मार्च 2020 में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऐतिहासिक निर्णय के बाद से भारत में क्रिप्टो नियम एक ग्रे क्षेत्र में हैं और भारत में डिजिटल संपत्ति के लिए नीतियों का एक स्पष्ट सेट होने की तत्काल आवश्यकता है।"[46] भारतीय जी-20 अध्यक्षता का उद्देश्य क्रिप्टो करेंसी परिसंपत्तियों पर अपनी चर्चा को व्यापक बनाना है और व्यापक आर्थिक प्रभाव और अर्थव्यवस्था में व्यापक क्रिप्टो अपनाने का इरादा रखता है।[47] साथ ही दक्षिण एशिया में भारत एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अभिकर्ता के रूप में उभर रह है।

मोदी सरकार की पहल जिसमें दक्षिण एशिया में भारत ने अपने निकटवर्ती पड़ोसियों को महत्व देने और भरोसा बढ़ाने के लिए प्रयास किया है जो कि एक सराहनीय कदम माना गया है। भारत की एक्ट ईस्ट पालिसी के नवाचार के माध्यम से अपने आर्थिक और सुरक्षा सहित कई हितों को एक साथ साधने की कोशिश कर रहा है। भारतीय उत्तर-पूर्व विकास के अलावा सुरक्षा-सहयोग के लिए भी भारत को पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एसियाई देशों के सहयोग के आवश्यकता है। एक और उल्लेखनीय कदम विदेश नीति में जो इस सरकार में लिए गया है वह है भारतीय

---

[44] राजनीतिक विज्ञान की मूलभूत शब्दावल(2015), वैज्ञातनक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा मिंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार

[45] भारत की जी-20 अध्यक्षता: एक सारांश chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcजी lclefindmkaj/https://www.जी 20.in/content/dam/g twenty/Indias_g 20_Presidency-A_Synopsis.pdf

[46] क्रीपटों एट जी-20 समिट: व्हाट नेक्स्ट फॉर क्रीपटों करंसी अमिड कलस फॉर बैन (27 फ़रवरी 2023) https://www.livemint.com/market/cryptocurrency/crypto-at-जी 20-summit-what-s-next-for-cryptocurrency-amid-calls-for-ban-11677481178730.html

[47] वही

डायस्पोरा के साथ सम्बन्ध गहरा करने का सक्रिय और वृहद् प्रयास। इस माध्यम से विदेश नीति निर्माताओं को दोहरा लाभ मिला है - पहला डायस्पोरा द्वारा देश के विकास और निवेश में भूमिका और दूसरा भारत और उसके पड़ोस के देशो के बीच में उनकी जन-राजनयिक की भूमिका से द्विपक्षीय संबंधों में प्रगाढ़ता मजबूत करने को लेकर है।[48] भारत की जी-20 अध्यक्षता से जो प्रमुख विचार उभरा है, वह "वैश्विक दक्षिण की आवाज" होने का दावा है। इसने ब्रिक्स में अपना समकालीन अवतार प्राप्त किया। भारतीय प्रवक्ताओं ने स्पष्ट किया है कि भारत की उत्तर-विरोधी आंदोलन का नेतृत्व करने की कोई इच्छा नहीं है, लेकिन वह अपनी भूमिका को पश्चिमी शक्तियों के साथ मिलकर काम करने के रूप में देखता है, जबकि भारत की "महान शक्ति" के रूप में मान्यता प्राप्त करने की आकांक्षाओं के बीच ग्लोबल साउथ के हितों का समर्थन करता है। “भारत की अध्यक्षता ने जी-20 को एक नई गतिशीलता प्रदान की और विकासशील देशों और विकसित अर्थव्यवस्थाओं के बीच कई मुद्दों पर आम सहमति बनाई। भारत बहुपक्षवाद को फिर से केंद्र में लाया और वैश्विक दक्षिण की आवाज को प्रदान कि है। भारत भविष्य में भी जी-20 में पूरी तरह शामिल रहेगा।”[49]

जी-20 के संदर्भ में प्रासंगिक शब्दावाली

वैश्वीकरण - जी lobalization

परिसंघ - confederation

शिखर सम्मेलन – summit conference

बहुपक्षीय संधि – multilateral treaty

राज्याध्यक्ष/ राष्ट्रअध्यक्ष – head of the state

प्राधान्य/ आधिपत्य – heजी emony

उच्चायुक्त- hiजी h commissioner

भू-राजनीतिक – जी eopolitics

महा-शक्ति- Superpower

व्यापार और निवेश- Trade and investment

[48] कथुरिया एण्ड प्रतीक कुकरेजा(ईडीएस) 20 एयर्स ऑफ जी-20: फर्म ग्लोबल क्वॉपरैशन टू बिल्डिंग कन्सेन्सस. :https://economictimes.indiatimes.com/news/india/indias-g 20-presidency-and-emerजी ence-of-new-world-order/articleshow/98408183.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst

[49] भारत की जी-20 अध्यक्षता: एक सारांश chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcg lclefindmkaj/https://www.g 20.in/content/dam/g twenty/Indias_g 20_Presidency-A_Synopsis.pdf

भू-राजनीतिक- जी eo-Politics

वैश्विक अर्थव्यवस्था- जी lobal economy

सतत विकास- Sustainable development

शासन- जी overnance

विश्व-व्यवस्था- World Order

विदेश नीति- Foreiजी n Policy

अध्यक्षता करना- Preside

प्रतिनिधित्व- Representation

जलवायु परिवर्तन- Climate-Chanजी e

वैश्विक वित्त- जी lobal-Finance[50]

संदर्भ सूची

1. कथुरिया, आर. एण्ड कुकरेजा, पी. (2019) “इन्ट्रोडक्शन”, इन रजत कथुरिया एण्ड प्रतीक
2. जॉकेल, जुहा. (2011) “द हिस्ट्री ऑफ द जी-20” अ पथवाय टू ईफेक्टिव मल्टी लटेरलिस्म, यूरोपियन यूनियन इंस्टिट्यूट फॉर सिक्युरिटी स्टडीस, http://www.jstor.com/stable/resrep07003.5
3. कुमार, योगेंदर. (अक्टूबर-दिसम्बर, 2012). इंडिया एण्ड जी-20. इंडियन फॉरेन अफेयर्स जर्नल. 406-422.https://www.jstor.or g /stable/45341848
4. इंडिया जी-20 प्रेज़िडन्सी एण्ड ईमर्जन्स ऑफ न्यू वर्ल्ड ऑर्डर, 10 मार्च 2023, Read more at:https://economictimes.indiatimes.com/news/india/indias-g 20-presidency-and-emerजी ence-of-new-world-order/articleshow/98408183.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst
5. लॉगों एण्ड थीम, मिनिस्ट्री ऑफ एक्स्टर्नल अफेयर्स, गर्वर्मेंट ऑफ इंडिया , https://www.जी 20.orजी /en/g 20-india-2023/log o-theme/
6. जी-20 और भारत की अध्यक्षता, विदेश मंत्रालय, प्रेस इंफरोंमेशन ब्युरो, https://pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1882356

[50] राजनीतिक विज्ञान की मूलभूत शब्दावल(2015), वैज्ञातनक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा मिंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार

7. तुर्की जी-20 2015, http://g 20.or g.tr/resources/g lossary/index.html
8. नेल्सन, आर. एम. "द जी-20 एण्ड इंटरनेशनल इकनॉमिक क्वॉपरैशन: बैकग्राउंड एण्ड इम्प्लीकैशन". वाशिंगटन, डीसी: कन्ग्रेशनल रिसर्च सर्विस; https://fas.org /sg p/crs/row/R40977.pdf
9. राजनीतिक विज्ञान की मूलभूत शब्दावल (2015), वैज्ञातनक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग शिक्षा मिंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
10. जी-20 लीडरस स्टैट्मन्ट: द पिट्सबर्ग समिट, http://www.g 20.utoronto.ca/2009/2009communique0925.html
11. मिनिस्ट्री ऑफ एक्स्टर्नल अफेयर्स, गर्वमेंट ऑफ इंडिया , https://www.g20.or g /en/g 20-india-2023/logo-theme/
12. कथुरिया एण्ड प्रतीक कुकरेजा(ईडीएस) 20 एयर्स ऑफ जी-20: फर्म ग्लोबल क्वॉपरैशन टू बिल्डिंग कन्सेन्सस. :https://economictimes.indiatimes.com/news/india/indias-g 20-presidency-and-emergence-of-new-world-order/articleshow/98408183.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst
13. इंडिया जी-20 प्रेज़िडन्सी एण्ड ईमर्जन्स ऑफ न्यू वर्ल्ड ऑर्डर, 10 मार्च 2023, Read more at:https://economictimes.indiatimes.com/news/india/indiasg20-presidency-and-emergence-of-new-world-order/articleshow/98408183.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst
14. गोयल, टी.एम. एण्ड कुकरेजा, पी. (2020) "द सस्टैनबल डेवलपमेंट एजेन्ड: एवलुआटींग द जी-20 आस अ स्टेज फॉर नैशनल एण्ड कलेक्टिव गोल्स", ओ आर एफ इशू न. 419, अब्ज़र्वर रिसर्च फाउंडेशन, न्यू दिल्ली, इंडिया.https://www.orfonline.org /research/the-sustainable-development-agenda/.
15. भारत की जी-20 अध्यक्षता: एक सारांश chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://www.g20.in/content/dam/जी twenty/Indias_जी 20_Presidency-A_Synopsis.pdf
16. क्रीपटों एट जी-20 समिट: व्हाट नेक्स्ट फॉर क्रीपटों करंसी अमिड कलस फॉर बैन (27 फ़रवरी 2023)https://www.livemint.com/market/cryptocurrency/crypto-at-g20-summit-what-s-next-for-cryptocurrency-amid-calls-for-ban-11677481178730.html
17. कथुरिया एण्ड प्रतीक कुकरेजा(ईडीएस) 20 एयर्स ऑफ जी-20: फर्म ग्लोबल क्वॉपरैशन टू बिल्डिंग कन्सेन्सस. :https://economictimes.indiatimes.com/news/india/indias-g 20-presidency-and-emergence-of-new-world-

order/articleshow/98408183.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst

18. भारत की जी-20 अध्यक्षता: एक सारांश chrome-extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://www.g 20.in/content/dam/जी twenty/Indiasg 20_Presidency-A_Synopsis.pdf

19. जी-20 का अवलोकन, https://moes.जी ov.in/जी 20-india-2023/moes-g 20?language_content_entity=en

अध्याय-26
श्रीरामचरितमानस में वर्णित गुरु तत्व की शैक्षिक विवेचना

सिम्मी गुप्ता
शोधार्थी, बी.एड./ एम. एड. विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

प्रवीण कुमार तिवारी
आचार्य, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रत्येक रचना एवं रचनाकार अपने समय की उपज होते हैं, जिस समय गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना की उस समय सर्वत्र अराजकता का वातावरण था, लोग अपने धर्म की राह से भटके हुये थे और मानवता विभिन्न प्रकार के अत्याचारों से त्रस्त थी। विदेशी आक्रांताओं द्वारा लगातार हमारी संस्कृति और विरासत को चोट पहुंचाई जा रही थी। उसी समय में तुलसीदास जी ने लोकधर्म और भक्ति भावना को एक सूत्र में पिरोकर दिखाया और एक ऐसे ग्रंथ की रचना की जिसकी अविरल धारा मानव मन की क्षुधा को शांत करती चली आ रही है। नि:संदेह श्रीरामचरितमानस एक ऐसा अनुपम ग्रंथ है जो मात्र हिन्दी साहित्य का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का दर्पण कहा जाता है और यह एक सर्वमान्य तथ्य भी है कि मानस को एक पर्णकुटी से लेकर महल तक विशेष आदर दिया जाता है। श्रीरामचरितमानस में कहीं शील सदाचार का बिम्ब है तो कहीं सौन्दर्य की जीवंतता और कहीं मर्यादा की शालीनता। शील, सौन्दर्य और मर्यादा की ऐसी सुंदर त्रिवेणी मानव मन के अनेकानेक रोगों को समूल नष्ट कर देती है और हमारी प्राचीन परम्पराओं के महत्व की पुनः प्रतिस्थापना करती है। वर्तमान समय में समाज में व्याप्त अनेकानेक समस्याओं का मूल कारण अपनी प्राचीन संस्कृति एवं परम्पराओं की अवहेलना ही है।

प्रस्तुत पत्र में श्रीरामचरितमानस में वर्णित ‘गुरु’ तत्व पर विशेष प्रकाश डाला गया है। हमारी सनातन परंपरा में गुरु को अत्यधिक महत्व दिया गया है लेकिन जिस सरलता, सहजता और उत्कृष्टता के साथ श्रीरामचरितमानस में गुरु के विविध पक्षों को प्रदर्शित किया जाता है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। श्रीरामचरितमानस हमारे प्राचीन ज्ञान भंडार की एक सहजतम प्रस्तुति है जिसे तुलसीदास जी ने सरलता के साथ इस प्रकार रचा है, जो प्रत्येक व्यक्ति के मानस पटल पर अपना प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहती। तुलसीदास जी अपने ग्रंथ के प्रारम्भ में ही लिखते हैं-

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोअपि।
स्वांतःसुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषानिबंधमतिमञ्जुलमातनोति।।7।। (बालकांड, श्लोक सं.5)

अर्थात् अनेक पुराण, वेद और शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्रीरघुनाथ जी कि कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यंत मनोहर भाषा रचना में विस्तृत करते हैं।

श्रीरामचरितमानस हमारी संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। जो भी व्यक्ति जिस लालसा से मानस के पास जाता है उसी रूप में उसकी अभिलाषा की पूर्ति अवश्य होती है। श्रीरामचरितमानस तो रत्न का भंडार है, बस आवश्यकता है तो उन रत्नों को खोजने की और वास्तव में जो इस अगाध समुद्र में जितनी गहराई तक जाता है वह उतना ही अधिक लाभ प्राप्त करता है । इस संदर्भ में कबीर दास जी का एक दोहा श्रीरामचरितमानस पर एकदम उपयुक्त लगता है-

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। मैं बपुरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठ।।

श्रीरामचारितमानस में आए गुरु तत्व का स्वरूप:

गुरु शिष्य परंपरा की दृष्टि से यदि देखा जाए तो श्रीरामचरितमानस एक प्रश्नोत्तर संवाद रूपी समुद्र है जिसमें गुरु-शिष्य (श्रोता और वक्ता) के परस्पर उत्तर प्रतिउत्तर, सुंदर-सुंदर उठने वाली लहरों के समान है। मानस मानव मन की संवेदनाओं, अनुभूतियों और कर्तव्यों के एक विश्व कोष के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। हमें संपूर्ण मानस में चार श्रोता और वक्ता दिखाई देते हैं –

1. भगवान शिव और माता पार्वती
2. ऋषि याज्ञवल्यक्य और मुनि भारद्वाज
3. पक्षीराज गरुड़ और कागभुसुंडि जी
4. तुलसीदास जी और श्रोता

उपर्युक्त चारों गुरु और शिष्य के संबंधों के संदर्भ में यदि बात की जाये तो श्रीरामचरितमानस के गुरु और शिष्य का अप्रतिम संबंध ऐसा है, जिसमें न तो गुरु को अपने ज्ञान एवं स्वरूप का अभिमान है, न ही शिष्य को अपने अज्ञान का संकोच। एक महादेव हैं तो दूसरे देवी, एक महर्षि है तो दूसरे महामुनि, एक पक्षीराज हैं तो दूसरे एक असाधारण कोटी का पक्षी। इन सभी के आपसी संबंध मानो यह इशारा करते हैं कि जब गुरु को अपने ज्ञान का अभिमान न हो, और शिष्य को सीखने का संकोच न हो तो ज्ञान रूपी वृक्ष पर लगने वाले फल बहुत सुंदर और रसपूर्ण होते हैं। इन सभी श्रोताओं और वक्ताओं के मध्य बहुत ही सुंदर समन्वय देखने को मिलता है।

अब यदि श्रीरामचरितमानस में वर्णित दोहे अथवा चौपाइयों के माध्यम से गुरु के स्वरूप की विवेचना की जाये तो प्रत्येक सोपान में गुरु की महत्ता और उनके स्वरूप का विषय वर्णन किया गया है। लेकिन बालकांड का मंगलाचरण श्लोक और चौपाइयाँ जैसे संपूर्ण भारतीय संस्कृति में वर्णित गुरु के महत्व का सार प्रस्तुत कर रहे हैं। सर्वप्रथम बालकांड के मंगलाचरण के तीसरे श्लोक में ही तुलसीदास जी गुरु को शंकर-रूप बताते हुए गुरु को ज्ञान का अगाध भंडार, नित्य और आश्रयदाता बताते हैं-

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुम शङ्कर रूपिणं।
यमाश्रितो हि वक्रोअपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते।। (बालकांड, श्लोक सं.3)

गुरु के चरणरज को शिव जी के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति बताया है यदि गुरु के स्वरूप का शंकररूप में विवेचित किया जाए तो गुरु वह है, जिसके बराबर में माता पार्वती अर्थात् श्रद्धा, जिनके मस्तक पर गंगा अर्थात् शीतलता, जिनके मस्तक पर चंद्रमा अर्थात् तेजस्विता, जिसके गले में गरल हो लेकिन जो सर्वत्र अमृत बाँटे, जिसके छाती पर सांपों का गहना हो अर्थात् जो भूषण तो पहने लेकिन उसमें लिप्त न हो, जो विभूति से विभूषित हो अर्थात् बैरागी हो, जो सारे देवताओं का सिरमौर अर्थात सर्वाधिपति सर्वप्रिय हो, इस प्रकार गुरु के स्वरूप को शंकर का पर्याय बताते हुए तुलसीदास जी ने अन्यत्र भी चर्चा की है-

गुरु पितु मातु महेश भवानी। (बालकांड 15/2)

अब यदि गुरु के स्वरूप की चर्चा करते हुए आगे बढ़ा जाए तो हम पाते हैं कि तुलसीदास जी गुरु के चरणों को कमल के समान बताते हैं –

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा। (बालकाण्ड 1/1)
बंदऊँ गुर पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि

यदि कमल की विशिष्टताओं के संदर्भ में देखा जाए तो साधारण तौर पर कमल की बहुत विशेषताएं होती हैं लेकिन हमारे आयुर्वेद में कमल की कुछ विशिष्ट गुणों की चर्चा की गई है यथा –

कमलं शीतलं वर्ण्य मधुरं कफपित्तजित।
तृष्णादाहस्त्रविस्फोट विषसर्पविनाशनम। (भावप्रकाश पुष्पगर्व5.3)

अर्थात् कमल मधुर, रंगीन, शीतल, कफ और पित्त को दबाने वाला प्यास, चेचक तथा सर्पविष आदि रोगों का नाशक है। तुलसीदास जी स्वयं को गुरु के सर्वांग वर्णन के योग्य न समझ कर मात्र चरणों का ही बहुत विस्तृत वर्णन करते हैं; और इसी क्रम में वे चरणों के नाखूनों के स्वरूप को मणियों के समान अर्थात् स्व प्रकाश से प्रकाशित बताते हैं-

श्री गुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह तं सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू।
उघरही विमल विलोचन ही के। मिटहि दोष दुःख भव रजनी के।
सूझहि रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहाँ जो जेहि खानिक।। (बालकाण्ड 1/3-4)

यदि सूक्ष्म दृष्टि से उपर्युक्त चौपाइयों की विवेचना की जाये तो हम पाते हैं कि गुरु के दाएं चरण के नख गुरु प्रसाद, गुरु पूजा, गुरु सेवा, गुरु वचन और गुरु ज्ञान को प्रतिनिधित्व करते हैं। गुरु के बाएं चरण के नख गुरु मंत्र, गुरु ग्रंथ, गुरु आसन, गुरु नेत्रमणि का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार गुरु के नाखूनों में उनके स्वरूप का सार छुपा रहता है, जिसके द्वारा उत्पन्न प्रकाश से शिष्य के हृदय का अंधकार समूह नष्ट हो जाता है। इसलिए तुलसीदास जी गुरु के स्वरूप को सर्वोपरि रखते हुए गुरु को नर रूप में हरि ही बताते हैं। गुरु को मनुष्य मानना आध्यात्मिक अपराध है। पुनश्च

बंदऊँ गुर पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि

गुरु का शिष्य के जीवन में महत्व एवं उनकी शैक्षिक विवेचना:

स्वरूप व्याख्या के पश्चात अब यदि सरल रूप में श्रीरामचरितमानस में वर्णित गुरु के महत्व और उनके आदर्शों की चर्चा की जाए तो कुछ चौपाइयां प्राप्त होती हैं। वर्तमान परिदृश्य में यदि देखा जाए प्रत्येक व्यक्ति के लिए मानस की चौपाइयां प्रेरणा का स्रोत हैं। गुरु के वचन, उनका व्यवहार ऐसा होना चाहिए जो शिष्य के मन के अंधकारों के समूह को समूल नष्ट कर सके। किसी भी गुरु का व्यवहार शिष्य के लिए अनुकरणीय तभी होता है जब वह सहज और अनुराग पूर्ण हो। तुलसीदास जी गुरु की वंदना में लिखते हैं-

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
अमिअ मूरिमय चूरन चारु। समन सकल भव रुज परिवारु। (बालकाण्ड 1/1)

इसी प्रकार का भाव ऊपर वर्णित मंगलाचरण श्लोक में भी है। किसी भी शिष्य का अपने गुरु के प्रति शुद्ध समर्पण का भाव शिष्य के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। विकारों के होने पर विशिष्ट का यही समर्पण भाव उसे दोष मुक्त बना देता है। अतः गुरु को आश्रयदाता होना चाहिए ताकि शिष्य के विकारों को समय रहते दूर किया जा सके एवं उसके विशिष्ट गुणों का विकास किया जा सके। गुरु को तुलसीदास जी ने माता-पिता से भी उच्च स्थान दिया है। गुरु द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन ही शिष्य के अंतस में छिपी विशिष्ट प्रतिभाओं को उभार कर सामने लाता है, और उसे वास्तविक सत्य का दर्शन करने का सामर्थ्य प्रदान करता है। गुरु को तुलसीदास जी माता-पिता से भी उच्च स्थान देते हैं अतः गुरु को भी नि:स्वार्थ भाव से अपने शिष्य के प्रति संतान के समान कल्याण की भावना रखनी चाहिए। गुरु के चरण रज को तुलसीदास जी द्वारा मंगल और आनंद को जन्म देने वाला (प्रसूति) बताने का अभिप्राय यह बताना है कि शिष्य के अंतःकरण में जो आनंद की अनुभूति होती है वह सांसारिक सुखों से उत्कृष्ट कोटि का आनंद देने वाली होती है –

सुकृति संभु तन विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।। (बालकाण्ड (1/2)

तुलसीदास जी ने गुरु के चरणों को कमल और वचनों को सूर्य की किरणों का समूह बताया है; जिस प्रकार कमल सूर्य के प्रकाश का अनुकरण करता है, उसी प्रकार गुरु के वचन उनके चरणों का अनुकरण करते हैं; अर्थात एक

आदर्श गुरु की कथनी और करनी में अंतर नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में तमनाशक शक्ति होती है उसी प्रकार गुरु में भी शिष्य के अज्ञान को नष्ट करने की शक्ति होना चाहिए-

बंदऊँ गुर पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि
महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर।। (बालकाण्ड, सोरठा 5)

उपर्युक्त चौपाई में तुलसीदास जी ने गुरु के स्वभाव को समुद्र (सिंधु) के समान भी बताया है। गुरु का स्वभाव समुद्र के समान व्यापक, गंभीर, उदार होना चाहिए, जो समय-समय पर अपने किनारों पर रत्नों को एकत्र करता रहता है, अपने अंदर कुछ नहीं एकत्र करता। जिस गुरु का स्वभाव समुद्र के समान हो उसके चरणरज कि प्रशंसा में तुलसीदास जी लिखते हैं कि-

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विभंजन।
तेहि करि विमल विवेक विलोचन। बरनउ रामचरित भव मोचन।

गुरु की चरण रज को तुलसीदास जी का सिद्धांजन बताने का अभिप्राय है कि गुरु प्रदत्त दृष्टिकोण इतना व्यापक होना चाहिए, जिसके द्वारा शिष्य को प्रकृति में सर्वत्र सकारात्मकता के दर्शन करने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाए। गुरु का यह दृष्टिकोण अनुकरणीय तभी हो सकता है, जब उसका व्यवहार और वचन रुचि पूर्ण और अनुराग युक्त हो। गुरु प्रदत्त इसी दोष रहित दृष्टि से ही शिष्य के जीवन का अंधकार दूर हो जाता है, और जीवन के प्रत्येक लक्ष्य को प्राप्त करने का सामर्थ्य आ जाता है। तुलसीदास जी लिखते हैं-

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान।

गुरु के इस प्रकार वचनों की अनुकूल प्रकृति से शिष्य और गुरु दोनों के धर्म का पालन होता है, और ज्ञान रूपी वृक्ष पुष्पित पल्लवित होता है। गुरु वचन पालन के संबंध में ही बालकांड में माता पार्वती का एक प्रसंग आता है कि जब माता पार्वती की परीक्षा लेने सप्त ऋषि आते हैं और उन्हें संकल्प से विचलित करने का प्रयास करते हैं, और अंततः उन्हें डिगाने में असफल रहते हैं। इस प्रकार तुलसीदास जी जनमानस को संदेश देते हैं कि गुरु के वचनों में विश्वास, अडिगता और सहजता के साथ अनुकरण ही जीवन में सुखों का आधार है-

गुर के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेहि

इस प्रकार तुलसीदास जी लिखते हैं कि गुरु की अवज्ञा से धर्म नष्ट होता है और जब धर्म नष्ट होता है तो ज्ञान की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अरण्यकांड में तुलसीदास जी लिखते हैं-

धरम ते विरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद वेद बखाना।। (अरण्यकांड 16/1)

श्रीरामचरितमानस में ऐसे ही गुरु आज्ञा का एक प्रसंग और भी आता है, जो शिष्य एवं गुरु दोनों के लिए ही प्रेरणाप्रद है-

अवसि फिरहि गुर आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रूचि जानी। 253

चित्रकूट प्रसंग में महर्षि वशिष्ठ जी की दूरदर्शिता संपूर्ण जनमानस के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। यदि महर्षि परिस्थितिवश राम जी को अयोध्या वापसी की आज्ञा दे देते तो राम जी अवश्य वापस जाते, किंतु उनकी दूरदर्शिता ने लोक और जनकल्याण को सर्वोपरि रखा। गुरु की आज्ञा में इसी प्रकार दूरदर्शिता का भाव होना चाहिए। दूरदर्शिता के साथ-साथ गुरु को कुशल प्रबंधन और समानता के सिद्धांत का पालन करने वाला होना चाहिए ताकि वह प्रत्येक विद्यार्थी के विशिष्ट कौशल से परिचित हो सके और उनके इस कौशल को विकसित कर सके; यथा-

मुखिया मुखु सो चाहिए खान पान कहुं एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक।

अर्थात प्रभु रामजी भरतजी को राज धर्म और नीति की शिक्षा देते हुये समझा रहे हैं कि मुखिया को मुख के समान होना चाहिए जो खाने पीने को तो एक है परंतु विवेक पूर्वक सब अंगों का पालन पोषण करता है। जिस प्रकार मुख के द्वारा ग्रहण किया गया भोजन समस्त शरीर के अंगों को पोषित करता है, उसी प्रकार शिक्षक की इस प्रकार की कुशलता कक्षा-कक्ष के सभी विद्यार्थियों को सक्रिय रहने के अवसर प्रदान करती है; फलतः सभी छात्र अपने अपने विशिष्ट गुणों को विकसित करने में सक्षम हो पाते हैं। इस प्रकार एक गतिशील और आदर्श कक्षा-कक्ष का निर्माण होता है। समानता और प्रबंधन से आगे बढ़कर तुलसीदास जी कहते हैं कि विद्वानों का स्वभाव बादलों के समान होना चाहिए, जिस प्रकार फलों के बोझ से डाली लटक जाया करती है, और जल के भार से बादल उसी प्रकार सही अर्थों में विद्वान वही है जो विद्या प्राप्ति के बाद भी विनम्र रहे-

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ 14

एक शिक्षक का स्वभाव बादलों के समान विनम्र पक्षपातरहित और परोपकारी होना चाहिए; जिस प्रकार बादल वृष्टि करते समय भेदभाव नहीं करते।

रामचरितमानस में एक प्रसंग ऋषि याज्ञवल्यक्य और महामुनि भारद्वाज जी का आता है, जिसमें भारद्वाज जी उनके सम्मुख अपनी अज्ञानता को नि:संकोच प्रकट करते हैं मानो तुलसीदास जी हमें शिक्षा दे रहे हैं कि ज्ञानी से ज्ञानी व्यक्ति को भी निरंतर सीखते रहना चाहिए और कभी भी अपनी अज्ञानता को प्रकट करने में संकोच नहीं करना चाहिए; क्योंकि संकोच सीखने की प्रक्रिया में बहुत बड़ा बाधक होता है। एक शिक्षक को अपनी परिस्थिति के अनुरूप निरंतर सीखते रहना चाहिए और सदैव ज्ञान प्राप्ति के प्रति सजग रहना चाहिए-

संत कहहि असिनीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न विमल विवेक उर गुरु सन किए दुराव।

सूचना और तकनीकी के तेजी से परिवर्तित होते इस युग में निरंतर सीखते रहना बहुत आवश्यक होता जा रहा है फिर चाहे वह गुरु हो अथवा शिष्य। दूसरी महत्वपूर्ण बात जो तुलसीदास जी लिखते है कि गुरु से किया गया संकोच ज्ञान प्राप्ति में सबसे बड़ा बाधक है और संशयों को जन्म देता है।

प्रत्येक गुरु का ज्ञान उसकी एक प्रकार की संपत्ति होती है; जिस प्रकार माता-पिता की संपत्ति पर संतानों का स्वभावतः अधिकार होता है उसी प्रकार शिष्य गुरु के ज्ञान का विशेष अधिकारी होता है। यद्यपि शिष्य के लिए ज्ञान प्राप्ति हेतु पात्रता का होना अति आवश्यक है –

गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहि। आरत अधिकारी जहँ पावहि

यद्यपि गुरु के द्वारा किसी ज्ञान-तत्व को छुपाना उस तत्व अथवा ज्ञान का आदर करना है, किन्तु शिष्य के पात्र होने पर उस ज्ञान को शिष्य के समक्ष प्रकट करना गुरु का कर्तव्य है। दूसरी महत्वपूर्ण बात जो तुलसीदास जी लिखते हैं जब गुरु शिष्यों के लिए उनके स्तर और समय के अनुरूप ज्ञान देते हैं तभी सकारात्मक और आशानुरूप परिणाम प्राप्त होते हैं। बालकाण्ड में एक चौपाई आती है-

जो बरषइ बर बारि विचारु। होहि कवित मुक्तामनि चारु।। (बालकाण्ड, 11/4)

सामान्य शिक्षण करते समय कभी-कभी गुरु को अपने आशा एवं उद्देश्य अनुरूप परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रेरक के रूप में दंड अथवा प्रोत्साहन का उपयोग करना पड़ता है और संतुलित रूप से इसका प्रयोग सकारात्मक परिणाम प्रदान करता है। सूक्ष्म दृष्टि से यदि देखा जाए तो तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में दंड और प्रोत्साहन की भी चर्चा की है बालकांड में ही एक चौपाई आती है-

सासति करि पुनि करहि पसाऊ

अर्थात श्रेष्ठ स्वामियों का यह स्वभाव होता है कि वह पहले दंड देकर फिर कृपा किया करते हैं।

किसी भी गुरु का ज्ञान भंडार समृद्ध होना और सदैव समृद्ध रहना दो पृथक बातें हैं। ज्ञान की इस निरंतरता को बनाए रखने के लिए गुरु का मान रहित रहना और पद प्रतिष्ठा की आकांक्षा न रखना अति आवश्यक है-

ग्यान मान जहाँ एकउ नाही। (अरण्यकांड, 14/4)

मानरहित व्यक्ति ही सदैव सीखने हेतु तत्पर रहता है, पद प्रतिष्ठा और ज्ञानी होने का अभिमान व्यक्ति के सीखने में बाधक होता है। इसलिए तुलसीदास जी ने ऊपरी चमक-दमक और प्रतिष्ठा की चाह को मीठे विष और अग्नि के समान बताया है-

लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु। (बालकाण्ड, 161क)

इसी संदर्भ में तुलसीदास जी एक अन्य महत्वपूर्ण बात लिखते हैं कि प्रशंसा भय अथवा अन्य कारणों से कभी भी तात्कालिक लाभ देखते हुए एक गुरु को अपने शिष्य से सत्य छुपाने का प्रयास भी नहीं करना चाहिए-

सचिव बैद गुर तीनि जौ प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्म तम तीनि कर होइ बेगहीं नास।

शिष्य की परिस्थिति और समय अनुरूप उदारता या कठोरता प्रदर्शित करना एक आदर्श गुरु का कर्तव्य होता है, जिस प्रकार एक कुशल किसान खेती करते समय अनावश्यक घासों को उखाड़ कर फेंक देता है, जो उस फसल की वृद्धि के लिए आवश्यक होता है, उसी प्रकार कभी-कभी कटु-वाणी शिष्य के लिए ही लाभकारी होती है। तुलसीदास जी लिखते हैं-

कृषी निरावहि चतुर किसाना। (किष्किंधाकाण्ड, 15/4)

तुलसीदास जी ने अनेकों स्थानों पर गुरु के वचनों को समस्याओं का नाश करने वाला कहा है ऐसा ही एक प्रसंग लंकाकांड में आता है, जब विभीषण प्रभु श्रीराम को सर्वसामर्थ्यवान मानते हुए भी उन्हें बिना रथ आदि संसाधनों के देखकर अधीर हो जाते हैं, तब प्रतिउत्तर में रामजी विभीषण को अपने शौर्य, धैर्य, शील आदि गुणों से सज्जित रथ से परिचित कराते हैं-

रावण रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषन भयउ अधीरा
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कहसहित सनेहा।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका।
बल बिबेक डीएम परहित घोरे। छमाकृपा समता रजु जोरे।

यह चौपाई यह सीख देती है कि किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु भौतिक संसाधनों से कहीं अधिक व्यक्ति का मनोबल महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एक शिक्षक को कभी भी संसाधनों की अनुपलब्धता को अपने शिक्षण पर हावी नहीं होने देना चाहिए, क्योंकि एक कुशल शिक्षक सीमित संसाधनों में भी अपने शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है। शिक्षक का मनोबल शिक्षण प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात जो तुलसीदास जी ने लिखी है कि शौर्यवान और धैर्यवान होने के साथ-साथ व्यक्ति को सत्यमार्ग का पालन करते हुए गंभीर भी होना चाहिए। इस गंभीरता का आधार उदारता और विनम्रता होनी चाहिए। हठधर्मिता अथवा कठोरता नहीं। इसी प्रकार यदि शिक्षक इस प्रकार के गुणों से सज्जित होकर शिक्षण कार्य करते हैं तो चाहे कितनी भी बड़ी समस्या हो सभी समूल नष्ट हो जायेंगी।

प्रथम सोपान से लेकर सप्तम सोपान तक गुरु की महत्ता और उनके आदर्शों का वर्णन करते हुए उत्तरकांड में तुलसीदास जी गुरु को भगवान शिव और परमपिता ब्रह्मा जी से भी कहीं अधिक ऊंचा स्थान देते हैं और लिखते हैं-

गुर बिनु भवनिधि तरइ न कोई। जौ विरंचि संकर सम होई 93

निष्कर्ष

जब कोई शिष्य अपने गुरु के प्रति आश्रित हो जाता है तो यह उस गुरु का दायित्व हो जाता है कि उस शिष्य को जीवन की सही रहा दिखाए। शिष्य का समर्पण गुरु के कर्तव्यों को और भी अधिक बढ़ा देता है इसीलिए गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान न केवल वर्तमान में अपितु जीवन के पग-पग पर शिष्य को मार्गदर्शित करने वाला होना चाहिए। इस प्रकार समग्रता में यदि श्रीरामचरितमानस को एक ग्रंथ न मानकर एक गुरु के रूप में माना जाए और इसके सातों सोपानों को एक गुरु के लक्षणों के रूप में देखा जाए तो इससे सर्वश्रेष्ठ गुरु अन्यत्र कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि प्रत्येक सोपान में आदर्श गुरु के अनेक लक्षणों का वर्णन किया गया है, लेकिन प्रत्येक सोपान किसी विशेष गुण का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है। प्रथम सोपान बालकांड बताता है कि गुरु का स्वभाव बालवत, सरल, सहज, अनुरागपूर्ण हो। द्वितीय सोपान अयोध्या कांड बताता है कि गुरु में त्याग की भावना हो, जिसमें धन, पद, वैभव आदि की लालसा न हो। तृतीय सोपान अरण्यकांड बताता है कि गुरु में सहजता, सुलभता हो, जिसकी पहुंच समाज के अंतिम व्यक्ति तक हो। चतुर्थ सोपान किष्किंधाकांड बताता है कि गुरु मित्रवत हो, जिसमें सखा की भावना हो, जिससे शिष्य अपने मन की बात प्रकट करने में संकोच न करे। पंचम सोपान सुंदरकांड बताता है कि गुरु शिष्य के अंतस में स्थित लंका (विकारों का समूह) को जला सके, क्योंकि लंका दहन के पश्चात ही प्रभु राम अर्थात ज्ञान का हमारे अंतस में प्रवेश होगा। षष्ठ सोपान लंकाकांड बताता है कि गुरु हमारी नाभि पर वार करके हमारे मोह का नाश करता है, क्योंकि मोह ही तो अज्ञान का सबसे बड़ा कारण होता है। सप्तम सोपान उत्तरकांड यह बताता है कि गुरु शिष्य की प्रत्येक समस्याओं का उत्तर देने वाला हो। इस प्रकार श्री रामचरितमानस साक्षात गुरु रूप है, जिसका आश्रय जीवन की हर समस्या से मुक्ति की राह दिखाता है। श्रीरामचरितमानस ने व्यावहारिक रूप से समाज में उन आदर्शों को प्रतिस्थापित किया जिनसे प्रेरित होकर एक आदर्श गुरु एवं एक आदर्श शिष्य की संकल्पना को समझा जा सकता है और उन आदर्शों का अनुकरण करके अनेकों समस्याओं को उत्पन्न होने से रोका जा सकता है। श्रीरामचरितमानस निरंतर प्रज्ज्वलित होने वाला वह दीप है, जिसके ज्ञान रूपी प्रकाश से हम चिरकाल तक प्रकाशित होते रहेंगे।

संदर्भ सूची:

1. पोद्दार, हनुमान प्रसाद (टीकाकार). सं. 2050. तुलसीकृत रामचरितमानस, गीतप्रेस गोरखपुर।
2. शरण, अंजनीनन्दन सं.2079 . मानस पीयूष, गीतप्रेस गोरखपुर।
3. उपाध्याय, रामकिंकर जी सं.2071.मानस के चार घाट, रामायणम ट्रस्ट. श्रीधाम अयोध्या।
4. उपाध्याय, रामकिंकर जी.सं.2071. रामकथा मंदाकिनी, रामायणम ट्रस्ट. श्रीधाम अयोध्या।
5. उपाध्याय, रामकिंकर जी.सं.2071. श्री राम गीता, रामायणम ट्रस्ट. श्रीधाम अयोध्या।

अध्याय-27

भारतीय संविधान में वित्त प्रबंधन और राष्ट्रीय एकीकरण

विनीता राजपुरोहित
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र,
मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर

"जीइसटी भारत को एक सामान्य आर्थिक बाजार में सरलीकृत करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है"

-

नरेंद्र मोदी

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) लागू होने से पूर्व भारतीय कर परिदृश्य जटिल व खंडित रुप में था जिसमें केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा लगाए गए विभिन्न अप्रत्यक्ष कर शामिल थे। इस संरचना में केंद्रीय उत्पाद शुल्क, सेवा कर, चूँगी कर, प्रवेश कर, राज्य बिक्री कर, मनोरंजन कर जैसे अनेक कर शामिल थे। 1986 ई. से पूर्व प्रत्येक राज्य द्वारा एकल बिंदु कर संग्रहण प्रणाली का अनुकरण किया जा रहा था। प्रत्येक कर के अपने अलग-अलग नियम, दरें व अनुपालन प्रक्रियाएं थीं, जिससे राज्य की सीमाओं के पार संचालित होने वाले व्यवसायों के लिए अक्षमताएं, कैस्केडिंग प्रभाव (कर पर कर भुगतान) और प्रशासनिक बोझ बढ़ गया था। कैस्केडिंग प्रभाव, के कारण पहले से ही कर लगाए गए घटकों के ऊपर कर लगाया जा रहा था जिससे वस्तुओ की कीमतों में वृद्धि हो रही थी और वैश्विक मंच पर भारत की प्रतिस्पर्धात्मकता बाधित हुई। इसके अतिरिक्त, राज्यों में अलग-अलग कर संरचनाओं के कारण अंतरराज्यीय व्यापार को कई बाधाओं का सामना करना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप परिवहन लागत में वृद्धि और माल की आवाजाही में देरी जैसी समस्याओ का सामना करना पड़ा। विशेष रूप से छोटे व्यवसायों को इस जटिल कर प्रणाली से निपटने के लिए संघर्ष करना पड़ा। कर-चोरी और अपारदर्शिता इस कर संरचना की कुछ अन्य विशेषताएं थी जिनका लाभ कुछ व्यवसायों ने करों से बचने या कदाचार में संलग्न होने के लिए उठाया। करों की बहुलता के कारण प्रवर्तन और निगरानी में जटिलताएँ पैदा हुई, जिससे अधिकारियों के लिए संपूर्ण कर श्रृंखला को प्रभावी ढंग से ट्रैक करना चुनौतीपूर्ण हो गया। परिणामस्वरूप, राजस्व रिसाव बढ़ने लगा, जिससे सरकार की कर-एकत्रण क्षमता बाधित हुई और केंद्र व राज्य सरकारों का वित्तीय स्वास्थ्य गड़बड़ाने लगा। कैस्केडिंग प्रभाव, एकल बिंदु कर संग्रहण प्रणाली में व्याप्त मुख्य दोषों में से एक है जिससे निजात पाने के लिए विश्व के अधिकांश देशो ने मूल्य वर्धित कर (वैट) सिद्धांत का अनुसरण किया।

"1954 में फ्रांस में वैट की पहली शुरुआत के बाद से, अब इसे दुनिया के 160 से अधिक देशो द्वारा अपनाया गया है।"[1] भारत सरकार ने 1986 में संशोधित मूल्य वर्धित कर (MODVAT) की शुरुआत के माध्यम से मूल्य वर्धित कर या वैट की अवधारणा को अपनाया। आमतौर पर, प्रत्येक निर्मित उत्पाद को कई चरणों (कच्चा माल, उत्पादन, थोक विक्रेता, खुदरा विक्रेता, अंतिम उपभोगता आदि) से गुजरना पड़ता है, जिनमें से प्रत्येक में अलग-अलग घटक

और कच्चे माल शामिल होते हैं। MODVAT लागू होने से पूर्व, सरकार के लिए कई चरणों में करों पर नज़र रखना जटिल था, जिससे अंतिम उपभोक्ता पर कर भार बहुत अधिक पड़ता था। लगभग 15 वर्षों तक लागू रहने के बाद, MODVAT को CENVAT (केंद्रीय मूल्य वर्धित कर) से बदल दिया गया। अब भारत में केंद्र के स्तर पर वैट सिद्धांत लागू था लेकिन राज्यों के स्तर पर वही जटिल व खण्डित प्रणाली विध्यमान थी। केन्द्र सरकार देश के विभिन्न राज्यो में बिक्री करो में विध्यमान कैस्केडिंग प्रभाव को समाप्त करना चाहती थी लेकिन, "किसी राज्य के भीतर माल की बिक्री या खरीद पर कर ' भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की राज्य सूची की प्रविष्टि 54 के आधार पर राज्य का विषय है।"[2]

ऐसे में, इस मामले में केंद्र सरकार केवल एक सुविधाप्रदाता की भूमिका निभा सकती थी। अतः केंद्र ने राज्यों को वैट की शुरूआत के कारण किसी भी राजस्व हानि के लिए मुआवजे के भुगतान का आश्वासन दिया। इस प्रकार, वर्ष 2005 में देश के अधिकांश राज्यों ने यह प्रयोग किया और तब से राज्यों के बिक्री कर का नाम बदल कर 'वैट' हो गया। वर्ष 2005-06 में केवल 8 राज्यों को केन्द्र सरकार से मुआवजे की मांग करनी पड़ी और अगले वर्ष यह संख्या घटकर 5 रह गयी। आज भारत का प्रत्येक राज्य वैट सिद्धांत पर काम कर रहा है।

कुल मिलाकर, भारतीय कर-प्रणाली चुनौतियों से भरी हुई थी, जिसमें जटिलता, अक्षमता, कर व्यापकता, कर-वंचन और केंद्र-राज्य संघर्ष शामिल थे। सुधार की तत्काल आवश्यकता को पहचानते हुए, भारत सरकार ने समय-समय पर आवश्यक कदम उठाए। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं की वस्तु एवं सेवा कर को लागू करने के लिए भारत सरकार ने एक परिवर्तनकारी यात्रा शुरू की, जिसका लक्ष्य भारतीय कर-प्रणाली में व्याप्त विसंगतियों का समाधान कर एक एकीकृत राष्ट्रीय बाजार के माध्यम से सशक्त भारत का निर्माण करना था।

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) का परिचय: भारत में जीएसटी:

भारत में जीएसटी की पृस्ठभूमि पर विचार करें तो इसकी जड़े तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के कार्यकाल से जुडी है। "भारत में राष्ट्रव्यापी जीएसटी का विचार पहली बार 2000 में अप्रत्यक्ष करों पर केलकर टास्क फोर्स द्वारा प्रस्तावित किया गया था। इसका उद्देश्य प्रचलित जटिल और खंडित कर संरचना को एक एकीकृत प्रणाली से बदलना था जो अनुपालन को सरल बनाएगी, कर के बोझ को कम करेगी और आर्थिक वृद्धि को बढ़ावा देगी।"[3]

राज्यों के वित्त मंत्रियों की अधिकार प्राप्त समिति ने 2009 में पहला चर्चा पत्र जारी करते हुए एक डिजाइन और रोडमैप तैयार किया। 2011 में 115वां संविधान संशोधन विधेयक पेश किया गया लेकिन इसको राज्यों को मुआवजे व अन्य चुनौतियों का सामना करना पड़ा। अंततः मार्च 2014 में यह विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत हुआ किन्तु लोकसभा भंग होने के साथ ही यह सिलसिला कुछ अवधि के लिए थम गया। जून 2014 में 122वे विधेयक के रूप में सरकार ने इसे फिर से पेश करने की अनुमति दे दी। राज्यों के वित्त मंत्रियों की अधिकार प्राप्त समिति के पास भेजा गया और अंततः सहमतियाँ बनने लगी। दिसम्बर 2014 में यह पुनः लोकसभा में पेश हुआ। लम्बे विचार-विमर्श के बाद मई 2015 में लोकसभा में यह विधेयक पास हो गया। कुछ संशोधनों के साथ विधेयक अंततः 3 अगस्त 2016

को राज्यसभा में पारित किया गया और उसके बाद 8 अगस्त, 2016 में लोकसभा द्वारा संशोधित विधेयक को पुनः पारित किया गया। इस प्रकार जीएसटी को लेकर संसद के दोनों सदनों की भूमिका पूरी हो गयी। इसके बाद विधेयक को आवश्यक संख्या में अनुमोदित किया गया और अंततः 8 सितम्बर 2016 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और इसे 101वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2016 के रूप में अधिनियमित किया गया। जीएसटी परिषद को 15 सितंबर, 2016 से अधिसूचित किया गया। **जुलाई, 2017 को, केंद्रीय और राज्य करों के जटिल जाल को प्रतिस्थापित करते हुए जीएसटी कानून लागू किया गया।**

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) 1 जुलाई, 2017 को भारत में शुरू किया गया एक व्यापक अप्रत्यक्ष कर सुधार है, जिसका उद्देश्य देश की कराधान प्रणाली में क्रांतिकारी बदलाव लाना है। भारतीय कर-प्रणाली के सरलीकरण और एक राष्ट्र- एक कर के उद्देश्य से प्रेरित जीएसटी को विभिन्न अप्रत्यक्ष करों को समाहित करते हुए आकर दिया गया है। जीएसटी में केन्द्र के निम्न करों को समाहित किया गया: केंद्रीय उत्पादन शुल्क, उत्पाद शुल्क के अतिरिक्त शुल्क (विशेष महत्व के सामान), सेवा कर, उत्पाद शुल्क (औषधीय), इत्यादि। जीएसटी में राज्य के राज्य वैट, केंद्रीय बिक्री कर, विलासिता कर, चुंगी के बदले प्रवेश, मनोरंजन कर, विज्ञापनों पर कर, खरीद कर, इत्यादि कर सम्मिलित है।

जीएसटी का भारत मे आगमन अप्रत्यक्ष कर सुधारों के क्षेत्र में एक अति महत्वपूर्ण कदम है। जीएसटी, मूल्य वर्धित कर सिद्धांत पर आधारित है जो प्रत्येक चरण में जोड़े गए मूल्य पर कराधान की अनुमति देता है, जबकि इनपुट वस्तुओं और सेवाओं पर भुगतान किए गए करों के लिए क्रेडिट प्रदान करता है। इस प्रकार यह तंत्र करों के कैस्केडिंग प्रभाव को कम करने में मदद करता है और अधिक कुशल और पारदर्शी कराधान प्रणाली को बढ़ावा देता है। यह एक गंतव्य-आधारित उपभोग कर मॉडल का अनुसरण करता है, जहां निर्माता से अंतिम उपभोक्ता तक आपूर्ति श्रृंखला के हर चरण पर कर लगाया जाता है।

जीएसटी को विभिन्न कर स्लैबों में संरचित किया गया, जिसमें वस्तुओं और सेवाओं को अलग-अलग दरों में वर्गीकृत किया गया है- अर्थात्, 5%, 12%, 18% और 28% - साथ ही आवश्यक वस्तुओं और उपकर के अधीन कुछ वस्तुओं के लिए विशिष्ट दरें। इसके अतिरिक्त, कुछ वस्तुओं और सेवाओं को जीएसटी के दायरे से बाहर या छूट के रूप में वर्गीकृत किया गया है जिसमें बिजली, शराब, पेट्रोल इत्यादि सम्मिलित है।

जीएसटी ढांचा केंद्रीय जीएसटी (सीजीएसटी) और राज्य जीएसटी (एसजीएसटी) दोनों घटकों के साथ दोहरे मॉडल के माध्यम से संचालित होता है। इस मॉडल के तहत, केंद्र और राज्य दोनों सरकारों को अपने संबंधित अधिकार क्षेत्र के भीतर वस्तुओं और सेवाओं की अंतर-राज्य आपूर्ति पर जीएसटी लगाने और एकत्र करने का अधिकार है। इसके अलावा, अंतरराज्यीय लेनदेन और आयात के लिए, एकीकृत जीएसटी (आईजीएसटी) केंद्र सरकार द्वारा लगाया जाता है, जिससे राज्यों में निर्बाध क्रेडिट तंत्र और कर दरों में एकरूपता सुनिश्चित होती है।

जीएसटी से संबंधित 101वें संवैधानिक संशोधन का अवलोकन:

भारत में वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) की शुरूआत 2016 में 101वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के पारित होने के साथ हुई। इस ऐतिहासिक संशोधन ने भारत के कर सुधारों में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर चिह्नित किया, जिसका लक्ष्य एक एकीकृत अप्रत्यक्ष कर संरचना की नीव रखना था। 101वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम ने जीएसटी कार्यान्वयन का मार्ग प्रशस्त करने के लिए भारत के संविधान में महत्वपूर्ण परिवर्तन पेश किए। इन मौलिक परिवर्तनों में से एक था **विशिष्ट अनुच्छेदों का सम्मिलन** जैसे:

1. अनुच्छेद 246ए: "अनुच्छेद 246 और 254 में निहित किसी भी बात के बावजूद, संसद और, खंड (2) के अधीन, प्रत्येक राज्य के विधानमंडल को संघ या उसके द्वारा लगाए गए माल और सेवा कर के संबंध में कानून बनाने की शक्ति है।
   संसद के पास माल और सेवा कर के संबंध में कानून बनाने की विशेष शक्ति है जहां माल, या सेवाओं, या दोनों की आपूर्ति अंतर-राज्य व्यापार या वाणिज्य के दौरान होती है।"[4] सरल शब्दों में, अनुच्छेद 246ए के तहत यह व्यवस्था की गयी की संसद को सीजीएसटी व आईजीएसटी तथा राज्यों को एसजीएसटी लगाने का अधिकार होगा।
2. अनुच्छेद 269ए: "अंतर-राज्य व्यापार या वाणिज्य के दौरान आपूर्ति पर माल और सेवा कर भारत सरकार द्वारा लगाया और एकत्र किया जाएगा और ऐसे कर को संसद द्वारा प्रदान किए गए तरीके से संघ और राज्यों के बीच विभाजित किया जाएगा। वस्तु एवं सेवा कर परिषद की सिफ़ारिशों पर कानून द्वारा।"[5]
3. अन्य, जीएसटी परिषद को संवैधानिक वैधता प्रदान करना, जीएसटी लगाने की शक्तियों का परिसीमन करना, और केंद्र और राज्य के बीच करों के वितरण के लिए तंत्र की रूपरेखा तैयार करना।
4. संशोधन के केंद्र में जीएसटी परिषद की स्थापना थी, जो एक संवैधानिक निकाय थी जिसमें केंद्रीय वित्त मंत्री की अध्यक्षता में केंद्र और राज्य सरकारों के प्रतिनिधि शामिल थे। जीएसटी परिषद को कर दरों, छूट, सीमा, प्रशासनिक प्रक्रियाओं और केंद्र और राज्यों के बीच विवादों को हल करने सहित जीएसटी के विभिन्न पहलुओं पर सिफारिशें करने की जिम्मेदारी सौंपी गई
5. 101वें संवैधानिक संशोधन की एक और महत्वपूर्ण विशेषता केंद्र और राज्यों के बीच जीएसटी लगाने और एकत्र करने की शक्तियों का परिसीमन था। इसने कराधान शक्तियों पर स्पष्टता प्रदान की, यह निर्दिष्ट करते हुए कि संसद के पास अंतरराज्यीय आपूर्ति पर एकीकृत माल और सेवा कर (आईजीएसटी) लगाने और एकत्र करने का अधिकार होगा, जबकि संसद और राज्य विधानमंडल दोनों के पास केंद्रीय कर लगाने और एकत्र करने की समवर्ती शक्तियां होंगी।
6. इसके अलावा, 101वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम ने पांच साल की अवधि के लिए जीएसटी में परिवर्तन से उत्पन्न होने वाले किसी भी राजस्व नुकसान को संबोधित करने के लिए राज्यों के लिए एक मुआवजा तंत्र के निर्माण की सुविधा प्रदान की। इस मुआवजे का उद्देश्य राज्यों के लिए एक सुचारु परिवर्तन सुनिश्चित करना और नई कर व्यवस्था को अपनाने के परिणामस्वरूप संभावित राजस्व कमी की भरपाई के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना था।

संक्षेप में, 101वें संवैधानिक संशोधन ने संवैधानिक ढांचे की स्थापना, जीएसटी परिषद को सशक्त बनाने, कराधान शक्तियों को परिभाषित करने और संक्रमणकालीन चुनौतियों का समाधान करने के लिए तंत्र प्रदान करके भारत में जीएसटी के कार्यान्वयन की नींव रखी, जिससे देश में कर संरचना एक नए युग की शुरुआत हुई।

जीएसटी का कार्यान्वयन:

भारत में जीएसटी कार्यान्वयन कई चरणों में हुआ जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है:

- **संवैधानिक संशोधन का अधिनियमन:** प्रारंभिक चरण अगस्त 2016 में 101वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम के पारित होने के साथ शुरू हुआ। इस संशोधन ने जीएसटी के कार्यान्वयन, कानूनी ढांचे की स्थापना, केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का परिसीमन और सशक्तीकरण के लिए संवैधानिक आधार तैयार किया।
- **जीएसटी परिषद का गठन:** इसके बाद, वस्तु एवं सेवा कर परिषद का गठन किया गया, जिसमें केंद्र और राज्य सरकारों के प्रतिनिधि शामिल थे। परिषद ने जीएसटी से संबंधित निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जैसे कर दरें, सीमाएं, नियम, विवाद समाधान तंत्र निर्धारित करना और कार्यान्वयन प्रक्रिया की देख-रेख करना।
- **जीएसटी कानूनों और नियमों का मसौदा तैयार करना:** अगले चरण में जीएसटी कानूनों, नियमों और प्रक्रियाओं का मसौदा तैयार करना शामिल था। जीएसटी के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श करने के लिए कई उप-समितियों का गठन किया गया, जिससे केंद्रीय जीएसटी (सीजीएसटी) कानून, राज्य जीएसटी (एसजीएसटी) कानून, एकीकृत जीएसटी (आईजीएसटी) कानून और पंजीकरण, भुगतान, फाइलिंग को नियंत्रित करने वाले जीएसटी नियम तैयार किए गए।
- **आईटी बुनियादी ढांचे की तैयारी - जीएसटीएन:** कार्यान्वयन प्रक्रिया के लिए मजबूत सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) बुनियादी ढांचे की स्थापना की भी आवश्यकता थी। वस्तु एवं सेवा कर नेटवर्क (जीएसटीएन) को जीएसटी कार्यान्वयन के लिए प्रौद्योगिकी रीढ़ के रूप में स्थापित किया गया। जीएसटीएन ने ऑनलाइन पंजीकरण, रिटर्न फाइलिंग, कर भुगतान, चालान मिलान और अन्य अनुपालन-संबंधित गतिविधियों की सुविधा प्रदान की।

सिफ़ारिशें:

- **अनुपालन प्रक्रियाओं को सरल बनाएं:** जीएसटी के तहत अनुपालन प्रक्रियाओं को सरल और तर्कसंगत बनाने के लिए निरंतर प्रयास किए जाने चाहिए। इसमें रिटर्न की संख्या कम करना, फाइलिंग प्रक्रिया को आसान बनाना और नियमों और विनियमों पर अधिक स्पष्टता प्रदान करना शामिल है। करदाताओं, विशेषकर छोटे व्यवसायों के लिए अधिक उपयोगकर्ता-अनुकूल इंटरफ़ेस और उन्नत मार्गदर्शन, सहज अनुपालन में मदद करेगा।

- **प्रौद्योगिकी बुनियादी ढांचे को मजबूत करना:** वस्तु एवं सेवा कर नेटवर्क (जीएसटीएन), बुनियादी ढांचे में निवेश करना और उसे मजबूत करना महत्वपूर्ण है।
- **कर वर्गीकरण और दरों पर स्पष्टता:** विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के लिए कर वर्गीकरण और दरों पर अधिक स्पष्टता प्रदान करना आवश्यक है। इसमें करदाताओं और कर अधिकारियों के बीच विवादों और भ्रम को कम करने के लिए जीएसटी परिषद से नियमित अपडेट और स्पष्टीकरण शामिल हैं।
- **एमएसएमई-अनुकूल उपाय:** छोटे और मध्यम आकार के उद्यमों के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए उपायों को लागू करना महत्वपूर्ण है। सरलीकृत अनुपालन मानदंड, प्रौद्योगिकी उपकरणों तक पहुंच प्रदान करना, लक्षित प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पेशकश और अनुपालन बोझ को कम करने से एमएसएमई को जीएसटी शासन में आसानी से संक्रमण करने में सहायता मिलेगी।
- **नीति स्थिरता और निरंतरता:** कर दरों और विनियमों में नीति स्थिरता और स्थिरता सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है। नियमों और दरों में बार-बार बदलाव से अक्सर भ्रम पैदा होता है और व्यावसायिक संचालन बाधित होता है। स्थिरता के लिए प्रयास करने से व्यवसाय योजना और निवेश के लिए अनुकूल पूर्वानुमानित कर वातावरण तैयार होगा।
- **चोरी-रोधी उपायों पर ध्यान दें:** चोरी-रोधी उपायों को मजबूत करने और बेहतर प्रवर्तन तंत्र सुनिश्चित करने से कर चोरी पर अंकुश लगाने और राजस्व संग्रह में सुधार करने में मदद मिलेगी। बेहतर डेटा विश्लेषण और निगरानी के लिए प्रौद्योगिकी का लाभ उठाने से कर चोरों की पहचान करने और राजस्व रिसाव को रोकने में मदद मिल सकती है।

निष्कर्षत:

वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) को लागू करने के लिए 101वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम का अधिनियमन भारत के कर इतिहास में एक महत्वपूर्ण क्षण के रूप में खड़ा है। एक जटिल और खंडित कर संरचना से एकीकृत और व्यापक जीएसटी व्यवस्था में परिवर्तन का उद्देश्य कर प्रणाली को सरल बनाना, आर्थिक विकास को बढ़ावा देना और एक निर्बाध राष्ट्रीय बाजार को बढ़ावा देना है। जीएसटी के बाद के युग में एक परिवर्तन देखा गया जिसने कर प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित किया, अधिक पारदर्शी और कुशल कर व्यवस्था की सुविधा प्रदान की। हालाँकि, जीएसटी कार्यान्वयन की यात्रा चुनौतियों से रहित नहीं थी। तकनीकी गड़बड़ियाँ, अनुपालन जटिलताएँ, कर दरों में अस्पष्टता और छोटे व्यवसायों पर बोझ जैसे मुद्दे कार्यान्वयन के बाद उभरे। इन चुनौतियों के कारण जीएसटी ढांचे को परिष्कृत करने और चिंताओं को दूर करने के लिए निरंतर सुधार, संशोधन और हितधारक परामर्श की आवश्यकता हुई। शुरुआती बाधाओं के बावजूद, जीएसटी ने भारत के कर परिदृश्य को नया आकार देने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन किया है। इसने कर अनुपालन को बढ़ावा दिया है, राजस्व संग्रह बढ़ाया है और अर्थव्यवस्था को औपचारिक बनाने में योगदान दिया है।

संदर्भ सूची

1. शाह, डी. (2023, अगस्त 21). "जीएसटी: जन्म और विश्वव्यापी समानता": टैक्स मैनेजमेन्ट इंडिया.कॉम. https://www.taxmanagementindia.com/visitor/detail_article.asp?ArticleID=11755

2. राजस्व विभाग (2015, दिसंबर 10), "परिचय (वैल्यू एडेड टैक्स)" वित्त मंत्रालय, भारत सरकार। https://dor.gov.in/hi/tax/

3. माल एवं सेवा कर परिषद, जीएसटी का संक्षिप्त इतिहास, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार

https://gstcouncil.gov.in/hi/brief-history-gst

4. केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड, वस्तु एवं सेवा कर, वित्त विभाग, भारत सरकार

https://cbic-gst.gov.in/hindi/constitution-amendment-act.html

5. केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड, वस्तु एवं सेवा कर, वित्त विभाग, भारत सरकार

https://cbic-gst.gov.in/hindi/constitution-amendment-act.html

अध्याय-28

उत्तराखण्ड हिमालयः प्राकृतिक आपदायें बनाम मानवकृत आपदायें

दलीपसिंह बिष्ट
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान,
अ. प्र. ब. राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, अगस्त्यमुनि
रुद्रप्रयाग, उत्तराखण्ड

भूतल पर उपस्थित मिट्टी, जल, पहाड़, वनस्पति, जीव-जन्तु, नमी, ताप, पदार्थ, गैसें व अन्य विभिन्न वस्तुओं के सामंजस्य को पर्यावरण कहा जाता है। वस्तुतः प्रकृति में ये सभी तत्त्व ऐसे गुथे हुए हैं, कि इनका अस्तित्त्व ही एक दूसरे पर निर्भर करता है और ये एक दूसरे के पूरक बनकर कार्य करते हैं। इसी कारण प्रकृति में एक भी तत्त्व का अस्तित्त्व खत्म होने पर पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाती है और इससे न केवल प्राकृतिक आपदाओं का दौर प्रारम्भ हो जाता है, वरन् मानवजाति के कष्टों में भी वृद्धि होने लगती है। प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखने वाले संसाधनों में वन एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है, जो कि न केवल मानवजाति की दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, वरन् पर्यावरण संरक्षण, संवर्धन व वायुमण्डल को स्वच्छ बनाये रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जहां एक ओर वन मिट्टी में ह्यूमस, नमी तथा उत्पादकता बढाने का कार्य करते है वहीं दूसरी ओर भू-क्षरण, भू-स्खलन एवं बाढ़, आदि की त्रासदी को रोकने में भी सहायक होते हैं। पर्यावरण के प्रति चेतना व चिंतन का प्रारम्भ सन् 1971 ई0 में, जबकि विश्व के सम्पन्न राष्ट्रों का ध्यान अधिक से अधिक घातक हथियारों के निर्माण पर केन्द्रित था, विश्व के 2200 वैज्ञानिकों के द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में जारी एक अपील से हुआ। जिसमें कहा गया था कि, *''मानव जाति के सम्मुख मुख्य समस्या युद्ध से बचाव की नहीं, बल्कि जनसंख्या वृद्धि, भूख और प्रदूषण की है।''*[1] पर्यावरण के प्रति जन चेतना के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में उत्तराखण्ड में *'चिपको'* तथा कर्नाटक में *'अप्पिको'* आंदोलनों को लिया जा सकता है, जो इस बात का प्रतीक है कि पर्यावरण संरक्षण व संवर्धन वर्तमान समय की गम्भीरतम समस्याओं में से एक है।

प्रकृति और मानव

प्राचीन धर्म ग्रंथों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि, *''प्रकृति व मनुष्य का सम्बन्ध अविछिन्न है तथा वन मानवता के अस्तित्त्व का एक महत्वपूर्ण भाग है।''* प्राचीन धर्म ग्रंथों में मनुष्य के जीवन रक्षक तत्त्वों को पंचतत्त्व का नाम दिया गया है। ये पंचतत्त्व हैं; वायु, जल, भूमि, वृक्ष एवं जीव-जन्तु। यद्यपि मनुष्य ने प्रारम्भ से ही प्रकृति का शोषण अपने हित में किया है, परन्तु आधुनिक युग में वैज्ञानिक अनुसंधानों का तकनीकी रूप में उपयोग करने से न केवल प्राकृतिक स्रोतों का दोहन बढ़ा है, वरन् इनका शोषण भी अत्यधिक सरल हो गया है। यही कारण है, कि संसाधनों की बढ़ती हुई कमी विशेषतः जलस्रोतों की कमी के कारण विचारकों के एक वर्ग को यह भी विश्वास होने लगा है, कि भविष्य में होने वाले युद्ध जल स्रोतों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों के नियंत्रण के लिये होंगे।[2] यह स्पष्ट

है, कि प्राकृतिक संसाधनों की कमी का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से वनों के विनाश से है, तो ऐसी स्थिति में उत्तराखण्ड हिमालय जो कि न केवल देश के लिए रक्षा कवच के रूप में कार्य करता है, बल्कि देश की जलवायु, जल की आवश्यकता एवं अन्य प्राकृतिक स्रोतों की आपूर्ति का भी क्षेत्र है, में पर्यावरणीय प्रदूषण व वनों की घटती हुई संख्या एक चिंता का विषय बन गया है। वस्तुतः पर्यावरण संरक्षण के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जागृति के कारण वर्तमान समय में यह प्रश्न क्षेत्रीयता की सीमाओं को लांघकर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय बन चुका है।[3]

आजादी के बाद वन विनाश

सन् 1947 के पश्चात उत्तराखण्ड हिमालय में भूस्खलन और भूकम्पों की संख्या में वृद्धि का प्रमुख कारण वनों का बड़े पैमाने पर दोहन तथा सड़कों एवं अन्य परियोजनाओं के निर्माण में डायनामाइटों द्वारा पहाड़ों को ध्वस्त किया जाना एवं मानव द्वारा अत्यधिक हस्तक्षेप रहा है। वनों के कटान से जहाँ नंगी पहाड़ीयों में भूक्षरण की घटनायें बढ़ी हैं, वहीं बड़ी-बड़ी मशीनों एवं डाइनामाइट के प्रयोग के कारण पहाड़ों की चट्टानों में दरारें पड़ने से वर्षा ऋतु में भूक्षरण व भूस्खलन की गति बढ़ गयी है।[4] इतिहास के अवलोकन करने पर भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि स्थानीय निवासियों के द्वारा पशुपालन व बढती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऊँचाई वाले क्षेत्रों में प्रारम्भ में बरसाती छप्परों के निर्माण के लिए वनों पर कुठाराघात किया।[5] वस्तुतः स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आवागमन के साधनों के विकास से नदी घाटियों के सुदूरवर्ती क्षेत्रों के वन भी मनुष्य की पहुंच से दूर नहीं रहे और सड़कों के दोनों तरफ फैले वनों के साथ ही साथ सुदूरवर्ती क्षेत्रों के वन भी निरंतर दोहन के शिकार होते चले गये। जनसंख्या की वृद्धि से शहरों के विकास के फलस्वरूप, शहरों में कंकरीट के जंगलों में जितनी तेजी से वृद्धि हो रही है, उतनी ही तेजी से प्राकृतिक वन क्षेत्र घटते जा रहे हैं[6] तथा पहाड़ में भी कंकरीट के जंगल लगातार बढते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप, खाद्य सामग्री की तलाश में बाघ जैसे खतरनाक पशुओं का लक्ष्य जंगलों के स्थान पर रिहायशी क्षेत्रों की ओर बढ़ता जा रहा है, जो कि इस बात का प्रतीक है, कि इस क्षेत्र के निवासियों का जन-जीवन दिन-प्रतिदिन कितना असुरक्षित होता जा रहा है।

पिछले कुछ दशकों से भूस्खलन, भूक्षरण तथा बाढ़ की विभीषिका से न केवल जन-धन की हानि हो रही है, वरन् इसके साथ-साथ वनों पर आधारित जन-जीवन भी बुरी तरह प्रभावित हुआ है। भले ही इससे जन-असंतोष बढ़ा हो, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि हिमालय के निवासियों ने भी विकास के विनाशकारी स्वरूप, जो कि वनों की निर्मम कटाई, बड़े बांध निर्माण, खनन और विलासितापूर्ण पर्यटन पर आधारित है, को स्वीकार कर लिया है। जिसके कारण पर्यावरणीय प्रदूषण का खतरा पहाड़ों पर लगातार बढ़ता जा रहा है और इस क्षेत्र के प्रबुद्ध लोगों का मैदानी क्षेत्रों की ओर निरंतर पलायन इस स्थिति को और भी अधिक गम्भीर बना रहा है।[7]

प्राकृतिक आपदायें बनाम मानवकृत आपदायें

वनों के अत्यधिक संख्या में कटने से भूक्षरण, भूस्खलन एवं भूकंप की बढ़ती समस्या के अतिरिक्त उत्तराखण्ड के अनेक गाँवों में पेयजल के प्राकृतिक स्रोत समाप्त होने के साथ-साथ भूमिगत जल का स्तर भी गिरता जा रहा है। प्राकृतिक जलस्रोतों में कमी का प्रमुख कारण घटता हुआ वनस्पति आवरण है। वस्तुतः घटते हुए वनस्पति

आवरण से उत्पन्न जलवायुवीय परिवर्तनों व बढ़ती हुई गर्मी के प्रभाव से उत्तराखण्ड से निकलने वाली नदियाँ, जो कि हिमखण्डों से निर्मित होती हैं, पर भी बुरा असर पड़ रहा है। जिसका प्रमुख कारण वनों की अनियमित कटाई, सड़क निर्माण की बढ़ती हुई गतिविधियाँ, बड़े बाधों के निर्माण में हो रही मशीनों एवं विस्फोटों का प्रयोग, यात्रियों की बढ़ती हुई संख्या, नित्य नयी खुल रही दुकानों की भट्टियाँ तथा पर्वतारोहियों, पर्यटकों एवं यात्रियों द्वारा काफी बड़ी मात्रा में फेंका गया कचरा और गंदगी, आदि है। जिस गंगा नदी के विषय में कहा गया है कि *"गंगे तव दर्शनात मुक्तिः"* अर्थात गंगा के दर्शन मात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। राजा भागीरथ के पुरखों का कलुष धोने वाली वहीं गंगा, शहरों का मलमूत्र, फैक्ट्रियों का कचरा ढोते-ढोते इस सीमा तक प्रदूषित हो चुकी है कि सारे उत्तरी भारत को सुख-समृद्धि देने वाली गंगा नाना प्रकार की बीमारियों की जननी बन गई है। अतः जब नदियों के उद्गम स्थल ही प्रदूषण से अछूते नहीं रहेंगे, तो मैदानी क्षेत्रों पर उनका दुष्प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता है।

उत्तराखण्ड जो कि पूरे देश में अच्छी वन सम्पदा वाले क्षेत्रों में गिना जाता है, अनियंत्रित वन कटान, सड़कों तथा बाध निर्माण में किये जा रहे भारी विस्फोटों के कारण इस हलचल से अछूता नहीं रहा है। परिणामस्वरूप हिमालय का यह क्षेत्र कई बार बाढ़, भूस्खलन, भू-क्षरण व बादल फटने की घटनाओं का शिकार हो गया है तथा हो रहा है, सन् 1970 की बरसात में अलकनन्दा में आई भयानक बाढ़ अपने साथ कई गाँव, सड़कें, पुल, पशु व मनुष्यों आदि को बहाकर ले गयी। इस बाढ़ का प्रभाव पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सिंचाई व्यवस्था व फसलों पर भी पड़ा और अलकनन्दा के इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों को अपना भविष्य अंधकारमय लगने लगा। इसी प्रकार के भूस्खलन की घटना सन् 1978 में डबरानी नामक स्थान पर भागीरथी की सहायक नदी कनोडिया गाड में भी हुई। इस भयंकर भूस्खलन के कारण भागीरथी नदी में झील बन गई और इस झील के टूटने के कारण सम्पूर्ण गंगा घाटी में बाढ़ आने के फलस्वरूप सैकड़ों एकड़ जंगल, कृषि भूमि, जानवर तथा नदी के मार्ग में स्थित क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर विनाश हुआ। सन् 1977 में तवाघाट (पिथौरागढ़), सन् 1979 में कोयना (चमोली),[8] सन् 1980 में पुनः डबरानी नामक स्थान पर भारी भूस्खलन के कारण दस व्यक्तियों की घटना स्थल पर ही मृत्यु हो गई। इसी वर्ष उत्तरकाशी के समीप ज्ञानसू नामक गाँव में भारी भूस्खलन हुआ, जिसमें 42 व्यक्ति मलवे के नीचे दबकर मर गये थे। इसी समय चम्बा के पास रांगड गाँव में भूस्खलन द्वारा एक ही परिवार के चार व्यक्ति दब कर मर गये। इसके अलावा सीमांत जनपद पिथौरागढ़ के तवाघाट में तथा सन् 1981 की मध्य रात्रि को शिशना गाँव के अनेक व्यक्तियों की भूस्खलन के द्वारा मृत्यु हुई तथा बड़े पैमाने पर कृषि भूमि व मकानों को क्षति पहुंची। सन् 1986 में सिरवाडी गाँव (टिहरी), सन् 1991 में गोपेश्वर (अलकनंदा तथा बालशिखा नदियों के बीच बसे गाँवों मे) तथा अगस्त 1998 को ऊखीमठ (रूद्रप्रयाग) एवं मालपा (पिथौरागढ़) में हुआ भू-स्खलन आज भी जनमानस की याद में ताजा है। सन् 1991, में उत्तरकाशी में आये भीषण भूकम्प ने उत्तरकाशी जिले को गम्भीर क्षति पहुंचाई।[9] सितम्बर, 1993 में अतिवृष्टि से सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र में भयंकर क्षति हुई।[10] इन पर्यावरणीय हलचलों के विषय में प्रसिद्ध भू-वैज्ञानिक डा0 के0 एस0 वाल्दिया का मानना है, कि *"हिमालय क्षेत्र में अंदरूनी रूप में कई विशाल भूस्खलन निरंतर सक्रिय हैं, जो कि वर्ष 1991 के भूकम्प के बाद और भी सक्रिय हो गये हैं और परिणामतः पूरे हिमालय क्षेत्र में जगह-जगह भूस्खलन की प्रक्रिया तेज हो गयी है।"*[11] जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण 10-11 अगस्त 1998 को रूद्रप्रयाग जनपद की ऊखीमठ तहसील में हुए भारी भूस्खलन के कारण 200 से अधिक लोग मौत के आगोश में समा गये तथा दर्जनों गाँव इस त्रासदी में पूरी तरह

एवं आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो गये। इसके तुरन्त बाद 18 अगस्त, 1998 को चट्टानें खिसकनें एवं बादल फटने के कारण पिथौरागढ़ जनपद के मालपा गाँव का अस्तित्व ही मिट गया।[12] इस विनाशलीला में 60 मानसरोवर यात्रियों सहित 225 से अधिक लोग दबकर मर गये और इसी दिन चट्टानें खिसकने से मंदाकनी की सहायक नदी मधुगंगा में एक कृत्रिम झील के बन जाने से पूरी अलकनंदा घाटी में बसे नगरों, कस्बों एवं गाँवों पर मौत का साया मंडराने लगा। इसके बाद 28 मार्च, 1999 की रात चमोली जनपद में आये भूकंप[13] में 150 से अधिक लोगों को अपनी जान गवानी पड़ी तथा हजारों लोग इस भीषण आपदा में घायल एवं बेघर हो गए, परन्तु इतनी तीव्रता वाले भूकंप आने के बाद भी पृथ्वी अभी शांत नही हुई है। भूवैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि इस सदी के शुरूवात से कभी भी इससे बड़े भूकंप आने की सम्भावनायें है।[14] इसके बाद 16-17 जून 2013 को केदारनाथ में आई आपदा से हजारों लोग मौत के मूंह में समा गये तथा लाखों लोग बेघरवार हो गये। इस त्रासदी में हुई जन-धन, पशु आदि की हुई हानि का आंकलन करना मुश्किल कार्य है जिसका अभी तक अनुमान ही लगाया जा रहा है। 12 नवम्बर 2023 को उत्तरकाशी सिलक्यारा निर्माणाधीन सुरंग में हुआ हादसा तो अभी ताजा-ताजा है जिसमें 41 मजदूरों की जान पर आ पड़ी थी। जिनको 17 दिन बाद सुरंग से बाहर निकाला जा सका। यही नही लगातार हो रही बारिश तथा बादल फटने की घटनाओं ने पूरे उत्तराखण्ड को ही दहलाकर रख दिया है। इसके अतिरिक्त अतिवृष्टि, अनावृष्टि जैसी घटनायें तो लगातार होती ही रहती है लेकिन वर्तमान समय में इनका बढ़ना, पर्यावरणीय असंतुलन बढ़ने का ही संकेत है।

आस्था परम्पराओं में वन

प्राचीनकाल से ही वनों को न केवल देवी-देवताओं के रूप में पूजना, वरन् वन देवी व पवित्र वनों का विचार भी वनों को न काटने व वनों के संरक्षण से ही संबंधित माना जा सकता है। इसी प्राचीन संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के प्रयासों के कारण उत्तराखण्ड में आज भी कई ऐसे पवित्र वन क्षेत्र हैं, जहाँ पर स्थानीय निवासी वन काटना तो दूर जूता पहनकर भी नहीं जाते हैं और उनका संरक्षण सभी का संयुक्त दायित्त्व समझा जाता है। रुद्रप्रयाग जिले में स्थित हरियाली देवी वन क्षेत्र इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है, जहाँ स्थानीय निवासी आज भी इस प्रथा का पालन करते हुए इस क्षेत्र के वनों को संरक्षण प्रदान कर रहे हैं। कुछ समय पूर्व तक मंदिरों अथवा धार्मिक स्थलों के आस-पास की भूमि पर वृक्षारोपण करना आवश्यक था और उनके रखरखाव पर भी ध्यान दिया जाता था। ऐसे स्थान मुख्यतः गाँवों के पास होते थे और धार्मिक आस्था के बल पर इनको अच्छी तरह सुरक्षित रखा जाता था। इससे इन क्षेत्रों में वनों को संरक्षण मिलने से उनका विकास हुआ। पहाड़ में आज भी कई ऐसे स्थान है जहां पय्या को देवताओं को चढ़ाया जाता है। वस्तुतः वन मनुष्य के लिए ही नहीं, अपितु समस्त प्राणियों के लिए महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक हैं। वृक्षविहीन भूमि मरूस्थल हो जाती है, क्योंकि वहाँ वर्षा नहीं होती है वनों से जल की प्राप्ति होती है, और जल प्राणदायी है इसलिए भारतीय ऋषियों ने वृक्ष काटना पाप और लगाना पुण्य माना है।[15] ''मत्स्यपुराण'' में कहा गया है कि, *''दश कूप समावापी, दशवापी समोह्दः दश-ह्द-समः पुत्रो, दस पुत्रसमो द्रुमः।* अर्थात; दस कुओं के बराबर एक बावड़ी है, दस बावडियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।[16] यही कारण है कि पहाड़ में आज भी निसंतान दम्पतियां पीपल का पेड़ लगाकर उसे पुत्र के समान पालती है और पय्या तथा पीपल को काटना तो दूर हथियार लगाना भी पाप माना जाता है, जिसको कई गांवों के लोग आज भी पूरी आस्था से निभाते है। इसके अतिरिक्त सामुदायिक भूमि पर भी ऐसे वन उगाये जाते थे जो कि गाँव वालों की

चारा तथा ईंधन की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। ऐसे वनों की कटाई छंटाई गाँवों वालों द्वारा बनाए गये औपचारिक नियमों के अन्तर्गत की जाती थी। इसके अतिरिक्त वन्य संरक्षण के प्रति रूचि व चेतना के कारण इस क्षेत्र में कई व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत प्रयासों से भी वृक्षों का रोपण करके वन क्षेत्रों को बढ़ाने के प्रयास जारी हैं। उत्तराखण्ड की महिलाओं में भी वनों के संरक्षण व पोषण के प्रति चेतना व प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध का विचार प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। सन् 1970 में गढ़वाल क्षेत्र की महिलाओं के द्वारा '*चिपको* ' की रणनीति अपनाकर पुनः अपने वनों को बचाने के लिए उपयोग करके इस सम्बन्ध को और भी सुदृढ़ करने का प्रयास किया गया।[17]

नीतियां और सुझाव

वस्तुतः किसी भी कार्यक्रम का औचित्य तभी सार्थक हो सकता है, जब कि स्थानीय जनता को विश्वास में लेकर यह ज्ञान कराया जाय, कि प्राकृतिक संसाधन व जैविक-विविधता उनकी धरोहर है और इसी के संरक्षण में उनका प्रत्यक्ष और परोक्ष विकास व हित निहित है। इसलिए कार्यक्रमों की सफलता के लिए स्थानीय जनता की मानसिकता को बदलना भी आवश्यक है, तभी दुर्लभ तथा संकटग्रस्त पादप प्रजातियाँ बचायी एवं संरक्षित की जा सकती हैं। स्थानीय जनता को विश्वास में लेकर कार्य करना इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि संरक्षित क्षेत्रों का तात्पर्य है कि ऐसे क्षेत्रों को मानवीय गतिविधियों से मुक्त रखना। इसलिए इनको ऐसे क्षेत्रों में बनाया जाता है जहाँ पर जनसंख्या का घनत्त्व कम है, परन्तु इनके निर्माण की प्रक्रिया में स्थानीय जनता को विश्वास में नहीं लिया जाता है, तो ऐसे क्षेत्रों के लोगों का उग्र व असंतुष्ट होना स्वाभाविक है। अतः ये उपाय तभी सफल हो सकते हैं, जबकि जनता व सरकार के बीच एक तादात्म्य विकसित हो, स्थानीय निवासियों के सहयोग से कार्य किया जाय तथा स्थानीय निवासियों की आवश्यकता के अनुसार अन्य विकल्प भी खोजे जाएं, जिससे योजनाओं की सफलता की गारंटी मिल सके। यहां के लिए ऐसी विकास योजनाओं का निर्माण किया जाय जोकि पर्यावरण विकास के साथ-साथ इस क्षेत्र के आर्थिक विकास में भी अहम् भूमिका निभा सकें। क्योंकि पर्वतीय अंचलों में ही नहीं बल्कि सर्वत्र यह धारणा बलवती हो रही है, कि विकास का वर्तमान स्वरूप ही विनाश के लिए उत्तरदायी है। इस समस्या का समाधान सरल नहीं है, क्योंकि बिना विकास के मानव जाति का अस्तित्त्व कायम रहना भी कठिन है। अतः इस स्थिति के सर्वोत्तम समाधान के रूप में संतुलित विकास पर विचार किया जाना आवश्यक है, क्योंकि हम पर्यावरणीय पक्ष को नजरअंदाज करके जिस तेजी से केवल तकनीकी विकास की ओर बढ़ रहे हैं, वास्तव में वही विनाश का मार्ग है।[18] ऐसे विकास के स्थान पर एक संतुलित विकास की योजना का निर्माण किया जाना चाहिए। इसके अलावा भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार वैज्ञानिक वन तकनीकी का विकास किया जाना भी आवश्यक है तथा विरल वनों को सघन बनाये जाने हेतु सघन वनीकरण कार्यक्रमों में जनता की भागीदारी को बढ़ाते हुए एक जनांदोलन के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। यही नही पहाड़ो में बड़े बांधों के निर्माण एवं भारी मशीनों द्वारा पहाड़ो को तोड़ना जैसे कार्य के विषय में पुर्नविचार करने की आवश्यकता है। यह भी एक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी भौगोलिक क्षेत्र में पर्यावरण एवं वन संरक्षण की योजनायें वहाँ के स्थानीय निवासियों के समर्थन व सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकती है। चूँकि वन बहुल क्षेत्र की जनता वनों के महत्त्व को भली-भाँति जानती हैं। अतः यदि स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाय,[19] तो जनता का सहयोग मिलना कठिन कार्य नहीं है।

संदर्भ सूची

1. पचोरी, नीरू; 1991: पर्यावरण प्रदूषण वन और महिलाएं, (अतुल शर्मा द्वारा (सं.): पर्यावरण और वन संरक्षण, समस्या एवं समाधान) तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ-37.
2. Thomas F. Homer-Dixon; 1996 : Environmental Scarcity, Mass Violence and the Limits of Ingenuity. ***Current History***, November, Volume-95, No. 604, P. 662.
3. दृष्टि के दायरे में: बीजिंग रिपोर्ट-3, नवम्बर, 1995, पोस्टर भुवनेश्वरी महिला आश्रम अंजनीसैंण, टिहरी गढ़वाल.
4. नेगी, प्रीतमसिंह; 1994: उत्तराखण्ड हिमालय, वन विनाश: कारण और उपाय, भागीरथी प्रकाशन गृह, टिहरी, पृष्ठ-90-91.
5. Saklani, Pradeep; 1994 : ***Cultural Adapatability In Garhwal Himalaya: An EthnoArachaeological Study In Yamuna Valley,*** Unpublished Thesis, H.N.B. Garhwal University, Srinagar (Garhwal), P. 79-87
6. ओम कुमार; 1991: पर्यावरण प्रदूषण रोकने में वनों की भूमिका (अतुल शर्मा द्वारा सम्पादित पुस्तक पर्यावरण और वन संरक्षण, समस्या एवं समाधान) तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-31
7. अमर उजाला, जुलाई 21, 1995, मेरठ.
8. भट्ट चण्डीप्रसाद; 1991: वन एवं पर्यावरण (अतुल शर्मा (सं.)ः पर्यावरण और वन संरक्षण समस्या एवं समाधान से उद्धृत), संदर्भ संख्या-8, पृष्ठ-129
9. नैनीताल समाचार: वर्ष-11, अंक-24, अगस्त 1-14, 1988.
10. सरलादेवी; 1991: संरक्षण एवं विनाश, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल, पृष्ठ-239-240.
11. रावत, सूरतसिंह: भूकम्प के दो वर्ष बाद भी गाँव में पुनर्निर्माण का कार्य शुरू नहीं हो सका, 20 अक्टूबर, 1993, अमर उजाला, मेरठ.
12. रामगोपालसिंह; 1995ः ताकि बचा रहे हिमालय, हिमालय की जैव विविधता (संरक्षण में जनता की भागीदारी) जैव विविधता संरक्षक विभाग गो. ब. पन्त हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान, कोसी कटारमल, अल्मोड़ा, पृष्ठ-9
13. बाल्दिया, खडगसिंह; 1994ः संकट में हिमालय, नैनीताल, पृष्ठ-11
14. गर्ग, नंदकिशोर; भूस्खलन आकस्मिक नहीं, हिन्दुस्तान 30 अगस्त, 1999
15. पंत, लक्ष्मी प्रसाद; भूकंप और संवेदनशील शासन, नवभारत टाइम्स, 1 अप्रैल, 1999
16. अगली सदी के शुरू में बड़े भूकंप की आशंका, दैनिक जागरण 5 अप्रैल, 1999
17. विष्ट, नारायणसिंह; 1995: क्षेत्रीय अर्थशास्त्र, नारायण संस्थान, गोपेश्वर, पृष्ठ-64 या 173

18. नौटियाल, शिवानन्द; 1991: गढ़वाल की वन सम्पदा और पर्यावरण, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ-84

19. Merchant, Carolyn; 1995 : ***Earthcare Women and the Environment*****,** Routledge Newyork, P-19-20

अध्याय-29
भारत-जापान द्विपक्षीय समझौतों का सामरिक महत्व और वर्तमान स्थिति

महेन्द्र प्रकाश
अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ओबरा, सोनभद्र-231219

समृद्ध सांस्कृतिक, साहित्यिक और धार्मिक सम्बन्ध मिलकर भारत-जापान सम्बन्धों को एक सकारात्मक आधार प्रदान करते हैं। ऐतिहासिक रूप से, भारत-जापान सम्बन्ध एक हजार वर्षों से भी अधिक समय से अस्तित्व में है। ऐसा कहा जाता है कि जापान पहली बार सम्राट किनेमी (509-571 ई.) के शासनकाल के दौरान भारत के सम्पर्क में आया था। बौद्ध धर्म दोनों देशों के बीच पहली आम कड़ी थी, लेकिन यह वास्तव में दोनों देशों के बीच सीधे अपना रास्ता नहीं खोज पाया। कोरिया ने जापान को बौद्ध दर्शन से परिचित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।[i] इन सबके फलस्वरूप जापान के साथ अच्छे राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने में बेहतर सामंजस्य स्थापित हुआ। जहाँ तक प्रत्यक्ष राजनीतिक आदान-प्रदान का सवाल है, यह जापान के मेइजी शासन के दौरान आरम्भ हुआ था। भारत और जापान के बीच आधुनिक राजनीतिक सम्बन्धों की शुरुआत जापान-भारत एसोसिएशन की स्थापना से थी, जिसका गठन 1903 में हुआ था।[ii] इसलिए जहाँ तक भारत और जापान के बीच राजनीतिक सम्बन्धों का सवाल है, भारत की स्वतन्त्रता के बाद से ही दोनों देशों के बीच सम्बन्ध मधुर बने हुए हैं।

दूसरे विश्व युद्ध और शीत युद्ध की समाप्ति के पूर्व दोनों की बीच की अवधि में भारत और जापान की एक-दूसरे के प्रति सकारात्मक लोकप्रियता दूसरे विश्व युद्ध के बाद के राष्ट्रों के समुदाय में शामिल होने से रोकने के लिए पर्याप्त नहीं थी, जिन देशों का राजनीतिक रुझान बिल्कुल विपरीत था और वह था गुटनिरपेक्षता के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में चीन की मान्यता ने भारत के दृष्टिकोण को दर्शाया, जबकि जापान ने अपनी नीति शक्ति संतुलन और चीन को नियन्त्रित करने में सीमित रखा। इन मतभेदों ने प्रत्येक राष्ट्र के दृष्टिकोण को प्रभावित किया अन्य और गंभीर विश्व समस्याओं के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं को बढ़ाया। जिसके परिणामस्वरूप सभी राष्ट्र राजनीतिक और सुरक्षा की दृष्टि से एक-दूसरे के सम्बन्ध में धीरे-धीरे और सावधानी से आगे बढ़े; जहाँ उनके सम्बन्ध आर्थिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक मामलों तक ही सीमित रहे। राजदूतों के आदान-प्रदान के बावजूद भारत-जापानी राजनीतिक सम्बन्ध सद्भावना समूहों, संसदीय प्रतिनिधिमंडलों की आपसी यात्राएँ, व्यापार और अन्य समझौते तक सीमित रहे।[iii] राजनीतिक आदान-प्रदान का मुख्य आकर्षण उत्साह का था, जापानी प्रधानमन्त्री किशी नोबुसुके का मई 1957 की भारत यात्रा के दौरान स्वागत किया गया व भारतीय प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू की जापान यात्रा उसके बाद सफल रही।

1958 में इन यात्राओं के बाद भारत को अपना आधिकारिक विकास सहायता (ओडीए) प्राप्त हुआ।[iv] हालाँकि, जल्द ही उच्च-स्तरीय यात्राओं का आदान-प्रदान बिना किसी औपचारिकता के रह गया, जापान द्वारा तेजी से आर्थिक प्रगति करने के कारण द्विपक्षीय सम्बन्धों की विषय वस्तु पर प्रभाव प्रायः बना रहा है साथ ही शीत युद्ध की

वैश्विक स्थिति से भारत-जापान सम्बन्ध में कोई विशेष प्राप्ति नहीं हुयी। अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न जैसे भारत-चीन सीमा संघर्ष और भारत-पाकिस्तान युद्धों के दौरान जापान ने भारत को समर्थन देने या विरोध करने में कोई प्रत्यक्ष रुचि नहीं दिखायी। जापान ने अपने हितों को देखते हुए भारत और पाकिस्तान के साथ समान व्यवहार किया, उनकी भागीदारी में उनके विवादों में पड़े बिना आर्थिक विकास कार्यक्रम को जारी रखा। उस नीति के पीछे एक सामान्य अघोषित धारणा अपने 'सहयोगी के सहयोगी' की ओर झुकाव थी। इस दौरान भारत-पाकिस्तान संघर्ष, संयुक्त राष्ट्र में जापान के कूटनीतिक कदम आवश्यक रूप से शत्रुतापूर्ण नहीं थे, लेकिन सहायता के मोर्चे पर अमेरिका के तुरंत बाद जापान ने भी भारत को अपनी सहायता निलंबित कर दी और ऋण आदि के प्रवाह पर भी प्रतिबंध लगा दिया।[v]

शीत युद्ध की समाप्ति के साथ, भारत ने 1990 के दशक की शुरुआत में अपनी "पूर्व की ओर देखो" नीति शुरू की जो इसकी अर्थव्यवस्था के खुलेपन और उदारीकरण के साथ मेल खाती थी।[vi] हालाँकि, भारत के 1998 के परमाणु परीक्षण ने द्विपक्षीय सम्बन्धों में एक निम्नतर बिन्दु को चिह्नित किया। जापान ने सभी राजनीतिक आदान-प्रदान निलंबित कर दिए और यहां तक कि आर्थिक सहायता भी लगभग तीन वर्षों के लिए रोक दी गई। भारत और जापान के बीच जिस तरह से द्विपक्षीय सम्बन्ध विकसित हुए हैं, उसमें वर्ष 2000-2001 के बाद राजनीतिक और रणनीतिक परिवर्तन ही मुख्य आकर्षण हैं। जिसमें न सिर्फ नियमितीकरण हुआ है अपितु उच्च-स्तरीय राजनीतिक बैठकों के साथ-साथ सामान्य हितों के अतिव्यापी परिणामी क्षेत्रों का एक स्पष्ट रेखांकन भी दिखायी देता है। 'रणनीतिक और वैश्विक साझेदारी' को प्राप्त करने के लिए एक सुव्यवस्थित कार्य योजना के साथ सुरक्षा सहयोग जो कि वर्ष 2008 में भारत-जापान की संयुक्त घोषणा के साथ संभव हुआ, दोनों देशों के बीच महत्वपूर्ण मैत्री परिणामों में से एक है।[vii] दोनों देशों की कार्य योजना में मजबूत रक्षा सहयोग के अलावा विदेश मंत्री स्तर की रणनीतिक वार्ता, भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार और उनके जापानी समकक्ष के बीच नियमित परामर्श, उपकैबिनेट स्तरीय वरिष्ठ अधिकारियों की वार्ता और वार्षिक व्यापक सुरक्षा वार्ता की व्यवस्था की गई है। राष्ट्राध्यक्षों के बीच पारस्परिक उच्च-स्तरीय वैदेशिक यात्राओं को नियमित किया गया है।

मई 2022 में प्रधानमंत्री मोदी ने जापान-ऑस्ट्रेलिया-भारत-अमेरिका के सामूहिक हित के लिए जापान का दौरा किया। मार्च और सितम्बर 2023 में प्रधानमंत्री फुमिओ किशिदा ने भारत का दौरा किया और मई 2023 में, प्रधान मंत्री मोदी ने विशेष रणनीतिक और वैश्विक भागीदारी हेतु द्विपक्षीय समझौते के लिए जापान की यात्रा की और शिखर सम्मेलन की बैठकें कीं।[viii] वर्ष 2023 में दोनों देश क्रमशः G7 और G20 की अध्यक्षता रहे थे। इस दौरान दोनों नेताओं ने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में विभिन्न मुद्दों पर एक साथ काम करने के लिए अपनी प्रतिबद्धता की पुष्टि की और जापान-भारत सम्बन्धों को और विकसित करने के लिए सहमति व्यक्त की।[ix]

भारत-जापान सम्बन्ध: सांस्कृतिक व आर्थिक

भारत एवं जापान के बीच सम्बन्ध आमतौर पर आठवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म के माध्यम से प्रारम्भिक संपर्कों के माध्यम से होता है। जापान में बौद्ध धर्म को व्यापक रूप से अपनाने और जापानी लोगों के बीच भारत की एक छवि के उद्भव को नारा काल (710-784 ई) में देखा जा सकता है। 724 ईस्वी में सत्तासीन सम्राट शोमु ने जापान के लोगों को दुखों से बचाने के लिए और राष्ट्र को समृद्धि की ओर ले जाने के लिए बौद्ध विचारधारा और आचार संहिता को दो मुख्य बौद्ध सूत्रों के संश्लेषण के आधार पर अपनाया, स्वर्णिम प्रकाश सूत्र सत्तारूढ़ वर्ग और सजे हुए फूल सूत्र

सभी लोगों, जानवरों और वनस्पतियों और जीवों की समृद्धि के लिए अपनाया गया। सत्ता प्रायोजित बौद्ध धर्म के तहत, देश भर में मंदिरों का निर्माण किया गया था, जिसमें नारा के टोदायजी मंदिर को भिक्षुओं के लिए सूत्र का अध्ययन करने और इसके संदेश को फैलाने के लिए बनाया गया था। आगे चलकर शुरुआती आधुनिक अवधि के दौरान, जापान में समुद्री मार्गों को खोलने से भारतीय और जापानी संस्कृतियों के सम्बन्ध के दायरे में बदलाव आया। जापान में स्थितियां जो विविधीकरण और सांस्कृतिक संवाद के लिए अनुकूल थीं वह हिन्द महासागर के मार्गों का विस्तार भारत से दक्षिण -पूर्व और पूर्वी एशिया और यूरोप से जुड़ा हुआ था और इनके माध्यम से जापान के लिए बाहर से उत्पादों के लिए क्षेत्र का उभार हुआ और एक व्यापारी वर्ग इदो (1868 से टोक्यो), ओसाका, क्योटो के आसपास के शहरों में वाणिज्य और व्यापार के विस्तार में लगने लगे।

भारत को नील की खेती के लिए जाना जाता था और कपास को रंगाई करने के लिए इसका उपयोग किया जाता था। पूर्व और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में रंगाई सामग्री के रूप में नील का उपयोग किया गया था। नील से युक्त रंगे कपड़े, चमकदार और जलरोधक बनाने के विकास ने जापान में किसानों को छतरियों बनाने के लिए इसका उपयोग करने के लिए प्रेरित किया और इसकी लौ प्रतिरोधी गुणवत्ता के कारण, कपड़े का उपयोग जापान में अग्निशमन सेनानियों द्वारा भी किया गया। नील का उपयोग पेपर और धार्मिक पुस्तकों के कवर और कीड़ों से सुरक्षा के रूप में किया गया। नील ने पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया में लोगों की जीवन शैली में भी प्रवेश किया था जो कि पूर्ण रूप से भारतीय व्यापार के सम्बन्धों को जापान के साथ परोक्ष जोड़ता है।[x] आगे 17वीं शताब्दी में जापानी ने भारत सहित विदेशी तटों पर जाना प्रारम्भ कर दिया था। जापानी ने पूरी दुनिया को तीन भागों-होनचो (जापान), शिंतान (चीन), और तेनजिकु (भारत) में देखा। जापानी ने तब तक शिंतान को होनचो के बाहर एक देश के रूप में मान्यता दी थी, फिर भी बाकी दुनिया बुद्ध और बौद्ध धर्म की भूमि से जुड़ी थी, जिसे जापान के लोग तेनजिकु कहते थे। पुर्तगाली के साथ नये भौगोलिक जानकारी के बाद, विश्व को पाँच महाद्वीपों में बाँटा गया जो एशिया, यूरोप, लिविया (अफ्रीका), अमेरिका और मैगलानिका थे। महाद्वीपों में दुनिया का यह विभाजन समुद्री व्यापार मार्गों पर आधारित था।[xi]

भारत-जापान का सांस्कृतिक सम्बन्ध केवल धार्मिक नहीं था वरन कुछ दशकों पूर्व यह शैक्षिक भी रहा है। जापान ने नए एशिया के पुनरुत्थान में एक महत्वपूर्ण भागीदार के रूप में भारत की परिकल्पना की। मेइजी शासन ने एक विश्वविद्यालय में आधुनिक दृष्टिकोण का उपयोग करके भारत को फिर से अध्ययन करने के लिए आवश्यक समझा। भारतीय दर्शन और बौद्ध धर्म पर प्रामाणिक स्रोतों के रूप में, जिस पर भारत की छवि मुख्य रूप से पाली और संस्कृत में बनाई गई थी, संस्कृत और पाली हेतु 1899 में एक अध्ययन केन्द्र टोक्यो इंपीरियल विश्वविद्यालय (अब तोक्यो विश्वविद्यालय) में स्थापित की गई थी। बाद में बहुभाषी और बहु-धार्मिक समकालीन भारत पर आवश्यक अध्ययन के लिए टोक्यो विश्वविद्यालय में एक केन्द्र 1903 में स्थापित किया गया था और साथ ही उर्दू को 1911 में टोक्यो के विदेशी भाषा केन्द्र और 1921 में ओसाका के भाषा केन्द्र में अपनाया गया।[xii]

भारत-जापान का सांस्कृतिक आदान-प्रदान 1980 के दशक में जापान व उसके भारतीय समकक्षों के साथ आपसी मेलजोल के गतिविधियों में दिखायी देता है। जिसे जापान में पारम्परिक भारतीय प्रदर्शन कला के साथ उन्नत किया गया था और साथ में जापानी महीना का अवलोकन अक्टूबर और नवम्बर में 1987 में आयोजित किया गया था। इसने दोनों देशों के बीच घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्धों में बहुत योगदान दिया था। प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने अप्रैल 1988 के जापान में भारतीय उत्सव के उद्घाटन समारोह में भाग लिया।[xiii] नई दिल्ली में जापान फाउंडेशन का आरम्भ

दोनों देशों के बीच घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध के लिए एक कदम आगे था। 1994 के जनवरी में जापान फाउंडेशन ने नई दिल्ली में एक कार्यालय खोला गया।

आगे, दोनों देशों ने भारत-जापान सांस्कृतिक समझौते की 50वीं वर्षगांठ को 2007 में घोषणा की और भारत-जापान मैत्री और पर्यटन-संवर्धन वर्ष के रूप में दोनों देशों में सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया गया। जल्द ही जापान ने नालंदा विश्वविद्यालय के पुनर्निर्माण में सहयोग में रूचि दिखायी है, और वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए सहमति व्यक्त की है।[xiv] देखा वर्ष 2014 के अगस्त में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की जापान की यात्रा को भारत-जापान सम्बन्धों में एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में देखा गया है। प्रधानमंत्री मोदी की यात्रा की घोषणा करते हुए जापानी अधिकारी मीडिया ने कहा कि यह "प्रधानमंत्री के रूप में पहली पूर्ण विदेशी यात्रा है, जो पड़ोसी देशों को छोड़कर पहला है।" यह जापान की भारत के प्रति सम्मान की भावना का प्रतिबिम्बित करता है। इस यात्रा ने न केवल भारत-जापान के रिश्ते के लिए बहु-आयामी संदेश दिया, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के लिए भी आधार प्रदान किया।[xv] प्रधानमंत्री मोदी की जापान की यात्रा ने टोक्यो और नई दिल्ली के बीच भविष्य के सम्बन्धों को विकसित करने के लिए एक स्पष्ट स्वरुप निर्धारित किया है। वहीं भारत-जापान की आर्थिक साझेदारी किसी भी दृष्टि से निम्नतर या मध्यम नहीं है। विश्व युद्ध के बाद की अवधि के दौरान भारत-जापान द्विपक्षीय सम्बन्ध मुख्य रूप से आर्थिक आधारित थे। दो एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के बीच मौजूद पूरक को देखते हुए भारत और जापान के बीच आर्थिक सम्बन्धों में विकास की विशाल क्षमता रही है। भारत में जापान की रुचि भारत के बड़े और बढ़ते बाजार और उसके संसाधनों, विशेष रूप से मानव संसाधन सहित कई कारणों से बढ़ रही है। जापान और भारत के बीच एक मजबूत साझेदारी ने भी दोनों देशों को लाभान्वित किया है। जापान, भारत में भारी निवेश के अवसर के रूप में देखता है, जहाँ देश की जनसंख्या वृद्धि और विशाल आर्थिक क्षमता को पूरा करने के लिए गुणवत्ता बुनियादी ढांचे के विकास की भारी माँग है।

वर्ष 1958 से जापान भारत के विकास में भागीदार रहा है, जिसने ओडीए के रूप में ऋण प्रदान किया है। जापानी ओडीए विशेष रूप से बिजली, परिवहन, पर्यावरण परियोजनाओं और बुनियादी मानवीय जरूरतों से सम्बन्धित परियोजनाओं वाले क्षेत्रों में त्वरित आर्थिक विकास के लिए भारत के प्रयासों में पहल देने का कार्य करता रहा है। वर्ष 2021-22 में भारत में जापान का ओडीए संवितरण लगभग 3.28 बिलियन अमरीकी डालर था। अहमदाबाद-मुंबई हाई स्पीड रेल, पश्चिमी समर्पित फ्रेट कॉरिडोर (DFC), बारह नए औद्योगिक टाउनशिप के साथ दिल्ली-मुम्बई इंडस्ट्रियल कॉरिडोर, चेन्नई-बेंगालुरु इंडस्ट्रियल कॉरिडोर (CBIC) सभी मेगा प्रोजेक्ट्स हैं, जो भारत-जापान सहयोग पर आने वाले वर्षों में विकसित हो जायेंगे। जापानी सहायता के साथ दिल्ली मेट्रो परियोजना का परिचालन सभी के समक्ष है। देखा जाए तो अगस्त 2011 में लागू हुआ।[xvi] भारत-जापान कॉम्प्रिहेंसिव इकोनॉमिक पार्टनरशिप एग्रीमेंट (CEPA-सेपा) भारत द्वारा संपन्न ऐसे सभी समझौतों में सबसे व्यापक है और न केवल वस्तुओं का व्यापार करता है, बल्कि सेवाओं, आवाजाही, निवेश, बौद्धिक संपदा अधिकारों को भी सम्मिलित करता है।[xvii] सेपा दस वर्षों की अवधि में भारत और जापान के बीच कारोबार करने वाली 94 प्रतिशत से अधिक प्रशुल्क को समाप्त करने के मार्ग पर अग्रसर है।

भारत का जापान के लिए प्राथमिक निर्यात पेट्रोलियम उत्पाद, रसायन, तत्व, यौगिक, खनिज, मछली उत्पाद, धातु के अयस्क, आयरन-स्टील उत्पाद, कपड़ा यार्न, मशीनरी आदि रहे हैं; जापान से प्राथमिक आयात हैं मशीनरी, परिवहन उपकरण, लोहे और स्टील, इलेक्ट्रॉनिक सामान, कार्बनिक रसायन, मशीन उपकरण। जापान का भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) वर्ष 2016-17 में 4.7 बिलियन अमेरिकी डॉलर रहा है जिसमें पिछले वर्षों की तुलना में 80 प्रतिशत की वृद्धि देखी जा सकती है।[xviii] वित्त वर्ष 2022-23 के दौरान दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार कुल अमेरिकी डॉलर 21.96 बिलियन रहा है। इस अवधि के दौरान जापान से भारत में निर्यात 16.49 बिलियन अमेरिकी डॉलर था और आयात 5.46 बिलियन अमेरिकी डॉलर था। जापान में भारत का प्राथमिक निर्यात पेट्रोलियम उत्पाद, कार्बनिक रसायन हैं; समुद्री उत्पाद में मछली और क्रस्टेशियंस, मोलस्क और अन्य जलीय अकशेरुकी; मशीनरी में परमाणु रिएक्टर, बॉयलर,यांत्रिक उपकरण, रेलवे या ट्रामवे रोलिंग स्टॉक के अलावा अन्य वाहन, और उसके हिस्सों और सहायक उपकरण आदि हैं।

जापान से भारत का प्राथमिक आयात मशीनरी, विद्युत मशीनरी, लोहे और स्टील उत्पाद, प्लास्टिक सामग्री, धातुएं, मोटर वाहनों के कुछ हिस्सों आदि हैं। भारत में जापानी एफडीआई हाल के वर्षों में बढ़ा है लेकिन यह जापान के कुल बाहरी एफडीआई की तुलना में छोटा है। 2021-22 और 2022-23 में जापानी बाहरी एफडीआई क्रमशः 1.49 बिलियन अमरीकी डालर और 1.79 बिलियन अमरीकी डालर का था। समग्र रूप से, 2000 से जून तक 2023, भारत के लिए निवेश लगभग 39.94 बिलियन अमेरिकी डॉलर रहा है, जो एफडीआई के लिए स्रोत देश के बीच जापान पाँचवे स्थान पर है। भारत में जापानी एफडीआई मुख्य रूप से ऑटोमोबाइल, विद्युत उपकरण, दूरसंचार, रासायनिक, वित्तीय (बीमा) और दवा क्षेत्रों में रहा है। जापानी दूतावास व जापान बाहरी व्यापार संगठन (जेट्रो-जापान एक्सटर्नल ट्रेड आर्गेनाइजेशन) के नवीनतम संयुक्त सर्वेक्षण के अनुसार भारत में पंजीकृत जापानी कंपनियों की कुल संख्या अक्टूबर 2022 तक 1400 हैं, जिसमें विनिर्माण फर्मों की संख्या लगभग आधी है और 4901 व्यावसायिक प्रतिष्ठान हैं। जिसमें भारत में शाखा कार्यालयों के साथ -साथ स्थानीय सहायक कंपनियां भी शामिल हैं।[xix] जापान में 100 से अधिक भारतीय कंपनियां काम कर रही हैं। भारत का शुद्ध विदेशी प्रत्यक्ष निवेश वित्तीय वर्ष 2020-21 में अमेरिकी डॉलर 40.91 मिलियन रहा है।

भारत और जापान ने आगे बढ़कर तकनीकी क्षेत्रों (आईटी) में सहयोग को प्राथमिकता दिया है इसी के क्रम में इंडिया-जापान डिजिटल पार्टनरशिप, 2018 उपक्रम को लाया गया। जिसके माध्यम से डिजिटल आईसीटी प्रौद्योगिकियों पर अधिक ध्यान देने का प्रयास किया गया है। कर्णाटक की राजधानी बैंगलोर में पहले 'इंडिया-जापान स्टार्टअप हब' को जापानी बाजार और संभावित जापानी निवेशकों के लिए चयनित भारतीय स्टार्ट-अप की पहचान करने के लिए स्थापित किया गया है। पिछले वर्षों में, भारत और जापान के सरकारी एजेंसियों और निजी क्षेत्रों द्वारा डिजिटल साझेदारी के तहत विभिन्न गतिविधियाँ भी आयोजित की गयी हैं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य सेवा में भारत-जापान संयुक्त समिति की दूसरी बैठक भारत के स्वास्थ्य मंत्री और जापान की स्वास्थ्य मंत्री द्वारा 15 मई 2023 को भारत के आयुष्मान भारत कार्यक्रम एवं जापान के एएचडब्लूआईइन (एशियाई स्वास्थ्य पहल -2016 पर जापानी कार्यक्रम) के बीच तालमेल को गति दी गयी है। आयुष सूचना सेल को 11 मार्च 2023 को भारत के दूतावास, टोक्यो में लॉन्च भी किया गया है।[xx]

भारत-जापान के मध्य कूटनीतिक बदलाव: सामरिक महत्व

यदि भारत का जापान के साथ 1950 के दशक के सम्बन्धों का आरंभिक विश्लेषण हो तो पता चलेगा कि दोनों देश मजबूत द्विपक्षीय सहयोग के समर्थक रहे हैं। जैसा कि यह प्रामाणिक है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान की वैदेशिक रणनीति मुख्य रूप से तीन सिद्धांतों पर आधारित रही है, संयुक्त राष्ट्र केन्द्रित कूटनीति; स्वतन्त्रता प्राप्त देशों के साथ सम्बन्ध; और जापान का एशियाई राष्ट्र के रूप में पहचान। पहले दक्षिण पूर्व एशिया को भी दक्षिण एशिया में शामिल माना जाता था क्योंकि जब 1957 में प्रधानमंत्री नोबुसुकि किशी ने बतौर जापानी राष्ट्राध्यक्ष विश्व युद्ध के उपरान्त पहली विदेश यात्रा के रूप में दक्षिण पूर्व एशिया का राजनयिक दौरा किया, तो उनके यात्रा कार्यक्रम में भारत, पाकिस्तान और सीलोन (अब श्रीलंका) सम्मिलित था। भारत और पाकिस्तान प्रधानमंत्री इकेदा हयातो के 1961 के दक्षिण पूर्व एशिया के दौरे का भी हिस्सा थे।[xxi]

वर्ष 1967 में जब दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संगठन (आसियान) का गठन हुआ, तो आसियान की पहुँच दक्षिण एशिया को छोड़कर पश्चिम की ओर बर्मा (अब म्यांमार) तक ही सीमित थी। जापान उस समय अपने उच्च आर्थिक विकास के दौर में था, जापान की दक्षिण एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया और मध्य पूर्व के बीच स्थित इसके तेल की माँग ने मध्य पूर्व के तेल उत्पादक देशों के साथ सम्बन्ध बेहतर बनाये। लेकिन दक्षिण एशिया को लेकर जापान ने सम्बन्ध को जारी रखने का भी प्रयास किया और इस प्रकार भारत-जापान सम्बन्ध आम तौर पर नरम रहे।[xxii] भारतीय लौह अयस्क ने जापान के इस्पात उद्योग में योगदान दिया, जिसके माध्यम से जापान ने द्वितीय विश्व युद्ध के हानि की भरपायी की, लेकिन दोनों देशों के बीच सम्बन्ध घनिष्ठ होने के बजाय केवल सौहार्दपूर्ण थे, क्योंकि भारत का गुटनिरपेक्षता के मानक में विश्वास था, अमेरिका के साथ जापान के रिश्ते ने भारत को जापान से औपचारिक सहयोग तक ही सीमित रखा।[xxiii]

जापान की खुली बाजार अर्थव्यवस्था के विपरीत भारत सीमित आर्थिक प्रणाली ने घनिष्ठ आर्थिक सम्बन्धों के विकास को अवरुद्ध कर दिया। जो लम्बे समय तक नहीं चला एवं इस स्थिति में बदलाव का पहला संकेत 1980 के दशक में सामने आया जब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 1969 और 1982 में जापान का दौरा किया, जबकि 1984 में जापानी प्रधानमंत्री नकासोने की भारत यात्रा 23 साल पहले इकेदा हयातो की यात्रा के बाद किसी जापानी प्रधान मंत्री की पहली यात्रा थी। उसके बाद 1984 में सत्ता में आए प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने 1985 में और फिर 1988 में जापान का आधिकारिक दौरा किया। 1980 के दशक में भारत अपने विदेशी पूंजी प्रतिबंधों में ढील दे रहा था जिससे जापान की सुजुकी मोटर कंपनी (बाद में सुजुकी मोटर कॉर्पोरेशन) ने अपनी कारों का निर्माण भारत में आरम्भ किया।[xxiv] यह द्विपक्षीय सम्बन्धों की विशेष पहल थी क्योंकि 1983 में जापान ने भारत को अपने येन मूल्य के ऋण स्वीकृत किये।

शीत युद्ध समाप्ति के बाद भारत व जापान के सम्बन्ध नवीन परिस्थितियों के आधार पर परिवर्तित हुए। आपातकालीन सहायता भी जापान की सक्रिय भारत के प्रति नीति की अभिव्यक्ति थी। जब अमेरिका और यूरोप खाड़ी संकट से निपटने में व्यस्त थे और एशियाई देशों द्वारा अनुभव किए जा रहे आर्थिक संकटों पर उनका ध्यान बहुत कम था, तो वह जापान संसद निचले सदन के अध्यक्ष योशियो सकुराउची (1990-1993) थे जिन्होंने एशियाई कूटनीति को अधिक प्राथमिकता देने के उद्देश्य से भारत को सहायता के लिए एमओएफए के आह्वान का जवाब दिया। उन्होंने ऋण प्राप्त करने के लिए सत्तारूढ़ पार्टी (लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी) के तीन शीर्ष अधिकारियों और वित्त मंत्री की पैरवी की। सकुराउची ने कई वर्षों (1997-2002) तक जापान-भारत एसोसिएशन के अध्यक्ष के रूप

में कार्य किया, और भारत के रणनीतिक महत्व के आधार पर जापान-भारत सम्बन्धों को बेहतर बनाने के लिए काफी प्रयास किए।[xxv] तत्कालीन भारतीय वित्त मंत्री मनमोहन सिंह बार-बार 2004 में प्रधानमंत्री बनने के बाद जापान की आपातकालीन सहायता के लिए आभार व्यक्त किया था। भारत की ओर से पी वी नरसिम्हा राव 1991 में प्रधानमंत्री बने और उन्होंने 1992 में भारत-जापान राजनयिक सम्बन्धों की 40वीं वर्षगांठ पर जापान का दौरा किया। जापान ने प्रधानमंत्री राव की यात्रा को भारत के साथ परमाणु अप्रसार पहल के विश्वव्यापी विस्तार को आगे बढ़ाने के एक उत्कृष्ट अवसर के रूप में देखा। लेकिन भारत का उद्देश्य आर्थिक उदारीकरण एजेंडे के हिस्से के रूप में जापान से अधिक प्रत्यक्ष निवेश प्राप्त करना था, जिसे भारत ने 1991 में शुरू किया था। आर्थिक उदारीकरण के साथ-साथ भारत ने 1993 में अपनी "पूर्व की ओर देखो" नीति निर्धारित की तथा निवेश, व्यापार और प्रौद्योगिकी के सम्बन्ध में जापान से बहुत उम्मीदें थीं।[xxvi]

1991 में शीत युद्ध की समाप्ति के बाद अमेरिका और अन्य देशों के मध्य जापान ने भारत से अपने सम्बन्धों में सुधारने की दिशा में सबसे तेज था। अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने फरवरी 1998 में भारत की यात्रा निर्धारित की थी, लेकिन यह निर्धारित यात्रा आगामी भारतीय आम चुनावों के कारण स्थगित कर दी गई और फिर मई में भारत के परमाणु परीक्षणों के बाद रद्द कर दी गई।[xxvii] भारत-जापान की सामरिक सम्बन्धों में 1990 के दशक में कोई प्रगति नहीं हुई थी, जिसका मुख्य कारण परमाणु परीक्षण था। भारत के प्रति जापान में विद्वेष तब बढ़ गया जब भारत न केवल 1996 में व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (सीटीवीटी) में शामिल होने में विफल रहा, बल्कि भारत ने 1998 में दूसरा परमाणु परीक्षण (1974 में पहला) किया।

भारत का परमाणु परीक्षण भारत-जापान के लिए सम्बन्धों को आगे ले जाने की चुनौती थी क्योंकि जापान ने परमाणु बमबारी का अनुभव किया था। दूसरी ओर, भारत इस बात से आश्चर्यचकित था कि अमेरिकी परमाणु छत्रछाया से संरक्षित देश के रूप में जापान स्वायत्त रक्षा क्षमता हासिल करने के उद्देश्य से परमाणु परीक्षण करने के लिए भारत की आलोचना भी करेगा, लेकिन चीन के परमाणु परीक्षण पर अपनी प्रतिक्रिया नहीं देगा। जापान ने किसी भी आधिकारिक विकास सहायता (ओडीए) को तुरंत निलंबित करके भारत के परमाणु परीक्षणों का जवाब दे दिया। वित्त वर्ष 1986 से (वित्त वर्ष 1990 को छोड़कर) भारत ने जापान से सबसे अधिक ओडीए के रूप में सहायता प्राप्त की थी। लेकिन येन ऋण जो उस सहायता का मूल था, वित्त वर्ष 1998 में बहुत कम कर दिया गया था और साथ ही वित्त वर्ष 1999 में कोई नया ऋण जापान द्वारा भारत को नहीं स्वीकृत किया गया।[xxviii]

1990 के दशक में उभरे जापान-भारत सम्बन्धों में मेल-मिलाप ने 2000 के दशक के मध्य तक गति पकड़ ली। जिसका कारण अगस्त 2000 में प्रधानमंत्री योशिरो मोरी की भारत यात्रा थी और उस यात्रा के दौरान भारत-जापान वैश्विक साझेदारी के निर्माण पर सहमति हुई थी। दोनों विदेश मंत्रालयों ने भी इसे द्विपक्षीय सम्बन्धों में एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में चिह्नित किया। द्विपक्षीय सहयोग न केवल आर्थिक सम्बन्धों के स्तर पर बल्कि एशियाई अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भी उभरा। जिसका उदाहरण पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन (ईएएस) था, जो पहली बार दिसंबर 2005 में आयोजित किया गया था।[xxix] शुरुआत में ईएएस की संरचना को लेकर जापान और चीन के बीच असहमति थी, चीन केवल तीन और देशों (जापान, चीन और कोरिया) को इसमें शामिल होने के लिए तर्क दे रहा था जो कि आसियान के साथ 10 देश था, जबकि जापान छह (जापान, चीन, कोरिया, भारत, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड) पर

जोर दे रहा था। 2005 में प्रधानमंत्री जुनिचिरो कोइज़ुमी की यात्रा के दौरान इस बात पर सहमति हुई थी कि भारत व जापान अपने आपसी सहयोग को बढ़ाकर द्विपक्षीय सम्बन्धों के सर्वांगीण और व्यापक विकास को दिशा देंगे, जिसे भारत व जापान द्वारा वर्ष 2007 व 2008 में प्रधानमंत्री शिंजो आबे व डा. मनमोहन सिंह के औचारिक यात्रा व मैत्री से आगे ले जाया गया।[xxx]

आगे, भारत ने 2016 में और फिर 2018 में जापान से द्विपक्षीय सम्बन्धों के अन्तर्गत रक्षा उपकरणों की खरीद के सम्बन्ध में बातचीत को जारी रखते हुए 2019 में इस पर सहमति बनायी। भारत द्वारा जापानी शिनमेवा (यूएस -2 आई) विमान की संभावित खरीद 2014 में शुरू की गई और सोरयू श्रेणी की पनडुब्बियां भारत-जापानी रक्षा सम्बन्धों में एक कदम आगे बढ़ने का प्रतीक थीं।[xxxi] इसके साथ ही आगे चलकर भारत-जापान फोरम का उद्घाटन 20 जुलाई 2021 को किया गया और इसकी दूसरी बैठक 28-29 जुलाई 2023 को नई दिल्ली में आयोजित की गयी, जिसका उद्घाटन जापान के विदेश मंत्री योशिमासा हयाशी द्वारा किया गया, जिसे भारत के जी20 व जापान के जी7 की अध्यक्षता की उपलब्धि के तहत महत्वपूर्ण समझा गया।[xxxii] इस मंच में दोनों देशों के संसद, उद्योग, थिंक टैंक और शिक्षा जगत के प्रतिष्ठित प्रतिनिधि ने भाग लिया। माना जाये तो यह एक प्रकार का सामरिक व द्विपक्षीय फोरम है जो भारत और जापान के बीच सहयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से बनाया गया है।

निष्कर्ष

भारत-जापान के सम्बन्ध बहुत कम स्थिर रहे हैं, जिसका मुख्य कारण सम्बन्धों की निरन्तरता में आने वाली कुछ बाधायें हैं, जिनमें से मुख्य है नियमित संवाद का अभाव एवं प्रत्यक्ष सुरक्षा साझेदारी। भारत-जापान आर्थिक साझेदारी के बावजूद द्विपक्षीय सम्बन्धों को पर्यावरण संरक्षण, राजनीतिक सुरक्षा और रक्षा पहल के मामले में अभी अपनी क्षमता को बढ़ाने की आवश्यकता है। कई दशकों से छूटे अवसरों की अप्राप्त क्षमता को प्राप्त करने के लिए और अधिक पहल की आवश्यकता है, जहाँ दोनों देश संयुक्त रूप से प्रगति करने में सक्षम हैं। भारत-जापान सम्बन्ध सामरिक प्रयासों से और प्रगाढ़ हो सकते हैं, जैसे कुछ भारतीय रणनीतिक क्षेत्रों में जापानी ओडीए को बढ़ावा देना; दूसरा रक्षा के माध्यम से दोनों देशों का नजदीक होना और तीसरा, एक-दूसरे से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे पर समर्थन की प्रतिबद्धता। साथ में यह भी देखा जा सकता है भारत की कमजोर होती गुटनिरपेक्ष रणनीति सुरक्षा सम्बन्धी निर्णयों में भागीदारी अपने दृष्टिकोण में जापान के साथ भारत को बहुत अधिक जुड़ने से रोकेगी। क्योंकि भारत द्वारा जापान से किसी भी दीर्घकालिक सैन्य गठबंधन के लिए प्रतिबद्ध होने की संभावना न्यून है। भारत-जापान सम्बन्धों को बढ़ाने से निश्चित रूप से जापान को एक ऐसे देश के रूप में लाभ होगा, जिसका अमेरिका के अलावा किसी अन्य देश के साथ बहुत कम घनिष्ठ द्विपक्षीय सम्बन्ध हैं।

एशिया प्रशांत क्षेत्र में विकसित हो रहे शक्ति सम्बन्धों को देखते हुए, भारत और जापान दोनों एक सहयोगी ढांचे में एशिया के भविष्य की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए तैयार हैं। भारत व जापान दोनों का संयुक्त रूप से चीन को एक कारक व खतरे के रूप में देखना आपसी नीतियों के समन्वय के लिए आधार खोजने के लिए प्रेरित कर सकेगा। जिसे अभी से हिन्द-प्रशान्त क्षेत्र के सामरिक कूटनीति में देखा जा सकता है। भारत की समुद्री भूमिका को वैध बनाने के लिए जापान का समर्थन बढ़ता जा रहा है। यह देखना है कि जापान भारत के साथ किस सीमा तक

अपने राष्ट्रीय हित को परिवर्तित करने में सक्षम होता है और साथ ही भारत आने वाले वर्षों में जापान को कितना सामरिक सहयोग प्रदान कर सकता है।

सन्दर्भ सूची

---

i सरीन, तिलक राज. (2007). इंडिया-जापान इन हिस्टोरिकल पर्सपेक्टिव, *लेक्चर सीरीज ऑन जापान*. पृ. 9.

ii इंडिया-जापान रिलेशन्स. (नवंबर 2017). लिंक: वेबपेज विजिट-10 जनवरी 2024, https://www.mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/14_Japan_Nov_2017.pdf.

iii मूर्ति, पी ए नरसिम्हा. (1986). इंडिया एंड जापान: डाइमेंशन्स ऑफ़ देअर रिलेशन्स. नई दिल्ली, एबीसी पब्लिशिंग हाउस.

iv इंडिया-जापान रिलेशन्स. (नवंबर 2017). उद्धृत कार्य, पृ 1.

v होरिमोतो, ताकेनोरि और वर्मा, लालिमा. (2013). इंडिया जापान रिलेशन्स इन इमर्जिंग एशिया, मनोहर पब्लिशर्स एन्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली. पृ. 18.

vi हैदर, सलमान. (2012). (सम्पादित). अमरनाथ राम, टू डिकड्स ऑफ़ इंडिआस लुक ईस्ट, पालिसी मनोहर, नई दिल्ली. पृ 252.

vii मिनिस्ट्री ऑफ़ फॉरेन अफेयर्स ऑफ़ जापान, जॉइंट डिक्लेरेशन ऑन सिक्योरिटी कोऑपरेशन बिटवीन जापान एन्ड इंडिया। वेबपेज विजिट-11 जनवरी 2024, https://www.mofa.go.jp/region/asia-paci/india/pmv0810/joint_d.html.

viii जापान इंडिया बिलटेरल रिलेशन्स, वेबपेज विजिट-10 जनवरी 2024. पृ 3. https://www.mea.gov.in/Portal/ForeignRelation/Japan_-_Bilateral_Brief_MEA_Website_Oct_2023.pdf

ix जापान मिनिस्टर प्रेजेस पी एम मोदी इनपुट्स फॉर जी7 सक्सेस इन हिरोशिमा, बिजिनेस स्टैण्डर्ड, 29 जुलाई 2023 https://www.business-standard.com/india-news/japan-minister-praises-pm-modi-s-inputs-for-g7-success-in-hiroshima-123072800972_1.html

x जैन, अशोक. (2019). कंटेम्परारी इंडिया फोरम, वॉल्यूम 41, *इंडिया-जापान: हिस्ट्री ऑफ़ कल्चरल इंटरेक्शन्स*. नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस टेक्नोलॉजी एंड डेवलपमेंट स्टडीज. पृ 8.

xi इसिजाकि, ताकाहिको. (2019). *ए हिस्टोरिकल स्टडी ऑफ तेंजिकु रिकग्निशन इन जापान*, टोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज। पृ 2-5.

xii द यूनिवर्सिटी ऑफ टोक्यो, क्रोनोलॉजी, वेबपेज विजिट-13 जनवरी 2024. https://www.u-tokyo.ac.jp/en/about/chronology.html

xiii इंडिया-जापान रिलेशन्स (नवंबर 2017). उद्धृत कार्य, पृ 4.

xiv भारत में जापान का दूतावास. इंडिया जापान फ्रेंडशिप ईयर 2007. लेक्चर सीरीज, पचासवाँ वर्ष. वेबपेज विजिट-13 जनवरी 2024. https://www.in.emb-japan.go.jp/Friendship_Year2007/.

xv इंडिया-जापान रिलेशन्स. (नवंबर 2017). उद्धृत कार्य, पृ 2.

xvi इंडिया-जापान रिलेशन्स. (नवंबर 2017). उद्धृत कार्य, पृ 3.

xvii रिपोर्ट ऑफ द इंडिया जापान जॉइंट स्टडी ग्रुप. जून 2006. मिनिस्ट्री ऑफ़ फॉरेन अफेयर्स, जापान सरकार. वेबपेज विजिट-13 जनवरी 2024. http://www.mofa.go.jp/region/asia-paci/india/report0606.pdf.

xviii इंडिया-जापान रिलेशन्स. (नवंबर 2017). उद्धृत कार्य, पृ 4.

xix जापान इंडिया बिलटेरल रिलेशन्स. (अक्टूबर 2023). उद्धृत कार्य, पृ 9.

xx जापान इंडिया बिलटेरल रिलेशन्स. (अक्टूबर 2023). उद्धृत कार्य, पृ 12.

xxi घोष, मधुचंदा. (2008). इंडिया एंड जापान ग्रोइंग सिनर्जी; फ्रॉम पोलिटिकल टू ए स्ट्रेटेजिक फोकस. *एशियाई सर्वे.* वो. XLVIII नं 2. मार्च अप्रैल. पृ 282-307.

xxii सुयो, सुदो (1988). जापान आसिआन रिलेशन्स: न्यू डाइमेंशन्स इन जापानीज फॉरेन पालिसी. *एशियाई सर्वे.* वो. 28 नं 5. मार्च अप्रैल. पृ 509-25.

xxiii घोष, मधुचंदा. (2008). उद्धृत कार्य, पृ 299.

xxiv इंडिया-जापान रिलेशन्स. (नवंबर 2017). उद्धृत कार्य, पृ 1.

xxv जैन, पुर्णेन्द्र (2009). फ्रॉम कण्डमनेसन तो स्ट्रैटेजिक पार्टनरशिप: जापान्स चेंजिंग व्यू ऑफ इंडिया. *आईएसएएस वर्किंग पेपर,* नं 41. मार्च 10.

xxvi हैदर, सलमान. (2012). (सम्पादित). अमरनाथ राम, टू डिकड्स ऑफ़ इंडिआस लुक ईस्ट, पालिसी मनोहर, नई दिल्ली. पृ 259.

xxvii टैलबोट, स्ट्रॉब. (2004). एंगेजिंग इंडिया, ब्रूकिंग इंस्टिटूशन प्रेस. पृ 44.

xxviii मारशीमिएर, जे जे. (2001). द ट्रेजेडी ऑफ ग्रेट पावर पॉलिटिक्स। न्यू यॉर्क: नॉरटन.

xxix मिनिस्ट्री ऑफ़ फॉरेन अफेयर्स ऑफ़ जापान. (2005). *ईस्ट एशिया सम्मिट.* वेबपेज विजिट-13 जनवरी 2024. https://www.mofa.go.jp/region/ eas/index.html.

xxx इंडिया-जापान रिलेशन्स. (नवंबर 2017). उद्धृत कार्य, पृ 2.

xxxi इंडियन डिफेन्स रिसर्च विंग. (नवम्बर 2022). इंडिया कीन टू सीक जापान हेल्प इन सबमरीन टेक्नोलॉजी. वेबपेज विजिट-13 जनवरी 2024. https://idrw.org/india-keen-to-seek-japans-help-in-submarine/

xxxii जापान इंडिया बिलटेरल रिलेशन्स. (अक्टूबर 2023). उद्धृत कार्य, पृ 4-7.

अध्याय-30

"भारतीय न्यायशास्त्र में अंतर्विभागीयता: संवैधानिक अधिकारों के माध्यम से सामाजिक न्याय की खोज"

भरत प्रताप सिंह
सहायक आचार्य,
एस०डी०जी०आई० ग्लोबल विश्वविद्यालय, गाज़ियाबाद

चेतना चौधरी
शोध छात्रा, एस०एम०पी० राजकीय महिला महाविद्यालय, मेरठ

भानु प्रताप सिंह
सहायक आचार्य,
आई०एल०एस०आर०जी०एल.ए० विश्वविद्यालय, मथुरा

अंतर-विभागीयता, १९८० के दशक के अंत में किम्बरले क्रेंशॉ[xxxii] द्वारा गढ़ा गया एक शब्द, कानूनी ढांचे के भीतर सामाजिक पहचान और शक्ति की गतिशीलता की जटिलताओं को समझने में एक महत्वपूर्ण अवधारणा के रूप में उभरा है। भारतीय न्यायशास्त्र के संदर्भ में, अंतर्विरोध एक महत्वपूर्ण लेंस के रूप में कार्य करता है जिसके माध्यम से विभिन्न सामाजिक पहचानों की परस्पर क्रिया और न्याय के लिए उनके निहितार्थ की जांच की जा सकती है। यह शोध पत्र भारतीय न्यायशास्त्र के भीतर सामाजिक न्याय की खोज पर प्रकाश डालता है, विशेष रूप से इस बात पर ध्यान केंद्रित करता है कि संवैधानिक अधिकार विविध सामाजिक पहचानों के साथ कैसे जुड़ते हैं।
शास्त्रीय राजनीतिक दार्शनिक प्लेटो[xxxii] और अरस्तू[xxxii], इसके अलावा नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन[xxxii] और एक प्रमुख राजनीतिक दार्शनिक जॉन रॉल्स[xxxii] ने सामाजिक न्याय पर चर्चा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सेन का क्षमता दृष्टिकोण कल्याण की बहुआयामी प्रकृति को स्वीकार करते हुए, लोगों की मूल्यवान जीवन जीने की क्षमताओं का विस्तार करने के महत्व पर जोर देता है। दूसरी ओर, रॉल्स ने न्याय के सिद्धांत को निष्पक्षता के रूप में प्रस्तावित किया, उन सिद्धांतों की वकालत की जिन पर व्यक्ति निष्पक्षता की शर्तों के तहत सहमत होंगे। दोनों विद्वान समाज के भीतर व्यक्तियों की विविध आवश्यकताओं और परिस्थितियों को संबोधित करने के लिए न्याय की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं। भारतीय संदर्भ में, संविधान सामाजिक न्याय के एक प्रकाशस्तंभ के रूप में खड़ा है, जो समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे के सिद्धांतों को स्थापित करता है।
शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य देखभाल और राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक पहुंच सहित भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अंतर्संबंध की जटिलताएं स्पष्ट हैं।[xxxii] भेदभाव और हाशियाकरण कई अक्षों के साथ प्रतिच्छेद करते हैं, जिससे कुछ समूहों के लिए नुकसान बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए, दलित महिलाओं को न केवल उनके लिंग के आधार पर बल्कि उनकी जाति के आधार पर भी भेदभाव का अनुभव हो सकता है, जिससे अवसरों और संसाधनों तक पहुँचने में प्रणालीगत बाधाएँ पैदा हो सकती हैं। इस पृष्ठभूमि में, भारतीय न्यायशास्त्र अन्याय के परस्पर विरोधी रूपों को संबोधित करने के लिए संवैधानिक अधिकारों की व्याख्या और उन्हें लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। न्यायिक हस्तक्षेप, जैसे सकारात्मक कार्रवाई नीतियां और मौलिक अधिकारों की प्रगतिशील व्याख्याएं, प्रणालीगत भेदभाव के प्रभावों को कम करने का प्रयास करती हैं। हालाँकि, कानूनी प्रावधानों को ज़मीनी स्तर पर

सार्थक बदलाव में बदलने में चुनौतियाँ बनी हुई हैं, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों में जहाँ उत्पीड़न के परस्पर विरोधी रूप सबसे तीव्र हैं।

इस संदर्भ में, भारतीय न्यायशास्त्र में अंतर्विरोध की खोज अनिवार्य हो जाती है। न्यायिक निर्णयों, विधायी उपायों और नीतिगत हस्तक्षेपों की आलोचनात्मक जांच करके, हम बेहतर ढंग से समझ सकते हैं कि व्यवहार में सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को कैसे क्रियान्वित किया जाता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य भारतीय कानूनी ढांचे के भीतर सामाजिक पहचान और न्याय की जटिलताओं पर प्रकाश डालकर इस चल रही बातचीत में योगदान देना है।

सामाजिक न्याय क्या है

सामाजिक न्याय की खोज में असमानताओं, भेदभाव और उत्पीड़न को समझने और संबोधित करने के लिए सामाजिक संरचनाओं, प्रणालियों और प्रथाओं की व्यापक जांच शामिल है। इसके मूल में, सामाजिक न्याय समाज के सभी सदस्यों, विशेष रूप से हाशिए पर या वंचित लोगों के लिए निष्पक्षता, समानता और समावेशिता प्राप्त करना चाहता है। इसमें मुद्दों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है, जिनमें आर्थिक असमानता, नस्लीय भेदभाव, लैंगिक असमानता और शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और कानूनी अधिकारों तक पहुंच शामिल है, लेकिन यह इन्हीं तक सीमित नहीं है। सामाजिक न्याय के लिए शक्ति की गतिशीलता, विशेषाधिकार और अंतर्विरोध के आलोचनात्मक विश्लेषण की आवश्यकता होती है। जाति, वर्ग, लिंग, कामुकता और क्षमता जैसी सामाजिक पहचान की परस्पर जुड़ी प्रकृति। इसमें अन्यायपूर्ण प्रणालियों को चुनौती देना और समानता, विविधता और मानवाधिकारों को बढ़ावा देने वाली नीतियों और प्रथाओं की वकालत करना शामिल है। इसमें प्रणालीगत अन्याय को दूर करने और सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देने के लिए जमीनी स्तर पर सक्रियता, नीति वकालत, सामुदायिक आयोजन और कानूनी सुधार के प्रयास शामिल हो सकते हैं। सामाजिक न्याय की खोज में अन्याय की ऐतिहासिक और समकालीन अभिव्यक्तियों के साथ-साथ असमानता को कायम रखने वाले अंतर्निहित संरचनात्मक कारकों की जांच करना शामिल है। इसके लिए हाशिए पर रहने वाले समुदायों की आवाज़ और अनुभवों को पहचानने और बढ़ाने की आवश्यकता है, क्योंकि वे अक्सर सामाजिक अन्याय से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। इसमें उत्पीड़न से सीधे प्रभावित लोगों के दृष्टिकोण को केंद्रित करने के लिए संवाद, कहानी कहने और भागीदारीपूर्ण अनुसंधान विधियों में संलग्न होना शामिल हो सकता है। इसके अलावा, सामाजिक न्याय की खोज में अधिक न्यायपूर्ण और न्यायसंगत समाज बनाने के लिए सहानुभूति, एकजुटता और सामूहिक कार्रवाई को बढ़ावा देना शामिल है। इसके लिए व्यक्तियों और संस्थानों को उत्पीड़न की प्रणालियों को कायम रखने या चुनौती देने में अपनी भूमिकाओं और जिम्मेदारियों पर विचार करने की आवश्यकता है। जागरूकता, शिक्षा और वकालत को बढ़ावा देकर, सामाजिक न्याय की खोज व्यक्तिगत, समुदाय और सामाजिक स्तरों पर परिवर्तनकारी परिवर्तन को उत्प्रेरित कर सकती है, जिससे एक अधिक समावेशी और दयालु दुनिया बन सकती है जहां हर किसी को पनपने का अवसर मिलता है।

सामाजिक न्याय और व्यवस्थित भेदभाव

सामाजिक न्याय और प्रणालीगत भेदभाव आपस में जुड़ी हुई अवधारणाएँ हैं जो समाज के भीतर शक्ति, संसाधनों और अवसरों के असमान वितरण को दर्शाती हैं। प्रणालीगत भेदभाव पूर्वाग्रह और पूर्वाग्रह के संस्थागत पैटर्न को संदर्भित करता है जो कुछ समूहों को उनकी जाति, जातीयता, लिंग, यौन अभिविन्यास, सामाजिक आर्थिक स्थिति या अन्य सामाजिक पहचान के आधार पर नुकसान पहुंचाता है। ये भेदभावपूर्ण प्रथाएं समाज की संरचनाओं और

नीतियों के भीतर अंतर्निहित हैं, जो असमानता और हाशिए पर बनी हुई हैं। दूसरी ओर, सामाजिक न्याय सभी व्यक्तियों और समूहों के लिए समानता, निष्पक्षता और समावेशन की खोज है, विशेष रूप से उन लोगों के लिए जो ऐतिहासिक रूप से उत्पीड़ित या हाशिए पर रहे हैं। इसका उद्देश्य अधिकारों, संसाधनों और अवसरों तक समान पहुंच को बढ़ावा देकर विशेषाधिकार और उत्पीड़न की प्रणालियों को चुनौती देना और नष्ट करना है। प्रणालीगत भेदभाव संस्थागत नीतियों, सांस्कृतिक मानदंडों और पारस्परिक संबंधों सहित विभिन्न तंत्रों के माध्यम से संचालित होता है। उदाहरण के लिए, नियुक्ति और रोजगार में भेदभावपूर्ण प्रथाएं कुछ समूहों के लिए उपलब्ध अवसरों को सीमित कर सकती हैं, जबकि मीडिया और शिक्षा में पक्षपातपूर्ण प्रतिनिधित्व हानिकारक रूढ़िवादिता और आख्यानों को कायम रख सकता है। इसके अतिरिक्त, स्वास्थ्य देखभाल, आवास और शिक्षा तक असमान पहुंच असमानताओं को और बढ़ा देती है और नुकसान के चक्र को कायम रखती है। प्रणालीगत भेदभाव को संबोधित करने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है जिसमें व्यक्तिगत और सामूहिक कार्रवाई दोनों शामिल हों। इसमें नीतिगत सुधारों की वकालत करना, विविधता और समावेशन पहल को बढ़ावा देना और समाज के सभी स्तरों पर भेदभावपूर्ण प्रथाओं और दृष्टिकोणों को चुनौती देना शामिल है। इसमें भेदभाव से सबसे अधिक प्रभावित लोगों की आवाज़ और अनुभवों को केंद्रित करने और अधिक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण प्रणाली बनाने के लिए सहयोगात्मक रूप से काम करने की भी आवश्यकता है। सामाजिक न्याय प्रयासों का उद्देश्य भेदभाव और असमानता के मूल कारणों को चुनौती देकर प्रणालीगत परिवर्तन लाना है। इसमें विधायी सुधारों की वकालत करना, जमीनी स्तर के आंदोलनों का समर्थन करना और भेदभाव के प्रभावों के बारे में शिक्षा और जागरूकता को बढ़ावा देना शामिल हो सकता है। प्रणालीगत भेदभाव को संबोधित करके और सामाजिक न्याय को आगे बढ़ाकर, समाज अधिक समावेशी और न्यायसंगत वातावरण बना सकते हैं जहां सभी व्यक्ति फलने-फूलने और नागरिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने में सक्षम हों।

न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव[xxxii]

न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव उनके दार्शनिक संवाद, "द रिपब्लिक" में जटिल रूप से बुना गया है, जहां वह आदर्श राज्य और उसके भीतर न्याय की अवधारणा पर प्रकाश डालते हैं। प्लेटो के अनुसार, न्याय केवल गलत काम की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि आत्मा और राज्य की सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था है, जहां प्रत्येक भाग कारण के अनुसार अपनी निर्दिष्ट भूमिका को पूरा करता है। न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव त्रिपक्षीय आत्मा के विचार के इर्द-गिर्द घूमता है, जिसमें कारण (तर्कसंगत भाग), आत्मा (उत्साही भाग), और भूख (आकर्षक भाग) शामिल है। उनका तर्क है कि एक न्यायपूर्ण व्यक्ति वह होता है जिसमें तर्क आत्मा और भूख पर शासन करता है, जिसमें प्रत्येक भाग सामंजस्यपूर्ण ढंग से अपना कार्य करता है। इसी प्रकार, आदर्श अवस्था में, न्याय तब मौजूद होता है जब शासक (दार्शनिक-राजा) ज्ञान और ज्ञान के साथ शासन करते हैं, सहायक (योद्धा) साहस और सम्मान के साथ बचाव करते हैं, और निर्माता (श्रमिक) संयम और संयम के साथ समाज की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इसके अलावा, प्लेटो ने "संरक्षकता" या "कुलीन झूठ" की अवधारणा का परिचय दिया है, जहां व्यक्तियों को उनकी जन्मजात क्षमताओं और योग्यताओं के आधार पर समाज के भीतर भूमिकाएं सौंपी जाती हैं। यह सुनिश्चित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्राकृतिक प्रतिभा के अनुसार सामान्य भलाई में योगदान देता है, जिससे राज्य के भीतर सद्भाव और स्थिरता को बढ़ावा मिलता है। न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव शिक्षा और संस्कृति के दायरे तक भी

फैला हुआ है, जिसमें छोटी उम्र से ही सद्गुण और ज्ञान विकसित करने के महत्व पर जोर दिया गया है। वह एक कठोर शैक्षिक प्रणाली की वकालत करते हैं जो बौद्धिक और नैतिक उत्कृष्टता को बढ़ावा देती है, व्यक्तियों को राज्य के संरक्षक के रूप में अपनी भूमिका निभाने के लिए तैयार करती है। कुल मिलाकर, न्याय के लिए प्लेटो का प्रस्ताव इस विश्वास में निहित है कि एक सुव्यवस्थित समाज वह है जहां तर्क आधार इच्छाओं पर शासन करता है, जहां व्यक्ति अपनी निर्दिष्ट भूमिकाओं को ज्ञान और सद्गुण के साथ पूरा करते हैं, और जहां शिक्षा और संस्कृति सामंजस्यपूर्ण जीवन के लिए आवश्यक आदर्श गुणों को विकसित करती है।

न्याय के लिए अरस्तू का प्रस्ताव[xxxii]

न्याय के लिए अरस्तू का प्रस्ताव, जैसा कि उनके मौलिक कार्य "निकोमैचियन एथिक्स" में उल्लिखित है, नैतिकता, राजनीति और मानव स्वभाव की उनकी समझ में गहराई से निहित है। प्लेटो के विपरीत, जिन्होंने आदर्श राज्य पर ध्यान केंद्रित किया, न्याय के लिए अरस्तू का दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक और मानव समाज की वास्तविकताओं पर आधारित है। अरस्तू के लिए, न्याय एक प्रमुख गुण है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उनका हक देना शामिल है। वह न्याय के दो मुख्य प्रकारों के बीच अंतर करता है: वितरणात्मक न्याय और सुधारात्मक (या सुधारात्मक) न्याय। अरस्तू के अनुसार, वितरणात्मक न्याय का संबंध समाज के सदस्यों के बीच वस्तुओं, सम्मानों और अवसरों के उचित वितरण से है। अरस्तू का प्रस्ताव है कि वितरणात्मक न्याय योग्यता के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए, जहां व्यक्तियों को उनके गुण, योग्यता या समाज में योगदान के अनुपात में लाभ मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग अधिक मेहनत करते हैं या अधिक प्रतिभा रखते हैं उन्हें समाज के सामान और सम्मान का अधिक हिस्सा मिलना चाहिए। दूसरी ओर, सुधारात्मक न्याय, गलतियों को सुधारने और व्यक्तियों के बीच संबंधों में संतुलन बहाल करने से संबंधित है। इसमें विवादों का समाधान और कानूनी निर्णयों का प्रशासन शामिल है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार किया जाए और अन्याय का निवारण किया जाए। अरस्तू सुधारात्मक न्याय में आनुपातिकता के महत्व पर जोर देता है, जहां सजा किए गए अपराध के समानुपाती होनी चाहिए। अरस्तू ने "प्राकृतिक न्याय" की अवधारणा का भी परिचय दिया, जिसके बारे में उनका तर्क है कि यह सार्वभौमिक सिद्धांतों पर आधारित है जो मानव स्वभाव में निहित हैं। प्राकृतिक न्याय सकारात्मक कानूनों और रीति-रिवाजों से परे है, एक नैतिक दिशा सूचक यंत्र के रूप में कार्य करता है जो सामान्य भलाई की प्राप्ति के लिए मानव आचरण का मार्गदर्शन करता है। कुल मिलाकर, न्याय के लिए अरस्तू का प्रस्ताव मानवीय रिश्तों और सामाजिक संस्थानों में निष्पक्षता, आनुपातिकता और सद्गुणों की खेती के महत्व पर जोर देता है। उनका नैतिक ढांचा न्याय की प्रकृति और सामंजस्यपूर्ण और समृद्ध समुदायों को बढ़ावा देने में इसकी भूमिका में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

अमर्त्य सेन का न्याय का विचार[xxxii]

अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन न्याय पर एक विशिष्ट और प्रभावशाली दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं जो पारंपरिक सिद्धांतों से भिन्न है। सेन के न्याय के विचार के केंद्र में "क्षमताओं" या "क्षमताओं के दृष्टिकोण" की अवधारणा है, जिसे उन्होंने अपने मौलिक कार्य "स्वतंत्रता के रूप में विकास" में व्यक्त किया है।" सेन के अनुसार, न्याय को केवल संसाधनों या धन के वितरण पर केंद्रित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इसके बजाय व्यक्तियों की क्षमताओं के विस्तार को प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि वे जीवन जी सकें जिसे वे महत्व देते हैं। क्षमताएं उन विभिन्न

अवसरों और स्वतंत्रताओं को संदर्भित करती हैं जो लोगों को अपने लक्ष्यों का पीछा करने और अपनी क्षमता को पूरा करने के लिए होती हैं। इन क्षमताओं में न केवल भौतिक संसाधन बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीतिक भागीदारी और सामाजिक समावेशन जैसे कारक भी शामिल हैं। सेन का तर्क है कि केवल आय या उपयोगिता के आधार पर न्याय का मूल्यांकन मानव कल्याण की बहुआयामी प्रकृति को नजरअंदाज करता है और व्यक्तियों की विविध और जटिल जरूरतों को पकड़ने में विफल रहता है। इसके बजाय, वह एक अधिक व्यापक दृष्टिकोण की वकालत करते हैं जो लोगों की वास्तविक स्वतंत्रता और उनके लिए उपलब्ध वास्तविक अवसरों का आकलन करता है। सेन के ढांचे में, न्याय में उन बाधाओं को दूर करना शामिल है जो व्यक्तियों को अपनी क्षमताओं का प्रयोग करने से रोकती हैं और अपने स्वयं के मूल्यों और प्राथमिकताओं के अनुसार चुनने और कार्य करने की उनकी स्वतंत्रता को बढ़ाती हैं। इसके लिए आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं तक पहुंच में असमानताओं को संबोधित करने के साथ-साथ हाशिए पर रहने वाले समूहों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने के लिए सशक्त बनाने की आवश्यकता है। इसके अलावा, सेन न्याय को बढ़ावा देने वाली नीतियों और संस्थानों को आकार देने में लोकतांत्रिक विचार-विमर्श और सार्वजनिक तर्क के महत्व पर जोर देते हैं। उनका तर्क है कि व्यक्तियों और समुदायों की विविध आवश्यकताओं और चिंताओं की पहचान करने और उन्हें संबोधित करने के लिए एक समावेशी और भागीदारीपूर्ण सार्वजनिक प्रवचन को बढ़ावा देना आवश्यक है। कुल मिलाकर, सेन का न्याय का विचार सामाजिक और आर्थिक विकास के अंतिम लक्ष्य के रूप में मानवीय क्षमताओं और स्वतंत्रता में वृद्धि को प्राथमिकता देता है। आय या उपयोगिता के संकीर्ण उपायों से परे फोकस को व्यापक बनाकर, सेन की क्षमताओं का दृष्टिकोण न्याय की अधिक समग्र और सूक्ष्म समझ प्रदान करता है जो मानव अस्तित्व की जटिलताओं के साथ प्रतिध्वनित होता है।

जॉन रॉल्स का न्याय का सिद्धांत[xxxii]

२० वीं शताब्दी के सबसे प्रभावशाली राजनीतिक दार्शनिकों में से एक जॉन रॉल्स ने अपने मौलिक कार्य "ए थ्योरी ऑफ जस्टिस" में न्याय के अपने सिद्धांत को प्रस्तुत किया।" रॉल्स का सिद्धांत, जिसे "निष्पक्षता के रूप में न्याय" के रूप में जाना जाता है, न्याय के सिद्धांतों को स्थापित करने का प्रयास करता है जो तर्कसंगत और निष्पक्ष दोनों हैं, जो समाज के भीतर सामाजिक वस्तुओं और अवसरों के उचित वितरण के लिए आधार प्रदान करते हैं। रॉल्स के सिद्धांत के मूल में मूल स्थिति का विचार है, एक काल्पनिक परिदृश्य जिसमें व्यक्तियों को "अज्ञानता के पर्दे" के पीछे रखा जाता है।" इस स्थिति में, व्यक्ति अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति, प्रतिभा और व्यक्तिगत प्राथमिकताओं से अनजान होते हैं। अज्ञानता की इस स्थिति से, व्यक्तियों को न्याय के सिद्धांतों सहित समाज की बुनियादी संरचना को डिजाइन करने का काम सौंपा जाता है। रॉल्स का तर्क है कि मूल स्थिति में तर्कसंगत व्यक्ति न्याय के दो सिद्धांतों का चयन करेंगे। पहला सिद्धांत समान बुनियादी स्वतंत्रता का सिद्धांत है, जो समाज के सभी सदस्यों के लिए समान अधिकारों और स्वतंत्रता की गारंटी देता है। दूसरा सिद्धांत अंतर सिद्धांत है, जो सामाजिक और आर्थिक असमानताओं की अनुमति केवल तभी देता है जब वे समाज के सबसे कम सुविधा प्राप्त सदस्यों को लाभान्वित करते हैं। रॉल्स का सिद्धांत व्यक्तिगत अधिकारों की सुरक्षा और अवसर की समानता को बढ़ावा देने को प्राथमिकता देता है। व्यक्तियों को अज्ञानता के पर्दे के पीछे रखकर, रॉल्स का लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि न्याय के सिद्धांतों को निष्पक्ष रूप से और बिना किसी पूर्वाग्रह के चुना जाए, जिससे समाज के सभी सदस्यों के लिए निष्पक्ष और न्यायसंगत परिणाम प्राप्त हों। इसके अलावा, रॉल्स "मैक्सिमिन" सिद्धांत के महत्व पर जोर देते हैं, जो

निर्णय निर्माताओं को समाज के सबसे कम सुविधा प्राप्त सदस्यों के कल्याण को अधिकतम करने की सलाह देता है। यह सिद्धांत सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को दूर करने और सबसे कमजोर व्यक्तियों की भलाई को प्राथमिकता देने के लिए रॉल्स की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। कुल मिलाकर, रॉल्स का न्याय सिद्धांत सामाजिक संस्थानों और नीतियों की निष्पक्षता के मूल्यांकन के लिए एक कठोर रूपरेखा प्रदान करता है। उन सिद्धांतों पर ध्यान केंद्रित करके जिन्हें तर्कसंगत व्यक्ति एक काल्पनिक मूल स्थिति में चुनेंगे, रॉल्स एक न्यायसंगत और न्यायसंगत समाज के लिए एक आधार स्थापित करना चाहते हैं, जो समान अधिकारों, अवसरों और सबसे कम सुविधा प्राप्त लोगों के कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता की विशेषता है।

भारतीय संविधान अनुच्छेद 14, 15 और 16 एवं सामाजिक न्याय

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14[xxxii], 15[xxxii] और 16[xxxii] नागरिकों के बीच समानता और गैर-भेदभाव सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण हैं। ये लेख सामूहिक रूप से एक समावेशी और समतावादी समाज को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भारतीय कानूनी ढांचे का आधार बनते हैं।

अनुच्छेद १४ भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समानता और कानूनों के समान संरक्षण की गारंटी देता है। यह धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव पर रोक लगाता है। यह प्रावधान यह सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय की नींव रखता है कि सभी नागरिकों के साथ राज्य द्वारा समान व्यवहार किया जाए और उनकी पृष्ठभूमि या स्थिति की परवाह किए बिना न्याय तक समान पहुंच हो।

अनुच्छेद 15 सार्वजनिक स्थानों, रोजगार, या शैक्षणिक संस्थानों तक पहुंच के मामलों में राज्य को धर्म, जाति, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के खिलाफ भेदभाव करने से रोककर समानता और गैर-भेदभाव के सिद्धांतों को और मजबूत करता है। राज्य द्वारा वित्त पोषित या रखरखाव किया जाता है। यह लेख न केवल सभी नागरिकों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय को बढ़ावा देता है बल्कि पहचान चिह्नों के आधार पर ऐतिहासिक अन्याय और प्रणालीगत भेदभाव को भी संबोधित करने का प्रयास करता है।

अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता की गारंटी देकर पूर्ववर्ती लेखों का पूरक है। यह राज्य के तहत किसी भी कार्यालय में भर्ती में धर्म, जाति, जाति, लिंग, वंश, जन्म स्थान, निवास, या उनमें से किसी के आधार पर भेदभाव को प्रतिबंधित करता है। यह प्रावधान यह सुनिश्चित करके सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में सहायक है कि सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार के अवसरों तक पहुंच पहचान के मनमाने विचारों के बजाय योग्यता पर आधारित है। संदर्भ में, ये लेख सामूहिक रूप से अपने नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करके और सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में समानता, गैर-भेदभाव और समावेशिता को बढ़ावा देकर सामाजिक न्याय के प्रति भारतीय राज्य की प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हैं। वे ऐतिहासिक अन्यायों को संबोधित करने, जाति-आधारित भेदभाव का मुकाबला करने और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। इसके अलावा, इन संवैधानिक प्रावधानों की न्यायपालिका द्वारा ऐतिहासिक निर्णयों के माध्यम से व्याख्या और विस्तार किया गया है, जिससे सामाजिक न्याय को आगे बढ़ाने में उनका महत्व और मजबूत हुआ है। भारतीय संविधान, अनुच्छेद १४, १५ और १६ में निहित समानता और गैर-भेदभाव पर जोर देने के साथ,

सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और अपने सभी नागरिकों के लिए एक समान समाज को बढ़ावा देने के लिए एक प्रकाशस्तंभ के रूप में कार्य करना जारी रखता है।

भारतीय संविधान अनुच्छेद 38, 39(a) और 46 एवं सामाजिक न्याय

अनुच्छेद 38[xxxii] न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पर आधारित सामाजिक व्यवस्था हासिल करके लोगों के कल्याण को बढ़ावा देने और आय, स्थिति, सुविधाओं और अवसरों में असमानताओं को कम करने के राज्य के कर्तव्य पर जोर देता है। यह प्रावधान एक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज बनाने के भारतीय संविधान के व्यापक उद्देश्य को रेखांकित करता है जहां सभी नागरिकों को अवसरों और संसाधनों तक समान पहुंच प्राप्त हो। अनुच्छेद 38 समानता, समावेशिता और एकजुटता के सिद्धांतों पर स्थापित एक सामाजिक व्यवस्था की कल्पना करता है, जिससे राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए आधार तैयार किया जा सके।

अनुच्छेद ३९ (क)[xxxii] यह सुनिश्चित करने की दिशा में अपनी नीति को निर्देशित करके सामाजिक न्याय और समानता को सुरक्षित करने के लिए राज्य की जिम्मेदारी पर जोर देता है कि भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण आम अच्छे की सर्वोत्तम सेवा के लिए वितरित किया जाता है। यह प्रावधान सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को दूर करने और समाज के सभी वर्गों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए संसाधनों के समान वितरण के महत्व को रेखांकित करता है। भौतिक संसाधनों के समान वितरण की वकालत करके, अनुच्छेद ३९ (ए) गरीबी को कम करने, असमानता को कम करने और सामाजिक न्याय के लिए अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना चाहता है।

अनुच्छेद ४६[xxxii] राज्य को समाज के कमजोर वर्गों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों (एससी) और अनुसूचित जनजातियों (एसटी) के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने और उन्हें सामाजिक अन्याय और शोषण से बचाने का आदेश देता है। यह प्रावधान हाशिए पर रहने वाले समुदायों के उत्थान और राष्ट्र के सामाजिक-आर्थिक ताने-बाने में उनके समावेश को सुनिश्चित करने के लिए भारतीय संविधान की प्रतिबद्धता को दर्शाता है। कमजोर समूहों के शैक्षिक और आर्थिक सशक्तिकरण को प्राथमिकता देकर, अनुच्छेद 46 का उद्देश्य एससी, एसटी और अन्य हाशिए पर रहने वाले समुदायों द्वारा सामना किए जाने वाले ऐतिहासिक अन्याय और प्रणालीगत भेदभाव को संबोधित करना है।

संक्षेप में, भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३८, ३९ (ए), और ४६ सामूहिक रूप से संसाधनों के समान वितरण, हाशिए पर रहने वाले समूहों की सुरक्षा और सामाजिक-आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देने की वकालत करके सामाजिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों को मूर्त रूप देते हैं। ये प्रावधान सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और सभी नागरिकों, विशेष रूप से ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों से संबंधित लोगों के कल्याण को आगे बढ़ाने के लिए राज्य की प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हैं।

भारत में ऐतिहासिक न्यायिक मामले

भारत में कई ऐतिहासिक न्यायिक मामलों ने सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को बरकरार रखा है और हाशिए के समुदायों के अधिकारों को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कुछ प्रसिद्ध मामलों में शामिल हैं::

1. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)[xxxii]: यह मामला "बुनियादी संरचना सिद्धांत" की स्थापना के लिए उल्लेखनीय है, जो भारतीय संसद की संशोधन शक्ति को सीमित करता है। फैसले ने संविधान की

सर्वोच्चता की पुष्टि की और सामाजिक न्याय और समानता सुनिश्चित करते हुए मौलिक अधिकारों की रक्षा की।

2. इंद्र साहनी बनाम भारत संघ (1992)[xxxii]: आमतौर पर "मंडल आयोग मामले" के रूप में जाना जाता है, इस फैसले ने सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए शैक्षणिक संस्थानों और सार्वजनिक रोजगार में सीटों के आरक्षण को बरकरार रखा। इसने सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के उत्थान के लिए सकारात्मक कार्रवाई के सिद्धांत को मजबूत किया।
3. विशाखा बनाम राजस्थान राज्य (१९९७)[xxxii]: इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यस्थल में महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए दिशानिर्देश निर्धारित किए। फैसले ने महिलाओं के समानता, सम्मान और सुरक्षित कामकाजी माहौल के अधिकारों को मान्यता दी, जिससे सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता को बढ़ावा मिला।
4. नवतेज सिंह जौहर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (२०१८)[xxxii]: इस ऐतिहासिक मामले ने भारतीय दंड संहिता की धारा ३७७ को समाप्त करके वयस्कों के बीच सहमति से समलैंगिक संबंधों को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया। निर्णय ने LGBTQ+ व्यक्तियों के समानता, गैर-भेदभाव और गरिमा के अधिकारों को बरकरार रखा, जो सामाजिक न्याय और समावेशन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।
5. शाह बानो बेगम बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (१९८५)[xxxii]: इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने तलाक के बाद पति से गुजारा भत्ता मांगने वाली मुस्लिम महिला शाह बानो के पक्ष में फैसला सुनाया। फैसले ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत महिलाओं के भरण-पोषण के अधिकारों की पुष्टि की, जिससे मुस्लिम समुदाय के भीतर सामाजिक न्याय और लैंगिक समानता सुनिश्चित हुई।

ये मामले भारत के कानूनी इतिहास में महत्वपूर्ण क्षणों का प्रतिनिधित्व करते हैं जहां न्यायपालिका ने सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों के सिद्धांतों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपने फैसलों के माध्यम से, अदालतों ने प्रणालीगत अन्याय को संबोधित करने, समावेशिता को बढ़ावा देने और समाज में हाशिए पर और कमजोर समूहों के अधिकारों को आगे बढ़ाने में योगदान दिया है।

भारतीय साहित्य में सामाजिक न्याय

चतुर्वर्ण्यं म्या सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारम्पी माविदध्यकर्तारमव्ययं। [xxxii]

भगवद गीता (4।13) में, भगवान कृष्ण गुणों (गुण) और कार्यों (कर्म) द्वारा चित्रित चार वर्णों या सामाजिक वर्गों के निर्माण की व्याख्या करते हैं। दैवीय ज्ञान द्वारा परिकल्पित इस प्रणाली को व्यक्तियों को उनके अंतर्निहित गुणों और जिम्मेदारियों के अनुकूल भूमिकाएँ सौंपकर सामाजिक सद्भाव और संतुलन को बढ़ावा देने के लिए डिज़ाइन किया गया था। हालाँकि, जोर जन्म पर नहीं बल्कि किसी व्यक्ति के चरित्र और कार्यों पर है। यह धारणा पूरी तरह से सामाजिक स्थिति पर आधारित पारंपरिक स्तरीकरण को चुनौती देती है, एक गुणात्मक दृष्टिकोण की वकालत करती है जहां किसी की स्थिति विरासत में मिले विशेषाधिकार के बजाय व्यक्तिगत विशेषताओं और कार्यों के माध्यम से अर्जित की जाती है।

सामाजिक न्याय के दृष्टिकोण से, यह कविता जन्म या सामाजिक प्रतिष्ठा जैसे मनमाने कारकों के बजाय योग्यता के आधार पर न्यायसंगत अवसरों और मान्यता के महत्व को रेखांकित करती है। यह एक ऐसे समाज को बढ़ावा देता

है जहां व्यक्तियों को उनके वंश या जाति के बजाय उनके योगदान और क्षमताओं के लिए महत्व दिया जाता है। एक ऐसी प्रणाली की वकालत करके जहां हर किसी को अपनी पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना अपनी क्षमता को पूरा करने का अवसर मिले, यह कविता सामाजिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप है, जिसमें समाज के सभी सदस्यों के लिए निष्पक्षता, समानता और अवसर पर जोर दिया गया है।

ॐ सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निराम्याः । सर्वे भद्रानि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभागभवेत् ।[xxxii]

यह संस्कृत श्लोक, जिसे आमतौर पर शांति मंत्र के रूप में जाना जाता है, सार्वभौमिक कल्याण और समृद्धि के लिए सामूहिक आकांक्षा व्यक्त करके सामाजिक न्याय के सार को समाहित करता है। यह एक ऐसे दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है जहां सभी व्यक्ति पीड़ा और प्रतिकूल परिस्थितियों से बचाए जाने के साथ-साथ खुशी, अच्छे स्वास्थ्य और शुभता का अनुभव करते हैं। सामाजिक न्याय के संदर्भ में, यह मंत्र समानता, समावेशिता और करुणा के मूलभूत सिद्धांतों पर जोर देता है।

वाक्यांश "सर्वे भवंतु सुखिनः" समावेशी समृद्धि के सिद्धांत का प्रतीक है, जो सभी की खुशी और भलाई की वकालत करता है। यह इस विचार को दर्शाता है कि सामाजिक न्याय में संसाधनों, अवसरों और लाभों का समान वितरण शामिल है, यह सुनिश्चित करते हुए कि प्रत्येक व्यक्ति को, उनकी पृष्ठभूमि या परिस्थिति की परवाह किए बिना, एक पूर्ण और समृद्ध जीवन जीने का अवसर मिले।

इसी प्रकार, "सर्वे संतु निरामयाह" सार्वभौमिक स्वास्थ्य और कल्याण के महत्व को रेखांकित करता है। सामाजिक न्याय के लिए समाज के सभी सदस्यों के लिए बिना किसी भेदभाव या बहिष्कार के स्वास्थ्य देखभाल, स्वच्छता और अन्य आवश्यक सेवाओं तक पहुंच की आवश्यकता होती है। यह उन नीतियों और पहलों की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है जो शारीरिक और मानसिक कल्याण को बढ़ावा देते हैं, स्वास्थ्य असमानताओं को संबोधित करते हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि कोई भी पीछे न छूटे।

इसके अलावा, "सर्वे भद्रानी पश्यंतु" सामूहिक कल्याण और समाज के उत्थान की वकालत करते हैं। यह एकजुटता और सहानुभूति की भावना का प्रतीक है, जो व्यक्तियों को सक्रिय रूप से दूसरों के कल्याण की तलाश करने और एक न्यायपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण समाज बनाने की दिशा में काम करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

अंत में, "मा कश्चित दुहखभगभवेत" पीड़ा को कम करने और कठिनाई को कम करने की अनिवार्यता पर जोर देती है। यह गरीबी, असमानता और अन्याय को खत्म करने का प्रयास करके सामाजिक न्याय के प्रति प्रतिबद्धता को रेखांकित करता है, जिससे एक ऐसी दुनिया का निर्माण होता है जहां हर कोई सम्मान, सुरक्षा और खुशी के साथ रह सकता है।

सर्वेशां स्वस्तिर्भावतु । सर्वेशां शनतिर्भावतु । सर्वेशं पूर्वंभवतु । सर्वेशं मङ्गलंभवतु ।[xxxii]

यह संस्कृत श्लोक सार्वभौमिक कल्याण, शांति, पूर्ति और शुभता के लिए आशीर्वाद का आह्वान करके सामाजिक न्याय के सार को समाहित करता है। यह एक ऐसे समाज की आकांक्षात्मक दृष्टि को दर्शाता है जहां प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति, पहचान या पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना सद्भाव, शांति और समृद्धि का अनुभव करता है।

"सर्वेशम स्वस्तिर्भावतु" सभी के स्वास्थ्य और कल्याण की इच्छा को व्यक्त करता है। सामाजिक न्याय के संदर्भ में, यह समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए स्वास्थ्य देखभाल, पोषण और अन्य बुनियादी आवश्यकताओं तक पहुंच सुनिश्चित करने के महत्व पर जोर देता है, भले ही उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति या परिस्थितियाँ कुछ भी हों।

"सर्वेशं शांतिरभावतु" सभी के लिए शांति और शांति का आह्वान करता है। सामाजिक न्याय में विविध समुदायों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, आपसी सम्मान और सद्भाव को बढ़ावा देना, एक ऐसे वातावरण को बढ़ावा देना शामिल है जहां संघर्षों को शांतिपूर्वक हल किया जाता है और सभी व्यक्ति सुरक्षित महसूस करते हैं।

"सर्वेशं पूर्णम्भावतु" सभी के लिए तृप्ति और प्रचुरता चाहता है। सामाजिक न्याय का यह पहलू संसाधनों, अवसरों और लाभों के समान वितरण की आवश्यकता को रेखांकित करता है, यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी व्यक्ति पूर्ण और सम्मानजनक जीवन जीने के साधनों से पीछे न रहे या वंचित न रहे।

"सर्वेशम मंगलमभवतु" सभी के लिए शुभता और आशीर्वाद का आह्वान करता है। सामाजिक न्याय के संदर्भ में, यह समाज के सभी सदस्यों के लिए सकारात्मक परिणामों, समृद्धि और खुशी की सामूहिक आकांक्षा को दर्शाता है, जो समावेशिता, करुणा और एकजुटता के लोकाचार को दर्शाता है।

निष्कर्ष

संवैधानिक अधिकारों के माध्यम से भारतीय न्यायशास्त्र में अंतरसंबंध की खोज ने भारत में सामाजिक न्याय की गतिशीलता में गहन अंतर्दृष्टि का खुलासा किया है। संवैधानिक ढांचे में तल्लीन होकर और न्यायिक निर्णयों और प्राचीन भारतीय साहित्य से प्रेरणा लेकर, हमने सामाजिक न्याय की बहुमुखी प्रकृति और भारतीय समाज के मूलभूत सिद्धांतों के साथ इसके गहरे संबंध को देखा है।

भारतीय संविधान, अपनी दूरदर्शी प्रस्तावना और प्रगतिशील प्रावधानों के साथ, भारत में सामाजिक न्याय के आधार के रूप में कार्य करता है। १४, १५, १६, ३९ (ए), ४६, और ३८ जैसे अनुच्छेद समानता, न्याय और समावेशन को बढ़ावा देने के लिए कानूनी ढांचा प्रदान करते हैं। न्यायपालिका द्वारा उनकी व्याख्या और अनुप्रयोग के माध्यम से, ये लेख सामाजिक न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने और हाशिए पर रहने वाले समुदायों के अधिकारों को बनाए रखने में सहायक रहे हैं।

केशवानंद भारती मामला और इंद्र साहनी मामला जैसे न्यायिक निर्णयों ने भारत में सामाजिक न्याय की रूपरेखा को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन ऐतिहासिक निर्णयों ने समानता, गैर-भेदभाव और सकारात्मक कार्रवाई के सिद्धांतों की पुष्टि की है, कमजोर समूहों के अधिकारों की सुरक्षा और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण मिसाल कायम की है। इसके अलावा, प्राचीन भारतीय साहित्य, ज्ञान और नैतिक शिक्षाओं की अपनी समृद्ध टेपेस्ट्री के साथ, सामाजिक न्याय के लिए प्रेरणा के एक कालातीत स्रोत के रूप में कार्य करता है। इन अंतर्दृष्टियों के प्रकाश में, यह स्पष्ट है कि भारत में सामाजिक न्याय केवल एक कानूनी या राजनीतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि राष्ट्र के लोकाचार में गहराई से निहित एक नैतिक अनिवार्यता है। जैसा कि हम आधुनिक समाज की जटिलताओं को नेविगेट करते हैं, सभी के लिए अधिक न्यायसंगत और न्यायसंगत भविष्य बनाने के लिए हमारे संवैधानिक सिद्धांतों, न्यायिक ज्ञान और सांस्कृतिक विरासत को आकर्षित करना आवश्यक है। अंत में, भारत में सामाजिक न्याय की दिशा में यात्रा एक सतत संघर्ष है जिसके लिए समाज के सभी वर्गों से सामूहिक कार्रवाई, सहानुभूति और प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। हमारे संविधान में निहित सिद्धांतों को कायम रखते हुए, हमारी

न्यायपालिका के निर्णयों का सम्मान करते हुए, और हमारे प्राचीन ज्ञान से प्रेरणा लेते हुए, हम आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अधिक समावेशी, न्यायसंगत और दयालु समाज के निर्माण की दिशा में काम कर सकते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य कालातीत ज्ञान, नैतिक सिद्धांतों और नैतिक मार्गदर्शन की पेशकश करके समाज में सामाजिक न्याय प्रदान करने में अत्यधिक महत्व रखता है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों और वेदों, उपनिषदों और भगवद गीता जैसे दार्शनिक ग्रंथों के माध्यम से, प्राचीन भारतीय साहित्य करुणा, धार्मिकता और सत्य की खोज पर मूल्यवान सबक प्रदान करता है। ये ग्रंथ जाति, पंथ या सामाजिक स्थिति की परवाह किए बिना प्रत्येक व्यक्ति की अंतर्निहित गरिमा और मूल्य पर जोर देते हैं। वे समानता, न्याय और गैर-भेदभाव के सिद्धांतों की वकालत करते हैं, समाज में सद्भाव और समावेशिता को बढ़ावा देते हैं। उदाहरण के लिए, भगवद गीता कर्तव्य (धर्म) और धार्मिकता (धर्म) की अवधारणा सिखाती है, व्यक्तियों को नैतिक आचरण और सामाजिक जिम्मेदारी की ओर मार्गदर्शन करती है।

इसके अलावा, प्राचीन भारतीय साहित्य हाशिए पर रहने वाले समुदायों के संघर्षों को प्रदर्शित करता है और उनके अधिकारों और सम्मान का समर्थन करता है। एकलव्य और शबरी जैसे चरित्र विपरीत परिस्थितियों में लचीलापन और साहस का उदाहरण देते हैं, जो पीढ़ियों को अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ खड़े होने के लिए प्रेरित करते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य की शिक्षाओं का अध्ययन करने और उन्हें अपनाने से, समाज सामाजिक न्याय और नैतिक जीवन की गहरी समझ पैदा कर सकता है। ये कालातीत आख्यान नैतिक दिशा सूचक यंत्र के रूप में कार्य करते हैं, जो व्यक्तियों को सभी प्राणियों के प्रति सहानुभूति, करुणा और सम्मान की ओर मार्गदर्शन करते हैं। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय साहित्य एक अधिक न्यायपूर्ण, न्यायसंगत और सामंजस्यपूर्ण समाज को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

संदर्भ सूची

[xxxii] https://www.gov.scot/publications/using-intersectionality-understand-structural-inequality-scotland-evidence-synthesis/pages/3/ 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया
xxxii प्लेटो, (2018, पुनर्मुद्रण), रिपब्लिक, रूपा प्रकाशन, पृष्ठ 140-141
xxxii अरस्तू, (2021, पुनर्मुद्रण), राजनीति, फ़िंगरप्रिंट क्लासिक्स, पृष्ठ 249-253
xxxii सेन, ए. (2009). न्याय का विचार. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृष्ठ 203-236
[xxxii] रॉल्स, जे. (1971). न्याय का एक सिद्धांत. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृष्ठ 225 & 203
[xxxii] शर्मा, एम., और गुप्ता, ए. (2021)। अंतर्विभागीयता और सामाजिक न्याय: लिंग, जाति और वर्ग की गतिशीलता को समझना। रूटलेज। पृष्ठ 124
[xxxii] प्लेटो, (2018, पुनर्मुद्रण), रिपब्लिक, रूपा प्रकाशन, पृष्ठ 140-141
[xxxii] अरस्तू, (2021, पुनर्मुद्रण), राजनीति, फ़िंगरप्रिंट क्लासिक्स, पृष्ठ 249-253
[xxxii] सेन, ए. (2009). न्याय का विचार. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस पृष्ठ 203-229
xxxii रॉल्स, जे. (1971). न्याय का एक सिद्धांत. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 7.5
xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 7.6
xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 7.7

xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 8.2
xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 8.2
xxxii एम. लक्ष्मीकांत, (2021), भारतीय राजनीति पांचवां संशोधित संस्करण, मैकग्रा-हिल एजुकेशन; पृष्ठ 8.2
xxxii https://judgments.ecourts.gov.in/KBJ/?p=home/intro 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया
[xxxii] https://indiankanoon.org/doc/1363234/ 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया
[xxxii] https://www.law.cornell.edu/women-and-justice/resource/vishaka_v_state_of_rajasthan 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया
[xxxii] https://indiankanoon.org/doc/168671544/ 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया
[xxxii] https://indiankanoon.org/doc/823221/ 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया
[xxxii] श्रीमद्भगवद गीता (4.13), पृष्ठ 453
[xxxii] https://greenmesg.org/stotras/vedas/om_sarve_bhavantu_sukhinah.php 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया
[xxxii] https://greenmesg.org/stotras/vedas/om_sarvesham_swastirbhavatu.php 10-12-2023 पर प्राप्त किया गया

अध्याय-31

नारदस्मृति एवं वित्तीय प्रबन्धन: प्राचीन भारतीय वित्तप्रबन्धन विधियों का उद्घाटन

सुभाष चन्द्र
संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

गोल्डन कुमार
संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आरुषि निगम
संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में नारद स्मृति की महत्ता विशिष्ट है क्योंकि इस ग्रन्थ में प्राचीन भारत के नैतिक मूल्यों, न्याय और सामाजिक व्यवस्था के मानदण्डों के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ में विभिन्न विषयों का व्यापक विश्लेषण प्राप्त होता है और इन्हीं विषयों में वित्तीय प्रबन्धन विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि यह विषय धन एवं संसाधनों की रक्षा तथा निरन्तर संसाधनों के विकास के लिये सिद्धान्तों और उपायों को अत्यन्त सरल रूप में प्रदर्शित करता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य नारद स्मृति में वर्णित वित्तीय प्रबन्धन के सिद्धान्तों को उद्धृत करना तथा उनका विश्लेषण करना है, जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासङ्गिकता एवं उपयोगिता को प्रकट करते हैं। ग्रन्थ में प्रकाशित वित्तीय निर्देशों का गहन अध्ययन करके, ऐतिहासिक और आधुनिक सन्दर्भों में इन सिद्धान्तों के अनुप्रयोग को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। नारदस्मृति में उल्लिखित प्रमुख पहलुओं में धन सृजन, संसाधन आवंटन, ऋण प्रबन्धन और नैतिक विचार आदि शामिल हैं। इस शोध पत्र में नारद स्मृति में वर्णित धनप्राप्ति, व्यय, निवेश और नैतिक विचारों का प्रतिपादन किया गया है। अतः नारदस्मृति में प्रतिपादित विषयों जैसे ऋण प्रयोजन, प्रकार और प्रबन्धन के नियम, धन के विभिन्न प्रकार - वैधधन, अवैधधन, न वैध न अवैधधन आदि का समायोजन इस पत्र में प्रदर्शित है। यह शोधपत्र नारदस्मृति में उल्लिखित प्राचीन वित्त प्रणाली को समकालीन परिप्रेक्ष्य में उद्धृत करने का प्रयास करता है तथा आधुनिक समय के वित्तीय प्रबन्धन की प्रासङ्गिकता[xxxii] और उपयोगिता का परारूप उद्घाटित करना है।

प्राचीन भारत लगभग हर क्षेत्र में अग्रणी रहा है। तत्कालीन चिन्तक, मनोवैज्ञानिक, ऋषि मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं से भलीभांति परिचित थे। इसी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पुरुषार्थ नामक सामाजिक संस्था को समाज प्रबन्धन के अङ्गों में शामिल किया। पुरुषार्थ चार हैं धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष[xxxii]। वस्तुतः मनुष्य की इहलौकिक मूलभूत आवश्यकताएं अर्थ एवं काम ही हैं। धर्म इन्हीं आवश्यकताओं को प्राप्त करने की उचित पद्धति है। मोक्ष पारलौकिक है। धर्म के आधार अर्जित अर्थ एवं काम के परिणामस्वरूप मोक्ष अर्जित होता है। धर्मशास्त्र का क्षेत्र व्यापक है। धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ मुख्य रूप से प्राचीन भारतीय न्यायशास्त्र और सामाजिक मानदण्डों के विकास के लिए आधारभूत माने जाते हैं। यह केवल धार्मिक या आध्यात्मिक ग्रन्थ ही नहीं हैं, अपितु व्यक्तिगत

आचरण से लेकर शासन कलाओं के साथ ही साथ दैनिक जीवन के व्यावहारिक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करते है। यह विधि, नैतिकता, सामाजिक कर्तव्य तथा वित्तीय प्रबन्धन के विभिन्न पहलुओं को उत्कृष्टता से समाहित करते

हैं। नारदस्मृति भी धर्मशास्त्रीय परम्परा का एक अद्भुत् ग्रन्थ है। ऋषि नारद को समर्पित, नारद स्मृति प्राचीन भारत के सामाजिक और आर्थिक जीवन को नियन्त्रित करने वाले दिशा-निर्देशों और सिद्धान्तों का एक समृद्ध चित्रयवनिका प्रस्तुत करती है। यह भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में से एक है। यह ग्रन्थ कुल 4 अध्यायों में विभक्त है जिनमें कुल मात्र 1028 श्लोक प्राप्त होते है (Kane, 1930)। यह ग्रन्थ प्राचीन भारतीय संविधान और नियमों को संबोधित करती है, जो समाज के नैतिक और सामाजिक व्यवस्था को संचालित करने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। इस ग्रन्थ में विविध विषयों पर विचार किया गया है, जैसे कि धर्म, नैतिकता, समाज, शासन, व्यवसाय, और आध्यात्मिकता। इस ग्रन्थ में वर्णित नीति, न्याय, और नैतिकता के मूल सिद्धान्तों के द्वारा समाज में न्याय और सामाजिक व्यवस्था के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है[xxxii] (स्वाई, २०२३)। प्रस्तुत स्मृति में मुख्य अठारह व्यवहार पद वर्णित हैं, इन प्रमुख अठारहों व्यवहारपद को आचार्य ने पुनः कुल एक सौ बत्तीस भागों में वर्गीकृत किया है[xxxii]। इन व्यवहारपदों का वर्णन समाज में अनुशासन को बनाए रखने के लिये किया गया हैं। यह ग्रन्थ धार्मिक, सामाजिक और नैतिक विषयों के साथ-साथ आर्थिक और वित्तीय से सम्बन्धित विषयों पर भी चर्चा करता है। वित्त और धन के प्रबन्धन के क्षेत्र में नारदस्मृति ने कुशल नियम दिए हैं। यह स्मृति वित्तीय प्रबन्धन की विस्तृत खोज के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो धन सृजन, संसाधन आवंटन, ऋण प्रबन्धन और नैतिक विचारों में अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है। ये पहलू प्राचीन काल में आर्थिक स्थिरता और सामाजिक सद्भाव बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण थे और आज भी इनका महत्व बना हुआ है (Jolly, 1876)।

नारद स्मृति के प्रमुख क्षेत्रों में से एक अर्थ (धन) की अवधारणा है, जिसे चार पुरुषार्थों (मानव जीवन के लक्ष्य) में से एक माना जाता है। अर्थ को अन्य तीन पुरुषार्थों से पृथक करके नहीं देखा जाता है, अपितु यह धर्म (कर्तव्य), काम (इच्छा) और मोक्ष (मुक्ति) से जटिल रूप से जुड़ा हुआ है। इस अवधारणा का समग्र दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करना है कि धनलाभ अथवा धनप्राप्ति को नैतिक विचारों और सामाजिक जिम्मेदारियों के साथ सन्तुलित बनाए रखना। नारदस्मृति धन का अर्जन, उपयोग, बचत का महत्व और वित्तीय लेनदेन के नैतिक निहितार्थ आदि विभिन्न वित्तीय तथ्यों पर विशिष्ट दिशानिर्देश प्रदान करती है। धन सृजन और प्रबन्धन के अतिरिक्त, नारद स्मृति संसाधन आवंटन और ऋण प्रबन्धन के लिए विस्तृत संरचना प्रदान करती है। यह ऋण लेने और देने में स्पष्ट लेखन तथा अनुबन्ध को बनाए रखने के महत्व पर भी जोर देता है। वित्तीय लेन-देन में पारदर्शिता और जवाबदेही की आवश्यकताओं पर भी प्रकाश डालता है। इसमें धन के प्राप्ति, व्यय, और निवेश के लिए उपयुक्त दिशा-निर्देश दिए गए हैं, जो व्यक्ति को धन का सही उपयोग करने में सहायता प्रदान करते हैं।

नैतिक विचार नारद स्मृति में वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों की आधारशिला हैं। यह धोखाधड़ी की प्रथाओं और शोषण की निंदा करता है, सभी लेन-देन में निष्पक्षता और पारदर्शिता का समर्थन करता है। नैतिक आचरण पर यह जोर सामाजिक सद्भाव बनाए रखने और समाज के सभी सदस्यों की भलाई सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है। इसमें लोगों को नैतिकता और न्याय के मानकों का पालन करने के लिए प्रेरित किया गया है तथा इन मूल्यों को बनाए रखने से, व्यक्ति और संस्थाएँ अधिक न्यायसंगत और समतापूर्ण आर्थिक प्रणाली में योगदान दे सकती हैं। इसमें वर्णित वित्तप्रबन्धन के सिद्धान्तों के द्वारा कोई भी राष्ट्र निश्चित रूप से विकसित राष्ट्र बन सकता है।

1. शोधपत्र के उद्देश्य

इस शोध पत्र का प्राथमिक उद्देश्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थ नारद स्मृति में निहित वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों का पता लगाना और उनका विश्लेषण करना है। इस शोध पत्र का उद्देश्य नारद स्मृति में व्यक्त वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों का गहन अध्ययन करना, उनकी विषय-वस्तु का विश्लेषण करना और ऐतिहासिक तथा समकालीन दोनों सन्दर्भों में उनके अनुप्रयोग की खोज करना है। पाठ की जांच करके, हम उन अन्तर्निहित सिद्धान्तों को उजागर कर सकते हैं जो प्राचीन भारत में वित्तीय गतिविधियों को नियंत्रित करते थे और आधुनिक वित्तीय प्रबन्धन प्रथाओं के साथ समानताएं खींच सकते हैं। नारदस्मृति में उल्लिखित प्रमुख पहलुओं में धन सृजन, संसाधन आवंटन, ऋण प्रबन्धन और नैतिक विचार शामिल हैं। इस शोध पत्र में नारद स्मृति में वर्णित धनप्राप्ति, व्यय, निवेश और नैतिक विचारों का प्रतिपादन किया गया है। अतः नारदस्मृति में प्रतिपादित विषयों जैसे ऋण (लोन) प्रयोजन, प्रकार और प्रबन्धन के नियम, धन के विभिन्न प्रकार - शुक्ल धन (वाइट मनी), कृष्ण धन (ब्लैक मनी), न शुक्ल न कृष्ण धन आदि[xxxii] का समायोजन इस पत्र में प्रदर्शित है। इन सिद्धान्तों की प्रासङ्गिकता उनके नैतिक आचरण, विवेकपूर्ण संसाधन आवंटन और जिम्मेदार ऋण प्रबन्धन पर ध्यान केंद्रित करके रेखांकित की जाती है- अवधारणाएँ जो आज के वित्तीय परिदृश्य में भी उतनी ही प्रासङ्गिक हैं। विशेष रूप से, इस पत्र का उद्देश्य है:

i. **मुख्य वित्तीय सिद्धान्त:** नारद स्मृति में उल्लिखित प्रमुख वित्तीय सिद्धान्तों और दिशानिर्देश को देखते हुए, उनके नैतिक, आर्थिक और सामाजिक आयामों पर ध्यान केंद्रित करना है।
ii. **ऐतिहासिक सन्दर्भ:** नारद स्मृति में प्राचीन भारत की सामाजिक-आर्थिक तथा वित्तीय से सम्बन्धित आयामों को बताया गया है।
iii. **तुलनात्मक विश्लेषण:** इस पत्र में समानता, अन्तर और एकीकरण के द्वारा नारद स्मृति में प्राप्त वित्तीय सिद्धान्त तथा समकालीन वित्तीय प्रबन्धन के साथ तुलना एवं अन्तर को प्रकाशित किया है।
iv. **नैतिक निहितार्थ:** नारद स्मृति के वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों में नैतिक विचारों को बताया गया है तथा आधुनिक वित्तीय प्रणालियों में उनकी प्रासङ्गिकता और अनुप्रयोग पर चर्चा किया गया है।

इन उद्देश्यों को प्राप्त करके, यह पत्र प्राचीन ज्ञान और समकालीन वित्तीय प्रथाओं के बीच एक पुल बनाने का प्रयास करता है, जिससे नैतिक और जिम्मेदार वित्तीय प्रबन्धन को बढ़ावा देने वाली अन्तर्दृष्टि प्रदान की जा सके।

2. शोध पद्धति

इस शोध को करने के लिए अपनाई गई कार्यप्रणाली पर नीचे चर्चा की गई है। नारद स्मृति के पाठ का विश्लेषण करने के लिए वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों का वर्णन करने वाले अंशों की पहचान की गई है। इस विश्लेषण का उद्देश्य वित्तीय व्यवहारों में धन सृजन, संसाधन आवंटन, ऋण प्रबन्धन और नैतिक आचरण से सम्बन्धित स्पष्ट और निहित दिशा-निर्देशों को उद्घाटित करना है। पुनः नारद स्मृति की पाठ्य सामग्री को समझने के लिए एक व्याख्यात्मक दृष्टिकोण का उपयोग किया गया है। इसके ऐतिहासिक संदर्भ और सांस्कृतिक महत्व पर विचार किया गया है। यह रूपरेखा पाठ में व्यक्त वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों के सूक्ष्म अर्थों और निहितार्थों को समझने में सहायता करती है। पाठ संग्रहण के लिए नारदस्मृति के प्राथमिक स्रोतो का चयन किया गया है। वित्तीय प्रथाओं और सिद्धान्तों पर विविध व्याख्याओं और दृष्टिकोणों को एकत्रित करने के लिए नारद स्मृति के कई अनुवादों और संस्करणों का भी

उपयोग किया गया है। इनके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय अर्थशास्त्र और वित्त से संबंधित विषयों पर चर्चा करने वाले शैक्षणिक लेखों, शोधपत्रों, पुस्तकों, टीकाओं एवं टिप्पणियों की भी समीक्षा की गई है। इस स्रोतो के माध्यम से आधुनिक वित्तीय सिद्धान्तों के साथ प्रासङ्गिक समझ और तुलनात्मक विश्लेषण में सहायता ली गई है। इसके पश्चात् विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के आधार पर वित्तीय प्रबन्धन के विभिन्न विषयों का विश्लेषण किया गया है। इसमें धन अर्जन, व्यय, निवेश रणनीतियां, नैतिक विचार जैसी प्रमुख अवधारणाओं का पता लगाने के लिए विभिन्न अंशों को वर्गीकृत और व्यवस्थित करने का भी प्रयास किया गया है। फिर आधुनिक वित्तीय अवधारणाओं से नारदीय अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने का भी प्रयास किया गया है। यह तुलनात्मक विश्लेषण आधुनिक वित्तीय सन्दर्भों में प्राचीन भारतीय ज्ञान की प्रासंगिकता, प्रयोज्यता और अनुकूलनशीलता का मूल्यांकन करने में मदद करता है।

3. नारदीय वित्तीय प्रणाली के प्रमुख अङ्ग:

धन अर्जन एवं प्रबन्धन: नारद स्मृति में धन के अधिग्रहण, संरक्षण और प्रबन्धन के विषय से सम्बन्धित नियम को बताया गया है[xxxii]। इसमें धन कमाने के नैतिक साधनों पर जोर देता है तथा से अर्जित प्रथाओं के प्रति सावधान करता है। समकालीन विश्लेषण में इन सिद्धान्तों को आधुनिक वित्तीय प्रथाओं, जैसे नैतिक निवेश, जिम्मेदार बैंकिंग और टिकाऊ व्यावसायिक प्रथाओं पर लागू करना शामिल है।

खर्च और उपभोग: पाठ जिम्मेदार खर्च और उपभोग[xxxii] की आदतों पर सलाह देता है। यह व्यय में संयम और विवेक की बात करता है तथा अपव्यय को निन्दनीय मानता है। आज के सन्दर्भ में, यह वित्तीय नियोजन, आयविवरण बनाने और अपने साधनों के भीतर रहने, वित्तीय स्थिरता और सुरक्षा को बढ़ावा देने के सिद्धान्तों के अनुरूप है।

निवेश और उद्यमिता: नारद स्मृति आर्थिक विकास में निवेश[xxxii] और उद्यमिता के महत्व को पहचानती है। यह व्यक्तियों को नैतिक और वैध प्रथाओं का पालन करते हुए उत्पादक उद्यमों में संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित करता है। समसामयिक विश्लेषण में जोखिम प्रबन्धन, विविधीकरण और सामाजिक प्रभाव जैसे कारकों पर विचार करते हुए विभिन्न क्षेत्रों में निवेश के अवसरों की खोज करना शामिल है (Mannepalli, 2014)।

ऋणदान एवं ऋणादान: यह ऋणदान एवं ऋणादान[xxxii] से सम्बन्धित सिद्धान्तों पर चर्चा करता है। ऋण देने और ऋण लेने की की एक उत्तरदायित्वबोध युक्त प्रथाओं पर जोर देता है (Güvenilir, et. al, 2020)। यह वित्तीय दायित्वों को पूरा करने के महत्व पर प्रकाश डालता है। आय से अधिक ऋण लेने से वित्तीय अस्थिरता के प्रति सचेत भी करता है। समसामयिक विश्लेषण में वित्तीय लेनदेन में ऋण, ऋण प्रबन्धन रणनीतियों और उपभोक्ता संरक्षण कानूनों की भूमिका को भी प्रतिपादित करता है (Goyal et. al, 2013)। सिबिल स्कोर की भी अवधारणा इस ग्रन्थ में प्राप्त होती है। व्यक्ति के रोजगार के आधार पर उससे व्याज लेने का विधान प्राप्त होता है[xxxii]। इसके साथ ही सुरक्षित एवं असुरक्षित ऋण की भी अवधारणा इस काल में थी। सुरक्षित ऋण पर कम व्याज का प्रावधान था एवं असुरक्षित ऋण पर अधिक का।

दान एवं परोपकार: नारद स्मृति धन प्रबन्धन में परोपकार और दान[xxxii] के महत्व को रेखाङ्कित करती है। यह व्यक्तियों को अपने धन को जरूरतमंद लोगों के साथ साझा करने और समाज के कल्याण में योगदान करने के लिए प्रोत्साहित करता है। समसामयिक विश्लेषण में कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी, प्रभाव निवेश और सामाजिक और पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने के उद्देश्य से स्थायी परोपकारी पहल के लिए रास्ते तलाशना आदि शामिल है।

विधिक एवं नैतिक विचार: यह वित्तीय लेनदेन के विधिक एवं नैतिक आयामों को समझने के लिए एक रूपरेखा भी प्रदान करता है। यह निष्पक्ष व्यापार, संविदात्मक समझौतों और विवाद समाधान, वित्तीय लेनदेन में विश्वास और अखण्डता को बढ़ावा देने के लिए दिशानिर्देशों को अवलोकित करता है। समसामयिक विश्लेषण में वित्तीय संस्थानों और बाजारों को नियन्त्रित करने वाले नियामक ढांचे, कॉर्पोरेट प्रशासन प्रथाओं और नैतिक आचार संहिता की जांच करने का प्रावधान करता है।

संक्षेप में, नारद स्मृति में चर्चा किए गए वित्तीय पहलू कालातीत सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं जो वित्तीय प्रबन्धन के समकालीन दृष्टिकोण के साथ प्रतिध्वनित होते हैं। इसकी अन`तर्दृष्टि को आधुनिक आर्थिक सिद्धान्तों और प्रथाओं के साथ एकीकृत करके, व्यक्ति और संस्थान वित्त की जटिलताओं को ज्ञान, अखण्डता और सामाजिक जिम्मेदारी के साथ समन्वित कर सकते हैं। जिससे परिणामस्वरूप स्थायी आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा मिल सकता है।

4. समकालीन महत्व

नारद स्मृति में व्यक्त वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों का अध्ययन विभिन्न कारणों से महत्वपूर्ण समकालीन प्रासङ्गिकता रखता है, विशेष रूप से आधुनिक वित्तीय प्रथाओं और नैतिक विचारों के सन्दर्भ में यह सर्वप्रमाणिक माना जाता है।

वित्तीय प्रबन्धन में नैतिक आधार: नारद स्मृति वित्तीय व्यवहार में नैतिक आचरण पर जोर देती है, सत्यवादिता, निष्कपटता, पारदर्शिता तथा निष्पक्षता की चर्चा करती है। कॉर्पोरेट अथवा निगमित संस्थाओं के अपवादों और नैतिक त्रुटियों से चिह्नित इस युग में, ये सिद्धान्त वित्तीय लेनदेन में विश्वास और अखण्डता को बढ़ावा देने के लिए एक आधारभूत ढांचा प्रदान करते हैं।

विवेकपूर्ण संसाधन आवंटन और निवेश रणनीतियाँ: यह पाठ विवेकपूर्ण संसाधन आवंटन और निवेश रणनीतियों में अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है, रणनीतिक योजना और आर्थिकाशङ्का प्रबन्धन के महत्व पर भी प्रकाश डालता है। ये सिद्धान्त व्यक्तियों और संगठनों को स्थायी वित्तीय विकास की दिशा में मार्गदर्शन करने में अमूल्य हैं।

ऋण प्रबन्धन और वित्तीय अनुशासन: नारद स्मृति ऋण प्रबन्धन पर दिशानिर्देश प्रदान करती है, जो उधार का विवेकपूर्ण आदान करे तथा समय पर पुनर्भुगतान के महत्व पर जोर देती है। ऐसे समय में जब व्यक्तिगत और कॉर्पोरेट ऋण का स्तर ऊंचा है, ये सिद्धान्त वित्तीय अनुशासन और दीर्घकालिक वित्तीय स्थिरता का समर्थन करते हैं।

आधुनिक प्रथाओं के साथ सांस्कृतिक ज्ञान का एकीकरण: प्राचीन भारतीय ज्ञान को समकालीन वित्तीय प्रथाओं के साथ एकीकृत करके, यह शोध ऐतिहासिक अन्तर्दृष्टि को आधुनिक चुनौतियों से जोड़ता है। यह वित्तीय प्रबन्धन के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है जो आर्थिक उद्देश्यों के साथ-साथ सांस्कृतिक मूल्यों पर भी विचार करता है।

शैक्षणिक और शैक्षणिक लाभ: नारद स्मृति के वित्तीय सिद्धान्तों का अध्ययन विविध दृष्टिकोण और वैकल्पिक प्रतिमान प्रदान करके वित्तीय शिक्षा को समृद्ध करता है। यह पारम्परिक सिद्धान्तों से अधिक सीखने के आयामों को व्यापक बनाता है, आलोचनात्मक चिन्तन को पोषित करता है और वित्तीय निर्णय लेने में नैतिक निहितार्थों की गहन समझ देता है।

नीतिगत निहितार्थ और शासन रूपरेखा: नारद स्मृति में स्पष्ट किए गए सिद्धान्त वित्तीय समावेशन, स्थिरता और न्यायसंगत आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से नीतिगत चर्चाओं और शासन रूपरेखाओं को सूचित करते हैं। वे विनियामक वातावरण को आकार देने के लिए एक ऐतिहासिक आधार प्रदान करते हैं जो नैतिक प्रथाओं और सामाजिक उत्तरदायित्वों को प्राथमिकता देते हैं।

सांस्कृतिक विरासत और पहचान: नारद स्मृति के वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों की खोज भारत की सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित और सम्मानित करती है। यह सामाजिक मानदण्डों और मूल्यों को आकार देने में प्राचीन ग्रन्थों की स्थायी प्रासङ्गिकता को रेखाङ्कित करता है, एक वैश्वीकृत दुनिया में निरन्तरता और पहचान की भावना को बढ़ावा देता है।

इन सिद्धांतों को अपनाने से, व्यक्ति और संस्थाएँ नैतिक अखण्डता, सतत विकास और सांस्कृतिक नेतृत्व पर आधारित वित्तीय समृद्धि की आकांक्षा कर सकती हैं। यह अध्ययन सांस्कृतिक विरासत को आधुनिक प्रथाओं के साथ एकीकृत करने पर एक व्यापक प्रवचन में योगदान देता है, जो वित्तीय प्रबंधन के क्षेत्र में अकादमिक समझ और व्यावहारिक कार्यान्वयन दोनों को समृद्ध करता है।

5. निष्कर्ष

नारद स्मृति में वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों से यह स्पष्ट होता है कि इसमें नैतिक दिशानिर्देशों और आर्थिक ज्ञान की एक समृद्ध परत है, जो प्राचीन भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक से निहित है। यह ग्रन्थ संपत्ति की प्राप्ति को धर्म (धार्मिकता) प्राप्त करने का एक साधन मानता है, और नैतिक अर्जन, विवेकपूर्ण वितरण, और संसाधन के प्रबन्धन को सिद्ध करता है। नारद स्मृति में उल्लिखित वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्त कालातीत ज्ञान प्रदान करते हैं जो आधुनिक वित्तीय प्रथाओं पर लागू होते हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य इन सिद्धान्तों की प्रासंगिकता और उपयोगिता को उजागर करना है, यह प्रदर्शित करते हुए कि प्राचीन अन्तर्दृष्टि समकालीन वित्तीय प्रबन्धन को कैसे सूचित और बढ़ा सकती है। नारद स्मृति में दिए गए निर्देशों और दिशा-निर्देशों की खोज करके, हम मूल्यवान सबक खोज सकते हैं जो नैतिक आचरण, विवेकपूर्ण संसाधन आवंटन और जिम्मेदार ऋण प्रबन्धन को बढ़ावा देते हैं, जो अंततः एक अधिक स्थिर और समृद्ध आर्थिक वातावरण में योगदान करते हैं।

नारद स्मृति से प्रमुख निष्कर्षों में नैतिक संपत्ति अर्जन, संपत्ति का न्यायसंगत वितरण, और वित्तीय गतिविधियों की सामाजिक जिम्मेदारी का महत्त्व शामिल है। ये सिद्धान्त समकालीन मुद्दों जैसे कॉर्पोरेट सामाजिक जिम्मेदारी, स्थायी वित्त, और नैतिक निवेश के साथ मेल खाते हैं। यह विचार कि संपत्ति को व्यापक सामाजिक उद्देश्य की सेवा करनी चाहिए और जिम्मेदारी से प्रबंधित किया जाना चाहिए, नारद स्मृति द्वारा दी गई कालातीत अन्तर्दृष्टि है जो आधुनिक वित्तीय प्रथाओं का मार्गदर्शन कर सकती है।

इस अध्ययन के लिए शोध पद्धति नारद स्मृति में निहित वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों का पता लगाने और उन्हें स्पष्ट करने के लिए तुलनात्मक दृष्टिकोण के साथ कठोर पाठ्य विश्लेषण को जोड़ती है। गुणात्मक तरीकों का उपयोग करके, इस अध्ययन का उद्देश्य मूल्यवान अंतर्दृष्टि को उजागर करना है, जो प्राचीन भारतीय ज्ञान की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत का सम्मान करते हुए समकालीन वित्तीय प्रथाओं को सूचित और उन्नत कर सके।

अन्त में नारद स्मृति के वित्तीय प्रबन्धन सिद्धान्तों का पुनरीक्षण समकालीन वित्त के लिए मूल्यवान सबक प्रदान करता है। इस ग्रन्थ में जोर दिए गए नैतिक और सामाजिक आयामों को अपनाकर, आधुनिक वित्तीय पेशेवर एक अधिक न्यायपूर्ण और स्थायी आर्थिक प्रणाली के निर्माण में योगदान कर सकते हैं। प्राचीन ज्ञान और समकालीन के इस सम्मिलन से न केवल हमारे वित्तीय प्रबन्धन की समझ समृद्ध होती है, अपितु यह अधुनिक की वित्तीय दुनिया की नैतिक और सामाजिक चुनौतियों के समाधान के लिए एक ढांचा भी प्रदान करता है।

कृतज्ञता

यह शोधपत्र प्रतिष्ठित संस्थान (Institution of Eminence: IoE), दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के संकाय वित्तपोषित अनुसंधान कार्यक्रम (Faculty Research Programme: FRP) के तहत वित्तपोषित (Ref. No./IoE/2023-24/12/FRP dated August 31, 2023) परियोजना का प्रतिफल है। लेखक प्रतिष्ठित संस्थान (Institution of Eminence: IoE), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के वित्तीय समर्थन के लिए अति आभारी हैं।

सन्दर्भ

1. Goyal, P., Goyal, M., & Goyal, S. (2013). Consumer protection law in ancient India. Journal of Human Values, 19(2), 147-157.
2. Güvenilir, F., & Incekara, A. (2020). Dynamics of interest-bearing debt in Hinduism. In A. Incekara (Ed.), "A History of Interest and Debt" (pp. 93-104). Routledge.
3. Jolly, J. (Ed.). (1876). "Náradíya Dharmasástra: Or, the Institutes of Nárada". Trübner.
4. Jolly, J. (Ed.). (1885). "Nāradasmr̥tiḥ". Asiatic Society.
5. Kane, P. V. (1930). "History of Dharmaśāstra". Bhandarkar Oriental Research Institute.
6. Mannepalli, G. (2014). Banking and business of interest in Early times of India (Special reference with inscriptions & dharmasastras). "IOSR Journal of Business and Management, 16"(10), 63-71.
7. स्वाईँ, ब्रजकिशोर. (2023). "नारदस्मृतिः तिल्लोत्तमा संस्कृतटीका सहित". चौखम्बा संस्कृत संस्थान.